वार्षिक मूल्य ६) विदेशके लिए १२ शिलिंग

डा० हेमचन्द्र जोशी डी० लिट्
इलाचन्द्र जोशी

प्रति संख्या ।।=)
As. /10/- per copy.

भाग १, खण्ड १ फरवरी १९३३—माघ १९८९ वर्ष १, पूर्ण-संख्या ५

जिज्ञासा

श्री रामेश्वरी देवी 'चकोरी'

क्या है यह आकर्षण ? कैसा
है इसका इतिहास ?
आंखोंके मिलते ही बढ़ती
क्यों आंखोंकी प्यास ?

अधर खोजते रहते अस्फुट—
अधरोंकी मुसकान;
यौवन हाथ पसार मांगता—
क्यों यौवनका दान ?

हृदय स्वयं ही कर लेता है—
न्याय हृदयका आप;
बन जाता है अपनापन क्यों
अपना ही अभिशाप ?

एक वासना है, उसको सब
क्यों कहते हैं प्यार ?
अथिर उमंग-जनित यह कैसा
है कलुषित व्यापार !

अब न देखना पगली ! इस
नश्वर यौवनका रंग;—
एक सुनहरी छाया, जिसपर
हंसता रहे अनंग !

इसी क्षणिक अस्पष्ट स्वप्नकी
परिभाषा है पाप ?—
जिससे सीमित है ममताके
जीवनका अनुताप ?

* अप्रकाशित

जर्मनीके घुमक्कड़ नवयुवकोंमें

जी० डी० अग्निहोत्री एम० ए०—पैरिस

यूरोपके नवयुवकोंमें नयी स्फूर्ति आ गयी है। वहांके सब देशोंमें नवयुवक समझ गये हैं कि हमको रास्ता दिखानेका अधिकार बूढ़ोंको नहीं है। उनमें और हममें जमीन-आस्मानका फरक है। उनके जर्जर देहमें खून ठण्डा पड़ रहा है, हड्डियां शक्तिहीन हो गयी हैं, हृदयकी धड़कन अपनी तेज़ चाल भूल रही है और मस्तिष्क सठिया रहा है तब वे उन उगते हुए युवकोंको क्या बता सकते हैं जिनका रक्त गरम है, हृदय धकाधक धड़क रहा है, शरीर असम्भवको सम्भव करनेके लिए छटपटाता है और दिमाग तरोताजा है। यह आन्दोलन जर्मनीमें तो युद्धसे बहुत पहलेका है। १८९६ में जब कार्ल फिशरने Wandervogel 'पर्यटक पक्षी' आन्दोलनकी नींव डाली तबसे वहांके नौजवानोंमें नयी जान पड़ गयी। तरुण अवस्थामें मनुष्यका स्वभाव सैलानी होता है। फिशरके नेतृत्वमें कुछ तरुण अपने देशके पर्वतों और घाटियोंमें डोलने लगे। उनका ध्येय था प्रकृतिके सौन्दर्यका रस उसकी आत्मामें पैठकर पीना, जनतासे घनिष्ठ परिचय करना और लोक-सङ्गीत तथा लोकनृत्यमें आनन्द प्राप्त करना। धीमे-धीमे इस आन्दोलनने विराट् रूप धारण किया और सारे जर्मनीके नवयुवकोंने अपनेको सुसङ्गठित कर लिया। इस समय इनके 'आनफांग' 'फ्राये डायत्शे यूगन्दस' आदि कई पत्र हैं और शायद ही कोई जर्मन युवक ऐसा हो जो किसी न-किसी सङ्गठनमें शामिल न हो। इन सबमें एक विशेषता यह है कि ये धर्मके कट्टर शत्रु हैं। इन सत्य-प्राण तरुणोंको मन्दिरों, मसजिदों और गिरजोंमें पाखण्ड, धूर्तता और असत्यका बाजार गरम दिखायी दिया। इसलिए वे अब धर्मको ही पापका मूल समझने लगे हैं, किन्तु नीति और सदाचारके ये कट्टर पक्षपाती हैं। हां, इनके सदाचारका अपना प्रमाण है। ये शराब नहीं पीते, मादक द्रव्यका बहिष्कार करते हैं और अपनी आत्माके आज्ञानुसार अपना जीवन [illegible]त करते हैं। इनके एक नेता ब्यूरने लिखा है—"सब प्राचीन [illegible]चार और विचार कुसंस्काराच्छन्न हैं, बूढ़ोंके जीवनका कोई आद[illegible] नहीं है, वे तो अपने बाल-बच्चोंको डरपोक, आज्ञाकारी, 'नीतिनिष्ठ' और 'सदाचारपूर्ण' बनाना चाहते हैं। इसलिए उन्हें धर्म अच्छा मालूम पड़ता है और पादड़ी प्यारे लगते हैं। उनके विद्यालय भी इसी 'अविद्या' का प्रचार करते हैं। नवयुवको! तुम! गिरजेको गिराओ और उस पर 'नया स्कूल' स्थापित करो, जो नयी पीढ़ीके अनुकूल हो और जिसमें उस पर धार्मिक, नैतिक या सदाचारका अत्याचार न हो।" इससे पाठक समझेंगे कि किस उग्रतासे जर्मन नवयुवक अपने अधिकार मांग रहे हैं।

महायुद्धके बाद जर्मनीके नवयुवकोंमें नवीन चेतना आयी। माता-पिता आर्थिक सङ्कटमें थे। वे अपने बाल-बच्चोंका पालनपोषण न कर सके। इसका फल यह हुआ कि लड़के, लड़कियां १२ बरससे ही स्वावलम्बी बनने लगीं। उस समय छोटे-छोटे बच्चे भी आत्म-निर्भर रहनेके कारण उन अड़चनोंसे परिचित हुए जो बुजुर्गोंकी पुरानी रीति-नीति उनपर लादती है। उस वक्त स्कूलोंके लड़कोंने भी विद्रोह करना आरम्भ कर दिया। छात्रोंकी कमिटियां स्कूलोंका प्रबन्ध करने लगीं। इन छात्रोंका मत था कि हमें वृद्ध लोग नहीं समझ सकते। हमारी अपनी विशेष समस्यायें हैं जिनका पुराने विचारोंके बूढ़े हमें कुछ समाधान नहीं बता सकते। 'उद्धरेदात्मनात्मानं', अपना उद्धार हम स्वयं ही कर सकते हैं, बाहरी शक्ति उसमें केवल बाधा डाल सकती है। उस समय जोरकी आवाज उठी थी कि नवयुवकोंके सबसे बड़े शत्रु तीन हैं—"पादड़ी-पुरोहित, स्कूलोंके अध्यापक और बुजुर्ग।" एक घुमक्कड़ तरुणने लिखा थाः—"तरुण पर्यटकोंमें अधिकांश ऐसे हैं जिन्हें अपने माता-पिताके प्रति घोर घृणा है।" क्योंकि—"मित्र और अपना तो वही है जो आज्ञा न दे बल्कि हृदयके अन्तरतम अन्धकारमें भी सहानुभूतिके साथ प्रवेश करे। पर बड़े-बूढ़े हमें अपना उपासक और चेला बनाना चाहते हैं।" इन क्रान्तिकारी विचारोंके पोषणमें "परिव्राजक पक्षियों" ने बहुत बड़ा भाग लिया है।

हालमें तीन जर्मन तरुण परिव्राजक, बिना सम्बल और सामानके, पैदल भारतकी यात्राको निकल पड़े। इनकी वीरता

देखिये कि रुमानिया, बुलगारिया, यूनान, टर्की, ईरान और काबुल होते हुए म० गांधीके सत्याग्रह आश्रम तक पहुंच गये। रास्तेभर कहीं नाटक दिखाया, कहीं कानोंमें काम किया, और कहीं मशीनें सुधारीं; गरज यह कि जैसा अवसर मिला वैसा काम किया और सफर जारी रखा।

मुझे १९२९ में इनके साथ घूमनेका अवसर मिला। भारतीय छात्रोंमें दो-तीन ही इस 'परिव्राजक-सङ्घ' के सदस्य थे। जर्मनीमें इसके मेम्बरोंकी संख्या तब १३०००० थी और देशभरमें इनके २१०० अखाड़े थे जिनमें इनके रहने, खाने-पीने और सोनेका प्रबन्ध था। हमारा दल गरमियोंकी छुट्टियोंमें सैरके लिए निकला। रातको ही हम सब बर्लिनके

घुमक्कड़ तरुण कूचकी तैयारीमें

अखाड़ेमें एकत्र हो गये और दूसरे दिन प्रातःकाल पीठमें 'रुक-जाक' डालकर भ्रमणको निकल पड़े। घुमक्कड़ोंकी अपनी वर्दी है। खुला कुर्ता, जांघिया और सरदीमें उनपर गरम कोट। रुकजाक एक थैला है जिसमें यात्राका अत्यन्त आवश्यक सामान रख लिया जाता है। एक जोड़ी कपड़े, थर्मल बोतल, दाढ़ी बनानेकी सामग्री, बड़ा चाकू, साबुन आदि इसमें रहते हैं। कुछ परिव्राजक छोटा सफरी चूल्हा, ताश, शतरञ्जका सामान, दूर्बीन, फोटोका कैमरा आदि भी साथ ले जाते हैं। किन्तु जर्मन नवयुवक वायोलिनकी तरहका छोटा बाजा भी अवश्य साथ रखते हैं। सङ्गीत जर्मनीकी जान है। तरुणोंकी प्रत्येक टोलीमें एक बाजा अवश्य रहता है। कभी रास्तेभर गाते हुए चलते हैं, कभी किसी पहाड़की चोटी पर अथवा सुरम्य वन-प्रान्तरमें बैठकर लोक-सङ्गीत और लोकनृत्यमें तन्मय हो जाते हैं। इस भ्रमणमें कोई कैद तो है नहीं, जिस स्थानमें प्रकृतिका सौन्दर्य हास-विलास कर रहा हो वहीं उसका पुनीत रस पान करने लगे। गरमियोंमें यूरोपकी भूमि हरित वसनसे आच्छादित हो जाती है। खेती लहराती है और वन-पर्वत लहलहाते हैं। पशु किलोलें करते हैं और पक्षी पञ्चमस्वरमें सुमधुर सुर-लहरी सुनाते हैं। प्रकृति नटीकी इस मस्त महफिलमें जर्मन भावुक नवयुवक नाच उठते हैं। वास्तवमें प्रकृतिका इतना प्रेम अन्य जातिमें नहीं पाया जाता
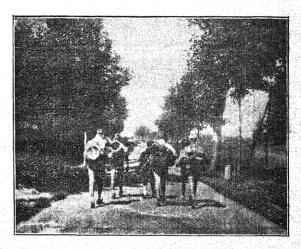
घुमक्कड़ोंकी टोली प्रकृतिका आनन्द लेती हुई आगे बढ़ रही है

ये घुमक्कड़ दिनको भोजन भी जङ्गलमें नदीके तीरपर अथवा किसी काफेमें करते हैं। थैलेमें रोट, मखन और चाकू है ही, बस काफे या बियर खरीदा और लगे काट-काटकर रोट-मखन खाने। किसीको शौक चढ़ा तो गरम सूप मंगवा लिया। भोजनके बाद फिर आगे बढ़े। शामको हम सब थक गये और सूरज ढलते-ढलते हमारे सामने जङ्गलकी सरहदपर बहुत बड़ा तख्ता टंगा मिला जिसमें लिखा था—"यह रास्ता घुमक्कड़ नवयुवकोंकी सरायको जाता है।" जान-में-जान आयी और उधरको बढ़े। थोड़ी दूरपर एक मकान है। उसके दरवाजेपर टेढ़े मेढ़े हरफोंमें लखा है—"स्वागतम्।" पास

स्नानसे निवृत्त होकर परिव्राजक तरुण अपने सारे बदनको धूप और हवासे नहला रहा है

ही बूढ़ा मनेजर मिला और उसने कहा—'हेर्बेर्गस हाइल' अर्थात् "घुमक्कड़ोंकी सरायकी जै।" नमस्कारके स्थानपर ये परिव्राजक यही शब्द काममें लाते हैं। ये सरायें अनेक प्रकारकी हैं। कई दुर्ग इन परिव्राजकोंके अड्डोंमें परिणत हो गये हैं। बर्लिन, म्यूनिच आदि नगरोंमें आधुनिकतम भवन बने हैं जहां ये 'उड्डीयमान पक्षी' बसेरा लेते हैं। इन बड़े भवनोंमें सब तरहका आराम है। पका-पकाया भोजन बहुत सस्तेमें मिल जाता है। भोजन तैयार करनेके लिए यहां ऐसे बर्तन हैं जिनमें भापके द्वारा सब भोजन तयार होता है। इन स्वच्छ हण्डोंमें शाक-सब्जी डाल दीजिये तो दस मिनटमें पकके तैयार हो जाये। इन भांडोंमें भोजन कभी जल ही नहीं सकता। ये भवन तो अच्छे-अच्छे होटलोंका मुकाबला करते हैं। इनकी स्वच्छता आदर्श है। किन्तु इस बातका ध्यान रखा गया है कि नवयुवकोंको इनमें उतना ही आराम मिले, जितनेसे उनकी 'स्वावलम्बी' आदतें बिगड़ न जावें। यहां भी सब घुमक्कड़ तरुण अपना-अपना काम स्वयं करते हैं और भोजनालयसे भी अपना भोजन स्वयं ले आते हैं। ऊंचे पर्वतोंके शिखरोंपर छोटे 'उतारेके झोपड़े' भी हैं। लकड़ियोंके कुन्दे बेञ्चोंमें परिणत कर दिये गये हैं और सूखी घास-पात तथा जङ्गलसे लकड़ी चुनकर चूल्हा जलाया जाता है। अपना सामान ले जाइये और पकाइये। आलू, रोट, अण्डा, दूध आदि सामान भटियारा भी बेचता है। हर सरायमें एक हाल रहता है जिसमें नाना दिशाओंसे ये पक्षी आते हैं। खाकी या हरा कुर्ता पहने, बाहें नङ्गी, गला खुला हुआ, हाथ-पांव मोटे और गठीले, छाती चौड़ी और बाल बिखरे हुए। बहुधा तीन-तीन, चार-चारकी टोलियां आती हैं। और सबसे 'गुटन आवेन्त' कहकर बैठ जाती हैं। पीठकी थैली गिरायी और लगे गपशप करने। दससे पहले इनके विश्राम-गृहमें कोई सो नहीं सकता। ठीक दस बजे इनका शयनागार खुलता है। तब तक भोजन पकता है। गैसके चूल्हे बने हैं, उनपर आलू उबाले जाते हैं, सूप (एक प्रकारका शोरबा) तैयार किया जाता है और कभी-कभी मांस भी चढ़ता है। आलू जर्मनोंका मुख्य खाद्य है। समूचे आलू पानीमें उबाले और उनमें नमक डाल दिया तो इनका भोजन तैयार हो गया। जर्मन इनके साथ मांस भी खाते हैं, पर ये 'विचरणशील पञ्छी' शराब नहीं पीते और बहुत कम मांस खाते हैं। इनका भोजन बहुत सीधा-सादा है। इनकी सहनशीलता, सहृदयता आदि भी आदर्श है। भीड़के समय एक ही चूल्हेमें कई टोलियोंको बारी-बारी पकाना पड़ता है। शान्तिके साथ सब अपना खाना पकाते हैं, लड़ाई-झगड़ेका अवसर आता ही नहीं। जहां ये 'उड्डीयमान पक्षी' एकत्र हुए कि सब भाई बन जाते हैं। आपसमें तुम या आप नहीं बोलते। 'तू कहांसे आया?' 'कहांको जा रहा है?' 'तेरा प्रान्त कौन है?' आदि प्रश्नोंकी बौछाड़ हो जाती है। जब इन्हें मालूम हुआ कि मैं भारतसे आया हूं तो बोले—'क्या पैदल भ्रमण करते आया है?' मैं समझा कि दिल्लगी करते हैं। किन्तु उन्होंने सचमुचमें समझा कि मैं भारतका 'पक्षी' हूं और अपने 'पङ्खों' के सहारे जर्मनी पहुंचा हूं। इसपर मेरी टोलीके मित्रोंने उन्हें समझाया कि भारतमें अभी 'वाण्डरफोगल' संस्था नहीं है और न वहांके नवयुवक हमारी तरह सैलानी तबीयतके हैं। मुझे यह सुनकर बहुत लज्जा आयी और मैंने अपनी लाज ढकनेके लिए कहा—"सैलानी तबीयतके तो भारतमें बहुत हैं। लाखों साधु पर्यटन करते रहते हैं। तरुणोंमें भी अब 'बाय-स्काउट' आन्दोलन बहुत तेजीसे फैल रहा है।" इस पर एक घुमक्कड़ने मुझसे

कहा कि—"बाय-स्काउट आन्दोलन जासूस बेडन पावेलने इसलिए चलाया था कि ब्रिटेनको युद्धके समय तरुण और बच्चे भी सहायता दे सकें। हमने उसके इस सैनिक आन्दोलनको अपना रूप दिया है।" मुझे इसपर सन्देह हुआ कि लार्ड बेडन पावेल जासूस रहे हों; किन्तु उस परिव्राजक युवकने मेरा शक दूर किया। मेरा लार्ड बेडन पावेलसे कोई सम्बन्ध नहीं है और न मैं 'बाय-स्काउट' या बालचर हूं, तो भी उस समय यह बात सुनकर मेरा सर झुक गया और मैं न मालूम क्यों भगवान्से प्रार्थना करने लगा कि उसकी बात झूठ निकल जाती और कोई घुमक्कड़ उसका खण्डन कर देता। ऐसा न हुआ और हमारी बातें समाप्त हो गयीं। इस बीच लड़के स्नान करने जा रहे हैं और ताजा बनकर नङ्गे-धड़ङ्गे वापस आ रहे हैं। पूरे

पुराना दुर्ग घुमक्कड़ोंकी सराय बना दिया गया है

नग्न नहीं, बहुत छोटी जांघिया पहनकर। मुझे भी स्नानकी सूझी और जो स्नानागारमें पहुंचा तो सब दिगम्बर वेशमें खूब साबुन मल रहे हैं और ठण्डे पानीसे नहा रहे हैं। मैं कई वक्त ऐसा दृश्य देख चुका था, पर तब भी मुझे दम न हुई कि उनमें मिल जाऊं और स्नान करूं। जब सब नहा चुके तो मैंने भी जी खोलकर नहाया और तबीयत हरी हुई। इस बीच हालमें अलग-अलग गोल बने हुए वादविवादमें मस्त हैं। पर प्रत्येक झुण्डका एक तरुण भोजन बना रहा है। इसमें कम्यूनिस्ट, नात्सी, राष्ट्रीय, जनतन्त्रवादी आदि सब दलके युवक हैं और अपने सिद्धान्तोंपर गरम बहस कर रहे हैं लेकिन कोई भी नौजवान झगड़ा नहीं करना चाहता। यह उसकी आकृति और बोलनेका तरीका बताता है। हां, एक टोलीमें चार कम्यूनिस्ट बैठे हैं, वे आपसमें खूब घोट रहे हैं और साथ ही बीच-बीचमें घूसा भी दिखा रहे हैं। पर यह मुट्ठी नात्सियोंके लिए है क्योंकि आपसमें ये एक दूसरेके लिए जान देनेको तैयार हैं। यद्यपि 'वाण्डरफोगल' राजनीतिसे बाहर रहना चाहते हैं, किन्तु समय ऐसा आ गया है कि उसे छोड़ना असम्भव है। इनके बीचमें तकल्लुफ नहीं है। जिससे चाहो बोल लो। जो चाहो पूछो और सबको 'तू' सम्बोधन करो। कुछ ड्रेस्डनके छात्र मेरे पास आये और बोले—'तू जब घूमने निकला है तो सैक्सन स्विट्जरलैण्ड भी हो आना। वहांका-सा प्राकृतिक सौन्दर्य जर्मनीमें अन्यत्र नहीं पाया जाता।" ब्लैक फारेस्टके कुछ युवक यह सुन बैठे और तुरत मेरे पास आकर बोले—"भाई! ब्लैक फारेस्ट जरूर जाना। हाइलडबर्गका विश्व-
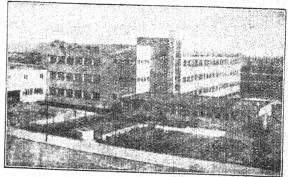
'वाण्डरफोगल' संस्थाने घुमक्कड़ोंके लिए यह नया विश्राम-गृह बनवाया है

विद्यालय निसर्गके क्रोड़में नग-सा चमकता है। वैसी जल-वायु और आनन्द-उल्लासमयी प्रकृति स्विट्जरलैण्डमें भी नहीं मिलती। और वहांका छात्र-जीवन विश्वविख्यात है।" इस कमरेमें नाना प्रदेशोंके नवयुवक हैं। राइनलैण्ड, वेस्टफालन, बवेरिया आदिसे भी पर्यटक तरुण पैदल चक्कर लगाते हुए आ रहे हैं। इनमें ऐसे भी हैं जिन्हें हमारी दासता बहुत खलती है। एक तो बोल ही उठा—"आपकी संख्या बहुत अधिक है; इसपर भी आप गुलाम क्यों हैं?" मैं जवाब सोच रहा था कि दूसरा नवयुवक बीच ही में बोल उठा—"इनके पास हथियार नहीं हैं; पर ये भी अपने हाथ-पांव छटपटा रहे हैं। क्या तु

म० गांधीका नाम नहीं सुना?" इसपर पहले घुमक्कड़ने उत्तर दिया—"क्या बात करता है ? क्या म० गांधीके सिद्धान्तोंके अनुसार वर्तमान वैज्ञानिक युगमें कोई भी देश आगे बढ़ सकता है ? म० गांधी तो कल-कारखानोंके शत्रु हैं।" आदि। इस वादविवादमें मुझे कुछ न बोलना पड़ा। कट्टर निरामिषाहारी एक यहूदी महात्माजीकी ओरसे लड़ने लगा। दोनों ओरसे तर्क और दृष्टान्तोंकी झड़ी लग गयी। लेकिन इस लड़ाके देशमें महात्माका अहिंसावाद और सत्याग्रह विजय प्राप्त न कर सका।

हमने इस कमरेमें ही भोजन किया। खूब भूख लगी थी, जो पका सो बहुत मीठा लगा। रोट, मखन आदि तो सब अपने साथ लाये हैं। आलू, सूप और काफे यहां तैयार किया गया है। आनन्दके साथ भोग लगाया और अपने बर्तन स्वयं साफकर सामान थैलेमें भर दिया। आज चांदनी रात है। जर्मन नवयुवक बाहर जानेको बेचैन हैं। पेटपूजा खतम हुई तो बाहर मैदान भर गया। जो नवयुवक बाजे लाये हैं वे देशभक्तिपूर्ण तान छेड़ रहे हैं। उनके आसपास गवैये नौजवान जमा हो गये हैं। ये सब गला फाड़-फाड़कर जर्मनीकी महिमाका प्रचार कर रहे हैं और वीर-रसमें मस्त हैं। उधर देखिये कम्यूनिस्टोंने अपना अन्तर्राष्ट्रीय सङ्गीत छेड़ दिया है। देशभक्ति और कम्यूनिज्मका बैर है। ये सारे संसारके श्रमजीवियोंको अपना भाई समझते हैं और कट्टर राष्ट्रीय जर्मन नात्सी, जर्मन-यहूदियोंको भी अपना कट्टर शत्रु मानते हैं। इन दोनोंका मेल कैसे हो। अभी जिस कमरेमें आया हूं उसमें विजिटर्स बुक रखा है। इसमें सब घुमक्कड़ आगन्तुक कुछ-न-कुछ लिख जाते हैं। यह उनका कर्तव्य है। इसके बाहर लिखा है—"कृपाकर इसमें राजनीतिक विचार न लिखें।" पर भीतर देखिये तो—"सब देशोंके श्रमजीवियो! एक हो जाओ।" "जर्मनो! विदेशियोंकी दासतासे मुक्त होनेके लिए नात्सी-दलके सदस्य बनो।" आदि वाक्य भरे पड़े हैं। बाहर मैदानमें भी देशभक्ति और विश्व-भक्तिका झगड़ा चल रहा है। यह दृश्य देखकर कौन हिम्मत करेगा कि जर्मन जीवनसे राजनीतिको पृथक् करे।

इस विश्राम-गृहमें पकानेके बड़े बड़े बर्तनोंमें भाप और बिजलीकी गर्मीसे भोजन बनता है
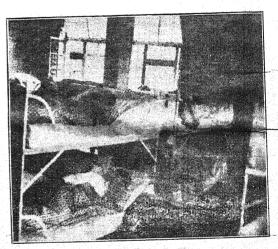
घुमक्कड़ दोमञ्जिली पलंग पर सो रहे हैं

पौने दस बजे तक सब भीतर चले गये। दस बजे सोनेका समय है। उसके बाद अंधेरा कर दिया जायेगा। मैनेजरने सबको दो-दो कम्बल दिये और बन्धकके रूपमें सबका मेम्बरी-का टिकट अपने पास रख लिया। शयनागारमें दोमञ्जिली चारपाइयां पड़ी हैं। बहुतसे नवयुवक अब नहाते और घुसते पलङ्गमें घुस रहे हैं। रातभर खूब मीठी नींद आयी। सुबहको ६ बजे उठे। हाथ-मुंह धोया और कलेवा करके मैनेजरको कम्बल सौंपे। उसने टिकट वापस किया और बिदा मांगी। डेढ़ महीने तक पैदल चक्कर काटता रहा। कभी जलमें रहे, कभी थलमें। राइनलैण्डमें पानी पर सरायें हैं। छोटे जहाजों-

को घुमक्कड़ नवयुवकोंकी सरायका रूप दे दिया गया है। इस अवधिमें जर्मन जनतासे परिचित होनेका उत्तम अवकाश मिला। जब बर्लिन वापस पहुंचा तो सब मित्र कहने लगे—"भाई! खूब लाल बनकर आये हो।"

विद्रोही आयलैंण्ड

डा० धुरन्धर शर्मा एम० ए०, पी० एच० डी०

हैरल्ड लास्कीने डी वालेराके विषयमें लिखा था—"उसकी आंखोंके आगे उनकी मूर्तियां नाचती हैं, जो आयलैंण्डके लिए अपना बलिदान कर चुके हैं, इसलिए उसकी दृष्टि आयलैंण्डकी भावी उन्नतिकी ओर नहीं है, वह अंगरेजोंकी आयलैंण्डविजयकी प्रतिहिंसासे जल रहा है।" यह केवल डी वालेराका स्वभाव नहीं है। आयरिश जाति भावुक है, वह भावोंके पीछे पागल हो जाती है और स्वप्नको सत्य समझकर अपना सर्वनाश करनेको तैयार हो जाती है।

* * *

१९२० की बात है। लण्डन कुहरेसे भर गया है। एक पुराने कैदखानेमें सन्तरी पहरा दे रहे है। उन्हें भी इस अंधेरेमें कुछ नहीं सूझ रहा है। इतनेमें पांवकी आहट सुनायी दी और सन्तरी बन्दूकें संभालकर तैयार हो गये। लेकिन काली पोशाक पहने दो औरतें आयीं। इनके लिए दरवाजा खुला और एक कमरेमें पहुंचायी गयीं। वहां पलंग पर एक दुबला-पतला आदमी लेटा था। उसकी दाढ़ीके बाल बढ़ रहे थे क्योंकि बहुत दिनोंसे वह बनायी न गयी थी। उसकी आंखें गढ़ेमें धंस गयी थीं और चेहरा कठोर बन गया था। यह था कार्क नगरका भूतपूर्व मेयर टेरेन्स मैकस्विनी और आनेवाली दो औरतें इसकी बहनें थीं।

इस वर्ष आयलैंण्डमें आयरिश रिपबलिकन आर्मी और सिनफीनोंने घोर युद्ध मचा रखा था और युद्धसे लौटे हुए अंगरेज तथा स्काच सैनिक "ब्लैक एण्ड टैन्स" ने तबाही कर रखी थी। इस छोटे द्वीपमें सबके प्राण सङ्कटमें थे, कार्कमें भी गोलियां चलीं और बम फूटे। अंगरेजोंने मैकिस्विनीको गिरफ्तार कर लिया। जनतामें तहलका मच गया। ब्रिटिश सरकारको भय हुआ कि यदि मैकस्विनी आयलैंण्डमें ही रहे तो आयरिशोंका खून अधिक जोश न मारने लगे। इसलिए उसे इंगलैण्ड भेजा जाना निश्चित किया गया और उसे दो वर्षकी कैदकी सजा दी गयी। उसने कहा कि मैं सख्त बीमार हूं। पर इसका किसीने ख्याल न किया और वह इंगलैण्ड पहुंचाया गया। जिस समय उसका जहाज ब्रिटेनकी भूमिसे लगा, उसी वक्तसे मैकस्विनीने भोजन करना महापाप समझा और ऐलान कर दिया कि इस जमीनपर मैं अन्न ग्रहण न करूंगा, चाहे इसमें मुझे मौतका शिकार ही क्यों न बनना पड़े। उसकी दो बहनें नित जेलमें उससे कुछ मिनटोंके लिए मिल जाती थीं। यह देखकर वे रोज आंसू बहाती थीं कि उनका भाई दिन-ब-दिन मृत्युके निकटतर होता जा रहा है। पर मैकस्विनी टस-से-मस न होता था। वह कालका आवाहन कर रहा था। एक रोज जबर्दस्त अफवाह उड़ी कि उसे बलप्रयोग द्वारा भोजन दिया जायेगा ताकि वह न मरे। यह सुनकर उसने अपनी बहनोंसे कहा—"चिन्ता मत करो और तुम इस विषयपर एक शब्द बोलो न लिखो। मैं अपने प्रणकी रक्षा स्वयं करूंगा। यदि तुमने इस मामलेमें प्रतिवाद किया तो सब लोग मेरा खून तुम्हारी गरदनपर रखेंगे।" इसके बाद बहनोंको भाईसे मुलाकात करनेकी आज्ञा न मिली। गवर्नमेण्टको सन्देह हुआ कि महीनोंसे आयरिश पत्रोंमें मैकस्विनीपर जो हो-हुल्लड़ मचा हुआ था, वह इन बहनोंकी करामात है। मैकस्विनी एकान्त पड़ गया और रात-दिन चुपचाप न मालूम किस उधेड़बुनमें रहता था। एक शामको अंधेरे कमरेके बाहरसे चाबी खड़की, वार्डर भोजन लाया और नित्यकी तरह उसने उसे पलंगके पास एक टेबलपर भूखे कैदीके सामने रख दिया। उदास भावसे, पर मैकस्विनीको उत्साहित करनेवाले शब्दोंमें उसने कहा—"ये चोंचले छोड़िये और खाना खाइये।" टेबलपर रोट, मक्खन, मांस, ओट्स और लेमोनेड रखा था। क्षुधार्त बन्दी धीमे-धीमे उठा और बोला—"अपना खाना वापस ले जाइये। आप तो जानते हैं कि मैं न खाऊंगा।" वार्डर भोजन उठा ले

जाता है। यह नयी बात थी। अब तक खाना रात-भर उसके सामने पड़ा रहता था और जेलके कर्मचारी आशा करते थे कि जब पेटमें चूहे कूदने लगेंगे, तो बन्दी अपने-आप पेटकी आग बुझानेको कुछ खायेगा। अब वे भी हताश हो गये। पर मैकस्विनी हंडिया पकाने लगा—'मेरे देशमें जीवन-मृत्यु का संग्राम चल रहा है। आयरिश नरनारी देशकी वेदीपर आत्म-समर्पण कर रहे हैं। यदि मैं जीता रहा तो उनकी बहुत सहा-यता कर सकता हूं। तब यह कितनी बड़ी मूर्खता कर रहा हूं कि पागलपनेमें यों ही, बेफायदा अपनी जान दे रहा हूं।' वह तुरत अपनी सारी ताकत लगाकर उठ बैठा और कुरसीके सहारे

पागलपनेने मैकस्विनीको मौतके मुंहमें डाला। उसे आयलैंण्डका सारा इतिहास मस्त बनाने लगा। उसे याद आया कि ११७१ से सत्रहवीं सदी तक मेरे पुरखों—केल्टों और स्कोटोंने अंगरेजों और स्कार्चोंको आयलैंण्डमें पांव न रखने दिया। अन्तमें बायन नदीके तटपर क्रामवेलने उन्हें परास्त किया। उसने आयलैंण्ड-के जहाज डुबा दिये, नगर उजाड़ दिये, गांव तहस-नहस कर दिये और खेती मैदान कर दी। पर उसके कैथलिक देशवा-सियोंने अपना धर्म और स्वतन्त्रताका प्रेम न छोड़ा। अंग-रेजोंने आयरिश भूमि ले ली और हमारी सदीके आरम्भमें आठ सौ अंगरेज जमीन्दारोंके अधीन वहांकी आधी जमीन
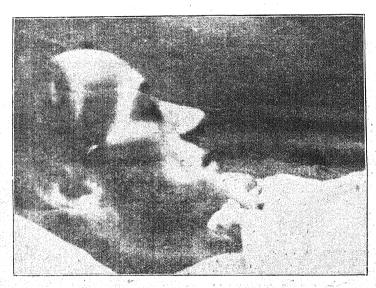
७४ दिन उपवास कर प्राणोत्सर्ग करनेवाले टेरेन्स मेकस्विनी।

किवाड़ तक पहुंचनेकी कोशिश करने लगा। दरवाजेके एक छिद्रसे चांदनीकी कुछ रश्मियां भीतर आ रही थीं। उनकी ज्योतिमें वह देखता क्या है कि एक दिव्य मनुष्य दरवाजेपर खड़ा है। वह भौंचका रह गया। उसी स्थानपर गिर पड़ता, पर कुर्सीका सहारा मिल गया और मैकस्विनी पलंगपर आ गया। बहुत धीमी आवाजमें वह पुकार उठा—'सर राजर।' इस आय-रिशके दिमागकी कल्पनाकी उड़ान देखिये कि सर राजर केस-मेण्टका भूत इसके सामने आ खड़ा हुआ। उसके मस्तिष्कमें १९१६ के ईस्टरका विद्रोह नाचने लगा और तूफान मचाने लगा। सर राजर केसमेण्टका शूलीपर लटकाया जाना। इस

थी; और आबादीका यह हाल था कि १८४१ में जिस आयलैंण्डकी जनसंख्या ८२ लाख थी, १९२६ में उसकी आबादी कुल ४६ लाख रह गयी। इस बीच ४७ लाख आय-रिश अपना देश छोड़कर विदेशोंमें बस गये। अपने देशका जीवन उन्हें इतना असह्य मालूम हुआ कि उन्हें आयलैंण्डसे इंगलैण्डमें रहना अच्छा लगा। देशमें तो आधे किसान अंगरेज जमीन्दारोंके आसामी बने हुए थे जिन्हें वे जब चाहें अपनी जमीनसे निकाल सकते थे। १८४५ में आयलैंण्डमें घोर अकाल पड़ा तो इन जमीन्दारोंने लाखों किसानोंको लगान न दे सकनेके कारण निकाल दिया। इस वर्ष तीन

लाख आयरिश देश छोड़कर चले गये। १८५० में लण्डनके 'टाइम्स' पत्रने लिखा था—"लिफीके नगरोंमें शीघ्र ही कैथलिक केल्टोंका उतना ही अभाव हो जायेगा जितना अमेरिकाके मानहाटनके चट्टानोंपर रेड इण्डियनोंका।" इस ओर ब्रिटिश सरकारने चेष्टा न की। अल्सटरके प्रेसबिटोरियिनों और एङ्गलिकनोंका यह उद्योग था। इनकी वजहसे १८९० में होमरूल आन्दोलनके नेता चार्ल्स पार्नेलको मौतका शिकार बनना पड़ा। इनका राष्ट्रीय नाद था —"Home rule, Rome rule" अर्थात् स्वराज्यका अर्थ रोमराज्य है। रोमका पोप कैथलिक ईसाइयोंका धर्म-गुरु है, इसलिए यह सूत्र बनाया गया। एक बार अल्सटरके बेताजके बादशाह सर एडवर्ड

सर राजर केसमेण्ट बर्लिनमें अपनी मित्रमण्डलीमें बैठे हुए हैं।

कार्सनने जर्मन सम्पादक आर्नोल्ड हेलरीगलसे कहा था—"हम समृद्ध हैं और शेष आयलैंण्ड दरिद्र है। हम अंगरेज हैं और वे केल्ट हैं। हम प्रोटेस्टेण्ट हैं और वे रोमके पोपके गुलाम हैं। हम सदा इंगलैण्डके साथ रहना चाहते हैं और वे सदा विद्रोही हैं। अब वे हमको जबर्दस्ती इङ्गलैण्डसे अलग करना चाहते हैं—क्रामवेलके समयके प्यूरिटनों और स्काट प्रेसबिटीरियनोंकी विदेशी पार्लमेण्टके अधीन घसीटना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि लण्डनडरीको (डबलिनसे) कैथलिक पोलीस, अध्यापक और टैक्स उघानेवाले भेजें। हम डबलिनके शत्रुओंका शासन नहीं चाहते; नहीं, नहीं, अच्छा तो यह है कि हम बायन नदीके तटपर अपने पूर्वजोंके समान लोहा बजायेंगे।" इन घटनाओंने अंगरेजोंके साथ आयरिश सहानुभूति खो दी।

महायुद्धके समय आयलैंण्डमें होमरूल पार्टीका दबदबा था। जान रेडमण्ड इस दलका नेता था। उसका प्रोग्राम था "आयलैंण्डको भीतरी शासनमें पूरी स्वतन्त्रता मिले। उसकी अपनी पार्लमेण्ट हो, पर वह ब्रिटिश साम्राज्यके भीतर रहे।" इस आन्दोलनको सफलता न मिली। जनता इसके प्रार्थना पत्रों, व्याख्यानों, प्रतिवादों आदिसे ऊबने लगी। इसका विरोधी दल सिनफीन था। इस शब्दका अर्थ है—'केवल हम', अर्थात् आयलैंण्डमें आयरिश ही राज्य करेंगे। महायुद्ध तक इसे कोई नहीं पूछता था। युद्ध छिड़ते ही इसने हल्ला मचाया—"इङ्गलैण्डके सङ्कटमें हमारा परित्राण है।" किन्तु इनकी न चली। आयरिश नवयुवक धड़ाधड़ सेनामें भर्ती होने लगे और सर एडवर्ड ग्रेने पार्लमेण्टमें कहा—"इस घोर सङ्कटमय अन्धकारमें आयलैंण्डका सलूक ही कुछ प्रकाश फैला रहा है।" बात ठीक थी; क्योंकि तीन सप्ताहके भीतर ही दस हजार आयरिश रंगरूट मिल गये। जान रेडमण्ड फूल उठे और उन्होंने पार्लमेण्टमें भाषण दिया—"इंगलैंण्डने आयलैंण्डकी सहानुभूति खो दी थी, पर नयी घटनाओंने स्थिति पलट दी है। मैं ब्रिटिश सरकारको विश्वास दिलाता हूं कि वह इस सङ्कटमें आयलैंण्डसे जितने सैनिक चाहे भर्ती कर सकती है।" आयरिश लोगोंमें ब्रिटेनके पक्षमें इतना अधिक उत्साह फैला कि डबलिनमें सैनिक गुजरे तो उनपर जनता फूल बरसाने लगी। अंगरेजोंके साथ इस अप्रत्याशित मेलका एक कारण यह भी था कि जर्मनोंने रोमन कैथलिक बेलजियमपर आक्रमण किया था। अपने धर्मपर यह आघात कैथलिक आयलैंण्ड न सह सका। किन्तु सिनफीन दलवाले अपना प्रचार कार्य करते जा रहे थे। १९१४के सितम्बर मासमें ही वे इतना प्रचार कर चुके थे कि लण्डन टाइम्सको बड़े दुःखके साथ लिखना पड़ा कि आयलैंण्डमें रंगरूटोंकी भर्ती प्रायः बन्द हो रही है। इस समय आयरिश जनता निष्पक्ष थी। ब्रिटेनके इस सङ्कटसे लाभ उठानेकी उसकी नाममात्र इच्छा न थी।

ठीक इसी समय एक आयरिश बर्लिन पहुंचा। राजनीतिक जगत्में इसका खूब सम्मान था और जर्मन राजनीतिज्ञ इससे भलीभांति परिचित थे। इस व्यक्तिका नाम था सर राजर

केसमेण्ट । १९१६ के जून मास तक सर राजर ब्रिटिश सरकारके राज दूत विभागमें अत्यन्त तत्परताके साथ काम कर चुके थे । उनकी उत्तम सेवासे प्रसन्न होकर सम्राट्ने उन्हें १९११ में नाइट बनाया था । पर जर्मन राजनीतिज्ञ जानते थे कि सर राजर केसमेण्ट कट्टर राष्ट्रीय विचार रखते थे । ये अमेरिकासे जर्मनी आये थे । इन्होंने जर्मन सरकारके सामने एक अत्यन्त साहसपूर्ण षड्यन्त्रका उद्घाटन किया और उससे अस्त्रशस्त्रोंकी सहायता मांगी । इनका कहना था कि जर्मन सेना विभाग चोरी-छिपे अपने सैनिक जहाजोंमें आयर्लैण्डको एक पलटन भेजे । आयरिश जनता उसका सहर्ष स्वागत करेगी । यदि ऐसा हो जाये तो ब्रिटेनको जबर्दस्त धक्का पहुंचेगा । पर जर्मनोंने उन्हें बताया कि यह कार्यक्रम इस कमिटीने जबर्दस्त आन्दोलन शुरू कर दिया । अमेरिका भरमें रुपया एकत्र किया जाने लगा । आयरिशोंने शस्त्रास्त्रसे लदे अंगरेज जहाजोंको हानि पहुंचायी, इनके मजूरोंसे हड़तालें करवायीं । इसका फल यह हुआ कि सिनफीन दलकी नीति अमेरिकासे निर्धारित की जाने लगी । इधर जर्मनीमें सर राजर केसमेण्ट इस कमिटीके प्रतिनिधि बनाये गये । उन्होंने जर्मन सरकारसे आज्ञा मांगी कि आयरिश कैदी सैनिकोंको वे तैयार करना चाहते हैं । उन्हें यह सुविधा दी गयी । उन्होंने कई हजार आयरिश कैदियोंको व्याख्यान दिया कि वे एक आयरिश ब्रिगेड तैयार करना चाहते हैं जो आयर्लैण्डकी अंगरेजोंसे रक्षा करेगा । लेकिन आयरिश सैनिकोंने उनका कार्यक्रम पसन्द न किया । पर आयर्लैण्डमें
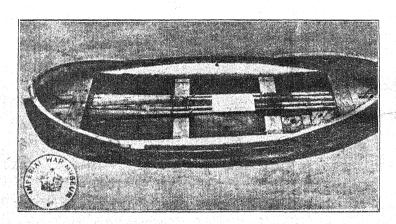
इस टूटनेवाली नावमें सवार होकर सर राजर केसमेण्ट ट्रेले खाड़ीसे आयर्लैण्डके तटपर पहुंचे ।

समय असम्भव है । सर राजर भी सब आयरिशोंकी तरह भावुक थे और उन्हें ब्रिटेनके प्रति घोर विद्वेष था । इधर जान रेडमण्डकी नीतिसे उनका हृदय पक गया था । उन्होंने अपने एक अमेरिकन मित्रको लिखा था—"जो आयरिश अभी तक अपनी मातृभूमिकी स्वतन्त्रतापर विश्वास रखते हैं वे रेडमण्डको सदा श्राप देंगे !" इस स्थितिमें उन्हें उक्त असम्भव कार्यक्रम सूझा । लेकिन वे हताश न हुए और नये उपाय सोचने लगे । उन्होंने शीघ्र ही अमेरिकामें बसे हुए आयरिशोंसे सम्बन्ध स्थापित किया । उनकी लिखा-पढ़ीसे न्यूयार्कमें 'आयरिश कमिटी'की स्थापना हुई, इस जनतामें सिनफीन दलके साथ सहानुभूति बढ़ रही थी । अमेरिकन आयरिशोंने इस बीच बहुत रुपया राष्ट्रीय कार्यके लिए एकत्र कर लिया था । इसमेंसे लाखों रुपया सर राजरके पास आया और १९१६ के आरम्भ में उन्होंने जर्मन सरकारसे कहा कि न्यूयार्ककी आयरिश कमिटीने आयर्लैण्डमें विद्रोहकी तैयारी करवा दी है । शीघ्र ही सिनफीन दल अपने देशका शासनसूत्र अपने अधीन कर लेगा । यह तो आसान है लेकिन इसके बाद अंगरेजोंके साथ जो लड़ाई छिड़ेगी, उसके लिए शस्त्रास्त्रों और विशेषकर मशीनगनोंकी नितान्त आवश्यकता है; बिना उनके हम तुरत परास्त हो जायंगे । मैं रुपये देता

हूं ; आप आयर्लैंडमें हथियार पहुंचवाइये। बहुत समझाने-बुझानेके बाद जर्मन सरकारने उनकी मांग स्वीकार की और एक विकट साहसपूर्ण कार्यक्रम तैयार किया गया। इसके अनुसार जर्मन-नौ-सेना-विभागने सर राजर केसमेण्टको आयर्लैण्ड पहुंचानेके लिए एक सबमेरीन सौंपा, जिसमें उनके साथ युद्धके दो कैदी भी—आयरिश लेफटनेण्ट माण्टीथ और सार्जण्ट बेली पश्चिमी आयर्लैण्डकी ट्रूले खाड़ीमें जानेवाले थे। ठीक उसी समय एक जर्मन क्रूजरको साधारण नारवेजियन जहाजका रूप दे दिया गया और उसमें शस्त्रास्त्र भेजे गये। उधर आयर्लैण्डके सिनफीनोंके साथ तारसे बातचीत की गयी कि वे एक विशेष बन्दरगाहके अंगरेज सैनिकोंपर आक्रमण कर उन्हें कैद कर लें ताकि शस्त्रास्त्र उतारनेमें कोई अड़चन न रहे। जर्मनीसे आयर्लैण्डको सीधा तार न जा सकता था। जर्मनीसे स्विट्जरलैण्ड, वहांसे स्पेन, स्पेनसे अमेरिका और तब आयर्लैण्ड पहुंचता था। केसमेण्ट और उनके साथी समुद्रमें-बन्दरगाहके निकट क्रूजरमें सवार होनेवाले थे ताकि हथियारोंके साथ आयर्लैण्डकी भूमिमें पहुंचें। इस बातकी खबर न्यूयार्क और डबलिनमें हो गयी। बर्लिनमें जिनको इस कार्यक्रमकी खबर थी उनमें केसमेण्टका सेक्रेटरी नारवेजियन युवक आडलर क्रिस्टनसन भी था। उसने अमेरिकन राजदूतको सर राजरके षड्यन्त्रकी सूचना दे दी। वहांसे ब्रिटिश सरकारके पास कच्चा चिट्ठा पहुंचा दिया गया। इधर अमेरिकन 'आयरिश कमिटी' को पता चल गया कि ईस्टर विद्रोहकी पोल खुल गयी है। सर राजर केसमेण्टको इसकी कुछ खबर न थी। इसलिए ईस्टरके कुछ दिन पहले वे अपने साथियोंके साथ सबमेरीनमें सवार हुए। उसी समय जर्मन क्रूजर 'लिबाउ', जिसका नया नामकरण 'आउड' नामसे किया गया, कप्तान कार्ल स्पिण्डलरकी अध्यक्षतामें आयर्लैण्डको रवाना हुआ। यात्रा सङ्कटमय थी। क्रूजरको इंगलैण्डके पूर्वी किनारेसे उत्तरी समुद्र और वहांसे मुड़कर ट्रूलेकी खाड़ीमें पहुंचना था। सारा पथ ब्रिटिश रणपोतोंसे भरा था और उन्हें धोखा देकर बच निकलना खतरेका काम था। इसपर सबमेरीन और क्रूजर जब एक ही समय नियत स्थानपर पहुंचें, तो सर राजर केसमेण्ट क्रूजरमें सवार हो सकते थे। इसलिए एक नियत स्थानपर निर्दिष्ट समयपर मिलनेका निर्णय किया गया। पर जहाजोंके लिए समयकी पाबन्दी करना अनेक प्राकृतिक कारणोंसे असम्भव हो जाता है। महायुद्धके समय पग-पगपर रखवाली करनेवाले शत्रुके जहाजोंमेंसे निकलना और फिर नियत समयपर पहुंच जाना आश्चर्यकी चरम सीमा थी। पर असम्भव सम्भव हो गया और दोनों पोत एक ही समय निर्दिष्ट स्थानपर पहुंचे। केसमेण्टका पनडुब्बा ऊपरको उठा तो सामने जर्मन क्रूजर खड़ा था। केसमेण्टने इसे देखा तो उसे चुप्पी लग गयी। वह अवाक्, पनडुब्बेकी सीढ़ियोंपर खड़ा रह गया। उसकी मूर्खता देखिये कि उसने अपने सबमेरीनके कप्तानको इशारोंसे बताया कि यह अंगरेजी क्रूजर है। बस पनडुब्बेने गोता मारा और वह गायब हो गया। शस्त्रास्त्रसे लदा क्रूजर 'आउड' खड़ा ही रह गया। राजर केसमेण्ट आगे निकल गये और एक नावसे किनारेपर उतरे थे कि गिरफ्तार हो गये। उनसे नाम-धाम पूछा गया तो बोले मेरा नाम रिचार्ड मार्टन है और बकिंहमशायरके डेनहम नामक स्थानमें रहता हूं। पेशेसे लेखक हूं। पर इससे क्या होता, यहां तो सारे षड्यन्त्रका भण्डाफोड़ हो गया था। पहरेदारोंको निश्चय था कि यह व्यक्ति या तो सर राजर केसमेण्ट है या उनका कोई साथी। वे हवालात पहुंचाये गये और पुलिस तथा सेनाके अफसरोंको भी सूचना दी गयी। जब सर केसमेण्टको मालूम हुआ कि यहां तो पहलेसे ही सब खबर है, तो स्वयं बोले—"मैं सर राजर केसमेण्ट हूं।" लेफ्टनेण्ट मौण्टीथका पता न चला, पर सार्जण्ट बेली भी पकड़ा गया और वह सरकारकी ओरसे गवाह बन गया।

जब यह खबर आयर्लैण्डमें फैली, तो तहलका मच गया। स्वयं सिनफीन पार्टीमें झगड़ा होने लगा कि विद्रोह अनुचित और नीति-विरुद्ध है। सिनफीन दलके नेता ग्रिफिथने विद्रोहके कार्यक्रमको बेवकूफी बताया। असल बात यह थी कि विद्रोहकी तैयारियां आयरिश रिपब्लिकन ब्रदरहुडने की थीं। ग्रिफिथने बहुमत इस ओर देख सम्मति दी। केसमेण्टकी असफलताने उसे अपने विचार प्रकट करनेका सुअवसर दे दिया। अधिकांश आयरिश सर राजरके विरुद्ध थे। सिनफीन दलमें विद्रोहके विरुद्ध बहुमत हो गया। लेकिन आयरिश रिपब्लिकन ब्रदरहुडके नेता डी वालेरा और कासग्रेव विद्रोह करनेपर तुले हुए थे। स्वेच्छा-सैनिक इनके ही अधीन थे। यह तो अब सबको मालूम हो गया था कि

विद्रोह सफल नहीं हो सकता। यह जानते हुए भी डी वालेरा और कासग्रेवने ग्रिफिथसे कहा—"हम भलीभांति जानते हैं कि विद्रोह कुचल दिया जायेगा। और हम यह भी जानते हैं कि हम लोग गोलीसे उड़ा दिये जायंगे; किन्तु इसकी परवा नहीं। हम जनताकी नींदको तोड़ना चाहते हैं।" सिनफीन दलकी पूर्ण सम्मति न होनेपर भी ब्रदरहुडके स्वेच्छासैनिक विद्रोहकी तैयारीमें लगे। इतनेमें यह भी न्यूयार्कसे खबर आयी कि सर राजर केसमेण्टके षड्यन्त्रके

आयर्लैण्डके विजयी राष्ट्रपति डी वालेरा

साथ विद्रोहका कार्यक्रम भी खुल गया है। इसपर ग्रिफिथ डी वालेरा और कासग्रेवपर बिगड़ा कि तुमने बर्लिनमें सर राजर केसमेण्टको अपना कार्यक्रम बताकर विद्रोहका भी नाश मारा। अब तो पूरा निश्चय हो गया कि विद्रोहका कार्यक्रम छोड़ दिया जाये। सारा आयर्लैण्ड केसमेण्टको गालियां देने लगा। यह देखकर ग्रिफिथके सरका भार हलका हुआ।

* * *

ईस्टरसे पहला रविवार आया। सिनफीन नेताओंका विश्वास था कि उस रोज अंगरेज फौजें आयर्लैण्डमें छा जायेंगी। ब्रिटेनको विद्रोहकी खबर किसी देशद्रोहीने दे दी है तो अवश्य ही उसके सैनिक उसे दबाने आयर्लैण्डमें भर जायंगे। पर उस रोज कहीं एक सैनिक भी न दिखायी दिया। यह देखकर आयरिश रिपबलिकन ब्रदरहुडके सात नेता डबलिनमें दौड़धूप करने लगे और उन्होंने स्वेच्छा-सैनिकोंकी एक सभा करके विद्रोहका निश्चय कर लिया। इस सभामें गैरकानूनी स्वेच्छा-सैनिकोंका कमाण्डर कायन मैकनील विद्रोहका कट्टर दुश्मन बन गया। पर शेष नेता दृढ़ थे और ईस्टरमें डबलिनमें विद्रोह हो ही गया। पांच हजार स्वेच्छा-सैनिकोंने एक सप्ताहके भीतर गवर्नरके महल और ट्रिनिटी कालेजको छोड़ सब सरकारी इमारतोंपर कब्जा कर लिया। वहांका बड़ा डाकघर तो उनका मुख्य अड्डा बना। लेकिन उनके पांव अधिक दिन न टिक सके। अंगरेज सेनाने उनके धुर्रे उड़ा दिये। अढ़ाई हजार स्वेच्छा-सैनिक हताहत हुए। सब नेता कैद कर लिये गये। विद्रोहियोंकी ओरसे पहली गोली छोड़नेवाली काउण्टेस मार्कियेवित्स भी पकड़ ली गयीं। इनमेंसे १९ तो लण्डनके टावरमें गोलीसे उड़ा दिये गये। डी वालेरा, कासग्रेव आदि कैदमें रखे गये और सर राजर केसमेण्ट फांसीपर लटका दिये गये। इस ईस्टर विद्रोहमें कई निरपराध आयरिश भी काम आये। डबलिनमें तबाही मच गयी। इसलिए आयरिश सर्वसाधारण, सिनफीनोंके विरुद्ध हो गये थे। गांवोंमें तो कुछ भी न हुआ। लोग केसमेण्टको कोस रहे थे। पर ज्यों ही समाचार आया कि सर राजर फांसी पर लटकाये गये, त्यों जनताको घोर दुःख हुआ और जो लोग उनके विरुद्ध थे, उनकी दुर्दशापर पसीज गये। इस एक घटनाने आयर्लैण्डकी राजनीतिका कायापलट कर दिया। इसके अतिरिक्त अंगरेज सैनिकोंने आयर्लैण्डको भली भांति दबानेकी ठानी और नाममात्र सन्देहमें निरपराधोंको भी गिरफ्तार कर लिया, जेलमें ठूंस दिया मारा, पीटा, सारांश यह कि साम्राज्यभक्त भी विद्रोहियोंके साथ कुचले गये। अंगरेजोंने इस बातका ख्याल न किया कि विद्रोह केवल डबलिनके कुछ स्वेच्छासैनिकों और उनके नेताओंकी करतूत थी; सारा देश उसके विरुद्ध था। इस एक भूलने नगण्य सिनफीनोंको देशमय व्याप्त कर दिया। सबकी सहानुभूति उनके साथ होने लगी। उसके दफ्तरोंके आगे मेम्बर बननेके लिए तांता लग गया। लोग कतार बांधकर घण्टों अपनी बारीका इन्तजार करते थे कि

रजिस्टरमें उनका नाम दर्ज हो जाये। स्वेच्छासैनिकोंकी संख्या भी सरासर बढ़ने लगी। १९१७ के आरम्भ तक अंगरेज सैनिक आयलैंण्डके उत्पातको दबानेके लिए वहां रहे। उन्हें प्रचण्ड क्रोध यह देखकर आया था कि ऐन महायुद्धके समय आयलैंण्डने इतना बड़ा राजद्रोह किया। स्वयं ग्रिफिथ कैद कर लिया गया। किन्तु यह निश्चय था कि बातका बतङ्गड़ बन गया। डबलिनके विद्रोहके कारण सारा मुल्क कराह रहा था। ब्रिटेनको अपनी यह भूल स्पष्ट रूपसे तब मालूम पड़ी, जब क्लेयर काउण्टीके निर्वाचनमें रेडमण्डकी होमरूल पार्टीका उम्मीदवार बुरी तरह हारा और सिनफीनकी आश्चर्यजनक विजय हुई। ईस्टर विद्रोहका नेता डी वालेरा पार्लामेण्टका सदस्य निर्वाचित किया गया; यद्यपि वह इंगलैण्डमें जेल भुगत रहा था। अब इंगलैण्डकी आंखें खुलीं। १९१८ में पार्लामेण्टका निर्वाचन होनेवाला था। उसमें यदि सिनफीन दल बहुमत प्राप्त करे तो बड़ी हार होगी। बहुत परामर्शके बाद यह उपाय निकाला गया कि सिनफीनके अतिरिक्त और सब दल लण्डनको निमन्त्रित किये जावें और आयलैंण्डको कुछ अधिकार देकर होमरूल पार्टीकी प्रतिष्ठा देशमें बढ़ायी जाये। १९१७ में यह 'गोलमेज परिषद्' हुई और रेडमण्डने कहा—'हमें ब्रिटिश साम्राज्यके भीतर स्वराज्य दीजिये तो स्थिति बदल सकती है।'' वादविवादके बाद निश्चय हुआ कि रेडमण्डकी मांगें किसी कदर पूरी की जायें; नहीं तो आयलैंण्ड हाथसे जाता है। पर स्वच्छ आकाशसे वज्रपात हुआ। ऐसी बात हो गयी जिसकी किसीको स्वप्नमें भी आशा न थी। रेडमण्डके अनुयायियोंने अपने नेताकी एक न मानी और अपनी स्वतन्त्र मांगें पेश कर दीं। उनकी मांगें स्वीकृत होनेपर आयलैंण्ड तभी स्वाधीन हो जाता। उन्होंने सबसे कड़ी मांग तो यह पेश की कि अल्सटर भी डबलिन-गवमेंण्टके अधीन रहे। यह परिषद् टांय-टांय फिस कर गयी। जान रेडमण्डका गरम दल खतम हो गया। इस पराजयसे अंगरेज राजनीतिज्ञ हताश न हुए। उन्होंने आयलैंण्डको अशक्त बनानेका दूसरा उपाय निकाला। १९१८ में आयलैंण्डमें अनिवार्य सैनिक भर्तीका कानून पास हुआ कि आयरिश नवयुवक युद्धको भेजे जायें। पर इसका वह विरोध हुआ कि ब्रिटेनको जबर्दस्त हार माननी पड़ी। कैथलिक पादड़ी भी इस विरोधमें शामिल हुए और ब्रिटेनको चैलेञ्ज देने लगे। वे आयरिश स्वयंसैनिकोंको आशीर्वाद देने लगे, उनके झण्डे फहराने लगे और भगवान्‌से इनकी विजयकी प्रार्थना करने लगे। इस आन्दोलनने सारा आयलैंण्ड सैनिक बना दिया और शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित कर दिया। इसपर अंगरेजोंने डी वालेरा और ग्रिफिथपर इलजाम लगाया कि उन्होंने शत्रु-राष्ट्र जर्मनीसे हथियार मंगाये हैं। हालां ये दोनों कहते रहे—''हमारा शत्रुराष्ट्रसे कोई सम्बन्ध नहीं है।'' चुनावमें सिनफीनकी विजय न हो, इसके लिए यह सब चालें थीं। किन्तु निर्वाचनके दिन पता चला कि १०५ सदस्योंमें ७३ सिनफीन चुने गये हैं। इस घटनाने साफ बता दिया कि आयलैंण्डमें

अल्सटर और दक्षिणी आयलैंण्डके बीचमें दो स्वतन्त्र राष्ट्रोंकी भांति यह सरहद है जहां पासपोर्ट और मालकी छान-बीन होती है और उनपर चुङ्गी पड़ती है

विद्रोहकी आग फुंक गयी है। वहां प्रायः तीन चौथाई सिनफीन हो गये हैं। उधर सिनफीन भी छाती फुलाये अपनी विजयपर मस्त थे। इसलिए उन्होंने अपनी अलग पार्लामेण्ट स्थापित की और स्वतन्त्र आयरिश प्रजातन्त्रकी घोषणा कर दी। यह बात न अल्स्टरवाले मान सकते थे और न ब्रिटिश सरकार। इस बीच महायुद्ध समाप्त हो गया था और जो सैनिक वापस आये थे उनका प्रयोग आयलैंण्डमें किया गया। इनका नाम पड़ा 'ब्लैक एण्ड टैन्स।' इन्होंने आयलैंण्डकी जो खबर ली वह सारा संसार जानता है। आयलैंण्डमें युद्ध छिड़ गया। प्रजातन्त्रवादियोंने 'ब्लैक एण्ड टैन्स' के सैनि-

कोंको जहां पाया वहीं धर मारा और ब्रिटिश सैनिकोंने भी प्रजातन्त्रवादियोंको उजाड़ देनेकी कसम खायी। असलमें आयर्लेण्डमें इस समय 'द्वैराज्य' था। अंगरेजोंकी हुकूमत थो ही, उधर सिनफीनोंने अपना शासन चलाया। सिनफीन दल लगान, टैक्स वगैरह वसूल करने लगा। पर एक राजमें दो हुकूमतें कैसे रह सकती हैं? अंगरेजोंने सिनफीन दल, सिनफीन पार्लामेण्ट आदिको गैरकानूनी घोषित कर दिया; और प्रजातन्त्रवादियोंने अंगरेज शासनको गैरकानूनी बताया। इसका फैसला होने लगा हथियारसे। सारा आयर्लैण्ड रणक्षेत्र बन कताने उससे मृत्युका आलिङ्गन करवाया। उससे भोजन करवानेकी सब चेष्टायें विफल हुईं और एक दिन जगत्‌में इस समाचारसे सनसनी फैली कि वह वीर ७४ दिन उपवास करके अपना प्रण निभा गया है। इस खबरने आयर्लैण्डमें आग लगा दी। नवम्बरके एक रविवारको तो आयरिशोंने अनर्थ कर डाला। ये लोग उक्त समाचारसे हिंस्र पशु बन गये थे। प्रतिहिंसाकी अग्निने इनका विवेक भस्म कर दिया था। एक स्थान पर १६ अंगरेज अफसर अपने बालबच्चोंसमेत ठहरे हुए थे। उनपर आक्रमण किया और एकको भी जीता न छोड़ा।
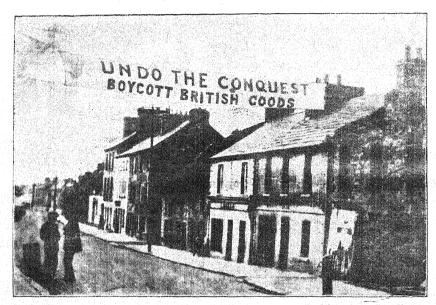
आयर्लेण्डमें बृटिश मालके बहिष्कारका इस प्रकार प्रचार किया जा रहा है

गया। नगर भस्म हो गये, गांव मिट्टीमें मिल गये और कितने हताहत हुए इसका अन्दाजा लगाना कठिन है।

× × ×

इस समय टेरेन्स मैकस्विनीके दिमागमें यह सारा इतिहास घूम गया। बस, उसने सर राजर केसमेण्टका भूत देखकर अपनी जातिके स्वतन्त्रता-संग्रामका पारायण कर लिया। इस भूखे कवि, लेखक, दार्शनिक और देशभक्त का दिमाग कमजोर पड़ गया था। उसने इंगलैण्डकी भूमिमें अन्न न ग्रहण करनेका दृढ़ निश्चय कर लिया। किसकी शक्ति थी जो उसे अपने प्रणसे डिगा सके। आयरिश भावुअसहाय स्त्रियां और बच्चे बिलख-बिलखकर रोते थे, पर उनकी गुहार किसीने न सुनी। यह खूंखार लड़ाई कितने दिन चल सकती थी? अन्तमें सन्धिकी चर्चा होने लगी। माइकेल कालिन्स और ग्रिफिथ सुलह कर आये। पर डी वालेराकी आंखोंमें आयर्लैण्डकी स्वतन्त्रताका संग्राम नाच रहा था। उसे शक्ति नहीं चाहिए, जीवन नहीं चाहिए, उसे तो उनकी स्मृति जीवित रखनी है जो स्वतन्त्रताके लिए मरे हैं। आज भी डी वालेरा इस भावुकताके कारण अपना सर्वस्व आहुति करनेको तैयार है।

× × ×

कासग्रेवके समय आयर्लैण्डने खूब उन्नति की। आयर्लैण्ड-की खेती-बारी चमक गयी। शैननके पास बिजलीका इतना बड़ा कारखाना खुला कि आयर्लैण्डभरमें उसका आलोक उद्‌भासित हुआ। आयर्लैण्डको अपने निर्यात व्यापारसे बहुत आमदनी थी। पर नहीं, भावुक आयरिश इसकी परवा नहीं करते। वे तो इंग-लैण्डसे अलग रहना चाहते हैं। आयर्लैण्डका ९५ सैकड़ा गल्ला, गोश्त, मखन, अण्डे आदि इंगलैण्ड खरीदता है, उसे दूसरा गाहक मिलना भी कठिन है। इससे क्या आयर्लैण्ड तबाह होनेको तैयार है? लेकिन वह अंगरेजोंको नहीं देख सकता। इस समय डी वालेरा वैध उपायोंसे लड़ रहे हैं, पर वे कानूनी तरीके भी भयङ्कर हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि ब्रिटेन कनाडासे गल्ला मंगाता है और आयर्लैण्ड अमेरिकाके बने कपड़े पहनता है। वहीं बेलफास्टमें कपड़ा बनता है, पर दक्षिणी कैथलिक आयर्लैण्डके लिए वह वस्त्र जहर है। यह अप्राकृतिक दशा कब तक रहेगी? इसका उचित उत्तर ब्रिटिश राजनीतिज्ञ अपनी पुरानी भूलें न दुहराकर दे सकते हैं और अल्सटर वाले अपनी धर्मान्धता छोड़ कर। खेद है कि भारतीय 'जातीय बंटवारा' करनेवाले घरमें अपना ठीक बंटवारा नहीं कर सक रहे हैं।

———

कोयलोंकी गाड़ी

अनु०—श्री नरेन्द्रदेव विद्यालङ्कार

एक बड़ी कोयलोंसे लदी हुई गाड़ी ट्रामके रास्तेमें जा रही थी। इतनेमें उसके पीछे एक ट्राम आ पहुंची।

"हां हां जानता हूं"—यह कह गाड़ीवान अपनी गाड़ीको धीमे-धीमे रास्तेसे हटाने लगा मानों बिजलीकी गाड़ी कोई साधारण ठेला हो।

उसने कोशिश भी ऐसी की कि ट्राम ठीक पिछले पहियेसे टकरा गयी। पहिया टूट गया और कोयलोंकी गाड़ी चरर करती हुई रास्तेमें गिर पड़ी।

"अरे गधे! पगले! क्या तू रास्तेसे इसे नहीं हटा सकता"—'ट्राम कण्डक्टर' चिल्लाया।

गाड़ीवानने जवाब दिया—"ओ नादान पशु! अब बिलकुल नहीं" और यह ठीक भी था क्योंकि कोयलोंसे भरी गाड़ीको वह तीन पहियों द्वारा नहीं हटा सकता था।

कण्डक्टरने उससे पूछा—"क्या तू अगली बार ध्यान रखेगा या नहीं; या तू एक मूर्ख गाड़ीवान बना रहेगा?"

पर इन बातोंने गाड़ीवानकी शान्तिको भङ्ग नहीं किया। वह दिखाने लगा कि पहिया बिलकुल टूट गया है।

और इस कारण उसे काफी देर ठहरना पड़ेगा यह सोच अपनी जेबसे चुरट निकालकर पीने लगा।

इसके बाद उसने कण्डक्टरको अच्छी तरह देखा और अपने चारों ओर जमा हुए लोगोंको समझाने लगा कि वह ट्राम अथवा उसके कण्डक्टरका ध्यान नहीं रख सकता।

और फिर उसने कम्पनी और उसके नौकरोंको अपनी तरफ इकट्ठा कर लिया।

इतनेमें पुलिसका एक आदमी भीड़को चीरता हुआ ट्राम-के आगे आकर खड़ा हो गया।

उसने पूछा—"क्या बात है? क्या हो गया है?"

गाड़ीवानने कहा—"पिछला पहिया टूट गया है।"

"अच्छा, यह हम जल्दी ही ठीक करते हैं" पुलिसके आदमीने जवाब दिया। मैंने सोचा कि शायद वह कोई उपाय बतानेवाला है कि किस प्रकार टूटी हुई गाड़ीको जल्दीसे हटाया जा सकता है।

पुलिसके आदमीने अपनी छातीकी जेबसे एक मोटी-सी नोट-बुक निकाली और उसे खोलकर अपने हाथमें पैन्सिल ली।

वह उसे तेज कर रहा था कि दूसरी ट्राम उधर आ पहुंची। उसका चलानेवाला आगे न बढ़ सकनेके कारण घण्टियों-पर-घण्टियां बजा रहा था और गार्ड अपनी चांदीकी सीटी बजा रहा था।

"क्यों बेकायदा सीटी बजा रहे हैं, क्या आप इसे बन्द न करेंगे ?" यह कह उसने गार्डको देखा और पैन्सिलकी नोक-को मुंहमें गीला करने लगा।

"अच्छा" यह कहकर वह गाड़ीवानकी ओर मुड़ा और उसने पूछा—"अब बताइये आपका क्या नाम है ?"

"माथियास क्यूखल बाखर।"

"मा-थि-या-स क्यू-ख-ल-बाखर, आप कहां पैदा होते हैं ?"

"हां ?"

"आप कहां पैदा हुए हैं ?"

"लाउटरबाख"

"अच्छा, ला-उ-ट-र बाखमें ? क्या आप समझते हैं कि लाउटरबाख केवल एक ही है ? क्या आप ठीक-ठीक न बतायेंगे कि किस लाउटरबाखमें ? जरा ठीक-ठीक बतायें।

इतनेमें चारों ओर जमा होनेवाले लोगोंकी संख्या बढ़ती गयी।

आगेकी पंक्तिमें खड़ा हुआ एक आदमी बड़ी चतुराईसे नुकसानका अन्दाजा लगानेकी कोशिश करने लगा।

उसने झुककर गाड़ीका निचला भाग देखा और फिर आगे बढ़कर गाड़ीको अच्छी तरह देख-भालकर अपनी छड़ीसे तीनों पहियोंको ठोककर देखने लगा।

और अन्तमें अच्छी तरह सोच-विचार कर उसने कहा—"केवल एक ही पहिया टूटा है और यदि ठीक हो जाय तो गाड़ी एकदम चल सकती है।"

चारों ओर खड़े हुए लोगोंने उसकी बातका समर्थन किया। एक मजदूरने कहा—"क्या गाड़ीको एक तरफ धकेला नहीं जा सकता ?" और अपने हाथोंमें थूककर गाड़ीके पिछले पहियेकी जगह जाकर खड़ा हो गया।

इसके बाद वह बोला—"अहं, पीछे ! पीछे !!" और फिर अपने हाथोंमें थूककर गाड़ीको हिलाता रहा जब तक कि उसको पुलिसने आकर हटा नहीं दिया। पुलिसकी संख्या बढ़ती गयी और उसका काम यह था कि जमा हुए-हुए लोग पंक्तिमें शान्तिपूर्वक खड़े रहें। पर यह काम सरल न था। पंक्ति जब ऊपरकी तरफ ठीक होती तो नीचेकी तरफ नये लोग घुस आते। इसलिए पुलिसको इधर-से-उधर दौड़ते हुए हांफना पड़ा।

इसके सिवा उन्हें इस बातका भी ध्यान रखना होता था कि प्रत्येक नया आनेवाला पुलिसका आदमी सारी बात जान जाय और नयी आनेवाली ट्राम अन्य खड़ी हुई ट्रामोंके कारण आगे न बढ़े।

मुझे मालूम नहीं कि आगे क्या हुआ क्योंकि मुझे शामका भोजन करने जाना था। परन्तु अगले दिन अखबारमें मैंने सन्तोषपूर्वक पढ़ा कि पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट, होम-मेम्बर और मेयर भी वहां पहुंचे हुए थे। *

---

* प्रसिद्ध लेखक लुड्विग टोमाकी एक जर्मन कहानी।

महात्मा गांधीका सनातन-धर्म

श्री सत्यदेव विद्यालङ्कार

धर्मके क्षेत्रमें भी जनसत्तावादको स्थापित करनेके शुभ और क्रान्तिकारी यत्नका श्रीगणेश करके महात्मा गांधीने सनातन-धर्मकी व्याख्या और दृष्टि-कोणको बदलनेका जो उपक्रम बांधा है, उसका हार्दिक स्वागत इसलिए करना चाहिए कि उससे समाज-सुधारके कार्यको विशेष शक्ति प्राप्त होगी और उसके मार्गकी बहुत-सी बाधायें वेगवती जलधारा-के साथ कूड़ा-करकटकी तरह दूर हो जायेंगी। हिन्दू धर्म और हिन्दू-समाजकी दृष्टिसे अछूतोद्धारका कार्य समाज-सुधारके समस्त कार्यका प्रतीक है। छूत-छातकी इस समस्याके हल होनेका सीधा अर्थ यह है कि हिन्दू-समाजमेंसे एक पापका अन्त होकर उसका सङ्गठन सुदृढ़ हो जायगा और सदियोंसे हिन्दू-धर्मकी पवित्रताको कलङ्कित करनेवाली बुराई सदाके लिए धुल जायेगी। शास्त्र, धर्म, परम्परा, रूढ़ि आदिके नामसे वैसे तो समाज-सुधारकी प्रत्येक बातका ही विरोध किया जाता है, किन्तु अछूतोद्धारके विरोधमें तो इन सबकी सबसे अधिक दुहाई दी जा रही है। इसलिए अछूतोद्धारको लेकर इन सबके सम्बन्धमें यदि कुछ योग्य निर्णय हो गया, तो समाज-सुधारका मार्ग सदाके लिए ही निष्कण्टक हो जायगा अथवा समाजसुधारकी अन्य सब समस्यायें बिना किसी विशेष बाधाके हल हो जायेंगी।

वैसे तो हिन्दू-धर्म सदा ही प्रगति-शील रहा है। दूसरोंको अपनाने, पतितोंका उद्धार करने और गिरते हुओंको संभालनेमें हिन्दूधर्मने जो चमत्कार किये हैं, उनकी गवाही उन शास्त्रों तकमें मिलती है, जिनकी कि इस समय दुहाई दी जा रही है। यदि धर्म दूसरोंको अपना नहीं सकता, भूलसे या जान-बूझकर ही पतितोंका उद्धार नहीं कर सकता और गिरते हुओंको संभाल नहीं सकता, तो धर्म है ही फिर किस मर्जकी दवा? जो धर्म समाजके सङ्गठनमें सहायक नहीं, जो उसको छिन्न-भिन्न करता है, जिसके नामपर छूत-अछूतका भेदभाव पैदाकर समाजको सदाके लिए टुकड़ोंमें बांट दिया गया है और उन टुकड़ोंको सदा बनाये रखनेके लिए ही जिसके नामपर जात-बिरादरीकी यह सब सृष्टि रची गयी है, वह धर्म नहीं है। इस प्रकार धर्मके नामपर समाजमें पाप फैलाया गया है और शास्त्र, रूढ़ि, परम्परा तथा मर्यादा आदिके नामसे धर्मके नामपर पापकी ही रक्षा करनेकी जिद की जाती है। जब कभी इस पापको मिटानेका यत्न किया गया है, सदा ही धर्मके डूबनेकी दुहाई देकर जनताको भ्रममें फंसानेकी चेष्टा की गयी है। इस चेष्टाके करनेवालोंमें अगुआ वे होते हैं, जो धर्मको आजीविकाका साधन बना लेते हैं। धर्म अजीविकाका साधन होनेपर समाजकी उन्नतिमें सहायक नहीं हो सकता। हिन्दू समाज-में धर्मका पतन इस सीमाको पहुंच चुका है कि वह कुछ लोगोंकी आजीविकाका साधनमात्र रह गया है। ऐसे लोग समाजमें कुछ कम नहीं हैं, जिन्होंने जनताकी अन्धी, धार्मिक भावनासे बेजा फायदा उठाकर आलीशान राजमहल खड़े कर लिये हैं। सवारीके लिए हाथी, घोड़े, पालकियोंका शानदार प्रबन्ध कर लिया है। खानेके लिए बिना हाथ-पैर हिलाये ही षट्रस भोजनोंके भरे हुए थाल उनके सामने आते रहते हैं। इसी धर्मके कारण दूसरी ओर ऐसे कुछ लोग भी कम नहीं हैं जो आत्मिक तो क्या सांसारिक सुखोंका भी स्वच्छन्दता के साथ उपभोग नहीं कर सकते। कुओंसे या घाट-विशेषोंसे पानी लेकर अपनी प्यास तक बुझानेकी उनको स्वाधीनता नहीं। अपने बालकोंको अक्षर-ज्ञान तक करानेकी उनको सुविधा नहीं। देवदर्शन तो क्या देवालयकी ओर जाने वाली सड़कोंकी पवित्रता भी उनके पैरोंके स्पर्शसे दूषित हो जाती है। धर्मके नामपर पैदा की गयी विषमताका यह एक ऐसा उदाहरण है, जिसको सहन करना सम्भव नहीं है। जब कभी समाजमें ऐसी विषमता पैदा हुई है, तो उसका सर्वनाश करनेके लिए सुधारकोंने जन्म ग्रहण किया है। गीतामें भगवान्के युग-युगमें जन्म लेनेका जो उल्लेख किया गया है, उसका सिवा इसके और अर्थ ही क्या है? इस समय छूत-छात-सम्बन्धी विषमता सीमाको पार कर चुकी है और संसारकी दिव्य-विभूति महात्मा गांधीने उसीके सर्वनाशका बीड़ा उठाया है। उन्होंने बार-बार यह कहा है कि वह और

छूतछात दोनों जीवित नहीं रह सकते। दोनोंमेंसे एकका अन्त अवश्य होगा। या तो छूतछात मिटकर रहेगी, नहीं तो वह इस यत्नमें अपनेको ही मिटा देंगे। मनुष्य किसी शुभ यत्नमें अपनेको मिटा देनेसे अधिक और क्या कर सकता है ?

इस महान् यत्नमें लगे हुए महात्मा गांधीको भी शास्त्र और धर्मकी बाधाका सामना करना ही पड़ा है। अन्य सुधारकोंके समान उन्होंने धर्मकी अवज्ञा नहीं की और न शास्त्रोंकी उपेक्षा ही की है। पर जो कुछ भी उन्होंने किया है वह धर्मकी अवज्ञा और शास्त्रोंकी अवहेलनासे भी कहीं अधिक है। यरवदा जेल-मन्दिरमें शास्त्राभिमानियोंको निमन्त्रित करके उनकी बहसको बड़े ध्यानसे सुननेके बाद उन्होंने जो विज्ञप्ति प्रकाशित की है, वह एक ऐसी विज्ञप्ति है जिसका एक-एक अक्षर कभी हिन्दू-धर्मके इतिहासमें सुवर्णाक्षरोंमें लिखा जायगा और इस समयके शास्त्रोंके वाक्योंसे भी कहीं अधिक उसके वाक्योंकी प्रतिष्ठा की जायेगी। इस विज्ञप्ति द्वारा महात्माजीने हिन्दूधर्ममें लोकमतको स्थापित करनेकी घोषणा की है। अब तक केवल राजनीतिके साथ ही लोकमतका सम्बन्ध समझा जाता था। जनताकी 'वोटों' की कीमत केवल चुनावके लिए ही कूती जाती थी। प्रजासत्तावाद या जनसत्तावाद केवल शासन-प्रणालीका ही रूपान्तर माना जाता था। पर महात्मा गांधीने धर्मको भी लोकमतकी कसौटीपर कसनेका अद्भुत परीक्षण करके धर्मके सम्बन्धमें लोगोंकी धारणा, भावना अथवा दृष्टिकोणको ही बदलनेका अभूतपूर्व उपक्रम बांध दिया है। हरिजनोंके मन्दिर-प्रवेशके अधिकारका निर्णय लोकमत द्वारा करनेका मतलब और क्या है ? गुरुवयूरके सम्बन्धमें जनताके मतका मन्दिर-प्रवेशके पक्षमें प्रकट होना महात्मा गांधीके सनातन-धर्मकी पहली विजय है। उस विजयसे उत्साहित होकर महात्मा गांधीने उक्त विज्ञप्तिमें सनातन-धर्मकी जो व्याख्या की है वह यह है—"सनातन-धर्मका सर्वसम्मत अभिप्राय ही उस श्रेष्ठ व्यवहारसे है, जो जन-मात्रके लिए उपयोगी हो। धर्म एक प्रकारका नियन्त्रण है। निकृष्ट व्यवहार उस नियन्त्रणको शिथिल करते हैं। इसलिए वे धर्मके अन्तर्गत नहीं हैं। यदि किसी विवादात्मक विषयपर जनता अपने स्वतन्त्र विचार द्वारा किसी ऐसे निर्णयपर पहुंचती है जो स्वतः पाप नहीं है, तो क्या उसे ही सनातन धर्म नहीं कहेंगे ? क्या सनातन-धर्मके सिद्धान्तों व व्यावहारिक नियन्त्रणके विकासकी यही कसौटी प्राचीन कालसे नहीं चली आयी ? क्या सनातन-धर्मके जीवित रहनेका यही मुख्य कारण नहीं है ?" इसी सिलसिलेमें सनातन-धर्माभिमानियोंको लक्ष्य करके आप लिखते हैं—"उचित यह है कि दोनों पक्ष जनताके सामने रख दिये जायं और उसको चुनाव अथवा निर्णयका अधिकार दिया जाय। यदि जनता मेरे पक्षको स्वीकार करे, तो क्या वहही सनातन-धर्म न होगा ? आपकी सम्मतिमें, आप जो कहते हैं, वह ही सनातन-धर्म है, क्योंकि आपकी धारणा यह है कि जनताका बहुमत आपके साथ है। आप मेरे सनातन-धर्मी होनेके दावेको इसीलिए स्वीकार नहीं करते कि आप यह समझते हैं कि जनता मेरे विचारोंसे सहमत नहीं है।" अपने सनातन-धर्मी होनेका दावा आपने इन शब्दोंमें पेश किया है—"मैंने कई वर्षों तक लगातार करोड़ों देशवासियोंमें राजनीतिज्ञकी हैसियतसे नहीं, किन्तु धार्मिक पुरुषकी हैसियतसे भ्रमण किया है। जनता भी मुझको धार्मिक पुरुष मानती है। आप जो मेरा विरोध कर रहे हैं, क्या यह भी इस बातका प्रमाण नहीं है कि आप मुझे राजनीतिज्ञकी अपेक्षा धार्मिक पुरुष ही समझ रहे हैं ? आप यदि शान्तिपूर्वक विचार करें, तो आपको मालूम होगा कि गुरुवयूरमें हो या अन्यत्र, मैं तो अपने और आपके दावेकी परीक्षा कर रहा हूं।" इस परीक्षाकी कसौटी क्या है ? यही कि "दोनों मत जनताके सामने रखिये और उसीको उसका निर्णय करने दीजिये।"

इस प्रकार धर्माधर्मके निर्णयका अन्तिम अधिकार जनताके हाथोंमें सौंपते हुए महात्मा गांधीने हिन्दू-धर्ममें क्रान्ति पैदा करनेका जो यत्न किया है, उसका परिणाम यह होगा कि सनातन-धर्मकी काया ही पलट जायगी। साधारणतया वर्तमान युगको धर्मकी दृष्टिसे बुद्धि, विवेक अथवा तर्कका युग कहा जाता है और किसी भी धार्मिक समस्याके निर्णयके लिए पुराणमताभिमानी लकीरपन्थियोंके प्रतिकूल बुद्धि, विवेक या तर्कसे काम लेनेकी अपील की जाती है। क्योंकि आज तक धर्मको साधारण जनताकी बुद्धिसे अगम्य माना जाता था और शास्त्राभिमानियोंकी एक विशेष श्रेणी-का ही उसपर एकाधिपत्य था। महात्मा गांधीने इस

एकाधिपत्यका अन्त करके धर्मको बुद्धिकी सीमासे भी पार पहुंचाकर सर्वसाधारणकी इच्छाका विषय बनानेकी घोषणा की है।

महात्मा गांधीसे पहले भी सनातनधर्ममें क्रान्तिकारी परिवर्तन करनेका यत्न किया गया है। इस युगमें सबसे बड़ा और बहुत अंश तक सफल यत्न करनेवालोंमें स्वामी दयानन्द और आर्यसमाजका नाम उल्लेखनीय है। स्वामी दयानन्दने शास्त्रोंकी छान-बीन करके इस सम्बन्धमें बहुत-सी गन्दगीको भस्मसात् कर दिया है और धर्मके क्षेत्रमें भयङ्कर उथल-पुथल मचाकर सामाजिक प्रगतिके मार्गको पर्याप्त निष्कंटक बना दिया है। उनके बाद महात्मा गांधीके रूपमें सनातन-धर्मके क्षेत्रमें एक नवीन युगका प्रादुर्भाव हो रहा है। स्वामी दयानन्द और आर्यसमाजके युगको विद्या और बुद्धिका युग कहना चाहिए। महात्मा गांधीका युग लोकसत्ताका युग कहा जायगा। यदि धर्म लोक-हितके लिए ही है, तो उसका लोक-सम्मत होना अनिवार्य है।

यूरोपके महासमरसे सांसारिक किंवा आर्थिक दृष्टिसे कुछ देशोंको कितनी भी हानि क्यों न उठानी पड़ी हो और मनुष्य-संहारकी दृष्टिसे वह कितना भी घातक क्यों न साबित हुआ हो, पर राजनीति और धर्मके क्षेत्रमें उसके द्वारा जो क्रान्ति पैदा हुई है, वह ऐसा लाभ है कि उसपर सारी हानि और संहारको वारा जा सकता है। इस युद्धके बाद यूरोपके आधा दर्जनसे अधिक देशोंमें प्रजा-सत्तात्मक शासन-पद्धति स्थापित हो चुकी है और वहांके एकतन्त्र-शासकों (राजाओं) को अपने जीवनको जनताकी इच्छापर छोड़ने किंवा स्व-देशका त्यागकर विदेशोंमें भाग निकलनेके लिए विवश होना पड़ा है। राजनीतिक क्षेत्रके समान धार्मिक क्षेत्रमें भी एक-तन्त्र सत्ताका अन्त होकर जनमतकी स्थापना हुई है। रोमके कभीके सर्वशक्तिसम्पन्न पोपके फतवे इस महासमरके समय वीर्यहीन क्षत्रियके शस्त्रबलके समान प्रभावहीन साबित हुए। राजाओंको कठपुतलीकी तरह नचानेवाली धार्मिक शक्तिकी यहां तक अवहेलना की गयी कि ईसाई राष्ट्रोंने ईसाई राष्ट्रोंके ही प्रतिकूल हथियार उठाने और गिरजाघरों पर गोले बरसानेमें भी तनिक सङ्कोच नहीं किया। युद्धके बाद रूसमें ऐसी भीषण चहुंमुखी क्रान्ति हुई कि राजा और एकतन्त्र-राजसत्ताके साथही पोपके धर्म और उसकी सत्ताको भी अल-विदा दे दी गयी। ऐसा ही टर्कीमें हुआ। सुलतानकी राज-सत्ताके साथ-ही-साथ खलीफाकी धार्मिक सत्ताका भी अन्त हो गया। दोनों देशोंमें राजनीतिक और धार्मिक क्षेत्रोंमें लोकसत्ताकी स्थापना हो गयी। राज्यशासन जैसे प्रजाकी इच्छाका विषय बन गया, वैसे ही धर्मकी व्यवस्था भी जनताकी इच्छा पर निर्भर रहने लगी। जिन लोगोंने धर्मको अपनी आजीविकाका साधन बनाया था, वे वैसे ही देश छोड़कर भाग निकले जैसे कि राज-सत्ताको आजीविकाका साधन बनाये हुए लोग इस क्रान्तिके बाद देश छोड़नेके लिए विवश हुए थे। जनताने ऐसे लोगों पर नियन्त्रण रखनेके लिए कड़े-से-कड़े कानून बनाये और इनकी कड़ी निगरानी रखी गयी कि ऐसे लोग अपने पुराने अभ्यासके शिकार होकर जनताको मार्गभ्रष्ट न कर बैठें। आज रूसमें बाइ-बिलके धर्मकी छाया तक बाकी नहीं बची है और न टर्कीमें ही कहीं कुरान-शरीफ तथा हदीसके शास्त्र किंवा स्मृतियोंके धर्मकी छाया तक दीख पड़ती है। सदाके लिए समस्त जनताको भ्रम अथवा अन्धकारमें डाल रखना असम्भव है। धर्मके नामसे पैदा किया गया भ्रम और शास्त्रोंके नामसे फैलाया गया अन्धकार भी सदा नहीं बना रह सकता। रूस और टर्कीकी जनताने इस भ्रम और अन्धकारका ऐसा अन्त किया है कि इस दृष्टिसे ये दोनों देश दूसरे देशोंके लिए आदर्श कहे जा सकते हैं।

इतनी भारी हानि और संहारके बाद रूस तथा टर्कीको जो लाभ मिला है, वह महात्मा गांधीके पुण्य प्रतापसे भारतको अनायास ही प्राप्त हो रहा है। महात्मा गांधी राजनीतिककी अपेक्षा धार्मिक होनेका दावा करते हैं। इस दावेपर कुछ बहस करना इस लेखका विषय नहीं है। पर इतना कहना अप्रासङ्गिक न होगा कि यदि वीरवर मुस्तफा कमालपाशा टर्कीमें प्रजातन्त्र-पद्धतिकी स्थापनाके साथ-ही-साथ इतना महान् सामाजिक अथवा धार्मिक परिवर्तन कर सकते हैं, और यदि रूसमें लेनिन एक हाथसे धार्मिक अथवा सामाजिक तथा दूसरे हाथसे राजनीतिक क्रान्ति पैदा कर सकते हैं, तो यह आशा, विश्वास और निश्चय रखना चाहिए कि महात्मा गांधी भी देशमें धार्मिक, सामाजिक और राज-नीतिक क्रान्तिका चहुंमुखी चक्र एक साथ घुमा सकेंगे। राजनीतिसे घबराने तथा केवल सामाजिक एवं धार्मिक प्रगति

चाहनेवालोंको महात्मा गांधीका विराट्-राजनीतिकरूप देख-कर और सामाजिक एवं धार्मिक संशोधनोंको अनावश्यक मानने एवं राजनीतिक क्रान्ति द्वारा ही ऐसे संशोधन होनेमें विश्वास रखनेवालोंको महात्मा गांधीका विराट् धार्मिक रूप देखकर एकाएक विस्मयमें नहीं पड़ जाना चाहिए। अहिंसा और सत्य आदिके उन तत्त्वोंको, जिनका सम्बन्ध केवल धर्मके साथ ही समझा जाता था, महात्मा गांधीने राज-नीतिका एक मुख्य विषय बना दिया है। व्रत, उपवास आदि भी जप, तपके समान केवल धर्मके विषय माने जाते थे; महात्मा गांधीने राजनीतिक क्षेत्रमें भी उपवासकी महिमाको प्रकट करके समस्त संसारको हिला दिया है। राजनीतिक क्षेत्रमें किये गये इन सफल परीक्षणोंके समान ही महात्मा गांधी धार्मिक क्षेत्रमें भी एक अद्भुत और निश्चय ही सफल परीक्षण करने जा रहे हैं। वह यही है कि वह धार्मिक क्षेत्रमें लोकसत्ताके राजनीतिक तत्त्वकी स्थापना करना चाहते हैं, और धर्मको लोकमतका विषय बनाकर धर्माधर्मके निर्णयका अधिकार जनताके बहुमतको देना चाहते हैं। धर्मप्रधान भारतमें जब कि शास्त्राभिमानियोंके सामने सर्वसाधारणको धार्मिक मामलोंमें हाथ डालने और मुंह तक खोलनेका कोई अधिकार नहीं रहा, तब ऐसा परिवर्तन कोई साधारण बात नहीं है। यह एक असाधारण परिवर्तन है और इसीका नाम है क्रान्ति। सनातन-धर्मको जीवित रखनेके साथ-साथ समाजका अभ्युदय तथा राष्ट्रका अभ्युत्थान चाहनेवालोंको इस क्रान्ति द्वारा होनेवाले परिवर्तनका हार्दिक स्वागत करना चाहिए और इस परिवर्तनको सफल बनानेकी पूरी सचाईके साथ सिरतोड़ कोशिश करनी चाहिए। धर्मके क्षेत्रमें लोकमतकी स्थापना होनेके बाद धर्मसे होनेवाली हानि तथा धर्मके नामसे फैलाये गये आडम्बर अथवा माया-जालका एकाएक अन्त हो जायगा और भविष्यमें भी धर्मके नाम पर पापाचारका प्रचार नहीं किया जा सकेगा।

वर्तमान सनातन-धर्मसे उदासीन होकर किंवा तङ्ग आकर नास्तिकताकी ओर झुकनेवाले लोग भी, आशा है, महात्मा गांधीके सनातन-धर्मपर कुछ गहरा विचार करेंगे और उनको भी महात्मा गांधीकी इस व्याख्या तथा धर्माधर्मके निर्णयके लिए निर्धारित की गयी लोकमतकी इस कसौटीको स्वीकार करनेमें कुछ आपत्ति न होगी। अपनेको महात्मा गांधीका भक्त बनाकर जनतामें आगे बढ़नेका दम भरने वालोंको तो इस सनातन-धर्मको स्वीकार करनेमें तनिक भी आपत्ति नहीं होनी चाहिए। जो लोग महात्माजीके आदेशपर देशके लिए त्याग, तपस्या तथा कष्ट-सहनके मार्गके अनुगामी हुए हैं और घरकी मोह-माया तथा ममताके समस्त बन्धन काटकर जेलकी यातनाओंको भी हंसते-खेलते सहन करते हुए राजनीतिक क्षेत्रमें अग्नि-परीक्षामें उत्तीर्ण हुए हैं, उनके लिए सामाजिक किंवा धार्मिक क्षेत्रमें भी अग्नि परीक्षाका एक और अवसर महात्मा गांधी द्वारा ही उपस्थित किया जा रहा है। यह विश्वास रखना चाहिए कि वे इस अग्नि-परीक्षामें भी उत्तीर्ण होंगे। महात्माजीके सनातनधर्मको सत्य साबित करने अथवा सनातनधर्ममें लोकमतको प्रस्थापित करनेकी समस्त जिम्मेवारी या जवाबदेही उनपर ही है, जो पिछले दस-बारह या कुछ कम-अधिक वर्षोंसे अपनेको महात्मा गान्धीका अनुयायी या भक्त कहते आ रहे हैं। इसी दृष्टिसे महात्मा गांधी ने अपने पिछले उपवासको अथवा गुरुवयूर-मन्दिरके सम्बन्धमें किये जानेवाले स्थगित उपवासको भी अपनेमें विश्वास रखनेवाले अनुयायियों तथा भक्तोंके ही विरुद्ध बताया था। क्या हम अपने महान् नेताके प्रति सच्चे साबित होंगे? अथवा, छद्मवेषधारी मित्रकी तरह विश्वासघाती सिद्ध होंगे? देखें, इस यश या अपयशमेंसे हम किसका चुनाव करते हैं?

प्यार

अपने ही यौवनके भार,
कुच कुमारके ही प्रस्तार,
क्यों मधुबाले, सुधबुध खोती
मोती जैसे बिन्दु पसार ?
दो तारोंके तरलित तार,
अलकावलिके प्रणय-विहार,
ढीले हैं क्यों आज पड़ गये
अलबेली, तेरे शृंगार ?
सोनेका जो था संसार,
जिसमें मधु था भरा अपार,
झुलस गये क्यों, अलसगामिनी,
अनमन हो मनके उपचार ?
सुखमें आंखोंके अभिसार,
दुखमें मदमाते जलधार,
गोलगोल सुन्दर विलोल दृग,
अपलक किसको रहे निहार ?
ढीठ वचनको दिया बिसार,
नहीं लाजका किया विचार,
होंठ हठीले अये ! चाहते,
किस अधरामृतका सञ्चार ?
कभी रहे जो हीरक हार,
निर्मल नीलमसे अविकार,
लोचन पड़े सोचमें रहते,
सहते किसके प्रौढ़ प्रहार ?
क्या कलिमाका कोमल द्वार,
अलिके सुख-स्वप्नोंका सार,
खोल दिया उस वनमालीने
सुनकर मनहर रस-गुञ्जार ?
क्या बचपनके सब व्यापार,
भय, विस्मय, शोभालंकार,
बरस रहे रस बौछारोंमें,
मनके अन्दर हो मनुहार ?
जगती-तलका जो आधार,
पल-पलमें करता संहार,
क्या तेरे भोले मनको भी,
सजनि, छू गया भोला प्यार ? *

हरीशचन्द्र जोशी बी० ए० 'हरीश'

—*—

* लेखककी फूल नामक अप्रकाशित पुस्तकसे

हैदराबादके निजामकी तारीफमें

श्रीमती आन्नी कुएनसेल

मैंने हैदराबादके अधिकारियोंको लिखा कि हिज एक्जाल्टेड हाइनेस निजामसे मैं कब मिल सकती हूं। जवाबमें जो तार मुझे मिला उसके हूबहू शब्द यही हैं "निजामके हुक्मका इन्तजार करो।" कुछ दिन तो मैंने प्रतीक्षा की लेकिन जब एक सप्ताह बाद मेरे दूसरे प्रार्थनापत्रका जवाब फिर उन्हीं बंधे-बंधाये शब्दोंमें दुहराया गया, तो मैंने जीमें ठान ली कि अब तो वहीं पहुंच कर निजामका अन्तिम आदेश प्राप्त करूंगी।

इस प्रकार मैं संसारके सबसे अधिक धन-सम्पन्न पुरुष की मेहमान बनी। कहा जाता है कि निजामके सिवा अभीतक और किसीने उनके जवाहरातोंके तहखानेपर नजर नहीं डाली। सदियोंसे कितनी बड़ी धनराशि एकत्र की जा रही है, इसका अन्दाजा कोई नहीं लगा सकता। इस अतुल सम्पत्तिका उद्गम विशेषतः निजाम प्रदेशकी खानोंमें है। कोयले और हीरेकी खानों तथा नमककी उपजसे प्रचुर धन लाभ हुआ है। हैदराबादके जङ्गलोंकी लकड़ीसे बहुत मुनाफा है। वहां सैगून, चन्दन तथा फलोंके मूल्यवान वृक्ष हैं। वहांके खेतोंमें रुई और तेलहन बहुत उपजता है। वहांके करघोंसे बुने मलमलकी ख्याति तो मार्को पोलोके समयमें भी थी। कहते हैं कि तेरहवीं सदीसे हैदराबादमें जवाहरातका सञ्चय प्रारम्भ हुआ था। पड़ोसी राज्यपर आक्रमण करके भी कई बार जवाहरात लूट कर यहां लाये गये हैं। तबसे अब तक निजाम राज्यके प्रत्येक शासकने जवाहरातोंके अम्बार लगानेकी भरसक चेष्टा की है। धनके पहाड़-पर-पहाड़ लगानेमें वर्तमान शासक भी किसी तरहकी कोताही नहीं करते। इस दुनियाके सबसे धनी नरेशने अपनी प्रजासे अधिक-से-अधिक रुपये ऐंठनेके नियमित साधन उत्पन्न कर लिये हैं। छोटी-छोटी मदोंसेभी रुपयोंके ढेर लग जाते हैं। यह आय उनके सरकारी भत्ते से, जो सालाना ८० लाख रुपया है, पृथक् है। खुद उन्हींके राज्यके लोग इस विषय पर जो कुछ कहते हैं, वह सर्वथा अतिरञ्जित नहीं है।

ऐसे हाकिम-उल मुल्कके लिए कोई क्या कह सकता है जो राजकीय भोजमें निमन्त्रित प्रत्येक अतिथिसे, उसकी स्थितिके अनुसार नजर लेता है? सबसे कम नजराना सोनेकी एक मोहरका है, जो एक सरकारी कर्मचारीके लिए थोड़ी रकम नहीं है, खासकर, जब कि ऐसे खर्चीले भोजोंमें उन्हें सालमें कई बार सम्मिलित होना पड़ता है। ऐसे भोजोंमें जब अतिथियोंकी संख्या औसतन् पांच सौ तक पहुंच जाती है तो इसे आमदनीका अच्छा जरिया न समझना मूर्खता है।

इतनेहीमें बस नहीं है, निजाम साहब अन्य लाभदायक व्यवसाय भी करते हैं। उदाहरणस्वरूप, आप बहुधा अपने मित्रों तथा परिचितोंकी सेवामें फलों या मिठाईकी डालियां भेजते हैं। इन डालियोंमें एक लेबल रहता है जिसपर "उपहार"का मूल्य अङ्कित रहता है। निजाम साहबका भेजा हुआ उपहार हर सूरतसे स्वीकार ही करना पड़ता है। निजाम जिन और उपायोंसे धन कमाते हैं वे भी कम दिलचस्प नहीं हैं। वह सदाकी भांति ढीले-ढाले कपड़ोंमें बाजार पहुंचते हैं। वहां वह किसी मिठाईकी दूकानपर जाते हैं और उसका मुलाहिजा फरमाते हैं। कुछ देर बाद आप मिठाईकी तारीफ कर देते हैं; इसपर बेचारे गरीब दूकानदारको पुराने रिवाजके अनुसार प्रशंसित मिठाई निजामके हवाले करनी पड़ती है। निजाम भी झपटकर उसे एक बड़े टोकरेमें, जिसे वे अपने साथ लाते हैं, डाल देते हैं। यही मिठाई फिर पीछे, डालीमें सजाकर, उपहार-स्वरूप भेंट कर दी जाती है, और इससे काफी दाम खड़े हो जाते हैं। उपहार पानेवाले सचमुच आनन्दसे गद्गद् हो जाते हैं!

दस बरस पहले हिज हाइनेसने धन कमानेका वह ढंग निकाला कि सबके कान कतर दिये। आपने अपना दीवान तैयार किया और अमीर उमरा तथा प्रजामें इसके ग्राहक बनाये। दीवानके दाम साधारण संस्करणकी दो और राजसंस्करणकी दस मोहरें थीं। भला किसको हिम्मत पड़ती जो इस कलापूर्ण ग्रन्थका ग्राहक बननेसे इन्कार करता? बस मोहरोंकी बौछार हो गयी। तबसे आजतक उक्त ग्रन्थकी चर्चा ही बन्द है; यह अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ।

यह भी कहा जाता है कि निजामके हरममें खाने-पीने में भी किफायतसारीका ख्याल रखा जाता है। सिर्फ पटरानी, पाशा बेगमको ही भत्ता मिलता है, वह भी केवल चार सौ रुपये माहवार। निःसन्देह यह रकम संसारके सबसे धनी पुरुषकी बेगमके लिए बहुत कम है। पाशा बेगमके साहबजादे युवराज हैं। सिर्फ चार बेगमोंकी सन्तति ही शाहजादा और शाहजादी कहला सकती है। अन्तःपुरमें एक सौसे ऊपर रखेलियां अर्थात् उपपत्नियां हैं।

एक दिन जब मैं उस्मानिया युनिवर्सिटीके स्वागत-समारोहसे लौटकर डेरेपर आयी तो देखती क्या हूं कि उसी रातको मुझे निजामके कोठी महलके भोजमें सम्मिलित होनेका निमन्त्रण आया है। जिस समय मुझे यह संवाद मिला, महलमें दावत शुरू हो चुकी थी। मेरे यहांसे कोठी महलका रास्ता मोटर द्वारा २० मिनटका था। मैंने झटपट मोटर गाड़ीके भीतर ही अपनी पोशाक बदली और महल पहुंची। मोटरसे उतरते ही एक नाटे सैनिकने मेरा स्वागत किया। बागीचेमें एक बड़े शामियानेके नीचे लगभग ९० यूरोपियन और भारतीय अतिथि विराजमान थे। मेजपर भोजन-सामग्री सजी थी। ज्योंही मैं शामियानेमें प्रविष्ट हुई कि घोर निस्तब्धता छा गयी। सबकी आंखें मुझी पर गड़ गयीं, मानो मैं एक पगली हूं।

सैनिकने कांपते हुए मुझे एक काले-कलूटे नाटे कदके आदमीके पास खड़ा कर दिया, जो स्मोकिङ्ग सूटके साथ नरम कमीज * और फेज कैप पहने था; यही हिज एक्जाल्टेड हाइनेस थे। बड़े शिष्ट भावसे उन्होंने मुझे बिठाया। हालांकि निमन्त्रितोंके सामने फल रखे जा चुके थे, फिर भी मैंने इतनी जल्दी खाना शुरू किया कि काफीके आने तक मैं सबकी तरह खा-पीकर लैस हो गयी। किन्तु अभी मैंने काफीका एक ही घूंट सुड़का था कि एका-एक निजाम उठ पड़े; शैम्पेनका गिलास एक सांसमें खाली कर दिया और अंगरेज रेजीडेण्टकी पत्नीके साथ बाहरको चल दिये। दूसरे मेहमान भी उनके पीछे हो लिये। उस समय मैंने सोचा कि वह ड्राइङ्ग-रूम जा रहे हैं, लेकिन मेरा अनुमान गलत निकला। कुछ लोग अभी शामियानेमें ही थे; वे दरवाजेपर खड़ी और हरे रेशमी कपड़ों तथा लाल ऊनी मोजोंमें मढ़ी नौजवान बेगमोंको सलाम भी न करने पाये थे कि निजाम साहब पुकार उठे—"आओ! जल्दी आओ!! उन्होंने एक-एक करके मोटरें बुलायीं और अतिथियोंको बिदा किया।

मेरे बगलमें एक वृद्ध अंगरेज महिला खड़ी थी। उससे मैंने पूछा—"क्या निजाम हमेशा ऐसा ही करते हैं?"

'हां, हिज हाइनेसके भोज प्रायः इसी तरह समाप्त होते हैं।"

जब मेरी गाड़ी लगी, तो मैंने विलम्बके लिए माफी मांगी। मेरे मेहमानदारको मेरी बातोंपर खूब हंसी आयी और उन्होंने मीठे स्वरमें कहा—"मेरा ख्याल है कि आजकी तरह आपने कभी इतनी हड़बड़ीमें न खाया होगा।" इसके बाद वह फिर उसी तरह गाड़ियोंकी ओर इशारा करते रहे। जिस समय मैं अपने जीवनके इस सबसे विचित्र भोजकी बातें सोचती, रवाना हुई तो इस बागीचेमें 'आओ! जल्दी करो!! ध्वनि गूंज रही थी। *

* स्मोकिङ्ग सूटके साथ नरम कमीज नहीं पहनी जाती। पर भारतके कई राजे महाराजे और जमींदार न मालूम किसकी सलाहपर ऐसा करते हैं। स०

यह लेख विएनाके दैनिक पत्र 'नाये फ्राये प्रेस्से' में छपा है और कई विदेशी पत्रोंमें उद्धृत भी हुआ है। स०

मुरलीधर

श्री माखनलाल चतुर्वेदी

'क्या तुम सङ्गीत हो ?'

तुम मेरे सङ्गीत नहीं हो। अलापोंकी तरह तुम मेरी मर्जीपर लौटते कहां हो ? माना कि तुम्हारी कृपाके बादल बेअख्तियार बरस पड़ते हैं। परन्तु उस समय तुम मेरी मलार नहीं बने होते।

—'तब क्या तुम मेरी मृदङ्ग हो ?'

हां; तुम मेरे प्रहार सह लेते हो; किन्तु मेरे बन्धनोंमें जकड़े जानेके लिए कब तैयार होते हो ? मीठे बोलते हो; परन्तु मुंहपर आटा लगानेकी रिश्वत उस मधुराईके बदले तुम्हें कब देनी होती है ? और 'सब कुछ' मेरे, मैं तुम्हारी वाणीपर यह इलजाम कैसे रख सकता हूं कि तुम बाहर बोल रहे हो; तुम अन्तःकरण रहित हो ? क्या तुम्हारी वाणीपर थोथेपनका आरोप कर सकता हूं ?

'आह ! तब तुम वीणा हो; नारदके नाद ब्रह्मसे विश्वझंकृत कर देनेवाली।'

परन्तु वीणा तो मेरी गोदमें रहती है। तुम कहां यह शर्त स्वीकृत करते हो ? माना, झनकारते ही वीणा स्वर देती है, मनुहारते ही तुम दौड़ आते हो; किन्तु मेरे स्वरपर सदा ही तो तुम्हारे तार नहीं मिलते। स्वर-से-स्वर न मिलनेपर, स्वर लहरीसे विश्व भर देनेवाली वीणाको गोदमें लेकर, और हृदयसे लगाकर भी, मुझे उसके कान ऐंठने पड़ते हैं। पर, हाय ! तुम तो मेरे कानोंको वीणा बनानेके लिए घूमते हो।

—'तब मधुर मुरलीके सिवा तुम और क्या हो ?'

पर अपने ओंठपर तुम्हारे मुंहको रखकर अपनी वेदनाओं और उल्लासोंकी गूंज कहां मचा सकता हूं ? और तुममें छिद्र कहां हैं ? और उनपर मैं अपनी उंगलियां कहां रख सकता हूं ?

आह जाना, तुम न सङ्गीत हो, न मृदङ्ग हो, न वीणा हो, न मुरली हो,—

'तुम तो मुरलीधर हो।'*

———

---

* लेखककी साहित्य-देवता नामक अप्रकाशित पुस्तकसे। श्रीचतुर्वेदीजीने हमें अपनी इस रसमय पुस्तकके अधिकांश अध्याय सुनाये हैं। हमारी सम्मतिमें तो हिन्दीमें ऐसा साहित्य-प्राण ग्रन्थ अभी तक नहीं निकला है। स०

दीवाली और होली

इलाचन्द्र जोशी

आज भ्रातृ-द्वितीयाके बादकी तीज है। तीन दिन तक कामकी भीड़ थी। आज अवकाशका दिन है। प्रातःकालके कामोंसे छुट्टी पाकर, सबको खिला-पिलाकर स्वयं खा-पीकर अपने कमरेमें चारपाईपर बैठकर खिड़कीसे बाहरका दृश्य देख रही हूं। सूरज अभीसे पच्छिमकी तरफ ढलने लगा है। प्रायः दो बज गये होंगे। सारा घर सूना पड़ा है। घरके सब पुरुष अपने-अपने कामोंपर गये हुए हैं। सास, देवरानी और जेठानी बाहर आंगनमें बैठी धूप खा रही हैं। मेरा सात सालका लड़का लल्लन अपने छोटे-से पलंगपर लेटा हुआ मेरी सुध भूल गया है और नींदकी दुनियामें न जाने किस मायावतीकी गोदमें खेल रहा है। उसकी आंखोंमें और अधरोंपर कैसी मीठी हंसी लहरा रही है! कौन हो तुम, मेरे लाल! किस दुनियासे भटकते हुए आकर मेरी छाती जकड़कर व्याकुल स्नेहसे मुझे प्रतिपल रुला रहे हो! केवल तुम्हारे ही कारण मैं इस नीरस कर्म-चक्रमें पिसनेपर भी नहीं मर रही हूं। नहीं तो······पर आज तुम सोओ। आज कुछ देरके लिए तुम्हें बिलकुल भूल जानेकी इच्छा हुई है।

शरत्कालके दिन भी कितने छोटे होते हैं! अभी दो ही बजे होंगे, पर अभीसे सन्ध्याका-सा आभास होने लगा है। नीचेके पहाड़ी खेतोंकी फसल सब काट डाली गयी है। तीन-चार गायें उनके सूखे डण्ठलोंको ही चूस रही हैं। एक स्थान-पर ऊबड़-खाबड पहाड़ी जमीनकी पगडण्डीसे होकर तीन अलबेली कृषक-रमणियां सरपर घासका गट्ठर लिये कवायदकी तरह समान चालमें चली जा रही हैं। वे प्रसन्न-चित्त हैं। हंसती जाती हैं और बोलती जाती हैं। हमारे मकानसे वे काफी नीचेपर हैं, पर आजकी इस झिल्ली-झंकृत एकान्त शान्तिमें उनके सुख-दुःखकी बातें स्पष्ट सुनायी दे रही हैं। गांवमें पहुंचते-पहुंचते उन्हें सन्ध्या हो जायगी और अपनी गायों और भैंसोंको घास खिलाकर, उन्हें दुह करके अंगीठी बालकर कुछ देर तापेंगी, और तब चूल्हेमें रोटियां सेंककर खा-पीकर दो-चार मिनट गपशप करके सुखपूर्वक सो जायंगी— इन नवेलियोंके बाल-बच्चे शायद नहीं होंगे, इसलिए इस चिन्तासे मुक्त होनेके कारण मधुर मोहमें मग्न होकर दूसरे दिन उठेंगी और हंसते–हंसते काम करेंगी और काम करते-करते हंसेंगी। उन्हें देखकर मुझे ईर्षा होती है।

आकाश निर्मल-नील, परिष्कार-परिच्छन्न है। निस्तेज, सुनहली धूपकी छायासे, सामने पच्छिमकी तरफके पहाड़ किस दुःखके कारण पीले पड़ गये हैं! और झींगुरोंका यह निरन्तर झङ्कार! न मालूम क्यों उसे सुनकर मुझे आज जान पड़ रहा है कि मैं अकेली हूं, इस संसारमें एकाकिनी, सङ्गीहीन हूं। कहां गया मेरा साथी? आज अनेक दिनोंके बाद जब गिरस्तीके पचड़ेसे कुछ अवकाश मिला है, तो मेरे निभृत हृदयमें धीरे-धीरे किसकी स्मृति जागरित हो रही है? हाय मेरे प्यारे! समझती थी कि तुम्हें भूल गयी हूं, बचपनका साहचर्य क्षणिक स्वप्न-सम जान पड़ने लगा था। मैं पति-पुत्रको लेकर अपनी गिरस्तीके जञ्जालमें फंस गयी और तुम इधर-उधर भटकते फिरते रहे हो। तुम्हारी याद ही मुझे नहीं थी। पर परसों महालक्ष्मीकी पूजाकी रात अपनी शीर्ण, रूक्ष मूर्ति लेकर सपनेमें तुम अचानक कहांसे आकर दिखायी दिये! प्रेतात्माकी तरह तुम्हारा मुख देखा। गालोंकी हड्डियां बाहरको निकल गयी थीं; आंखें नीचे धंस गयी थीं, तैलहीन, बिखरे हुए बालोंसे चेहरा थोड़ा-बहुत ढक-सा गया था। पर चिर-परिचित उद्दीप्त आंखोंसे वही प्रखर, उद्दाम ज्योति विकीरित हो रही थी। व्याकुल वेदनासे मैं सपनेमें रो पड़ी और दोनों बाहोंसे तुम्हें जकड़कर कुशल-समाचार पूछने लगी। जब आंख खुली तो एक मर्मगत मीठी वेदनाकी लहर समस्त हृदय और शरीरमें व्याप्त हो गयी। अपना सारा अस्तित्व ही मुझे झूठा जान पड़ने लगा और क्षणिक स्वप्नमें जो परम सत्य प्राप्त हुआ था, उसे खोनेके कारण हृदयको पागलकी तरह पत्थरपर पछाड़ खानेकी इच्छा हुई। दूसरे दिन गोबर्द्धन-पूजा थी और कल भ्रातृ-द्वितीया। कोई भाई न होनेके कारण दूज विफल गयी। कई बातें स्मरण होकर हृदयको रुला रही थीं, पर कामकी भीड़के कारण रोनेका समय नहीं था। आजके अवकाशमय दिनमें

रह-रहकर वही स्मृतियां फिर आलोड़ित हो रही हैं। लल्लनका अस्तित्व ही आज, न मालूम क्यों, मेरे लिए झूठा हो गया है। केवल तुम्हारी ही स्मृति चरम सत्यके रूपमें मेरे मनमें विभासित हो रही है, और मैं अपनेको चिर-किशोरी, चिर-कुमारी समझकर हम दोनोंके बाल्यकालके आनन्दमय जीवनके विस्मृत लोकमें कल्पनाके साथ लौट चली हूं।

आज अतीतके एक विशेष दिनकी अस्पष्ट स्मृति मेरे हृदयमें झिलमिला रही है। न मालूम क्यों। क्योंकि वह दिन मेरे जीवनकी किसी विशेष घटनासे सम्बन्धित नहीं है। कितने ही महत्त्वपूर्ण दिनोंकी स्मृतियोंको आवृत करके वह साधारण दिन अपनी सुखालसमय छायासे मेरे मानसमें लहरा रहा है। दो दिन पहले बर्फ गिर चुकी थी। उस दिन सुबहको सारी प्रकृति कुहरेसे ढकी हुई थी; पर दिनको कुहरा हट गया था और आकाशकी प्रगाढ़ नीलिमा आयनेसे भी अधिक निर्मल दिखलायी देती थी। इर्द-गिर्दके पहाड़ बर्फसे ढके हुए होनेके कारण धूपमें स्फटिकके समान चमक रहे थे। हमारे गांवके अधिकांश स्थानोंपर बर्फ पिघल गयी थी; पर यत्र-तत्र अब भी मौजूद थी। धूप कैसी प्यारी लगती थी! पैनी छुरीसे भी तीखी हवाके झकोरे समस्त वायुमण्डलको पवित्र, पापकी कल्पनासे निर्मुक्त कर रहे थे। सारी प्रकृति निष्कलङ्क किशोरी कुमारीकी तरह स्निग्ध, उज्ज्वल रूपमें शोभित हो रही थी। अपने कैशोर हृदयसे मैं उस दिन प्रकृतिका साम्य अनुभव कर रही थी। विपुल जीवनकी कैसी रङ्गीन कल्पनायें, कैसी दीप्त आशायें मेरे हृदयमें हिलोरें मार रही थीं! क्यों जीवनके प्रातमें असीम,उद्दाम आशाओं, उद्वेल आकांक्षाओंका अंकुर लह-लहाने लगता है और यौवनका उत्ताप छूते-न-छूते शुष्क तृणकी तरह धूलिमें लुण्ठित हो जाता है? सत्वर सन्ध्या हो आयी, गायें गोठोंकी ओर लौट चलीं, कृषक रमणियां कतार बांधकर सुख-दुःखकी बातें करती हुई, पहाड़ी गीतका मस्ताना राग गाती हुई, हंसती, खेलती हुई अपनी-अपनी विश्राम-कुटीको वापस जाने लगीं। पर्वतोंकी तुषार-मण्डित स्फटिक शिलाओंपर सुनहली धूपकी छाया किस मायाका जाल बिछा रही थी! कैसी मीठी उदासीसे मेरी सर्वात्मा रञ्जित हो गयी थी! जिसको लेकर मेरी आनन्दोज्ज्वल आशाओंका प्रवेग उच्छलित हो रहा था, वह आज अभीतक नहीं आया था। उसकी बाट जोहते-जोहते मैं निराश हो गयी, पर आजकी इस निर्मल, निर्मुक्त सन्ध्यामें इस निराशामें भी कितना सुख था! उस दिनकी छोटी-से-छोटी बात भी मुझे एक-एक करके याद आ रही है। गांवमें हमारे घरके पास ही बांसका एक छोटा-सा बन था और उसके पास ही पीपलका एक बड़ा पेड़। उसपर बसेरा लेनेवाले कौवोंकी कलकल ध्वनि मुखरित होने लगी थी। कड़ाकेका जाड़ा पड़ रहा था, पर मैं बाहरकी ओर ही टकटकी लगाये थी। दादीने भीतरसे पुकारकर कहा—"बिन्दी, अंगीठी तैयार है, भीतर आकर तापती क्यों नहीं? सर्दीसे बीमार पड़ जायगी।" पर मेरा ध्यान ही इस लोकमें न था। धीरे-धीरे अंधेरा बढ़ता चला गया; पर मनमोहन भैया न आये। जब बाहर अन्धकारके कारण कुछ भी न दिखायी दिया, तो हताश होकर मैं भीतर लौट चली। अभि-मानके कारण रोनेकी इच्छा होती थी। अंगीठीकी गरमीसे शरीरके साथ ही हृदयको भी कुछ सांत्वना मिली। दादीसे कहा—"आज कोई भूतकी कहानी सुनाओ।" "चुप पगली, रात-भर सपनेमें भूत दबायेंगे।" "नहीं, नहीं दबायेंगे, तुम कहो। मैं नहीं मानूंगी।" लाचार होकर दादीने भूतके सम्बन्धमें अपने अनुभवके सच्चे किस्से कहने आरम्भ किये। मैं उत्सुक होकर किस्से सुनने लगी, पर बीच-बीचमें अन्य-मनस्क हो जाती थी। सोचती थी, ऐसे अच्छे किस्से यदि मोहन भैया भी सुन पाते! फिर सोचा—"अच्छा हुआ, उन्होंने नहीं सुना। मेरा क्या बिगड़ा! मैं मजेमें कहा-नियां सुन रही हूं। उन्हींको नुकसान हुआ।" पर दादीने दो-एक ऐसे भयङ्कर किस्से कहे कि मैं मोहन भैयाकी बात ही भूल गयी और भयके कारण दादीके शरीरसे चिमट गयी।

रातको सपनेमें भूत नहीं देखा। जिसे देखा उसे देख-कर त्रिभुवनमें मेरे लिए भयका अस्तित्व ही नहीं रह सकता था।

दूसरे दिन मोहन भैया सवेरे ही हमारे यहां आ पहुंचे। हाथमें एक रङ्गीन किताब थी और हंसमुखमें रङ्गीन छाया। उन्हें देखकर प्रसन्न होना स्वाभाविक था, पर उनके चेहरेकी प्रसन्नता देखकर मन-ही-मन जल उठी। निश्चय ही इस रङ्गीन पुस्तकके साहचर्यमें उन्होंने कल सारा दिन बिताया होगा। यह किताब क्या मुझसे बढ़कर है?

"देखो बिन्दी, कैसी अच्छी तसवीरें हैं ! तुम्हारे लिए लाया हूं ।"

मेरे लिए ! मैं पलमें सारा अभिमान भूल गयी । अकपट आनन्दसे, मैंने पुस्तकके लिए हाथ बढ़ाया और खोलकर देखने लगी । छोटे-छोटे बच्चोंके लिए लिखी गयी अंगरेजीकी कहानियोंकी किताब थी । पूछा—"कहांसे लाये ?"

"मिस हम्फ्रे ने मुझे दिया है ।"

मिस हम्फ्रे एक मिशनरी महिला थीं । गांवके पास ईसाइयोंकी एक छोटी बसासत थी । वह वहांकी लड़कियोंके एक कानवेण्टकी अध्यक्षा थीं । उनका स्वभाव अत्यन्त मधुर और स्नेहपूर्ण था । अंगरेज होनेपर भी वह हिन्दुस्तानियोंसे घृणा नहीं करती थीं और गांवके बाल-बच्चोंको नाना उपहारोंका प्रलोभन देकर अपने पास बुलाकर उन्हें लाड़-प्यारसे अंगरेजी सिखाती थीं और स्वयं उनके साथ बातें करके हिन्दी सीख लिया करती थीं । वह बहुत अच्छी हिन्दी बोलने लगी थीं । मोहन भैयाको वह विशेष प्रीतिकी दृष्टिसे देखती थीं और मेरे प्रति भी प्रसन्न थीं । प्रायः मेरी ही अवस्थाकी एक अनाथ ऐंग्लो-इण्डियन लड़कीको उन्होंने पोष्या बना लिया था । लड़कीका नाम कार्नीलिया था । वह हमारे साथ खेलती थी । जब मुझे मालूम हुआ कि मोहन भैया कल सारे दिन मुझे अकेली छोड़कर मुझे तनिक सूचना न देकर मिस हम्फ्रे के पास गये तो ईर्ष्याकी जलनसे मेरा हृदय फिर जल उठा । मैंने सोचा कि वह निश्चय ही कार्नीलियाके साथ रहना-खेलना अधिक पसन्द करते हैं । मैंने किताब जमीनपर पटक दी । मुंह फुलाकर बोली—"मुझे नहीं चाहिए । कार्नीलियाको देना ।" यह कहकर मैं भीतर अपने कमरेमें चली गयी और भीतरसे किवाड़ बन्द कर दिया । मुझे रोनेकी उत्कट इच्छा हो रही थी ।

मोहन भैया बाहरसे किवाड़पर धक्का देते हुए बोले—"बिन्दी, खोलो ।"

मैंने वाष्पाकुल कण्ठसे कहा—"नहीं ।"

मेरा गला रुंध जानेके कारण ज्यादा बोल न सकी । भैयाने बहुत जिद की, बार-बार धक्का दिया, पर मैं न मानी । आज समझ रही हूं कि उस ईर्ष्या-जनित अभिमानमें कितना स्वाद था, कितना रस था !

इसी प्रकार क्रीड़ा-कौतुक, स्नेह-प्रेम, मान-अभिमानमें उनके साथ मेरे बाल्य-जीवनके दिन बीते । अन्यान्य बालक-बालिकाओंके साथ हम लोग खेलते थे, पर अन्यमनस्क होकर । जीवनकी यथार्थताका अनुभव मुझे तभी होता था, जब हम दोनों विश्व-संसारसे अलग एक निराले भाव-लोकमें संयुक्त होकर रहते थे । कभी किसी खेतमें जाकर हम दोनों तितलियोंको पकड़ते थे और उन्हें उड़ाते थे । कभी किसी कृषक-रमणीका निर्जन-सङ्गीत सुनते थे । कभी मिट्टीपर लेटकर ऊपर आकाशमें चीलोंकी उड़ान देखते थे । अकेलेमें हम दोनों आपसमें बहुत कम बोलते थे, पर इस मौनावस्थामें हमारी आत्माओंके बीच जिस रहस्यपूर्ण वार्ताका आदान-प्रदान होता था, वह कैसी आनन्द-जनक थी ! मैं सोचती थी कि अनन्त कालतक मेरा यह अव्यक्त, एकान्त सुख अभङ्ग रहेगा ।

पर दैवको ऐसा मञ्जूर न था । उन्हें पढ़नेके लिए शहरमें जाना पड़ा । एक महीने पहलेसे उनके जानेकी खबर मुझे मालूम हो गयी थी । एक दिन सन्ध्याके समय एक देवदारुके पेड़के नीचे हम दोनों लेटे हुए थे । वह सन्ध्या मुझे बहुत अच्छी तरह याद है । मोहन भैयाके हाथमें कहानियोंकी एक सचित्र किताब थी । वह कहानी पढ़ते हुए मुझे चित्र समझाते जाते थे । सामनेके पहाड़पर चीड़के पेड़ एक दूसरेसे सटे हुए मायावनकी बहार दिखा रहे थे । सन्ध्याके अन्धकारसे उनकी छाया गाढ़तर होती जाती थी । हमारी दाहिनी ओर पश्चिममें सूर्य सुदूर पहाड़के नीचे आधा डूब चुका था । सर्वत्र एक स्थिर अटल शान्ति व्याप्त थी । बीच-बीचमें एक कुत्ता पहाड़ीकी ओटमें कहीं छिपा हुआ अकारण भूंक उठता था । उसके भूंकनेका शब्द पहाड़की कन्दरामें गूंजता हुआ उस निस्तब्ध-सन्ध्याको अधिक उदास कर देता था । आज मोहन भैया कहानी सुनाते थे, पर उनके कण्ठमें मेरे नित्य-परिचित सहज-आनन्दका लेश नहीं था । एक अन्यमनस्क भाव जैसे उनकी छातीको दबाता हो । अचानक कहानीके बीचमें ही किताब बन्द करके उन्होंने उदास स्वरमें मुझसे कहा—"बिन्दी, मैं जल्दी अल्मोड़े चला जाऊंगा ।"

चौंककर मैंने पूछा—"क्यों ?"

"बाबूजी मुझे वहां स्कूलमें पढ़नेके लिए भेजना चाहते हैं।"

मेरे मुंहसे अनजानमें निकल पड़ा—"वहां अकेले कैसे रहोगे ?"

"यही तो सोचता हूं बिन्दी, क्या करना चाहिए ? तुम जब यहीं रहोगी तो मैं वहां कैसे—"

मैंने झट बात काटकर कहा—"नहीं, नहीं, मैं यह पूछती थी कि तुम्हारे बाबूजी भी क्या तुम्हारे साथ जायंगे ? तुम वहां कहां रहोगे ?"

"बाबूजी नहीं जायंगे। बोर्डिंगमें रहना होगा।"

"तब चिन्ता क्या है। बोर्डिंगमें तुम्हारे साथी बहुत मिल जायंगे !" बोर्डिंगके अज्ञात लड़कोंपर मुझे ईर्षा हो रही थी।

मोहन भैया चुप रहे। कुछ न बोले। सूरज छिप गया। रातका बसेरा ढूंढ़नेके लिए व्याकुल कौवोंकी एक पांति हमारे ऊपरसे होती हुई उड़कर चली गयी। मैं सोच रही थी कि बसेरा मिलनेसे भी अब किसीको क्या सुख मिल सकता है ! गया ! गया ! चिर-जीवनका सङ्गी अब गया ! रात्रिके आगामी अन्धकारकी तरह ही मेरे भावी जीवनका अन्धकार मानो मेरी प्रतीक्षामें था। कुछ देर बाद दोनों उठ खड़े हुए और घरको वापस जाने लगे। अंधेरा होने लगा था। पश्चिमाकाशकी सुनहली आभा सब मिट गयी थी और उसके ऊपर एक बहुत गहरा गाढ़ा नीला रङ्ग चढ़ गया था। जैसे इस एकान्त सन्ध्यामें मोहन भैयाके चले जानेकी खबर सुनकर समस्त प्रकृतिका पुञ्ज-पुञ्ज रुदन वहांपर सञ्चित हो गया हो। सर्वत्र विषाद और विलाप मुझे नजर आता था। रातको नींद आनेतक अनोखी बेकली मनमें समायी रही और नींदमें भी वह व्याकुलता सारी अन्तरात्मामें सञ्चरित हो रही थी।

दूसरे दिनसे मोहन भैयाके साथसे अलग बचकर रहनेकी चेष्टा करने लगी। कोई अव्यक्त संस्कार मुझे यह जता रहा था कि जो आदमी कुछ दिनोंके बाद सदाके लिए चला जायगा उसकी माया अभीसे छोड़नेका प्रयत्न करना चाहिए। उन्हें देखते ही मेरे भीतर हाहाकार मच जाता और न देखनेसे मन कुछ शान्त रहता।

आखिर वह विकराल दिन आ पहुंचा। मैं चाहती थी कि विदा होनेके समय उनके दर्शन न हों। क्योंकि वह प्यारा मुखड़ा देखते ही मेरे भीतर मार्मिक यन्त्रणाकी ज्वाला धधक उठती। इसलिए मैं उस दिन अपने कमरेमें किवाड़ बन्द करके सो रही। पर धत्तेरे दुष्ट भैयाकी ! थोड़ी ही देर बाद द्वारपर धक्का देकर अपनी चिर-परिचित प्यारी बोलीसे उन्होंने पुकारा—"बिन्दी !"

हा भगवान् ! वह प्यारा कण्ठस्वर सुनकर क्या कोई रह सकता था ! दुःख, शोक, अभिमान सब भूलकर उठ बैठी और किवाड़ खोला। क्षण-भरके लिए उनके मुखके दर्शन करके मैंने आंखें नीचेको कर लीं।

"मैं जा रहा हूं, बिन्दा ! चिट्ठी लिखोगी ?"

वह मुझे कभी 'बिन्दा', कभी 'बिन्दी', कभी 'बिन्दो' कहकर पुकारते थे।

मैंने कुछ उत्तर नहीं दिया, सिर्फ पैरके अंगूठेसे मिट्टी खुरचने लगी।

कुछ देरतक भैया भी चुप खड़े रहे, फिर उन्होंने पूछा —"चाची और दादी कहां हैं ? जाकर उन्हें प्रणाम कर आऊं; देर होती है।"

मेरा गला रुंध आता था। बोलनेसे भीतरकी दशा बाहर व्यक्त न हो जाय, इस आशङ्कासे मैं कुछ न बोली, केवल उंगलीसे मैंने भीतरकी ओर इशारा कर दिया। वह एक मिनटतक खड़े रहे, फिर भीतरकी ओर चल दिये। मैं दौड़कर बाहर चली गयी और धड़कता हुआ कलेजा लेकर दरवाजेपर खड़ी रही।

थोड़ी देर बाद भैया लौटकर सीढ़ियोंसे होकर नीचे चले आये। मैं कुछ देर सिटपिटायी, पर फिर रह न सकी, और प्रणाम करते हुए उनके पैर दोनों हाथोंसे जकड़ लिए। टप-टप मेरे आंसू उनके काले जूतोंपर पड़ने लगे। शिवजीकी मूर्तिपर भक्ति-पूर्ण हृदयसे अर्घ्याञ्जलि चढ़ानेवाली स्त्रीको शायद कभी उतना आनन्द नहीं प्राप्त हुआ होगा जितना मैं उस समय अनुभव कर रही थी।

"बिन्दा, तुम रोती क्यों हो ? मैं जल्दी लौटकर आऊंगा ! मेरा मन क्या वहां लग सकता है ?" उनका कण्ठ भी गद्गद, वाष्पाकुल था।

मैं उसी अवस्थामें मोहाच्छन्न-सी होकर स्थिर थी।

"उठो बिन्दा, मुझे देर होती है। उठो मैना, इस समय मुझे छोड़ दो।"

"पहले शपथ लो कि जल्दी लौटूंगा और चिट्ठी लिखूंगा।"

"तुम्हारे सिरकी कसम, बिन्दा, मैं बहुत जल्द लौटकर आऊंगा। मैं चिट्ठी जरूर लिखूंगा। अपनी गरजसे लिखूंगा। तुम इस वक्त उठो। प्यारी भैना, मत रोओ।" यह कहकर उन्होंने मेरे सिरपर अपना स्नेहकोमल हाथ रखा। मेरा हृदयावेग इस स्नेहस्पर्शसे उमड़ चला और मैं उठकर मुंह फेरकर सिसकने लगी। मेरी पीठ थपथपाकर भैयाने मुझे दिलासा दिया और फिर चले गये। मैं शून्य हृदयसे स्तब्ध, जड़, मृतवत् खड़ी रही।

दो दिनतक मेरा शोकावेग बहुत तीव्र रहा। पर फिर धीरे-धीरे मेरे हृदयमें स्थिरता आने लगी। यहांतक कि मैं मोहन-भैयाको बहुत-कुछ भूलने-सी भी लग गयी। अपनी हमजोलीकी लड़कियोंका सहवास मुझे मोहन भैयाकी स्मृतिसे हटाकर एक अनोखी दुनियामें ले जाने लगा। पहले मैं लड़कियोंसे बहुत कम मिला करती थी। पर अब उनका सङ्ग मुझे एक अनोखे लोकसे परिचित कराने लगा। मेरी अवस्था प्रायः तेरह सालकी हो गयी थी। मैंने देखा कि मेरी सहेलियां जिस भावी जीवनकी सुखमय आशामें रहकर नाना इङ्गितोंसे अपने मधुर स्वप्नोंकी चर्चा करती हुई सयानी स्त्रियोंकी तरह गिरस्तीके धन्धोंकी ओर झुकने लगी हैं, उससे मैं आजतक बिलकुल अपरिचित थी। सयानी स्त्रियोंके बन्धन-युक्त गृहस्थ-जीवनमें मैंने एक ऐसी मोहिनी देखी जो दुर्निवार वेगसे मुझे आकर्षित करने लगी। मेरी सहेलियां सहज ही विवाहिता स्त्रियोंके साथ समान गतिमें चलने लगी थीं। पर मैं अभीतक एक भावुक बालिका ही रह गयी थी, इस कारण मेरे क्षोभकी सीमा न थी। बड़े घरकी लड़की थी, दादी, अम्मां और काकाकी बड़ी दुलारी थी। इसलिए कभी किसी काममें हाथ नहीं लगाती थी। पर मेरे हृदयके भीतर नवीन जीवनके रसका स्रोत धीरे-धीरे फूटने लगा, जो मोहन भैयाके साथ रहनेसे बिलकुल बन्द था, और मैं गृहस्थीके काम-काजोंमें शरीक होनेके लिए अत्यन्त लालायित हो उठी।

मेरी एक सहेलीका विवाह बड़ी धूमधामसे हो गया। स्त्रियोंमें कैसा उल्लास और आनन्द छा गया था! अपने जीवनमें प्रथम बार मैंने विवाहके शुभकर्ममें दिलचस्पी ली। इस आनन्दको मैंने खुले दिलसे उपभोग किया, और अन्तको एक लम्बी सांस ली!

आखिर एक दिन मेरी बारी भी आयी। सारे गांवमें धूम मच गयी, सारे घरमें दीप्त आनन्द जगमगाने लगा। समस्त आकाश और पृथ्वीको मैं अलौकिक रङ्गसे रंगा हुआ देखने लगी। जिनसे मेरा ब्याह होगा वह अल्मोड़ेके निवासी हैं, यह जानकर मेरा आनन्द दुगना बढ़ गया। क्योंकि मुझे मोहन भैयाकी याद आयी। अल्मोड़ेमें उनसे मिलना हो सकेगा, यह सोचकर मेरी प्रसन्नताकी सीमा न रही। जबसे भैया गये थे तबसे उन्हें मैंने नहीं देखा था। वह आनेका वादा कर गये थे, पर कुछ ही दिनोंमें उनके पिताजीकी बदली हमारे गांवके पोस्ट आफिससे किसी दूसरी जगह हो गयी, इसलिए वह फिर कभी हमारे गांवको वापस न आये।

दादी, अम्मां और सहेलियोंको छोड़ते समय मैं बहुत रोयी, पर रास्तेमें सबको भूल गयी। जिस नयी दुनियाको मैं जा रही थी, उससे परिचित होनेकी उत्सुकताने मेरे सब दुःखोंको भुला दिया।

सास और ननदोंने अत्यन्त प्रेमपूर्वक मेरा स्वागत किया। जेठानियोंने भी मुझे देखकर प्रसन्नता प्रकट की, पर उस प्रसन्नतामें कुछ रुखाई थी। बाल-बच्चे, बड़े-बूढ़े सब मेरे आगमनसे प्रफुल्ल थे। तीन-चार दिनतक मैं सारे घरकी रानीके बतौर रही। चारों पहर बच्चे और युवती स्त्रियां मुझे घेरे रहतीं। पर धीरे-धीरे लोगोंका उत्साह ढीला पड़ता गया और मैं प्रायः अकेली रहने लगी। मोहन भैयाको कैसे देखूंगी, मैं यही सोचने लगी।

अचानक एक दिन नौकरने आकर खबर दी—"बहूजी, तुम्हारे मायकेके एक आदमी आये हैं, तुमसे मिलना चाहते हैं।"

मेरी सास वहांपर बैठी थीं। मुझसे पूछने लगीं—"कौन हैं?"

पर मुझे कुछ मालूम नहीं था। सासने कहा—"भीतर बुलाकर ले आ।"

थोड़ी देर बाद नौकर जिस व्यक्तिको साथ लेकर आया उन्हें देखकर मुझे आश्चर्य उतना नहीं हुआ जितना रोमाञ्च हुआ। मोहन भैया स्वयं मेरी खोज करके मुझसे मिलने आये थे। अब वह गांवके लड़के नहीं रह गये थे। नगर-जीवनका

सौष्ठव उनके सुन्दर मुखपर चमक रहा था। शान्त, स्थिर गम्भीरता उनके चेहरेपर विराज रही थी। मेरी सास भी उन्हें देखकर चकित रह गयीं। वह जूते उतारकर कालीनपर बैठ गये। मैंने प्रणाम किया। पर सासके सामने उनसे क्या कहूं, किस प्रकार बातें करूं, कुछ समझमें न आया। उनका भी शायद यही हाल था।

मैंने धीमे स्वरमें पूछा—"तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि मैं यहां आयी हूं?"

"यों ही; गांवमें कुशल तो सब अच्छी है?"

"हां! तुम अब किस दर्जेमें पढ़ते हो, भैया?"

"इण्ट्रेन्समें।"

इसी प्रकारकी अर्थहीन बातें हम दोनोंमें हुईं। पर भीतर जो हृदयावेग उमड़ रहा था उसे बाहर निकालनेका उपाय नहीं था। कुछ देरतक दोनों मन मारकर बैठे रहे। इसके बाद मोहन भैया उठ खड़े हुए। "फिर कभी मिलूंगा," यह कहकर चल दिये।

पर इसके बाद वर्षोंतक उनसे मुलाकात नहीं हुई। इस बीच मैं कितनी बार मैके गयी, कितनी बार ससुराल वापस आयी। प्रारम्भमें ससुरालका जीवन बिलकुल निरानन्द मालूम हुआ। मायके जाती तो वहां भी पहाड़ी खेतोंपर झूमती हुई सन्ध्याकी पीली छाया एक अज्ञात उत्सुकतासे मुझे व्याकुल करती; ससुराल आती तो वहांके बद्ध जीवनका भार पत्थरकी तरह मेरी छातीपर पड़ा रहता। पर धीरे-धीरे पतिदेवसे मैं हिलमिल गयी और तब मैंने जाना कि मेरे जीवनकी सार्थकता कहांपर है। उनके चरणोंकी सेवासे मैं अपनेको धन्य समझने लगी, उनके प्रेम-भरे शब्दोंको अतृप्त हृदयसे पान करने लगी और उनकी इच्छाके बहावमें मैंने अपनी सब कामनायें बहा दीं। अपना जीवन-यौवन मैं पूर्णतया सफल समझने लगी। कहां गयी मेरे बाल्य-जीवनकी झूठी स्मृति, कहां लोप हुई मोहन भैयाके लिए मेरी व्याकुलता!

मेरे पति सात-आठ सालसे वकालत कर रहे थे। बुद्धिमान और वक्तृत्वमें निपुण होनेके कारण उनकी प्रैक्टिस खूब अच्छी चल रही थी। मेरे ससुरालके लोग खूब धनी थे, इसलिए मेरे पतिके ऊपर कोई उत्तरदायित्व नहीं था। रोज रुपयोंसे मेरी मुट्ठी गरम होती थी। मैं एक बक्समें रुपये जमा रखती थी। मैं रुपयोंकी भूखी नहीं थी, पर पतिदेव शायद मेरे प्रति अपने विशेष प्रेमका परिचय देनेके लिए और मुझे पूर्णतः वशमें रखनेके लिए मुझे चांदी और सोनेके बोझसे लादा करते थे। मैं उदासीनतासे रुपयों और गहनोंको बक्समें जमा करती जाती थी। उनका स्नेह पाकर ही मैं कृतार्थ थी।

पर धीरे-धीरे मेरे अनजानमें एक अवसाद मेरे चित्तको घेरने लगा। सुख-स्वर्गमें रहनेपर भी किस लिए यह विषाद था?

एक दिन मेरी एक मौसीने मुझे निमन्त्रण दिया। वह मेरी अम्मांकी चचेरी बहन थीं। नित्य दिनभर घरके भीतर एक प्रकारकी कैद भुगता करती थी। इसलिए निमन्त्रणमें जानेसे कुछ देरके लिए मुक्ति मिलेगी, यह सोचकर मुझे प्रसन्नता हुई। एक दासीको साथ लेकर मौसीके यहां गयी। मौसीने बड़ी आव-भगत की, और ससुरालमें मुझे क्या सुख है, क्या दुख है, इस सम्बन्धमें अनेक प्रश्न किये। सहसा क्या देखती हूं कि मेरे बाल्य-हृदयके राजा भीतर हमारे सामने खड़े हैं। ओ भगवान्! उस अप्रत्याशित आनन्दका वर्णन मैं कैसे करूं! मुझे अत्यन्त आश्चर्य हुआ कि इतने दिनोंतक मैं उन्हें कैसे भूल गयी थी। अङ्ग-अङ्गमें आनन्दकी तरङ्ग लहराने लगी और इतने दिनोंका अवसाद पलमें विलुप्त हो गया। मैंने श्रद्धापूर्वक हृदयसे प्रणाम किया। मौसीने कहा—"बैठो लल्ला!"

भैया हमारे ही साथ नीचे बैठ गये। कितना बदलाव उनके चेहरेमें हो गया था! गालोंकी हड्डियां बाहरको निकल आयी थीं, आंखें नीचेको धंस गयी थीं। पर कुटिल भौंहोंकी तनी हुई रेखाओंमें वही पहलेका उन्नत, गम्भीर भाव अठखेलियां कर रहा था; उज्ज्वल आंखोंकी स्निग्ध ज्योतिमें वही रहस्यमय विस्मय झलक रहा था।

"तुम बहुत दुबली हो गयी हो, बिंदो! आज बहुत दिनोंके बाद तुम्हें देखा है!"

मैंने कहा—"मैं दुबली हो गयी हूं, यह कैसी बात तुम कहते हो, भैया! मैं तो अपनेको खूब तन्दुरुस्त समझती हूं। पर तुम्हें क्या हो गया है? गालोंकी हड्डियां बाहर निकल आयी हैं, आंखोंके नीचे गढ़े पड़ गये हैं, मुंहका रस सब सूख गया है। कहां रहते हो, क्या करते हो, तुम्हारे घरका क्या हाल है, मुझे कुछ भी तो नहीं मालूम! मेरी

शादीके दिन सिर्फ एकबार मुझसे मिलने आये थे, उसके बाद आज तक मैं मर गयी हूं या जीती हूं, इसकी कुछ खबर भी तुमने नहीं ली।"

मेरा अभिमान हृदयमें फूल रहा था। मोहन भैया मेरी बात सुनकर भुवनमोहन हास्यसे मुसकराये। बोले—"बिंदा, मैं तो अवश्य तुम्हारे पास आता, पर तुम्हारे ससुरालवाले मनमें क्या सोचेंगे, यह सोचकर मैं न आया। जब तुम पहले-पहल ससुराल आयी थीं, तब बात ही दूसरी थी; पर अब तुम सयानी हो गयी हो।"

मेरे ससुरालवाले संशयी प्रकृतिके थे, इसमें सन्देह नहीं, पर भैयाको यह बात कैसे मालूम हो गयी थी, कह नहीं सकती।

मैंने पूछा—"आज यहां कैसे आ गये?"

वह विशेष अर्थ-भरी मुसकानसे मौसीकी ओर ताकने लगे। मौसी भी उसी तरह मुसकरा रही थीं। मैं समझ गयी, मोहन भैयाके आग्रहसे ही मौसीने मुझे बुला भेजा है।

बहुत देरतक हम दोनोंमें घुल-घुलकर बातें हुईं। मैं आज अपनेको विश्व-संसारसे निर्मुक्त समझ रही थी और मेरा मन आकाशविहारी निर्द्वन्द्व पक्षीकी तरह उल्लासपूर्वक विचर रहा था। पर सन्ध्या होने लगी और जलपान करके भैया उठ खड़े हुए। पुनः गहन अन्धकारने मेरे हृदयमें हाहाकारका काला पट फैला दिया। इच्छा हुई, भैयाके पांव जकड़कर रोकर, गिड़गिड़ाकर प्रार्थना करूं कि मुझे मत छोड़ो, जहां जाते हो मुझे अपने साथ ले चलो। पर हाय! अन्तर्क्रन्दनको बाहर प्रकट करनेका कोई साधन मनुष्यके पास नहीं है।

"अब तो मौसीका घर तुम देख ही चुकीं, बिन्दो! यहां आती-जाती रहना, मैं यहीं मिला करूंगा। आज इतवार है। अगले इतवारको क्या आ सकोगी?"

मैंने कहा—"कोशिश करूंगी।"

"अच्छी बात है। इस वक्त मैं जाता हूं।" यह कहकर नव यौवनके मदसे इतराते हुए अपने सुगठित शरीरको बाल-केसरीकी झूमती हुई चालसे लचकाते हुए वह चल दिये।

इसके बाद मैं अकसर मौसीके यहां आने-जाने लगी, पर भैयासे भेंट न हुई। एक दिन दीवालीके अवसरपर मौसीके छोटे लड़केका जन्म-दिवस था। मैं भी निमन्त्रित थी। बड़ी चहल-पहल मची हुई थी। कई स्त्रियां एकत्रित थीं और, आनन्दके रङ्गमें रंगी हुई, गा रही थीं। मैं भी उस सङ्गीतमें अपना क्षीण-कण्ठ मिला रही थी। अचानक मोहन भैया अपना मोहन रूप लेकर स्त्रियोंके बीचमें आ खड़े हुए। सब स्त्रियां उनका यह दुस्साहस देखकर चकित रह गयीं। गाना बन्द हो गया। किसीने घूंघट काढ़ा, कोई कनखियोंसे उन्हें झांकने लगी और ढीठ होकर टकटकी बांधे उनके दिव्य रूपको निहारती रही। मौसीने प्रसन्न होकर कहा—"बड़ी देरसे तुम्हारा इन्तजार करती थी लल्ला! मैंने सोचा था आज सुबह यहीं खाओगे।"

"आ नहीं सका मौसी, माफी चाहता हूं। बिन्दी आयी है?"

मैंने मुंह जरा फिरा लिया था। इस स्त्री-समाजमें वह मुझे स्पष्टतया न देख सके।

मौसीने कहा—"बिन्दी, देखती नहीं, मोहन आया है।"

मैंने उनकी ओर देखा। उनकी यह ढिठाई मुझे समयोचित न जान पड़ी। मैं मन-ही-मन कुढ़कर रह गयी। सब स्त्रियां मनमें क्या सोचेंगी? पर वास्तवमें सब स्त्रियां मुझे ईर्षाकी दृष्टिसे देख रही थीं। क्यों न हो, ऐसे देवरूप भैया जिसके हों उसके सौभाग्यपर किसे ईर्षा न होगी?

"बिन्दी, जरा सुनना। एक जरूरी काम है।"

मैं हड़बड़ाती हुई उठी और उनके पास गयी। एक एकान्त कमरेमें मुझे ले जाकर वह धीमे स्वरमें बोले—"मैं सौ रुपये हार गया हूं। बड़ी आफतमें हूं, बिन्दो!"

"क्या तुम जुआ खेलते हो?" मेरा गला कांप रहा था। दुःख और घृणासे मैं क्षुभित हो गयी।

अत्यन्त करुण, कातर स्वरमें उन्होंने कहा—"हां, इधर कुछ दिनोंसे यह बुरी लत पड़ गयी है। दीवालीका शकुन है। तुमसे रुपये मांगने आया हूं, बिन्दो! नाहीं मत करना। बड़ी आशासे आया हूं।"

वह आर्त, करुण याचना मेरा कलेजा चीरे डालती थी। मनमें सोचने लगी—"भगवान्! मेरे देवताका यह पतन क्योंकर सम्भव हुआ!"

बोली—"रुपये तो मेरे पास यहांपर नहीं हैं भैया, पर यह सोनेका हार है। चाहिए, तो ले जाओ।"

"सच कहती हो ? तुम्हारे सरकी कसम बिन्दो, मैं तुम्हें नया हार बनवा दूंगा। कोई चिन्ताकी बात नहीं है।"

सोचा था कि वह हारके लिए कतई राजी न होंगे। क्या जुएकी हार सचमुच मनुष्यको इतना अविवेकी बना डालती है ?

घृणा, करुणा और असमञ्जसने मुझे एक साथ धर दबाया। आखिर मैंने अपना प्यारा हार गलेसे निकालकर दे ही दिया। वह उल्लासपूर्वक चले गये। मुझे धन्यवाद देनेके लिए भी उन्हें फुर्सत नहीं थी।

रात-भर मैं क्षोभके कारण रोती रही। जैसे किसीने मेरे देवताकी मूर्तिके मुखमें कालिख पोत दी हो, ऐसा भास हो रहा था। सारी रात बेकलीसे छटपटाती रही, एक पलक आंख न लगी। इतने थोड़े अर्सेमें मेरे प्यारे भैया क्यासे क्या हो गये थे !

पर दूसरे दिन मेरे ऊपर सासकी जो मार पड़ी उससे मैं भैयाके पतनकी बात भी भूल गयी। स्त्रियोंकी दृष्टि भी कितनी पैनी होती है ! मेरे पतिदेवने मुझसे कुछ न कहा, पर सासने पहली नजरमें मेरा गला देखते ही पूछा—"क्यों, हार कहां गया ?"

कुछ सिटपिटायी। फिर बोली—"टूट गया था, बक्समें बन्द करके रख दिया है।"

पर उन्हें यकीन न हुआ। कुछ भी हो, उस समय वह चुप हो रहीं। शामको पड़ोसकी एक स्त्रीने, जो मौसीके यहां निमन्त्रणमें गयी थी, सासके सामने मुझसे पूछा—"कल वह छोकरा कौन था जो तुम्हें एक जरूरी कामके लिए अलग बुला ले गया था ?" यह कहकर वह व्यङ्गके तौरपर मुसकुराने लगी। मेरे पैरोंके तलेसे होकर धरती सरकने लगी। मुझे चक्कर-सा आने लगा। अपनेको संभालकर बोली—"कोई नहीं, मोहन भैया थे। गांवसे लौटकर मेरे मायकेकी कुशल लाये थे।"

सासने कहा—"मैं तो यही सोचती थी कि हफ्तेमें दो-दो दिन मौसीके यहां आना-जाना आजकल क्यों हो रहा है ! आज मालूम हुआ है। अच्छी बात है !"

वह मन-ही-मन गुस्सेको पीनेकी चेष्टा कर रही थीं। पर उनके लिए यह असम्भव था और दिन-भर वह बड़बड़ाती रहीं। मेरी ग्लानिकी सीमा नहीं थी। धीरे-धीरे घर-भरमें यह बात फैल गयी कि मैंने अपने गलेका हार एक जुआरीको दे डाला है। इस घटनाके सम्बन्धमें एक घृणित कलङ्ककी रटनाका होना अनिवार्य था। पर मेरे ससुरालके प्रायः सभी लोग अत्यन्त सभ्य और सुशिक्षित थे। आभिजात्यकी गौरव-मण्डित शान्त गम्भीरता अपनी स्निग्ध छायासे इस घरको सदासे घेरे हुए थी। इस कारण यह निन्दात्मक चर्चा होते-होते दब गयी। यहां तक कि मेरी सासमें स्त्री-जातिकी अस्थिरता पूर्णरूपमें विद्यमान होनेपर भी उन्होंने पतिदेवको अधिक मात्रामें सशङ्कित न होने दिया। पतिदेव सबसे अधिक सभ्य थे। मनमें कैसा ही संशय उन्हें क्यों न हुआ हो, मुखसे उन्होंने कुछ भी प्रकट न किया। मन-ही-मन उन्हें कोटि-कोटि धन्यवाद देकर अपनेको धिक्कारने लगी।

समय बीतता चला गया। मोहन भैया जरूर ही उस हारको भी जुएमें हार गये होंगे, क्योंकि एक दिन संयोगवश मौसीसे मुलाकात होनेपर मालूम हुआ था कि वह तबसे उनके यहां भी नहीं आये। इस पतित जुआरीके प्रति एक तीव्र घृणा जागरित होने लगी थी, पर जब कहींसे कोई संवाद उसके सम्बन्धमें न मिला तो मैं उत्कण्ठित हो उठी। मैंने सोचा कि लज्जा और ग्लानिसे वह दुनियाको अपना मुंह नहीं दिखाना चाहते—यदि किसी प्रकार कहीं निश्चिन्त एकान्तमें उनसे मिल सकती, तो दिलासेकी दो बातें कहती। जतलाती कि हारको हार गये तो कोई विशेष क्षति नहीं हुई—पछताना वृथा है। पर मिलना तो दूर रहा, कोई खबर ही उनके सम्बन्धमें कहींसे नहीं मिलती थी। न मालूम क्यों, मुझे पूरा विश्वास था कि पतिदेवको भैयाकी सब खबर मालूम है। मेरी उत्सुकतासे भी वह परिचित थे। यद्यपि अनजान-से बने रहते थे। पर उनसे कुछ पूछनेसे जमीनमें गड़ जाना आसान था।

प्रायः छः महीने तक मन मारकर रही। कोई समाचार नहीं मिला। अन्तको एक दिन सुना कि वह अल्मोड़ा छोड़कर चले गये थे और अब कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली, शिमला आदि स्थानोंमें नौकरीकी खोजमें मारे-मारे फिर रहे हैं। एक लम्बी सांस लेकर मैंने मन-ही-मन कहा—"अच्छा ही है।"

समय ऐसा है जो माताको पुत्रका मृत्यु-शोक भी भुला देता है। बरसों तक मोहन भैया गायब रहे और मैं उनकी

बात प्रायः बिलकुल ही भूल गयी। अपने ललनको लेकर मैं ऐसी व्यस्त हो गयी थी कि दीन-दुनियाकी सुध मुझे नहीं थी।

होलीका मौसम था। होलीकी पूर्णिमासे एक दिन पहलेकी बात है। प्रतिवर्ष इसी दिन मेरे ससुरालवाले उत्सव मनाया करते थे। आज भी राग-रङ्ग मचा हुआ था। दालानमें शामियाना तना हुआ था। होलीके रङ्गसे रंगे हुए शहरके सब पुरुष आये हुए थे। पहाड़में एकादशीके दिन ही कपड़ोंपर रङ्ग पड़ जाता है। अबीरके बादल छाये हुए थे और सबके मुंह उससे लालिमामय थे। पानकी गिलौरियां बंट रही थीं, इत्र सुंघाया जा रहा था, बीच-बीचमें गांजा, सुलफा भी चलता था। यह तबकी बात है, जब असहयोग आन्दोलन शुरू नहीं हुआ था। गानेवालियोंकी एक जोड़ी भी मौजूद थी। कभी नाच होता, कभी गाना। कभी सारङ्गी बजती, कभी हारमोनियम। तालियोंका तो कहना ही क्या है। भङ्ग भी पिलायी जा रही थी। गंजेड़ियों और भंगेड़ियोंने अच्छा रङ्ग जमा रखा था। खास-खास आदमियोंको भीतर खिलाने-पिलानेका बन्दोबस्त भी था। नाना प्रकारकी मिठाइयां और चटनियां भीतर बनकर तैयार हो चुकी थीं और सब्जियां बन रही थीं। खस्ती पूरियां गरमागरम उतारी जा रही थीं। मैं इन्हीं पकवानोंकी देखरेखमें व्यस्त थी और अवकाश पाते ही चिककी आड़से बाहर भी झांक लेती थी।

महाराजने कहा—"घी खतम हो गया है बहूजी, भण्डारसे आधा कनिस्टर और निकलवा दीजिये।"

रामसिंहको लेकर मैं भण्डार-गृहमें गयी। अचानक बाहरसे बहु-सम्मिलित कण्ठस्वरसे सुननेमें आया—"आइये, पधारिये, नमस्कार, कब तशरीफ लाये? इतने दिनोंतक किस गुफामें छिपे रहे?" इत्यादि-इत्यादि। मनमें एक सामान्य उत्सुकताका सञ्चार हुआ। छज्जेमें जाकर चिकसे बाहर झांकने लगी। ओ भगवान्! क्या यह सम्भव था? मेरी आंखें क्या मुझे धोखा दे रही थीं? देखा कि मोहन भैया देवताकी तरह मन्द-मधुर मुसकानसे सबको अपनी अनुग्रहपूर्ण कृपा-दृष्टिसे कृतार्थ कर रहे हैं। मेरे सिरसे पैर तक एक पुलकप्रद कण्टकित वेदना लहरा उठी। कैसा मायावी वह सकरुण, भाव-विस्मय रूप था! लाख पुरुषोंके बीचमें वह अलग अपने विशेषत्वसे झलक उठता, मुझे यह पूरा विश्वास है। उस उन्मत्त मण्डलीसे उसमें कैसी विभिन्नता थी! शान्त, तथापि दृढ़! सुकुमार, तथापि तीक्ष्ण! मुझे एक-साथ रोने, चिल्लाने तथा हंसनेकी इच्छा हुई। पतिदेवने अत्यन्त स्नेह तथा आदरसे उन्हें ऊपर बैठाया।

भण्डार-गृह बन्द करके मैं भीतर गयी, फिर बाहर आयी; फिर गयी, फिर लौटी। चित्त बड़ा चञ्चल हो रहा था। मुझे पूरा विश्वास था कि पतिदेवके न्योता देनेपर ही भैया आये हैं। पर उनके आनेकी खबर तक पतिदेवने मुझे नहीं दी! अभिमानसे मेरी छाती फूलने लगी। पर यह अभिमान किसके प्रति था?

जी उचाट हो गया था, किसी काममें मन नहीं लगता था। बीच-बीचमें रह-रहकर एक उत्सुकता मुझे व्याकुल कर रही थी। मैं सोच रही थी, क्या मोहन भैया भीतर आवेंगे और मैं अपने हाथसे उन्हें खिलाऊंगी? नाना प्रकारकी सम्भव-असम्भव कल्पनायें मस्तिष्कमें सुरसुराने लगीं। अकस्मात् वायुमण्डलको चीरती हुई एक अलौकिक तानसे स्वप्न भङ्ग हुआ। मोहन भैयाने हाथमें हारमोनियम लेकर वीणा-निन्दक अलाप छेड़ दिया था। रङ्ग-रहस्यमें उन्मत्त सारी सभा स्तब्ध हो गयी थी। न किसीको वाह वाह कहनेका साहस होता था, न किसीको वेताल तालियां बजानेका। सबको मुग्ध, मन्त्र-विह्वल करके, भावमयी आंखोंको आकाशकी ओर घुराकर भैया गाने लगे—

साझ भयी, घर जाओ लला!
मुरली ना बजाओ, बिहारी लला!
अंसुवनकी झड़ लाग रही है,
तनसे छुटत चिनगारी;
भभूत रमाय जोगन बन बैठी,
हमरी सुध बिसरायी लला!
मुरली ना बजाओ, बिहारी लला!

उस दिनका वह गाना मैं मरते दमतक कभी नहीं भूलूंगी। उपयुक्त समय था। पश्चिमकी तरफ सीमान्तके पहाड़पर सूर्य पीला पड़ गया था। सारी सान्ध्य प्रकृतिमें रङ्गीन होलीकी मीठी उदासी छायी हुई थी। तिसपर मोहन भैया आज देश-परदेशसे भटकते हुए आकर जीवनके सम्बन्धमें नाना गम्भीर भावपूर्ण अभिज्ञता लेकर मुखमें करुणा-व्याकुल

गद्गद, विह्वल रूप झलकाकर आये हुए थे। इन सब कारणोंसे उस गीतकी वेदनाने मेरे रोम-रोममें उन्माद सञ्चारित कर दिया। मैं अपने आपमें नहीं थी। एकटक आंखोंसे वह मोहन रूप निहार रही थी और व्याकुल कणोंसे वह मोहोत्पादक रस पी रही थी। एक अलस निद्राका-सा रसावेश मेरे मस्तिष्कको आच्छन्न कर रहा था। सब मान-अभिमान भूल गयी। इच्छा होती थी कि भरी सभामें उनके चरणोंके तले मूर्च्छित होकर गिर पड़ूं। पर हाय, क्या यह सम्भव था! अब स्वर्गके देवताके समान ही सोहन भैया मेरे लिए सत्य थे और उसी तरह असत्य भी। एक दिन दीवालीके अवसरपर जिन्हें मैंने मन-ही-मन तिरस्कृत किया था, आज होलीके मङ्गल उत्सवमें मेरी सारी आत्मा उनके स्वागतके लिए पागलोंकी तरह पछाड़ खा रही थी। पर इतने निकट होनेपर भी वह मुझसे इतनी दूर थे! मैं जानती थी कि जबतक स्वर्ग और मर्त्यका मिलन नहीं होगा तबतक उनसे मैं मिल नहीं सकती। फिर भी......

* * *

"अम्मीं!"

चौंक पड़ी। पीछे फिरकर देखती हूं कि ललन नींदसे जगकर जम्हाइयां लेता हुआ मुझे पुकार रहा है। आह, मेरे लाल! तुम्हें भूलकर किस मायावी संसारकी मरीचिकामें भटक रही थी! तृष्णासे गला सूख गया था और घोर भ्रममें मृगजलकी ओर दौड़ रही थी जब अमृतजल मेरे पाससे होकर बह रहा था। पलंगपर झुककर बार-बार उसका मुंह चूमा और असह्य तृष्णाकी ज्वाला बुझायी।

"अम्मीं, रोती थीं?"

कब कैसे आंखोंसे आंसू ढरक पड़े थे, इसकी मुझे खबर ही न थी। आंखें अञ्चलसे पोंछकर पुलक-भरी मुसकानसे फिर उसे चूमते हुए बोली—"नहीं राजाबाबू, मैं क्यों रोने लगी!"

वह देश

खेल चुके वन-वीथीमें, अब आओ, तैर चलें उस पार।
खोजें सुख-सौन्दर्य्य सुहावन, भूलें सुमनोंका संसार॥
संग्रह कर नवीनता लावें,
कण-कणमें पावनता पावें,
देखें दिव्य प्रकाश चिरन्तन—
चूनें वहीं मदन-काननमें कुसुम, बनावें सुन्दर हार।
खेल चुके वन-वीथीमें, अब आओ तैर चलें उस पार॥
वहां स्वयं निज वीणा लेकर,
गाता ऋतुपति गीत निरन्तर,
हैं न वहां बाधायें, बन्धन—
सन्ध्या, उषा वहींसे आतीं, प्रतिदिन कर नूतन शृंगार।
खेल चुके वन-वीथीमें, अब आओ, तैर चलें उस पार॥

—जगन्नाथ मिश्र गौड़ "कमल"

हिन्दीमें नयी वैज्ञानिक परिभाषायें

श्री जयचन्द्र विद्यालङ्कार

कालिदास और गुप्त सम्राटोंके समयमें भारतवर्षका ज्ञान और विज्ञान जिस दर्जेतक पहुंच गया था, उसके प्रायः एक हजार बरस पीछे तक संसारका ज्ञान उससे आगे नहीं बढ़ पाया। इस लम्बी अवधिमें पूरब तरफ चीन और जापान, उत्तर तरफ तिब्बत और मङ्गोलिया एवं पच्छिम तरफ अरब और यूरोपके लोग धीरे-धीरे उसी ज्ञान और उन्हीं विद्याओंको अपनाते और सीखते रहे। किन्तु पन्द्रहवीं शताब्दी से पच्छिमी यूरोपकी त्यूतनी जातियोंमें ज्ञानकी एक नयी लहर उठी, और उन जातियोंने इतनी नयी सचाइयोंकी खोज कर डाली है तथा ज्ञान और विज्ञानके प्रायः प्रत्येक क्षेत्रमें इतनी उन्नति कर ली है कि आज समूचा संसार उन्हींके ज्ञानसे प्रकाशित है। बहुतसे क्षेत्रोंमें उनका ज्ञान हमारे पुराने ज्ञान-से बहुत आगे बढ़ गया है, इसमें कोई सन्देह नहीं। किन्तु सचाइयां सार्वभौम हैं, और वे बहुत समयतक किसी एक जातिके हाथमें नहीं रह पातीं। भारतवर्षके पुराने ऋषि-मुनियोंकी दृष्टिसे ज्ञान ही मानव-जीवनका सर्वस्व और सार है; ज्ञानमें शक्तिका बीज है और ज्ञानके बिना 'मुक्ति' नहीं हो पाती। यदि ठीक उन ऋषि-मुनियोंका जीवन-रस वैसे ही स्वस्थ और ताजा रूपमें आज हमारी नसोंमें भी बहता होता तो हमने बड़ी उत्सुकता और आतुरताके साथ पच्छिमी यूरोपके तमाम नवीन ज्ञान-विज्ञानको अबतक अपना डाला होता। किन्तु हमारी जीवन-धारा आज मन्द है, और इसी कारण उस नये ज्ञानकी रोशनीसे हमारी आंखें अभीतक पूरी तरह खुल नहीं पातीं। अभीतक हमारे देशमें ऐसे शिक्षित लोग हैं जो इस नये ज्ञानको हानिकारक और हेय समझते हैं, जो उसे अपनानेके बजाय उससे बचना चाहते हैं। दूसरी तरफ हमारे बहुतसे भाइयोंकी आंखें पच्छिमी ज्ञानकी चमकके एका-एक प्रहारसे ऐसी चकाचौंध हो जाती हैं कि उनमें देखनेकी शक्ति ही नहीं रह जाती। वे उस ज्ञानको अपनानेके बजाय उसकी भाषाको ही अपनानेमें अपनी शक्तियोंका क्षय कर बैठते हैं। ये दूसरी किस्मके लोग पहली किस्मके लोगोंसे अधिक खतरनाक और निकम्मे हैं। क्योंकि पहले नमूनेकी दिमागी शक्तियां यदि सोयी हुई हैं और उद्बोधनकी राह देख रही हैं, तो दूसरा नमूना दिमागी क्षयरोगके कारण नपुंसक हो चुका है—उसमें विचार करने और ग्रहण करनेकी शक्ति ही बाकी नहीं रही।

असल बात यह है कि हमें पच्छिमी यूरोपके ज्ञानको जहां-तक बन सके, जल्दी-से-जल्दी अपनाना है, और हम उसे अपनी भाषाओं द्वारा ही अपना सकते हैं। आजसे पन्द्रह-बीस बरस पहले जो लोग भारतीय भाषाओं द्वारा पच्छिमी ज्ञान देनेकी बात कहा करते थे, पच्छिमी ज्ञानकी चमक-मात्रसे चकाचौंध अंगरेजी रट लगानेवाले हमारे 'शिक्षित' बाबू लोग उनका मजाक किया करते थे। इन मजाक करनेवालों-की पूरी आलोचना मैंने संवत १९७५-७६ में अपने एक निबन्धमें की थी[1]। उसी प्रसङ्गमें तब मैंने लिखा था—"पच्छिमी विज्ञानों······को अपनी भाषाओंमें लाना बड़ा कठिन काम है······पर याद रहे कि इस समूचे काममें उतनी कठिनता नहीं, जितनी कठिनता केवल एक भारतीय बालक-को विदेशी भाषाके माध्यमसे शिक्षा पानेमें होती है; और जहां इस अस्वाभाविक कठिन काममें बालककी शक्तियां पीसी जाती हैं, वहां पश्चिमी विज्ञानको अपनी भाषाओंमें लानेके कठिन कामको सिद्ध करनेसे हमें बहुत बड़ी और स्थिर शक्ति प्राप्त होगी जिसकी नियन्त्रणा सदियोंके लिए हमारी भाषाको अधिक संस्कृत और सम्पन्न बना देगी, और इस प्रकार हमारे दिमागको ठीक राहपर रखेगी।[2]"

आज किसी अंगरेजी-पन्थीको यह कहनेकी शायद हिम्मत नहीं है कि भारतीय भाषाओं द्वारा पच्छिमी यूरोपके नये ज्ञान की शिक्षा नहीं दी जा सकती; तो भी उन लोगोंके पुराने संस्कार मिटे नहीं हैं; भारतीय भाषाओं द्वारा नये पाश्चात्य ज्ञानके अपनाये जानेकी समस्याओंको उन्होंने कभी सोचा और समझा नहीं है; और जब कभी दुर्भाग्यसे यह काम उनके

---

१ भारतवर्षमें जातीय शिक्षा (पुस्तिकाकारमें प्रकाशित, १९७६), पृ० २९-३६।

२ वहीं, पृ० ३५-३६।

हाथ पड़ जाता है, वे इसे ऐसे हलकेपन और बुरे ढङ्गसे करते हैं कि हमारी भाषाके नये उदय हुए वाङ्मयमें उलटे अव्यवस्था बढ़ती है। मेरे सामने अभी एक सरकारी विश्वविद्यालयके एक प्रोफेसरका लिखा भारतवर्षका इतिहास पड़ा है, जिसे लाखोंकी संख्यामें हमारे स्कूलोंमें पढ़नेवाले बालक बेचारे रटा करते हैं। इस इतिहासका प्रसिद्ध लेखक तक्षशिलाको टैक्सिला, वातापीको बदामी, श्रावस्तीको सरस्वती[३] और दारयवहुको डेरियस लिखता है। वह कहना चाहता है कि वैदिक आर्य tribes में बंटे हुए थे, और इस बातको वह यों कहता है कि "आर्य जाति छोटे-छोटे झुण्डों (!) में विभक्त थी।" उसे यह नहीं सूझता कि यदि वैदिककालके भारतवासियों में tribes थीं, तो 'tribe' के लिए कोई शब्द भी हमारे वैदिक वाङ्मयमें होगा। पाश्चात्य विज्ञानके नये विचारोंको प्रकाशित करनेवाली परिभाषायें बनाते समय भी हमें उससे मिलते-जुलते पुराने भारतीय ज्ञानका मनन करना होगा। किन्तु यहां इतना आलस्य है कि जो वस्तु या जो संस्था भारतवर्षमें थी, उसका मूल भारतीय नाम भी हम नहीं तलाश कर सकते, और एक तरफ मनमानी बेहूदा परिभाषायें गढ़ते तो दूसरी तरफ भारतीय नामोंकी हत्या किया करते हैं!

पारिभाषिक शब्दों या परिभाषाओंके वाङ्मयके व्यवहारमें वही स्थिति है जो हमारे आर्थिक व्यवहारमें सिक्के या मुद्रा की है। उन्हें बड़ी सावधानीसे टकसालना जरूरी है। जाली और बेडौल परिभाषायें हमारे समूचे वाङ्मय और विचारको तथा हमारी शिक्षा-पद्धतिको उलट-पुलट कर सकती हैं। कोई नया ज्ञान अपनानेका कार्य नयी परिभाषाओंकी सृष्टि किये बिना नहीं हो सकता, और इसी कारण पाश्चात्य ज्ञानको अपनानेकी चेष्टामें जब हम जुटते हैं तो सबसे पहले हमारे सामने उसके नये विचारोंके लिए नये शब्द गढ़नेकी समस्या आ उपस्थित होती है। किन्तु वह गढ़ाईका काम मनमाने ढङ्गसे नहीं हो सकता; निश्चित सिद्धान्तोंके अनुसार बड़ी सावधानीसे उसे करनेकी जरूरत है। उन्हीं सिद्धान्तोंकी व्याख्या करनेका एक जतन इस लेखमें किया जायगा।

सबसे पहले हमें इस समस्याके स्वरूप और क्षेत्रपर ध्यान देना चाहिए। वैसा करते ही हम यह देखते हैं कि यह समस्या न केवल हिन्दीकी, प्रत्युत भारतवर्ष की सब भाषाओंकी साझी है। फिर उसके साथ ही हमें यह देखकर बड़ी तसल्ली होती है कि भारतवर्षकी सब भाषायें और भारतके बाहरकी एक-दो भाषायें भी इसे एक ही ढङ्गसे सुलझाती हैं। इन सब भाषाओंके पास मुख्यतः एक ही अक्षय खान है जिसके धातुसे वे नयी परिभाषाओंके सिक्के ढालती हैं। वह खान है संस्कृत और पालिकी। परिणाम यह है कि इन सब भाषाओंमें प्रायः एक ही सिक्का चलता है। जो नयी परिभाषा एक भाषाने ढाल ली वह सबके काम आ जाती है। एक भाषा इसका अपवाद भी है, और वह कोई स्वतन्त्र भाषा नहीं, वह है हिन्दीकी एक शैली—उर्दू। वह तमाम भारतीय भाषाओंसे उलटी दिशामें चलना चाहती है! और इसके बावजूद हमारे अंगरेजी ढङ्गसे शिक्षित विद्वानों और नेताओंमेंसे बहुतसे हिन्दी और उर्दूको एक ही बोलचालकी भाषा—हिन्दुस्तानी—में घोल देना चाहते हैं। वैज्ञानिक परिभाषायें उस बोलचालकी हिन्दुस्तानीमें किस भाषाकी रहेंगी, इस प्रश्नने उन्हें कभी चिन्तित नहीं किया। मैं कई बार इस बातको दोहरा चुका हूं कि बोलचालकी उस हिन्दुस्तानीमें प्राथमिक शिक्षा भी नहीं दी जा सकती; कई बार मैंने यह प्रश्न सामने रखा है कि बोलचालकी हिन्दुस्तानीमें 'समत्रिबाहु त्रिभुज' उर्फ 'मुसल्लिस् मुत्साविउल्-इजला' के लिए कौनसा समान शब्द होगा; किन्तु आजतक उस प्रश्नका उत्तर नहीं मिला। खैर, यह बात हमारे आजके प्रसङ्गसे बाहर की है, प्रत्युत विचारमें हम उर्दूकी पूरी-पूरी उपेक्षा कर सकते हैं[४]।

---

३ श्रावस्ती और सरस्वतीका भेद न पहचाननेका स्पष्ट कारण यह है कि लेखक महोदयने अंगरेजीमें प्राचीन भारतका कोई इतिहास पढ़ा, किन्तु संस्कृतसे रोमन अक्षरान्तर करनेकी शैली क्या है, यह समझनेकी तकलीफ उन्होंने कभी नहीं की। बचपनसे उर्दूदां होनेके कारण स्वरोंकी ठीक स्थिति और मूल्यको पहचानना उनके लिए भारी कठिन काम था। इस प्रकार उन्होंने Sravasti को अपने मनमें 'सरवस्ती' पढ़ा, और 'सरस्वती' समझ लिया!

४. इन प्रश्नोंपर मैंने अपनी "भारतभूमि और उसके निवासी", प्रकरण ७, परिच्छेद ४९ तथा परिशिष्ट २-३ में विस्तारसे विचार किया है।

हिन्दीमें नवीन विज्ञानकी परिभाषायें टकसालनेका काम बाकायदा तौरपर पहले-पहल कांगड़ी गुरुकुल और नागरी-प्रचारिणी सभामें किया गया। जहांतक मुझे मालूम है, न केवल हिन्दीके, प्रत्युत समूचे भारतके क्षेत्रमें इस कामकी अगुआ यही संस्थायें थीं। आधुनिक ज्ञान और विज्ञानकी शिक्षा एक भारतीय भाषाके माध्यमसे देनेका प्रयत्न पहले-पहल कांगड़ीके गुरुकुलमें ही किया गया। उसी संस्थामें शिक्षा पानेके कारण उस प्रयत्नकी प्रारम्भिक कठिनाइयोंका अनुभव करनेका अवसर मुझे पूरी तरह मिला है। उस संस्थाको छोड़नेके बाद भी इस प्रश्नके साथ मेरा लगातार सम्पर्क रहा है। पिछले तेईस बरससे मैं अनेक पहलुओंसे इस प्रश्नको लगातार देखता और विचारता रहा हूं। इस अवधिके श्रवण और मननसे मैं कुछ-एक परिणामोंपर पहुंचा हूं, जिन्हें यहां दर्ज करता हूं—

(१) सबसे पहले, नयी परिभाषायें गढ़नेवाले व्यक्ति या समुदायके लिए यह आवश्यक है कि जहां उसे अपने विषयका पूरा और गहरा ज्ञान हो, वहां साथ-साथ वह उसी विषयके प्राचीन भारतीय ज्ञानसे भी पूरी तरह परिचित हो। उदाहरणके लिए आधुनिक राजनीति-शास्त्रकी परिभाषायें टकसालने जो बैठता है, प्राचीन भारतीय राज्यतन्त्रके ज्ञानके बिना वह बड़ी भद्दी गलतियां करेगा। आधुनिक रसायन-शास्त्रके साथ-साथ प्राचीन भारतीय रसायनका ज्ञान रखने-वाला ही रसायनशास्त्रकी ठीक परिभाषायें बना सकेगा।

कारण स्पष्ट है। कोई व्यक्ति या जाति जब नये ज्ञानका उपार्जन करती है तब अपने पुराने ज्ञानके आधार-पर, पुराने ज्ञानके संशोधन और परिवर्धन द्वारा ही। हमें यह आशा न करनी चाहिए कि प्रत्येक आधुनिक विज्ञान प्राचीन भारतमें भी उसी प्रकार शृङ्खलाबद्ध और सङ्कलित रूपमें हमें मिल जायगा। उदाहरणके लिए भारत-वासियोंका रसायन-सम्बन्धी पुराना ज्ञान किसी बाकायदा रसायनशास्त्रमें नहीं, प्रत्युत अनेक विद्या-क्षेत्रोंमें बिखरा हुआ मिलेगा।

इस सिद्धान्तको स्पष्ट करनेके लिए एक-दो दृष्टान्त दिये जा सकते हैं। अन्य जातियोंकी तरह भारतवासियोंके इतिहास-में भी पहले tribal राज्य थे, और फिर territorial राज्य हुए। Tribe के लिए हमारे यहां 'जन' शब्द है, tribal state के लिए 'जन-राज्य'। पहले बहुतसे जन 'अनवस्थित' भी थे, घूमते-फिरते थे, पर बादमें जब वे विशेष देशोंमें 'अवस्थित' हो गये, तब जनोंके बस जानेके देश 'जनपद' कहलाये। धीरे-धीरे राज्य जनके बजाय जनपदका होने लगा। ये दोनों शब्द एक दशासे दूसरी दशातक आरम्भिक राज्यसंस्थाके विकासको बड़ी खूबीके साथ प्रकट करते हैं। प्राचीन भारतीय इतिहास और राज्यसंस्थाके अध्ययनमें हमारा इन शब्दोंसे वास्ता पड़ना अनिवार्य है। किन्तु हिन्दीके एक प्रसिद्ध पत्रने इधर कुछ अरसेसे चलती राजनीतिमें Dominion status के लिए जनपद-शासन शब्द बर्तना शुरू किया है। Dominion या Colony का विचार भी भारतीय राज्य-संस्थाके लिए नया नहीं है, क्योंकि किसी जमानेमें समूचे परले हिन्द (Further India) में भारतीय Colony यां थीं। उनके लिए हमारे यहां उपनिवेश शब्द है (मार्कण्डेय पुराण ५७, ३८; "भारतभूमि" पृष्ठ १२१ पर उद्धृत)। Colony के अर्थमें हिन्दीमें वह शब्द एक अरसेसे चल भी रहा था। शायद जनपद शब्दको उससे अधिक सुगम मानकर उस अर्थमें बर्ता गया है। Dominion के अर्थमें उपनिवेश शब्दका प्रयोग उचित हो या न हो, जनपद शब्द उस अर्थमें न बर्ता जाना चाहिए। और यदि बर्ता जायगा तो फल क्या होगा? आधुनिक राजनीति-विषयक हिन्दी पुस्तकें एक अर्थमें जनपद शब्दका प्रयोग करेंगी, और प्राचीन भारतीय राज्य-संस्था विषयक बिलकुल दूसरे अर्थमें, और उन दोनों अर्थोंमें परस्पर कोई सम्बन्ध न होनेसे भ्रम और गोलमाल होगा, और जिस दिन अंगरेजीकी गुलामीसे हम मुक्त हो जायेंगे, उस दिन 'जनपद'का यह नया मनमाना अर्थ हमारे लिए किसी प्रकार स्पष्ट न होगा।

एक और दृष्टान्त। हालमें एक राजकुमारकी लिखी इतिहास-विषयक एक हिन्दी पुस्तक मेरे देखनेमें आयी, और पन्ने उलटकर देखनेसे मुझे वह साधारणतः अच्छी और विचारपूर्ण प्रतीत हुई। उसमें एक जगह अंगरेजीका generalisation शब्द मेरी नजर पड़ा, और देखा कि उसके लिए हिन्दी शब्द गढ़ा गया है—साधारणीकरण! किन्तु जब अंगरेजोंके पुरखा अभी कपड़े पहनना भी न जानते थे, तब भी भारतवर्षमें तर्कशास्त्रका उदय हो चुका था, और यहांके लोग generalisation की प्रक्रियाको खब

पहचानते थे। भारतीय तर्कशास्त्रमें उस प्रक्रियाको व्याप्ति कहते हैं, और व्याप्ति शब्द हमारे यहां इतना प्रचलित है कि संस्कृत तर्कशास्त्रका प्रत्येक आरम्भिक विद्यार्थी उसे जानता है। 'व्याप्ति' के रहते हमें 'साधारणीकरण' की कोई जरूरत न थी।

नागरी-प्रचारिणीसभाने वैज्ञानिक परिभाषायें बनानेके लिए पहले-पहल जो समितियां बनायीं थीं, उनमेंसे एक विषयकी समितिमें एक ऐसे सज्जन थे जिनका अपने विषयके न केवल आधुनिक ज्ञानमें, प्रत्युत प्राचीन भारतीय ज्ञानमें भी पाण्डित्य जगत्प्रसिद्ध था। मेरा अभिप्राय स्वर्गीय पण्डित सुधाकर द्विवेदीसे है। उनके सहयोगके कारण सभा द्वारा प्रकाशित गणित और ज्योतिषकी परिभाषाओंपर प्रामाणिकताकी छाप लग गयी है। उसी प्रकारके विद्वानोंका सहयोग प्रत्येक विषयमें पाना अभीष्ट और आवश्यक है।

इस सिद्धान्तका एक और पहलू भी है; जिसका अलग वर्णन किया जायगा।

(२) दूसरी आवश्यकता नयी परिभाषामें टकसालनेवालोंके लिए इस बातकी है कि जिस विज्ञानकी परिभाषायें वे गढ़ें, न केवल उसके सिद्धान्तोंका ही, प्रत्युत उन सिद्धान्तोंके क्रमविकासका भी गहरा अनुशीलन उन्होंने कर रखा हो। अर्थात् उस विज्ञानके साथ-साथ वे उसके इतिहासको भी जानते हों। ऐतिहासिक पद्धति आधुनिक पाश्चात्य विचारकी जान है। किसी वस्तुके स्वरूपको ठीक-ठीक समझनेके लिए उसके इतिहासको जानना आज हमें अनिवार्य जान पड़ता है। कोई चीज क्या है, यह प्रश्न उठते ही आज हम टटोलने लगते हैं कि वह कब, कैसे, कहां, किस रूपमें, किन अवस्थाओंमें पैदा हुई, और कैसे-कैसे बदलते हुए अपने विद्यमान रूपतक पहुंची है।[५]

संसारकी अन्य वस्तुओंकी तरह विज्ञानोंकी परिभाषायें भी अपनी परिस्थितिकी उपज होती हैं। उनपर परिस्थितिका प्रभाव कहांतक है सो हमें पहचानना चाहिए। सम्भव है, गणितका एक सिद्धान्त प्राचीन भारत, चीन या अरबमें रहा हो, पर यूरोपवालोंने उसका अपने लिए फिरसे आविष्कार किया हो और उसके 'नये' विचारोंके लिए अपने शब्द गढ़े हों।

ऐसे दृष्टान्त और भी अधिक मिलेंगे यदि आधुनिक विज्ञानका कोई नया विचार प्राचीन भारतके किसी दार्शनिक विचारका कुछ रूपान्तर-मात्र हो। उस दशामें हमें नये विचार प्रकट करनेको जो शब्द गढ़ने चाहिएं, वे उसके अनुरूप पुराने विचारके शब्दोंसे मिलते हुए होने चाहिएं। भौगोलिक नामोंपर तो इतिहासका प्रभाव प्रायः ९९ फीसदी रहता है। आशा अन्तरीप (Cape of Good Hope) के नाममें इतिहासका एक पूरा अध्याय बन्द है। "भू"मध्य-सागर रोमवालोंकी "भूमि" के मध्यमें जरूर था, हम लोगोंके लिए उसे उसी शब्दसे पुकारना निपट अन्धापन है; हमें उसे रोम-सागर कहना चाहिए। "अरब"-सागर और "बङ्गाल" की खाड़ीको हमारे पुरखा पच्छिमी सागर और पूरबी सागर कहते थे; उनके लिए हम अब चाहे जो नाम बर्त सकते हैं।

(३) भारतीय परिभाषायें टकसालनेवाले विद्वान् सदा अंगरेजी नमूनेको ही सामने रखकर बैठें सो कभी उचित नहीं है। आधुनिक जगत्के मौलिक विचार सबसे अधिक जर्मनी और फ्रान्सकी भूमियोंमें उपजते हैं। भारतीय परिभाषायें गढ़नेवालोंको अंगरेजीसे बढ़कर जर्मन और फ्रान्सीसी भाषाओंको जानना चाहिए। यों तो सभी यूरोपीय भाषायें यूनानी और लातीनीसे अपनी परिभाषायें लेती हैं। हमारे शब्द-विधाता यदि उन भाषाओंको भी जानें तो अच्छा है; नहीं तो कमसे कम जर्मन और फ्रान्सीसी तो उन्हें जाननी ही चाहिए। दो मिलती-जुलती राजनीतिक संस्थायें हैं जिन्हें अंगरेजीमें Confederation और Federation कहते हैं। जर्मनमें वही Staatenbund और Bundstaat कहलाती हैं। ये जर्मन नाम अपने अंगरेजी अनुवादोंसे कहीं अधिक स्पष्ट हैं। यदि हमें नकल ही करनी है तो क्यों न अच्छे नमूने की करें? उपरले हिन्द (Serindia) में जब पहले-पहल दो नयी आर्य-भाषायें—भारतीय लिपिमें लिखी जानेवाली—पायी गयीं, उन्हें जर्मन विद्वानोंने Tokharisch (तुखारी) और Nord-arisch (उत्तरी आर्य) कहा[६]। अंगरेजीमें कई बार

---

[५]देखिये मेरा लेख—ऐतिहासिक पद्धति, विद्यापीठ भाग १ अङ्क ३

[६] देखिये मेरा लेख—ऋषिक अर्थात् तुचि, हिन्दुस्तानी, जनवरी १९३२।

ये शब्द ज्योंके त्यों लिख दिये जाते हैं क्योंकि उनका नामकरण पहले-पहल जर्मनोंने किया है। मैंने हिन्दीकी प्रामाणिक पुस्तकों और पत्रिकाओंमें उन शब्दोंको ज्योंका त्यों—टोखारिश और नार्डारिश रूपमें—लिखा देखा है! इसका कारण जर्मन शब्दोंके अर्थ न समझना प्रतीत होता है।

(४) चौथी बात जो मुझे कहनी है, वह पहलीका रूपान्तर और पिछली तीनोंसे अधिक महत्त्वकी है। प्रत्येक विषयकी नयी परिभाषायें निश्चित करनेके पहले हमें उस विषयके जनसाधारणमें प्रचलित देहाती ज्ञानको टटोलना और जमा करना चाहिए। प्रत्येक नये ज्ञानको हम अपनी मातृभाषा द्वारा ही जज्ब कर सकते हैं। और जब उसकी परिभाषायें जनसाधारणके बोलचालके शब्द बन जायं तभी उसे अपने जातीय ज्ञानमें जज्ब हुआ मानना चाहिए—प्रत्येक नये ज्ञानको हम अपने पुराने जातीय ज्ञानके संशोधन और परिवर्धन द्वारा ही सुगमतासे अपना और पचा सकते हैं। एक बच्चा अपने चारों तरफकी परिस्थितिसे जो ज्ञान पा लेता है, आप जो नया ज्ञान उसे देना चाहते हैं यदि उसका उस पुराने ज्ञानसे सम्पर्क है, यदि वह उस पुराने ज्ञानके संशोधन और परिवर्धन-रूपमें दिया जाता है, तब वह उसे आसानीसे जज्ब कर लेता है। दूसरी तरफ, यदि यह बात नहीं है, यदि बालकके अपनी जातीय परिस्थितिसे बटोरे हुए ज्ञानके साथ उसे स्कूलमें दिये जानेवाले नये ज्ञानका कोई सम्पर्क नहीं है, तो उसके दिमागमें केवल गोलमाल और अव्यवस्था पैदा हो जाती है। वह न पुरानेको संभाल सकता है न नये को पकड़ पाता है। कुछ दिन उन नयी बातोंको रटकर वह उन्हें भूल जाता है और हज्म न होनेके कारण जब वे उसके दिमागसे निकलती हैं, जुलाबकी तरह वे उसके पुराने ज्ञान-सञ्चयको भी बाहर निकाल ले जाती हैं। आजसे चौदह बरस पहले राष्ट्रीय शिक्षा-विषयक पूर्वोक्त निबन्धमें मैंने एक फ्रान्सीसी विद्वान्के ग्रन्थसे भारतीय स्कूलोंकी आलोचना विषयक निम्नलिखित वचन उद्धृत किये थे—"स्कूलमें न आनेवाले बालक स्कूल आनेवालोंसे बहुत अधिक समझदार प्रतीत होते हैं। क्यों? क्योंकि स्कूलमें उन्हें सब अपरिचित वस्तुओंसे ही वास्ता पड़ता है, कोई ऐसी वस्तु नहीं मिलती जिसे वे पहलेसे जानते हों।......व्यावहारिक जीवनकी इन सब बातोंकी, जिनके कारण और सम्बन्ध बालकको सिखाये जा सकते थे, मानो उसके जीवनकी परिस्थितिसे उसे जान-बूझकर अलग करनेके अभिप्रायसे, स्कूलमें उपेक्षा की जाती है। स्कूलकी पढ़ाई उसके मनको नये और अपरिचित विचारोंसे भरनेका यत्न करती है[७]।"

यहां मुझे यह कहना है कि किसी ज्ञानको नया, अपरिचित और अजनबी बनानेमें उन परिभाषाओंका बड़ा प्रभाव होता है जिनके द्वारा हम उसे प्रकट करते हैं। नया ज्ञान तो हमें बालकको या जनसाधारणको देना ही होता है, पर परिचित, या परिचितसे मिलती-जुलती परिभाषाओंके प्रयोगसे हम उसे परिचित-सा बना सकते हैं, और वही भारी-भरकम परिभाषाओं द्वारा दुस्सह बनाया जा सकता है। एक विशेष प्रकारकी भौगोलिक रचनाको अंगरेजीमें Plateau कहते हैं। हिन्दी-लेखकोंने पहले-पहल उसका नाम 'ऊर्ध्वभूमि' रखा। उन्होंने यह न सोचा कि 'प्लैटो' जब भारतवर्षमें हैं तब उनका कोई प्रचलित भारतीय नाम भी होगा, या उस नामको खोजना उन्हें दूभर मालूम हुआ, इसलिए उन्होंने ऊर्ध्वभूमि शब्द टकसाला। यदि उनमें कुछ साहित्यिक सूझ होती तो वे उसे उष्ट्रपृष्ठ भी कह सकते थे! किन्तु प्लैटोको मालवामें पठान, महाराष्ट्रमें माल, बंगालमें मालभूमि, और काश्मीरमें ऊडुर कहते हैं। इतने शब्दोंके रहते ऊर्ध्वभूमि या उष्ट्रपृष्ठ की क्या जरूरत थी? अंगरेजी Pass के लिए हिन्दीवाले आंख मूंदकर दर्रा शब्द बर्तते हैं। किन्तु दर्रा उस पहाड़ी रास्तेको कहते हैं जो पहाड़के आरपार निकल गया हो; राजस्थानमें उसीको नाल कहते हैं। पहाड़की एक तरफसे चढ़कर दूसरी तरफ जहां उतरा जाय, वहां बीचवाली जगह कभी दर्रा नहीं कहला सकती। उसे अफगानिस्तानमें कोतल या गर्दन, कांगड़ा-कुल्लूमें जोत, गढ़वाल-कुमाऊंमें धाटा, नेपालमें भञ्याङ, महाराष्ट्रमें घाट और राजस्थानमें घाटी कहते हैं। उस अर्थको फ्रांसीसी शब्द Col सूचित करता है। अंग्रेजी Valley शब्दके लिए बहुतसे अबोध हिन्दी लेखक 'घाटी' लिखते हैं। पर 'घाटी' का बिलकुल दूसरा अर्थ है। पहाड़की Valley के लिए दून (संस्कृत-

७. 'भारतवर्षमें जातीय शिक्षा' पृ० ४७-४८ पर उद्धत जोसफ शैलेके L' Inde Britannique के एक सन्दर्भका अनुवाद।

द्रोणी) शब्द, और मैदानमें किसी नदीकी Valley के लिए कांठा शब्द जनसाधारणकी ठेठ हिन्दीमें प्रचलित है। बुन्देलखण्ड-बघेलखण्डमें पहाड़ी दूनें खोह कहलाती हैं। तुर्किस्तानके बांगर मैदानोंको अंगरेजीमें Steppe कहा जाता है। मैंने हिन्दीकी कई पुस्तकोंमें वही स्टैपी शब्द ज्यों-का-त्यों लिखा देखा है! किन्तु उत्तर हिन्दुस्तानमें वैसी रचना बांगर और पंजाबमें बार कहलाती है। जिन लेखकोंको अपने पड़ोसकी भौगोलिक परिस्थितिका इतना सीधा ज्ञान भी नहीं है, उन्हें अपनी आराम-कुर्सीपर बैठे-बठे तुर्किस्तानका भूगोल लिखनेकी गुस्ताखी न करनी चाहिए।

यह स्पष्ट है कि यदि जनसाधारणके इन प्रचलित शब्दोंके द्वारा उन्हें आधुनिक भूगोलशास्त्रका ज्ञान मिले तो वह उनके लिए अबसे कहीं सुगम और सुबोध हो। यही बात और ज्ञानोंके विषयमें भी कही जा सकती है। किन्तु जनताका प्रचलित ज्ञान हमारे काम आ सके, इसके लिए यह आवश्यक है कि पहले हम उसका प्रामाणिक सङ्कलन और सञ्चय करें। उस प्रकारके सङ्कलन और सञ्चयके लिए हमें अपने देशकी बाकायदा पड़ताल (Survey) करनी होगी। यह काम भारतीय अध्ययनकी एक सुव्यवस्थित योजना बनाकर कोई संस्था ही कर सकती है। इस सिलसिलेमें सबसे पहले भारतवर्षका एक भौगोलिक कोष (गजैटियर) तैयार होना चाहिए। अंगरेजीमें वैसा कोष है, पर उसमें नामोंका रूप कुछसे कुछ बन जाता है। फिर वह बहुत अधूरा भी है। भारतवर्षके प्रत्येक जिलेके कुल भौगोलिक नामोंका कोष बन जानेसे ज्ञानका एक बड़ा भण्डार उपस्थित हो जायगा, जिसमें अनेक कीमती रत्न पाये जायेंगे। अभी हालमें वघाट गांवका नाम मिल जानेसे श्रद्धेय श्रीयुत काशीप्रसाद जायसवाल भारतीय इतिहासकी इस समस्याको सुलझा सके कि गुप्त सम्राटोंका रास्ता बनानेवाले वाकाटक राजा क्यों ऐसा कहलाते थे। भारतवर्षके तमाम भौगोलिक नामों और उनके साथ-साथ भौगोलिक परिभाषाओंके ठीक उच्चारण सङ्कलित होनेसे हमारे इतिहासकी अनेक समस्यायें इसी प्रकार सुलझ जायंगी, और हमारा स्वदेशी भूगोल-शास्त्र तैयार हो जायगा। हिन्दी बोलनेवाले यदि अपने हिन्दी-प्रान्तोंका ही ऐसा वर्णानात्मक संग्रह तैयार कर लें तो बड़ी बात हो। यदि कोई प्रतिष्ठित संस्था इस कामको हाथमें ले तो दो-एक दर्जन विद्वानोंके सहयोगसे कुछ बरसोंमें इसे पूरा करा सकती है।

ऐसा कोष तैयार होनेपर अथवा इसके साथ-ही-साथ, एक पदार्थोंके नामोंका कोष तैयार किया जा सकता है, जिसमें भारतवर्षके प्रत्येक जिलेमें होनेवाले पशु-पक्षियों, वृक्ष-वनस्पतियों; खनिज पदार्थों और अन्य कच्चे मालके नाम उसके जिलेकी बोलीमें जमा किये जायं। फिर उसके परिशिष्ट रूपमें एक ऐसा कोष तैयार हो सकेगा जिसमें भारतवर्षके प्रत्येक भागमें प्रचलित घरेलू शिल्पोंमें बर्ती जानेवाली संज्ञाओं और परिभाषाओंका सङ्कलन हो। इस प्रकारके कोषोंसे हमें जीव-शास्त्र (Biology) वनस्पतिशास्त्र, जन्तुशास्त्र (Zoology), रसायनशास्त्र आदिकी बहुतसी उपयोगी और प्रचलित परिभाषायें मिलेंगी। साथ ही अपने देशके शिल्पोंका इस प्रकारका अध्ययन उन शिल्पोंको पुनर्जीवित करनेमें भी बड़ा सहायक हो सकेगा।

भारतीय अध्ययनकी इस योजनाको चरितार्थ करनेसे न केवल हमारे वाङ्मयको, प्रत्युत हमारे समूचे राष्ट्रीय जीवनको पुष्टि मिलेगी, शिक्षित समाजका अपने देशके ग्रामोंसे वास्तविक सम्पर्क हो जायगा, और जनसाधारणको उसकी अपनी ठेठ भाषामें नयी दुनियाका ज्ञान मिलनेकी भूमिका बन जायगी।

——

राष्ट्र-परिषद्

श्री रामनारायण 'यादवेन्दु' बी० ए०

(१)

यूरोपके विगत महायुद्धमें जिन अमानुषिक, गर्हित और नृशंसतापूर्ण उपायोंसे नरमेध-यज्ञका आयोजन किया गया, उनको उत्तेजना प्रदान करनेमें विषैली वायु, विशद् बम तथा वायुयानोंने अग्निमें घृतका कार्य किया! अपार नर-संहार, अमित द्रव्यनाश एवं वैभव-सम्पन्न राष्ट्रोंकी दयनीय दरिद्रता संसारको यज्ञके फल-स्वरूप मिले। युद्धकी प्रचण्ड ज्वालाने विश्वके हृदयको एक बार कम्पित कर दिया; गर्वोन्मत्त राष्ट्रोंका मान-मर्दन कर दिया।

परन्तु महासमरके इस बीभत्सपूर्ण दृश्यके पीछे एक आलोक छिपा हुआ था। युद्धकी समाप्तिपर राष्ट्रोंने उस प्रकाशके दर्शन किये। उनकी आंखें खुलीं और उन्होंने यह अनुभव किया कि युद्धमें किसीकी विजय नहीं होती, उसमें शान्ति और सान्त्वनाका अभाव है।

इस ऐतिहासिक नर-मेधकी अन्तिम आहुतिके बाद जब समस्त राष्ट्र वर्सलीजमें सन्धिके लिए एकत्र हुए तो संयुक्तराष्ट्र अमेरिकाके तत्कालीन राष्ट्रपति विलसनने अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सहयोगके लिये राष्ट्र-परिषद् (League of Nations) की स्थापनाका प्रस्ताव रखा। आमन्त्रित राष्ट्रोंको उस समय युद्धसे ग्लानि हो गयी थी; वे शान्ति चाहते थे। इसलिए राष्ट्रपति विलसनके प्रस्तावका बड़े हर्षके साथ स्वागत किया गया। सन्धि-सम्मेलनमें 'राष्ट्र-परिषद' की स्थापना की गयी और उसका विधान तैयार किया गया।

परन्तु आश्चर्य्य है कि परिषद्‌की स्थापनाके कुछ समय बाद संयुक्त राष्ट्र अमेरिकाने परिषद्‌से सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया। जब राष्ट्र-परिषद्‌के सभापतित्वके लिए द्वितीय निर्वाचन हुआ तो राष्ट्रपति विलसन महोदय भी उपर्युक्त पदके लिए खड़े हुए थे; विलसन हार गये; फलस्वरूप अमेरिकाने सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया। यदि, वास्तवमें, सम्बन्ध-विच्छेदका मूल कारण यही है, जिसके स्वीकार करनेमें हमें सङ्कोच है, तो हम कहेंगे कि अमेरिकाके राष्ट्रपतिने कोई दूरदर्शिता और त्यागका काम नहीं किया।

राष्ट्र-परिषद्‌में विश्वके समस्त स्वतन्त्र राष्ट्रोंके प्रतिनिधि हैं। केवल चार ही ऐसे राष्ट्र हैं जिनके परिषद्‌में कोई प्रतिनिधि नहीं है—संयुक्त राज्य अमेरिका, सोवियट रूस, मेक्सिको और अफगानिस्तान। सन् १९२६ में जर्मनी भी परिषद्‌का सदस्य बन गया और पिछले वर्षसे टर्कीने भी परिषद्‌में अपना प्रतिनिधि भेजना शुरू कर दिया है।

सत्य तो यह है कि प्रत्येक राष्ट्र अपनी राष्ट्रीयताको ही सब कुछ मानता है; यदि राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयताका समन्वय हो जाय तो राष्ट्रोंके बीच क्षुद्र स्वार्थोंके लिए विवाद न हो। राष्ट्रीयताकी सीमाका विस्तार करनेपर ही अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति स्थापित हो सकती है। इसलिए जो राष्ट्र अपनी राष्ट्रीयताकी रक्षाके लिए दूसरे राष्ट्रोंको आत्मसात् करनेको ताक लगाये बैठे हैं, वे अन्तर्राष्ट्रीयताके समर्थक कब हो सकते हैं?

राष्ट्र-परिषद्‌के समझौते (Covenant) की पहली, दूसरी और तीसरी धारामें 'परिषद्' के विधान (Constitution) का उल्लेख है। परिषद्‌के दो विभाग हैं—असेम्बली और कौंसिल। असेम्बली समस्त सदस्योंकी सामान्य सभा है और कौंसिल (Executive Council) उसकी कार्य-कारिणी समिति। प्रत्येक राष्ट्रको असेम्बलीके लिए तीन सदस्य भेजनेका अधिकार है; परन्तु प्रत्येक राष्ट्रका मत केवल एक ही माना जाता है। यह विशाल संस्था वर्षमें एक बार अपना सम्मेलन करती है। कौंसिलमें दो प्रकारके सदस्य हैं—स्थायी सदस्य और निर्वाचित सदस्य। स्थायी सदस्य केवल पांच हैं; इंगलैण्ड, फ्रान्स, इटली, जर्मनी और जापान। शेष नौ सदस्योंका प्रति तृतीय वर्ष असेम्बलीके सदस्यों द्वारा निर्वाचन होता है। परिषद् की कार्य-कारिणीके प्रतिवर्ष चार अधिवेशन होते हैं, परन्तु आवश्यकता पड़नेपर अधिक भी अधिवेशन किये जा सकते हैं। पाठक स्थायी

सदस्यताका भाव समझ गये होंगे। उपर्युक्त शक्तिशाली पांच पक्षोंने अपने विशाल साम्राज्योंकी शक्तिके आधारपर परिषद्में स्थायी 'मोनोपाली' प्राप्त करली है। परन्तु कोई भी प्रजातन्त्र-वादी मनुष्य यह स्वीकार करनेमें सङ्कोच न करेगा कि इस प्रकारका स्थायित्व परिषद्के विकासमें बड़ा बाधक है—यह प्रवृत्ति जनतन्त्रवादके सिद्धान्त Principle of Domocracy की अवहेलना करती है। यह 'मोनोपाली' निर्बल राष्ट्रोंके हृदयोंमें साम्राज्यवादी राष्ट्रोंके प्रति सद्-भावना एवं श्रद्धाका जागरण नहीं कर सकती। इससे तो द्वेषमूलक स्पर्द्धाकी आग भड़केगी। हालमें यूरोपके एक राष्ट्रने परिषद्के लिए इस आशयका एक आवेदन-पत्र भेजा कि उसे कौंसिलमें स्थायी सदस्य बना लिया जाय!

परिषद्की असेम्बली या कौंसिलमें किसी प्रस्तावपर निर्णयकी स्वीकृतिके लिए सर्वसम्मतिकी आवश्यकता है। यदि प्रस्तावके विरुद्ध एक भी राष्ट्र होगा, तो वह कभी स्वीकृत न हो सकेगा। हां उन राष्ट्रोंकी सम्मति नहीं ली जायगी जिनमें कोई विवाद हो और उसी विवाद-विषयक प्रस्ताव आदि हो। उदाहरणके लिए, यदि जापान और चीनमें झगड़ा है और इस झगड़ेका निर्णय परिषद्में होता है, तो चीन-जापानके प्रतिनिधियोंकी सम्मति नहीं ली जायगी। यदि वे निर्णयके खिलाफ होंगे तो भी प्रस्ताव स्वीकृत समझा जायेगा।

परिषद्का उद्देश्य है शान्तिकी स्थापना। इसलिए राष्ट्रीय सेनामें कमी करना उचित है। सेना उतनी ही रखनी चाहिए जितनी राष्ट्रकी रक्षाके लिए आवश्यक है। प्रति दश वर्ष बाद जेनेवामें निःशस्त्रीकरण सम्मेलन (Disarmament Conference) इसीलिए किया जाता है कि वह राष्ट्रीय सेनाकी योजनापर विचार और निर्णय करे। गत फरवरी मासमें जिस समय यह सम्मेलन जेनेवामें राष्ट्रीय सेनाकी कमी (Reduction) पर विचार कर रहा था, उस समय जापान और चीनमें सशस्त्र सम्मेलन हो रहा था! यह है संसारके राष्ट्रोंकी मनोवृत्ति!

परिषद्की स्वीकृतिके बिना किसी राष्ट्रको अपने राज्य की सीमामें परिवर्तन करनेका अधिकार नहीं है और न कोई राजनीतिक परिवर्तन ही हो सकता है।

प्रत्येक राष्ट्रका कर्त्तव्य है कि वह विवादग्रस्त विषयको या तो निर्णयार्थ अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालयके सामने प्रस्तुत करे या जांचके पास कौंसिलके पास भेजे।

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय (Permanent Court of International Justice) के निर्णय या कौंसिलकी जांच रिपोर्टके तीन महीने बाद तक कोई भी राष्ट्र युद्ध न कर सकेगा।

अन्तर्राष्ट्रीय न्यायालय परिषद्की न्याय-संस्था है। राष्ट्रोंके विवादोंका निर्णय करनेके लिए इसकी स्थापना की गयी है। हालैण्डके हेग नगरमें यह न्यायालय स्थित है। यदि कोई सदस्य परिषद्के समझौते (Covenant) का उलङ्घन करेगा, तो जिस राष्ट्रका वह सदस्य है, उसका युद्ध-कार्य परिषद्के समस्त सदस्योंकी विवेचनाके विरुद्ध समझा जायगा। ऐसी स्थितिमें परिषद् उस राष्ट्रके विरुद्ध सामाजिक तथा आर्थिक बहिष्कारका सहारा लेगी। परिषद् अपने सदस्योंको आदेश करेगी कि वे उस सदस्यके राष्ट्रसे अपना सामाजिक तथा आर्थिक सम्बन्ध विच्छेद कर दें। कौंसिल विविध राष्ट्रोंको यह भी आदेश करेगी कि वे परिषद्के समझौतेकी रक्षाके लिए कितनी-कितनी सशस्त्र सेना भेजें।

राष्ट्रोंकी सन्धियोंपर पुनर्विचार करना भी परिषद्का नियम है।

विगत महासमरके बाद जर्मनी और टर्कीके कुछ प्रान्तोंका राज्य-प्रबन्ध परिषद्की ओरसे नियुक्त मित्र-राष्ट्रोंके द्वारा होने लगा है। इसीका नाम Mandate System है। परिषद्के (Covenant) समझौतेके अनुसार 'मेन्डेट' अपने विकासकी उस दशाको प्राप्त हो चुके हैं जहां उनकी सत्ता स्वतन्त्र राष्ट्रके समान अस्थायी रूपसे मानी जा सकती है, परन्तु जबतक वे अपने-आप स्वतन्त्र रूपसे खड़े न हो सकें तबतक उनपर मित्रराष्ट्रोंका शासन आवश्यक है।

परिषद्का एक अतीव महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है विश्वके मजदूरोंका अन्तर्राष्ट्रीय सङ्गठन। मजदूरोंकी आर्थिक समस्या, स्वास्थ्य, तथा कार्यके समयके निर्धारण-सम्बन्धी कानूनोंका निर्माण कराना। परिषद्के 'समझौते' की अन्तिम धारामें यह लिखा है कि परिषद्के 'समझौते' में वही संशोधन स्वीकृत हो सकेंगे जो कौंसिलने सर्वसम्मति

और असेम्बलीने बहुसम्मतिसे स्वीकृत किये हों ! यहांतक हमने 'परिषद्'के 'समझौते'पर सूक्ष्म रूपसे विचार किया है।

(२)

राष्ट्र-परिषद्का मूल उद्देश्य, जैसा कि 'समझौते' से स्पष्ट है, युद्धको रोकना है। परन्तु युद्धको रोकनेके लिए निरस्त्रीकरण ही एकान्त अमोघ साधन नहीं है। जबतक राष्ट्रोंमें परस्पर विश्वास और प्रेमका सम्बन्ध स्थापित न होगा तब तक युद्ध रोकना व्यर्थ-प्रयास होगा। प्रेम और विश्वासकी प्रतिष्ठाके लिए आवश्यक है कि एक राष्ट्र, अपने वैभव, गौरव और मदको भूलकर, दूसरे राष्ट्रके अधिक सन्निकटमें आकर उसकी सभ्यता, संस्कृति, साहित्य और व्यवहार शास्त्रका अध्ययन करे। सामान्य विचारोंका आदान-प्रदान करे। ऐसा करनेसे विश्वके राष्ट्रोंमें एक सामान्य भावनाका आविर्भाव होगा जिससे उनके परस्पर-सम्बन्धोंमें प्रेम और सहानुभतिका सञ्चार होने लगेगा। परिषद्ने इस आवश्यकताका अनुभव किया है और उसकी पूर्तिके लिए विविध अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओंको जन्म दिया है। इस प्रकारकी संस्थाओंमें 'बौद्धिक सहयोग समिति' (The Committee of Intellectual Corporation) विशेषरूपेण महत्त्वपूर्ण है।

इस समितिका मुख्य कार्यालय पेरिसमें है। इस समितिका उद्देश्य उसके नामसे ही प्रकट है। वह है विविध राष्ट्रोंमें साहित्यिक, कला-सम्बन्धी तथा संस्कृति-सम्बन्धी सहकारिता प्रतिष्ठित करना। भारत-रत्न, विश्वकवि श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर इस समितिके अनेक वर्षों तक सदस्य रहे हैं। आजकल इस समितिके सदस्य भारत-विख्यात दार्शनिक-प्रवर प्रो० राधाकृष्णन हैं। इटलीकी राजधानी रोममें अन्तर्राष्ट्रीय कृषि-संस्था तथा अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा-सम्बन्धी सिनेमेटोग्राफ इन्स्टीट्यूटके मुख्य कार्यालय हैं। International Labour Organisation अर्थात् अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर-सङ्घ परिषद्की बड़ी उपयोगी संस्था है। इसका स्थायी कार्यालय जेनेवा नगरमें हैं। राष्ट्र-परिषद्का प्रधान केन्द्र (Secretariat) भी इसी नगरमें स्थित है।

(३)

परिषद्की आय उन राष्ट्रोंके शासनसे चन्देके रूपमें प्राप्त होती है, जो उसके सदस्य हैं। सभी राष्ट्रोंसे समान चन्दा नहीं लिया जाता। अतः परिषद्ने एक समिति (Expense Committee) यह निर्णय करनेके लिए नियुक्त कर दी है कि प्रत्येक राष्ट्रको कितना-कितना चन्दा देना चाहिए। राष्ट्रकी वार्षिक आय, राज्य-विस्तार, जनसंख्या, परिषद्में स्थिति आदिका विचार करके ही चन्दा निश्चय किया जाता है। सबसे अधिक चन्दा इंगलैण्ड देता है। दूसरा नम्बर फ्रान्सका है। भारतवर्षका नम्बर, शायद, तीसरा है। भारत प्रतिवर्ष ६ या ७ लाख रुपये परिषद्की भेंट करता है। यह धन-राशि भारतकी स्थितिको देखते हुए अधिक है। इसके विरोधमें, परिषद्में, भारतीय प्रतिनिधियोंने आवाज उठायी, परन्तु व्यर्थ।

परिषद्के दूसरे सदस्य इसलिए ध्यान नहीं देते कि यदि भारतका चन्दा कम हो गया, तो उसकी पूर्तिका भार यूरोपके राष्ट्रोंपर पड़ेगा ! हम इस प्रवृत्तिको परिषद्के पुनीत उद्देश्यके लिए बड़ा अहितकर समझते हैं; क्योंकि यह प्रवृत्ति भारतको सन्तुष्टि और शान्तिका सन्देश देनेके स्थानमें उसे प्रतिस्पर्द्धाके लिए उत्तेजना देती है।

(४)

राजनीतिज्ञोंका कथन है कि परिषद्ने अबतक तीन बड़े महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं—लोकार्नो-समझौता, कैलॉग-समझौता और निःशस्त्रीकरण। लोकार्नो-पैक्ट परिषद्की अध्यक्षतामें निश्चय हुआ है। कुछ राजनीति-विशारदोंकी सम्मतिमें यूरोपीय युद्धोंके लिए यह बड़ा उत्कृष्ट और प्रभावपूर्ण प्रतिबन्ध है। निःशस्त्रीकरणमें परिषद् कहांतक सफल हुई है, यह वर्तमान स्थितिके अवलोकनसे जाना जा सकता है। जेनेवाके परिषद्-भवनमें राष्ट्रोंके प्रतिनिधि राष्ट्रीय सेना (National defence) की न्यूनताके विषयमें विचार करते हैं, सेना कम करनेके प्रस्ताव किये जाते हैं; परन्तु जरा जेनेवासे बाहर आकर राष्ट्रोंकी मनोवृत्ति तो देखिये ! सब राष्ट्र—सबल और निर्बल—अपनी सेनाओंको सुसज्जित और विशाल बनानेमें तन-मन-धनसे जुटे हुए हैं। इस कूटनीतिका क्या उद्देश्य है ? इन प्रस्तावोंका अर्थ क्या है ? क्या जेनेवा संसारकी आंखोंमें धूल झोंककर, उसे शान्तिका सन्देश देना चाहता है ! जेनेवाका यह अभिनय मिथ्याचरण और आडम्बर है

इस कपटाचारका कारण यही है कि एक राष्ट्रको दूसरे राष्ट्रपर विश्वास नहीं है। फ्रान्स अपनी सेनामें न्यूनता इसलिए नहीं करता कि कहीं जर्मनी धावा न बोल बैठे। संयुक्त राष्ट्र अमेरिकाकी सेना समस्त राष्ट्रोंमें सबसे अधिक शक्तिशाली है; ऐसी स्थितिमें अमेरिका कब चाहेगा कि उसकी सैनिक शक्तिमें कमी की जाय। जर्मनी—निःशस्त्र जर्मनी जब राष्ट्रोंकी यह मनोवृत्ति देखता है, तो उसे भी अपनी सेनाके बढ़ानेकी चिन्ता शुरू होने लगती है। निष्कर्ष यह है कि यूरोपका व्यवहार-शास्त्र प्रेम और अहिंसाके सिद्धान्तोंपर आश्रित नहीं है। उसके आचार-व्यवहारमें अविश्वास और भयका सन्निवेश अधिक मात्रामें है। इसलिए शान्ति स्थापित करनेके लिए आवश्यक है कि राष्ट्र 'आत्मशुद्धि' करें; पहले प्रत्येक राष्ट्रको अपनी मनोवृत्ति बदल देनी चाहिए।

(३)

अब हम भारत और परिषद्‌के सम्बन्धपर विचार कर लेना चाहते हैं। परिषद्‌का जन्म सन् १९१९ में हुआ था। भारत उसी समयसे परिषद्‌का सदस्य है। परिषद्‌के Covenant Act 3 के अनुसार परिषद्‌के सदस्योंके प्रतिनिधियोंकी असेम्बली होगी। भारत परिषद्‌का सदस्य तो है; परन्तु उसे अपना प्रतिनिधि भेजनेका अधिकार नहीं है। जो भारतकी ओरसे परिषद्‌में जाते हैं वे, यथार्थमें, भारत-राष्ट्रके प्रतिनिधि नहीं होते। क्योंकि उनका निर्वाचन भारत-राष्ट्र नहीं करता; वे एक प्रकारके भारतीय शासनके प्रतिनिधि होते हैं। यही नहीं, भारतीय शासन द्वारा मनोनीत प्रतिनिधि परिषद्‌के अधिवेशनोंमें अपनी स्वतन्त्र सम्मति भी प्रकट नहीं कर सकता। उसे अपने प्रभुकी आज्ञाका पालन करना पड़ता है। सामान्य प्रश्नोंपर प्रतिनिधि अपनी स्वतन्त्र सम्मति प्रकट करते हैं। कुछ विद्वान् राजनीतिज्ञोंकी अनुमतिमें भारतके लिए यह प्रतिनिधित्व बड़े गौरवकी बात है। उनका तो यहां तक कहना है कि भारतके लिए यह International Dominion Status (अन्तर्राष्ट्रीय औपनिवेशिक सत्ता) है। परन्तु ऐसा मानना या समझना भूल और अज्ञान है। क्योंकि जब परिषद्‌में भारतको समानताका पद ही प्राप्त नहीं, तब Dominion Status की बात ही कैसे उठ सकती है!

सर अतुल चटर्जी कई वर्षोंतक भारत सरकारकी ओरसे अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर सङ्घके सदस्य रहे हैं। सन् १९२७ ई० में जब सङ्घका सम्मेलन हुआ तो सर अतुल चटर्जीको उसका सभापति बनाया गया था। आजकल आप मजदूर सङ्घकी कार्यकारिणी समिति (Governing Body) के सभापति हैं। परन्तु परिषद्‌की कार्यकारिणी समिति (Executive Council) में कोई भी भारतीय प्रतिनिधि नहीं है! भारतवर्ष प्रतिवर्ष ७ लाख रुपये परिषद्‌की भेंट करता है, वह आरम्भसे उसका सदस्य है, चन्दा देनेवालोंमें उसका तृतीय स्थान है; परन्तु फिर भी उसका एक भी सदस्य कौंसिलमें नहीं है! क्या यह न्याय है? क्या यह राष्ट्रोंमें शान्ति स्थापित करनेका साधन है?

यह निस्सन्देह सत्य है कि भारतीय मजदूरोंकी दशा सुधारनेमें मजदूर सङ्घसे बहुत ही लाभ हुआ है, उसकी सहायता अमूल्य है।

परन्तु हम डा० पी० पी० पिल्लाई पी-एच० डी० के इस कथनसे सहमत नहीं हैं कि 'समष्टि रूपमें जेनेवा और भारतका सम्बन्ध दोनोंके लिए सन्तोषजनक रहा है।'

भारत और जेनेवाके सम्बन्धपर राजनीतिज्ञोंकी सम्मतिमें मत-भेद है। कुछ राजनीतिक विचारकोंकी सम्मतिमें परिषद् और भारतका सम्पर्क सन्तोषजनक नहीं है। ऐसे सम्बन्धसे भारतको जेनेवाके प्रति ग्लानि भी हो सकती है। परन्तु वे यह नहीं चाहते कि भारत परिषद्‌से सम्बन्ध-विच्छेद कर दे। कुछ नहीं तो परिषद्‌में जाकर भारतीय सदस्य लोकमतपर प्रभाव तो डाल सकेंगे। लखनऊ-विश्वविद्यालयके वायस-चान्सलर स्वनामधन्य विद्वद्वर डा० आर० पी० पराञ्जपे इस अन्तिम मतके समर्थक हैं।*

राजनीतिक क्षेत्रमें, जहांतक भारतसे सम्पर्क है, परिषद्‌का कुछ भी प्रभाव नहीं है। आज भारतवर्षमें राजनीतिक अशान्तिका भयावह राज्य है; परन्तु परिषद् इस अशान्तिको दूर करनेमें सहयोग प्रदान नहीं कर सकती। क्या परिषद्

* It will be making the greatest mistake in International sphere if our public men in a feeling of resentment try to resign from the League.

Dr. R. P. Pranjapye, The Leader 7 Dec. 1932

पञ्च बनकर भारतमें शान्तिकी स्थापना कर सकती है? प्रोफेसर लास्कीने बड़े जोरदार शब्दोंमें कहा है—

I should be prepared to have Great Britain state her case in relation to India before the League of Nations with an ent're confidence in the results, such as, being an Englishman, I do not have, when I am told by Englishmen, that we are in India for the benefit of India and by Indians that we are in India for the benifit of Great Britain.*

यथार्थ तो यह है कि स्वदेश पराधीन है; स्वतन्त्र राष्ट्र नहीं है। इसलिए कोई भी स्वतन्त्र राष्ट्र, वर्तमान युगमें, पराधीन देशकी सहायता करनेको तैयार नहीं हो सकता। यदि कोई राष्ट्र सहायताके लिए आवेगा, तो सबसे पहले उसकी यह इच्छा होगी कि वह उसपर अपना आधिपत्य करे! जिस दिन निर्बल राष्ट्रोंको उठानेमें शक्तिशाली राष्ट्र योग देने लगेंगे, वह दिन मानव-जातिके इतिहासमें विश्व-शान्तिका प्रथम दिन होगा।

(६)

यह उल्लेख करनेकी आवश्यकता नहीं है कि परिषद्का परम ध्येय विश्वमें शान्तिकी स्थापना करना है। इसके लिए दो प्रमुख साधन हैं; प्रथम्, निःशस्त्रीकरण और द्वितीय युद्ध-अवरोध।

इतिहास और आधुनिक परिस्थिति इन दोनोंकी वि-फलताको बतलाते हैं। जितनी अधिक चर्चा सेना कम करनेकी होती है, उतनी ही सेनाओंमें वृद्धि दृष्टिगोचर होती है। युद्ध रोकनेकी जितनी अधिक चेष्टा की जाती है, उतनी ही अधिक युद्धकी ज्वाला भड़कने लगती है। यह देखकर हमें कहना पड़ता है कि या तो परिषद् अशान्ति और युद्धके यथार्थ कारणोंको नहीं समझ पाया है, या वह उपयुक्त कारणोंको जानते हुए भी यथारीति उपचार करनेमें अशक्त है। इन दोनोंमें अन्तिम ही अधिक उपयुक्त है।

परिषद् अपने निर्णयको कार्यान्वित करनेमें अशक्त है। परिषद् संसारके राष्ट्रोंका सम्मेलन है। राष्ट्रोंसे पृथक् उसकी निजी सत्ता कुछ भी नहीं है। उसमें जो गुण और जो दूषण हैं, वे उसके निर्माता राष्ट्रोंकी देन हैं। राष्ट्रोंमें भी जो अधिक शक्तिशाली हैं, उन्हींके गुण और दोषोंका परिषद्पर विशेष प्रभाव पड़ता है। आजकल परिषद् साम्राज्यवादी-राष्ट्रोंके हाथकी कठपुतली बन गयी है; इसलिए उसमें जन-सत्ता-वाद-के लिए बिलकुल भी गुञ्जाइश नहीं। ऐसी स्थितिमें निर्बल राष्ट्रोंकी रक्षाका प्रश्न एक विकट पहेली है। डार्विनका 'Survival of the fittest'वाला सिद्धान्त, परिषद्में, अक्ष-रशः चरितार्थ हो रहा है। यह याद रखना चाहिए कि जहां निर्बलोंकी रक्षाका भार सबलोंकी महत्त्वाकांक्षापर छोड़ दिया जाता है, वहां शान्ति नहीं रहती। सबल निर्बलके शत्रु बन जाते हैं। यदि कौंसिलका निर्णय निर्बल राष्ट्रसे सम्बन्ध रखता है, तो उसको बाध्य होकर मानना पड़ता है; परन्तु जब कोई निर्णय शक्तिशाली राष्ट्रके प्रति होता है, तो वह उसे सगर्व ठुकरा देता है; परिषद् भी कुछ नहीं करती।

विगत महायुद्धके पश्चात् जर्मन-साम्राज्यका वैभव विनष्ट हो गया; जो कुछ बचा वह युद्ध-ऋण व करके रूपमें मित्र-राष्ट्रोंको दे देना पड़ा। जर्मनीको अपने उपजाऊ प्रान्त—जिनपर जर्मन जनसमुदायका जीवन निर्भर था—फ्रान्सको दे देने पड़े! आज उसकी दयनीय दशा देखकर मानव-हृदय द्रवीभूत हुए बिना नहीं रह सकता। यदि पाठक जर्मनीके कारुणिक दृश्यका दर्शन करना चाहते हों, तो वे 'विश्वमित्र' में प्रका-शित श्री डा० हेमचन्द्रजी जोशी डी० लिट्की 'यूरोप-यात्रा' लेख-मालाको पढ़ लें। यह है निर्बल राष्ट्रकी स्थिति।

अब जरा साम्राज्यवादकी मदिरामें उन्मत्त जापानपर दृष्टि डालिये। जापानने चीनके साथ जैसा व्यवहार किया वह आपसे छिपा नहीं है। मन्चूरियाके लिए जापानकी ममताने जो अभिनय किया, वह संसारने देख लिया है। चीनके साथ सरासर अन्याय हुआ है, यह भी सब जानते हैं। परिषद्ने क्या किया? क्या जापानका बहिष्कार किया गया? जापान-ने खुल्लम-खुल्ला परिषद्के 'समझौते' (Covenant) को अप-मानपूर्वक ठुकरा दिया, परिषद्ने उसकी रक्षाके लिए क्या किया? हां, परिषद्ने चीन-जापान-विवादकी जांच करनेके लिए लिटन कमीशन नियुक्त किया। कमीशनकी रिपोर्ट अभी

* Vide Prof La-ky's lecture on 'International Government and Sovereignty' delivered in 1926 at Geneva Institute of International Relations

हालमें प्रकाशित हुई है और आजकल उसपर जेनेवामें विचार हो रहा है।

चीन और जापानमें जो युद्ध हुआ उसका रिपोर्टमें निष्पक्ष विवरण है और उसका अवलोकन करनेपर पाठक यह अनुभव किये बिना न रहेंगे कि जब परिषद् विवादपर जेनेवामें विचार कर रही थी, तब जापानमें अधिकारीवर्ग अपनी सब शक्तिको मन्चूरियाके चूर करनेमें लगा रहे थे और चीनको कुचलनेके लिए प्रयत्न-शील थे। यहांतक कि जब राष्ट्र-परिषद्की कौंसिलमें इस सम्बन्धमें प्रस्ताव पास हो रहे थे कि जापानको मन्चूरियासे अपनी फौजें वापस कर लेनी चाहिएं और सेनाकी वापसी नियत समयतक समाप्त हो जाय (यही नहीं, ऐसे प्रस्ताव कौंसिलमें जापानके प्रतिनिधिकी सम्मतिसे पास किये जा रहे थे) तब भी मन्चूरियामें जापानी सेनाके अधिकारी अपनी फौजोंको वापस न कर यथार्थमें उनकी सीमाका विस्तार कर रहे थे।

क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि परिषद्में साम्राज्यवादका राज्य है? यथार्थमें "संसारमें युद्धकी मनोवृत्ति सर्वत्र व्यापक है, और जो जोर-शोरसे शान्तिके लिए बातचीत करते हैं वे ही युद्ध शुरू करने या जारी रखनेके लिए कमर कसे बैठे हैं। यही कारण है कि शान्ति परिषदें, महायुद्धके बाद, असफल रही हैं; यही कारण है कि जहां राजनीतिज्ञ निःशस्त्रीकरणके स्वप्न देखते हैं, वहां वे राष्ट्र, जिनके वे प्रतिनिधि हैं, युद्धके लिए खूब तैयारी करते हैं।" *

श्रीयुत एम० डी० अलटेकर महोदयका उपयुक्त कथन सर्वथा सत्य है। शान्ति सम्मेलन क्यों नहीं सफल होते? इसके कारणका उल्लेख आप इस प्रकार करते हैं :—

There are men notorious for their capacity to make extravagant claims for their respective interests, and they go to these confrences, not with a view to reduce such claims in the interest of peace but they go there with the delib rate intention of demanding more, and they were never men of peace because peace was really disturbed by the extravagance of claims they put forth.

* Vide M. D. Altekars 'War Mentality'—The Leader 9 Dec. 1932.

अन्तमें, योग्य लेखकने अपने War Mentality लेखकी समाप्ति इन शब्दोंके साथ की है। आप लिखते हैं कि "शान्ति केवल उन्हींको मिलेगी जो न केवल अपने लिए शान्ति चाहते हैं, प्रत्युत जो दूसरोंको भी शान्ति प्रदान करनेके लिए तत्पर हैं।"

(७)

विश्व-शान्तिके प्रसङ्गमें शान्तिके अनन्य उपासक महात्मा गांधीके सम्बन्धमें उल्लेख न करना अन्याय होगा। महात्माजी राष्ट्रीय होते हुए भी अन्तर्राष्ट्रीयताके समर्थक हैं। परन्तु उनकी राष्ट्रीयताकी भावनामें अपनी निजी विशिष्टता है। उनकी राष्ट्रीयता दूसरे राष्ट्रोंको पराधीन बनाना नहीं चाहती और न वह दूसरे राष्ट्रोंकी लूटपर अपना पोषण ही करना चाहती है। वह प्रत्येक राष्ट्रमें बन्धुत्वकी स्थापनाके पक्षपाती हैं। रंगूनकी एक नागरिक सभामें अभिनन्दनपत्रका उत्तर देते हुए महात्माजीने कहा था :—

'My mission is not merely brotherhood of Indian humanity. My mission is not merely freedom of India, though to-day it undoubtedly engrosses practically the whole of my life and whole of my time. But through realisation of freedom of India I hope to realise and carry on the mission of brotherhood of man.

My patriotism is not an exclusive thing. It is all-embracing and I should reject that patriotism which sought to mount upon the distress or the exploitation of other nationalities.' *

शान्ति और स्वाधीनताके लिए महिला अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् (Woman's International League for Peace and Freedom) ने अपने ४ जनवरी सन् १९२९ के सम्मेलनमें एक अपील प्रकाशित की। इस अपीलमें युद्धके घातक और अमानुषिक परिणामोंका दिग्दर्शन करानेके पश्चात् अन्तमें यह निवेदन किया गया था कि आपको नैतिक रूपमें या क्रियात्मक ढङ्गसे परिषद्की इस आन्दोलनमें सहायता करनी चाहिए। यह अपील महात्मा गांधीजीके 'यङ्ग इण्डिया' पत्रमें भी प्रकाशित हुई। गांधीजीने उसपर यह टिप्पणी लिखी :—

* Vide—Young India April 4, 1929 p.p. 107.

'I suggest to the friends of world's peace that the Congress in 1920 took a tremendous step towards peace when it declared that it would attain Swaraj by non-violent and truthful means. And I am positive that if we unflinchingly adhere to these means in prosecution of our goal, we shall have made the largest contributions to the world peace.' *

इन दो अवतरणोंसे यह स्पष्ट हो जाता है कि पूज्यपाद महात्माजीके विश्वबन्धुत्व और विश्वशान्तिकी भावना कितनी उच्च है। आपकी विश्वशान्ति असत्य और कूटनीतिकी अपेक्षा नहीं रखती।

अहिंसा और सत्य यह दो सिद्धान्त ही ऐसे हैं जिनको अपनानेसे राष्ट्रोंमें शान्तिका राज्य हो सकता है। जबतक राष्ट्र अहिंसाके महत्त्वको यथार्थरूपमें हृदयङ्गम न कर लेंगे तबतक निःशस्त्रीकरणकी समस्या सुलझ न सकेगी। तबतक व्यवहारमें सत्यताका सन्निवेश न होगा, कपट, कूटनीति और अविश्वासका अन्त न होगा, तबतक शान्तिकी बातें करना व्यर्थ है।

इस लेखमें हमने राष्ट्र-परिषद्का विवेचन किया है। आशा है, इससे पाठकोंको विचार करनेकी सामग्री मिलेगी। इस लेखमें हमने अपनी स्वतन्त्र अनुमति भी प्रकट की है। पाठकोंका उससे मतभेद हो सकता है। परन्तु हमारी स्थितिको यथार्थ रूपमें समझनेमें मतभेदसे कोई बाधा न पहुंचेगी, ऐसी आशा है। हम परिषद्को सर्वोच्च मानवी संस्थाओंमेंसे मानते हैं; उसका लक्ष्य अत्यन्त पवित्र और पुनीत है। परन्तु उसकी कार्य-पद्धतिके दूषण उसे अपने लक्ष्यसे च्युत करनेमें सहायक बन रहे हैं। यही कारण है कि परिषद्में नीति और न्यायके स्थानपर कूटनीति और अन्यायका बोलबाला है। हमें, ऐसी स्थितिमें, परिषद्के उज्ज्वल भविष्यमें सन्देह है।

* „ Young India March 21, 1929 p.p. 93.

फिल्म-कैमराके करिश्मे

डा० धनीराम प्रेम

जब आप सिनेमा देखने जाते हैं, तो आपके सामने कभी-कभी सिनेमाके श्वेत पर्देपर अनेक आश्चर्यकारी दृश्य दिखाये जाते हैं। कभी आप देखते हैं कि आपके सामने पर्देपर उत्ताल तरङ्गोंवाला महासागर फट गया, उसके बीचमें एक विशद मार्ग निकल आया और उसपर लगभग ६०० विशाल रथ सैकड़ों मानवोंको लेकर चलने लगे। ये दृश्य Ten Commandments (टैन कमाण्डमेण्ट्स) नामक फिल्ममें दिखाये गये थे। Metropolis (मेट्रोपोलिस) नामक फिल्ममें आपको सैकड़ों मञ्जिलके भवन, दस-दस प्रकारके एक ही सड़कपर मार्ग आदि दृश्य दिखाये गये थे। Hunchback of Notre-dame (हञ्चबैक आफ नोत्रदाम) नामक फिल्ममें सैकड़ों वर्ष पहलेके पैरिसके दृश्य, वहांका 'नोत्रदाम' नामक प्रसिद्ध गिर्जा आदि दिखाये गये थे। Trader Horn (ट्रेडर हार्न), Africa Speaks (अफ्रीका स्पीक्स) आदि फिल्म बनाये गये थे अमेरिकामें, परन्तु उनमें सारे दृश्य थे अफ्रीकाके। इसी प्रकार अमेरिकामें बनाये गये फिल्मोंमें भारतवर्ष, ईरान, पैरिस, बर्लिन आदिके दृश्य दिखाये जाते हैं, जब कहानीका सम्बन्ध इनमेंसे किसीके साथ होता है। कभी फिल्मोंमें हवाई जहाज जलकर गिरते हुए दिखाये जाते हैं, कभी रेलगाड़ी और मोटरकी टक्कर दिखायी जाती है, कभी किसी ऊंचे पर्वतसे दो शत्रुओंका लड़ते हुए गिरना दिखाया जाता है, कभी शेर और हाथियोंकी लड़ाई दिखायी जाती है, कभी पूर्वैतिहासिक समयके पशुपक्षी सजीवावस्थामें दिखाये जाते हैं। इसी प्रकार अन्य आश्चर्यजनक, कौतूहलवर्द्धक और कभी-कभी असम्भव बातें फिल्मोंमें दिखायी जाती हैं। आप, सम्भव है, अनेक घटनाओंपर विश्वास कर बैठते होंगे। कभी आप यह सोचते होंगे कि शायद अमेरिकाकी फिल्म-कम्पनियां अपने अफ्रीका, पैरिस आदिके दृश्य वहीं जाकर लेती होंगी, अथवा ताजमहल, पिरैमिड जैसे स्थानोंकी प्रतिलिपि बनानेमें करोड़ों रुपया व्यय करती होंगी। परन्तु बात यह नहीं है। इन सब करतूतोंका करनेवाला फिल्म-कैमरा होता है। वही हमारे सामने असम्भवको सम्भव करके दिखाता है। उसीके प्रतापसे हम संसारके आश्चर्यकारी दृश्य थोड़ेसे पैसे खर्च करके सिनेमाके पर्देपर देख सकते हैं।

कभी-कभी फिल्मोंमें, विशेषतया News-reel में एक दृश्य Slow motion (धीमी चाल) में दिखाया जाता है। जिस समय फिल्मका वह भाग लिया गया था, कैमरामैनने अपना हेण्डल तेजीसे चलाया था। साधारणतया एक मिनटमें ६० फीट फिल्म लिया जाता है। उस समय, मान लीजिए, १०० फीट लिया गया। जब वह सिनेमामें दिखाया गया, तो ६० फीट प्रति मिनटके हिसाबसे। इसी कारण उस भागका कार्य हमें बहुत धीमा मालूम होता है। कभी-कभी सिनेमामें फिल्म दिखानेकी चाल ऐसे अवसरपर ६० फीट प्रति मिनटसे कुछ कम कर दी जाती है, ताकि एक्शन और भी मन्द मालूम हो।

कभी-कभी आप देखते हैं कि एक रेलगाड़ी तीव्र गतिसे जा रही है। धीरे-धीरे वह अपनी चाल घटाती है और खड़ी हो जाती है। आप समझते होंगे कि ऐञ्जिनड्राइवरसे मिलकर फिल्मका वह भाग लिया गया होगा। बात ऐसी नहीं है। जब गाड़ी चलती रहती होती है, तो कैमरामैन पहले तो साधारण गतिसे फिल्म लेता है। फिर धीरे-धीरे उसकी गति बढ़ाता जाता है। पर्देपर आपको यह दिखायी देता है कि गाड़ी धीरे-धीरे चलकर खड़ी हो गयी है।

कभी-कभी आप देखते हैं कि एक व्यक्ति बैठा हुआ कुछ विचार कर रहा है। धीरे-धीरे उस व्यक्तिका चित्र धुंधला होता जाता है और उसके मस्तिष्कपर वे कल्पनायें चित्रित हो जाती हैं। यह दो प्रकारसे किया जा सकता है। पहले उस व्यक्तिका फिल्म लिया गया। मान लीजिए वह फिल्म ४० फीट है। बीस फीटतक तो एक्सपोजर ठीक दिया, फिर कुछ कम दिया, जिससे चित्र कुछ धुंधला हो जाय। ये २० फीट पीछेको फेर दिये और उनपर उस व्यक्तिके विचारोंके दृश्यका चित्र ले लिया। दूसरा प्रकार यह है कि दोनों

चित्र अलग-अलग लिये गये और छपाईके समय उन्हें एक ही पोजीटिव फिल्मपर सावधानीसे छाप दिया।

कुछ फिल्मोंमें आप देखेंगे कि एक इमारत गिर रही है। उसके बाद देखेंगे कि वही गिरी हुई इमारत स्वयं धीरे-धीरे उठ रही है और अपनी पूर्वदशाको प्राप्त हो गयी। या एक तैराक पानीमें ऊंचेसे कूदता है और फिर सन्नसे पानीमेंसे ऊपरकी ओर उड़ता हुआ चला जाता है। अर्थात् वह पहले जो कुछ करता है, उसीका उलटा दूसरे भागमें करता है। आप जानते हैं, यह सब असम्भव है, परन्तु कैमराके लिए यह सरल है। होता यह है—जब वह व्यक्ति पानीमें कूदता है या वह मकान गिरता है, तो उसका चित्र एक साथ दो कैमरों द्वारा लिया जाता है; एक तो साधारण रूपमें लिया जाता है, दूसरेका हेण्डल उलटा फिराया जाता है। पीछे इन दोनोंको जोड़ दिया जाता है।

कुछ फिल्मोंमें आपने देखा होगा कि एक व्यक्ति श्वेत वस्त्र धारण किये एक स्थानपर खड़ा है। एकाएक वह वहांसे गायब हो जाता है और कुछ देर बाद फिर वहां दिखायी देता है। यह बहुत सरल बात है, परन्तु इसमें इस बातका ध्यान रखना पड़ता है कि दोनों बार उस व्यक्तिकी स्थिति एक ही हो। इसके लिए एक साधारण कैमरामें उस व्यक्तिको पहले ही वस्त्रोंमें फोकस कर लिया जाता है और निशान बना दिये जाते हैं। दुबारा दूसरे प्रकारके वस्त्रोंमें जब उसका चित्र लिया जाता है तो उसे फिर फोकस करके देखा जाता है और उसकी स्थितिको पहलेके निशानोंसे मिला लिया जाता है। इस प्रकार एक तिलभरका अन्तर भी नहीं पड़ता।

कभी रात्रिके दृश्योंमें टिमटिमाती हुई गलियोंकी लालटेनें दिखायी जाती हैं और साथ ही उस गलीके मकानोंका चित्र भी बिलकुल स्पष्ट आता है। जो फोटोग्राफीके विषयमें थोड़ा भी ज्ञान रखता है वह यह अवश्य पूछेगा कि सड़ककी लालटेनोंके प्रकाशमें मकानोंका इतना स्पष्ट चित्र कैसे आ गया। यहां भी कैमरा अपनी चाल चलता है। दिनमें कैमरामैन उस सड़कका चित्र लेता है और कैमरेको उसी स्थानपर रहने देता है। जब सन्ध्या हो जाती है और लालटेनें जल जाती हैं, तो फिर वह एक बार उसी फिल्मको घुमाता है। इस बार उसमें सड़ककी जलती हुई लालटेनोंका चित्र भी आ जाता है और पूरा फिल्म देखनेपर यही विदित होता है कि वह फिल्म रात्रिमें लिया गया था।

कई प्रकारकी चालाकियां फिल्मको डैवलप करते समय तथा उसका पोजिटिव बनाते समय की जा सकती हैं। इसका एक उदाहरण यह है कि एक अमेरिकाका निवासी, जिसने भारतवर्ष कभी देखा भी नहीं, ताजमहलके सामने दिखायी देता है। यह इस प्रकार किया जाता है—आगरामें एक कैमरामैन ताजमहलका फिल्म लेकर अमेरिकाको निगेटिव भेज देता है। वहां उस निगेटिवकी बड़ी सावधानीसे जांच होती है। इसके बाद उस व्यक्तिका फोटो लिया जाता है और उसका निगेटिव ताजमहलके निगेटिवपर इस प्रकार छापा जाता है कि जिससे वह व्यक्ति ताजमहलके सामने दिखायी दे। इसमें बड़ी कार्य-कुशलता और सावधानीकी आवश्यकता होती है। इस प्रकारका कार्य करनेके लिए हाण्डशीगेल पद्धति Hand-chiegel Process से अधिक काम लिया जाता है। इसी प्रकार जब फिल्म काटा जाता है, उस समय भी कई प्रकारकी आश्चर्यजनक बातें फिल्ममें पैदाकी जा सकती हैं।

कई प्रकारके आश्चर्यजनक करतब उस अद्भुत प्रणाली द्वारा दिखाये जाते हैं, जिसे मेक-अप (Make up) कहते हैं। इसके द्वारा अनेक प्रकारके दोषोंपर पर्दा डाला जा सकता है। काले रङ्गको गोरा बना देना, मुखपरके मस्सेको अथवा सफेद दागोंको ढक देना आदि तो साधारण बातें हैं, जिन्हें हरएक व्यक्ति जानता होगा। इसके द्वारा भवें तिरछी बनायी जा सकती हैं। टेढ़े दांत सीधे किये जा सकते हैं, गालोंके गड्ढे भरे हुए बन सकते हैं, ठोड़ी बहुत मोटी हो, तो पतली दिखायी जा सकती है। मेक-अप द्वारा किसी भी प्रकारका रूप एक अभिनेता धारण कर सकता है। इस मेक-अप विद्यामें प्रत्येक अभिनेता या अभिनेत्री कुशल नहीं होते। स्वर्गीय लौन चैनी, जो अमेरिकाका अत्यन्त प्रसिद्ध अभिनेता था, 'मेक-अपका राजा' गिना जाता था। मेक-अप में जैसा कमाल उसने करके दिखा दिया वैसा बहुत कम अभिनेता कर सकेंगे। आप उसके वास्तविक चित्रको देखिये। फिर उसके उन चित्रोंको देखिये, जो उसने मेक अपके साथ खिंचाये थे। पृथ्वी और आकाशका अन्तर मालूम पड़ेगा। आप कभी विश्वास नहीं कर सकते कि यह वही व्यक्ति है।

और फिर खूबी यह कि प्रत्येक मेक-अप इस प्रकारका होता था कि वह किसी पहले मेक-अपसे मिलता ही न था। उसका सबसे सुन्दर काम Hunchback of Notre-dame (हञ्चबैक आफ नोत्रदाम) में हुआ था। उसमें उसके कृत्रिम दांत, कृत्रिम नाक, शरीरके बाल, पीठका कूबड़ मुंहकी उभरी हुई हड्डियां और पिचके हुए गाल इतने स्वाभाविक प्रतीत होते थे कि बस देखते ही बनता था, और मुंहसे सहसा 'वाह-वाह' निकल जाती थी। मृत्युसे पूर्व लौन चैनीने अपना पहला और अन्तिम बोलता फिल्म The Unholy Three (दी अनहोली थ्री) बनाया था। उसमें चैनी एक साथ कई प्रकारके कार्य करता था और तारीफकी बात यह थी कि उसने लगभग पांच प्रकारकी बोली उस फिल्ममें बोली थी। इसके लिए उसे काफी परिश्रम और अभ्यास करना पड़ा था।

कैमराके और भी आश्चर्यजनक करिश्मे हैं। बड़े-बड़े नगरों, सड़कों आदिके दृश्य, और, अनेक बार, दूसरे देशोंके जङ्गलों, पर्वतों और प्रसिद्ध इमारतोंके दृश्य भी स्टूडिओमें ही लिये जाते हैं। भारतीय कम्पनियां स्टूडिओमें इस प्रकारके दृश्य दिखानेमें समर्थ नहीं, क्योंकि उनके स्टूडिओ छोटे होते हैं और उनके पास इस प्रकारका सामान और सुविधा नहीं होती। परन्तु विदेशोंके स्टूडिओ बहुत बड़े होते हैं। उनमें पर्वत, जङ्गल, रेगिस्तान आदि सभी कुछ बना लिया जाता है। चार्ली चैपलिनके फिल्म Gold Rush (गोल्ड रश) के सारे दृश्य स्टूडिओके अन्दर ही लिये गये थे और यह सब कैमराकी ही कारीगरी थी कि वे सभी वास्तविक मालूम देते थे। चार्ली चैपलिनके नये फिल्म City Lights (सिटी लाइट्स) में जो सड़क बनायी गयी थी, वह स्टूडिओके अन्दर ही बनी थी। तख्तों, कार्डबोर्ड और कपड़ेसे इस प्रकारके सारे दृश्य बनाये जा सकते हैं। स्टूडिओमें हरएक नगरकी-सी सड़कें बनायी जा सकती हैं, परन्तु वे एक ही दीवारकी होती हैं। उनके बाहर कुछ भी नहीं होता। खिड़कियों आदिके पीछे रंगे हुए पर्दोंके दृश्य ही दीखते हैं। इस प्रकारकी सड़कें बनाकर फिल्म लेनेमें बड़ी आसानी होती है; क्योंकि वास्तविक सड़कपर राहगीरोंका नियन्त्रण नहीं हो सकता। पर स्टूडिओकी सड़कपर केवल कम्पनीके आदमी ही राहगीर बनकर चलते हैं। दूसरा लाभ यह होता है कि स्टूडिओकी सड़कोंके ऊपर बड़े-बड़े आर्क लैम्प लगाकर इच्छित रूपसे प्रकाश किया जा सकता है, ताकि सभी दृश्य अच्छी तरह लिये जा सकें। वास्तविक सड़कोंपर यह नहीं किया जा सकता। तीसरे, स्टूडिओमेंसे सारा सामान लेकर वास्तविक सड़कपर ले जाना बहुत असुविधाजनक होता है।

Trader Horn (ट्रेडर हार्न) आदि फिल्मोंमें कई आश्चर्यजनक दृश्य दिखाये गये हैं। कहीं शेरों और मनुष्योंकी लड़ाई, कहीं हाथियोंके झुण्डों द्वारा एक ग्रामका नष्ट-भ्रष्ट कर देना, कहीं नाना प्रकारके पशुओंके अद्भुत कार्य। आप समझते होंगे कि ये सब वास्तविक दृश्य हैं और सब अफ्रीकामें जाकर ही लिये गये होंगे। आपको आश्चर्य होता होगा कि ये जङ्गली पशु डाइरेक्टरकी इच्छाके अनुसार जैसा चाहे वैसा कार्य करते होंगे। वास्तवमें यदि ये सब बातें सत्य हों, तो आश्चर्य होना ही चाहिए। परन्तु ये बातें सत्य नहीं हैं। ये सब कैमरेकी कारस्तानी हैं। कुछ दृश्य तो अफ्रीकामें जाकर लिए जाते हैं, परन्तु अधिकांश स्टूडिओमें ही ले लिए जाते हैं। इन दृश्योंके लिए सरकसके शेर, हाथी आदि पशुओंकी आवश्यकता होती है। उन्हींके द्वारा सारे कृत्य कराये जाते हैं और उन्हें अफ्रीकामें लिए गये वास्तविक दृश्योंके साथ इस प्रकार मिलाया जाता है कि सारा फिल्म वास्तविक दृश्योंसे भरा हुआ प्रतीत होता है।

किसी फिल्ममें आपको एक व्यक्ति जेलखानेमें दिखाया जाता है। वह व्यक्ति जेलरसे बहुत डरता है। इतनेमें ही जेलर उधर आता है। वह व्यक्ति जेलरको देखता है। एकाएक उसे एक जेलरके स्थानमें अनेक जेलर खड़े हुए या घूमते हुए दीखते हैं। यह किस प्रकार किया जाता है? जेलरका फिल्म एक प्रिज़्म (Prism) के द्वारा लिया जाता है, जो एक जेलरके अनेक जेलर बना देता है। इस प्रकारकी फोटोग्राफीको composite shot कहते हैं।

कभी आप फिल्ममें देखते हैं कि एक पहाड़पर दो व्यक्ति लड़ रहे हैं। वह पहाड़ बहुत ऊंचा है। उसके नीचे एक जलाशय है। लड़ते-लड़ते दोनों व्यक्ति पहाड़के उस किनारेपर आ जाते हैं, जिसके नीचे जलाशय है। कुछ देर बाद लड़ते हुए वे दोनों जलाशयमें गिर जाते हैं। उस समय आपके होश गायब हो जाते होंगे।

आप समझते होंगे कि वास्तवमें दोनों इतनी ऊंचाईसे पानीमें गिर पड़े हैं और उन्हें गहरी चोट आयी है, या दोनोंकी अथवा एककी मृत्यु हो गयी है। परन्तु बात ऐसी नहीं है। जब तक दोनों लड़ते हुए किनारेपर आते हैं, तब तक कैमरा उनका फिल्म लेता रहता है। फिर कैमरा बन्द हो जाता है। वे दोनों व्यक्ति वहांसे हट जाते हैं। उन दोनों व्यक्तियोंके पुतले (dummies)बनाये जाते हैं, जिन्हें बिलकुल वैसे ही वस्त्र पहनाये जाते हैं। उन व्यक्तियोंके स्थानपर ये पुतले पानीमें गिरा दिये जाते हैं और कैमरा उस समय उनका फिल्म ले लेता है। पर्देपर सिलसिला मिलनेपर यह बात विदित नहीं होती। इसीके साथ शायद आप एक बात और जानना पसन्द करेंगे। फिल्मोंमें जो लकड़ीकी बहुमूल्य चीजें तोड़ी जाती हैं, वे वास्तवमें लकड़ीकी बनी हुई नहीं होतीं। प्लास्टरसे असली चीजकी प्रतिलिपि बनायी जाती है और वही तोड़नेके काममें आती है।

अनेक फिल्मोंमें दूसरे देशोंकी बहुमूल्य प्रसिद्ध इमारतें दिखायी जाती हैं, यद्यपि कैमरामैन कभी उस देशकी सीमाके भीतर नहीं गया। कभी-कभी आप एक मकान देखते हैं, जिसके ऊपर वर्षा हो रही है और कभी-कभी बिजली चमककर उसे प्रकाशित कर देती है। आप समझते होंगे कि प्रकृतिने डाइरेक्टरके साथ फिल्म लेते समय सहयोग किया होगा। यदि ऐसा हो सकता, तो क्या ही अच्छी बात थी। परन्तु प्रकृति इतनी सहृदय और सहयोगिनी नहीं है। इसके लिए डाइरेक्टरको अपने मित्र कैमराकी सहायता लेनी पड़ती है। यह काम मौडल (Model) बनाकर किया जाता है। साधारण रूपमें, एक बंगलेका छोटा-सा मौडल बनाया जाता है। उसके भीतर बिजलीके बल्ब लगा दिये जाते हैं। ऊपर छेद किये हुए नलोंके टुकड़े लिये जाते हैं। इस बंगलेका फिल्म बिलकुल पाससे लिया जाता है और उस समय नलोंमें होकर पानी दौड़ाया जाता है, जिससे वर्षाका आभास होता है। बिजलीका बल्ब कभी-कभी एकाएक जला दिया जाता है, जो बिजलीकी चमकका काम देता है।

मान लीजिये डाइरेक्टरको ताजमहलका दृश्य लेना है। पूरा ताजमहल बनानेमें करोड़ों रुपया व्यय होगा। इसलिए डाइरेक्टर ताजमहलके मिले भागका एक मौडल लगभग चार गज ऊंचा बनवाता है। एक चित्रकार ऊपरके भागको एक शीशेपर पेण्ट करता है। उस शीशेका निचला भाग खाली होता है, जिसमें होकर मौडल दीखता है। इन दोनोंका मेल इस प्रकार किया जाता है कि मौडल और शीशेका चित्र दोनों मिलकर पूरा ताजमहल बन जाता है। इस शीशेका फिल्म लिया जाता है। इस प्रणालीका नाम ग्लास शाट (Glass-shot) है। इसमें एक कमी यह है कि इसके सामने किसी व्यक्तिको अभिनय करते हुए नहीं दिखाया जा सकता।

जर्मनीमें इस प्रणालीको और भी परिष्कृत रूप दिया गया है और नयी प्रणालीका नाम 'शूफ्टान प्रौसेस' (Schufftan Process) रखा गया है। Metropolis फिल्ममें इस प्रणालीके अनुसार कार्य किया गया था। इसमें 'ग्लास-शाट' प्रणालीसे इतना अन्तर रहता है कि इसमें शीशेपर चित्र खींचनेके बजाय एक दर्पणमें ऊपरके भागका मौडल बनाकर उसका प्रतिबिम्ब फिल्ममें लिया जाता है। स्टूडिओके बाहर भी ऐसे दृश्य लिये जा सकते हैं, परन्तु प्रकाशकी कठिनाइयां मार्गमें आकर काम बिगाड़ देती हैं।

कैमराके करिश्मे अनेक हैं। सभीका वर्णन करना यहां सम्भव नहीं है। जो कुछ लिखा गया है, उसीसे आप जान सकते हैं कि फिल्म कैमरा आधुनिक आश्चर्योंमेंसे एक है।

———

सम्भार

तुम्हारी सुन्दरताका भार !

कितना गुरु है सजनि, कांप उठता है तन सुकुमार

अनोखी सुषमाका आगार !

*　　*　　*　　*　　*　　*　　*

रजनीकी भीगी अलकें जब बरस पड़ीं अनजान
भीग गया सौरभका अञ्चल ज्योत्स्नाका परिधान
स्वप्नलोककी मधुबालाके मलय गीतपर लाद
बेसुध हो सोची हो—है कितना पागल आह्लाद

अरे ! कितना भोला व्यापार !

प्राचीके आंगनमें जब किसलयकी मृदु मुसकान
छा जाती है अरुण-वरण अधरोंका बन उपमान
अलस कमलिनीकी पलकोंमें यह सुन्दर संभार
खेल रहा है यौवनकी मदिराका बन अभिसार

अरे ! कितनी अल्हड़ मनुहार !

सुकुमारी ! यदि नहीं संभलता उन्मद तन सुकुमार
रूप-राशि-संभार, अरे ! सुन्दरताका यह भार
तो मेरी कवितापर रख दो यह सौन्दर्य अपार
पुलकित होकर ढोवेगी यह अखिल साधना-सार

तुम्हारी सुन्दरताका भार !

—रामेश्वर शुक्ल 'अञ्चल'

एक लड़का, एक लड़की

श्री धर्मवीर एम० ए०

एक तुर्क था और एक अरब। एक लड़का था, दूसरी लड़की। परन्तु मैं समझती हूं कि उनकी आत्मायें एक-जैसी थीं और मुझे उनसे प्रेम था। उनके लिए मैं अपने अन्दर एक स्वाभाविक लगाव और करुणाजनक आदर-भाव अनुभव करती हूं।

इनमें एकके साथ मिलनेका सुयोग मुझे महायुद्धके आरम्भमें हुआ। सरदीका मौसम था। साढ़े चार बजेसे ही अंधेरा छाना शुरु हो गया। तुर्कीके पास मैं ट्रामसे उतरी। मेरे साथ फलोंके कुछ डिब्बे थे और मैं हैरान थी कि इनको उठवाकर घर तक ले जानेका क्या इन्तजाम करूं कि इतनेमें ट्रामसे उतरनेवाले स्त्री पुरुषोंकी भीड़में मुझे दो छोटे छोटे नङ्गे पांव नजर आये जो किसी बालककी हथेलियोंके बराबर थे। एक बारीक-सी आवाज निकली—"तरजुमान!" कोई अखबार-फरोश लड़का अखबार बेच रहा था। एका-एक गुजरती हुई ट्रामके प्रकाश और मार्गके अंधेरेके दर्मियान मेरी दृष्टि आवाज लगानेवालेपर पड़ी। यह एक छोटा-सा लड़का था जिसके गोल-से पीले चेहरेपर चुप हो जानेके बाद भी आवाज लगानेका असर बाकी रहता था। जब मैंने उसको कन्धेसे पकड़कर ठहरा लिया तब उसकी निर्बलता और सुकुमारताने मेरे हृदयमें एक असाधारण समवेदना उत्पन्न कर दी।

"अरे बालक, क्या तुम मेरी ये चीजें उठाकर ले चलोगे?"

"लेकिन मैं तो अपने अखबार बेच रहा हूं जी!"

मैंने उसे बताया कि मेरा काम करनेमें उसे अखबार बेचनेसे ज्यादा फायदा होगा। इसपर उसने अपने अखबार बगलमें दाब लिये और सभी डिब्बोंको अपने छोटे-छोटे कमजोर हाथोंमें जमा करनेका प्रयत्न किया। फलोंके बड़े-बड़े डिब्बे और उसके नन्हे-नन्हे हाथ देखकर मुझसे रहा न गया और कुछ डिब्बे मैंने भी उठा लिये। वह आगे-आगे चलने लगा और मैं उसके पीछे-पीछे। टाउन-हालके प्रकाशमय भवनसे गुजरकर जब हम एक अंधेरी गलीमें आ गये जिसकी तरफ हवाका रुख था, तब मैंने अनुभव किया कि लड़केको साथ लाकर मैंने भारी भूल की है और असबाब को खुद उठाकर अकेले चले आना मेरे लिए इससे कहीं आसान था। इसके साथ ही, चलते-चलते, उसके नङ्गे सिरका मेरे साथ छू जाना और उसकी वह तेज रफ्तार जिसमें उसके नन्हे-नन्हे पांव ठण्डे पत्थरोंपरसे उचटते चले जाते थे, मेरे हृदयमें मातृत्वका भाव जागरित कर रहे थे। इस भावमें शोक और हर्ष दोनों मिले हुए थे। मैंने पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है?"

"रुस्तम।"

"तुम्हारा घर कहां है?"

"शाहजादा बाशीमें।"

"तुम्हारी मां है?"

"हां, है।"

"भाई, बहनें?"

जरा सोचनेके बाद वह ऊंची आवाजमें गिनने लगा—"एक, दो, तीन।"

"कोई बड़ा भाई?"

उसने अपना सिर हिलाकर कहा—"नहीं, सब छोटी हैं। मैं सबसे बड़ा हूं। ये सब लड़कियां हैं। एक तो अभी दूध पीती है।"

"और तुम्हारे पिता?"

"पिछले साल वह लड़ाईमें गये, परन्तु उसके बाद उनकी कोई खबर नहीं आयी।"

"क्या तुम्हारी मां कुछ काम करती है?"

"अजी, वह काम कैसे कर सकती हैं? वह तो बीमार हैं।"

"उसकी सेवा कौन करता है? मेरा कहना है कि तुम-सबकी देख-भाल कौन करता है?"

उसके पांव गुस्सेके साथ ठण्डे पत्थरोंपर पड़े और वह चकित एवं भग्न-हृदय-सा खड़ा हो गया। उत्तरी वायुकी सायं-सायंका मुकाबला करते हुए उसने अपनी नन्ही-सी भर्रायी हुई आवाजको पूरे जोरसे बुलन्द किया और आश्चर्यकारी बल एवं अभिमानके साथ बोला—"क्या मैं अपनी मां की देखभाल नहीं कर सकता ?"

उसकी इस बातने मेरे हृदयके टुकड़े-टुकड़े कर दिये और यद्यपि मेरी आंखें आंसुओंसे तर थीं, तो भी मैंने हर्ष सूचित करते हुए कहा—"अच्छा, मुझे बताओ तो, तुम किस प्रकार मां की देख-भाल करते हो।"

इसके उत्तरमें उसने मुझे बताया कि वह अखबार बेचा करता है। प्रातःकालको "तसवीर" नामका पत्र बेचता है, जिसकी बिक्रीसे उसके लिए पांच प्यास्तर* बच जाते हैं। जब उसने अपने नफेका जिक्र किया तब तो मेरे मुखकी ओर देखने लगा कि मुझपर उसकी इस असाधारण कारगुजारीकी बात सुनकर क्या प्रभाव पड़ा है। तीसरे पहर वह मजदूरी करता था और इस तरह कोई सात प्यास्तर कमा लेता था और फिर शामको वह "तरजुमान" बेचा करता था। उसकी दैनिक आय पन्द्रहसे बीस प्यास्तर तक थी। क्योंकि उन दिनों एक रोटीकी कीमत तीन प्यास्तरसे ज्यादा न थी इसलिए यह अच्छी खासी सन्तोषजनक मालूम होती थी। परन्तु जब वह मुझे यह बातें सुना रहा था तब उसका नन्हा-सा सिर अपने आपको मेरे सिरसे भी ऊंचा अनुभव-कर रहा था।

एक ओर उसके नन्हे-नन्हे पैरों और दूसरी ओर ठण्डे पत्थरोंका ख्याल मुझे रह-रहकर आता था। मैंने एका-एक पूछा—"रुस्तम, तुम्हारे पास जूता नहीं है ?"

वह हंस दिया। वृद्ध लोगोंके समान वह जीवनपर हंसना सीख चुका था।

अरे, क्या जीवित रहनेके लिए ऐसी चीजोंकी भी आवश्यकता है ?

उसने कहा—"हमारे हमसायेने मुझे एक जूता दिया था। परन्तु मैं उसे पहनकर दौड़ नहीं सकता। इसके अलावा हर वक्त पहननेसे वह टूट जायगा, यह भी डर है। इसलिए मैंने उसे अपनी पेटीमें लगा रखा है।"

मैंने सोचा कि देखूं तो सही किस जूतेके टूट जानेका उसे इतना ख्याल है। अतएव मैंने झुककर उसकी पेटीपर नजर डाली। लकड़ीकी दो बड़ी-बड़ी खड़ाऊं उसकी पेटीमें इस तरह लटक रही थीं जैसे दो रिवाल्वर लगे हों। मेरी तरफ देखकर वह हंस पड़ा। उसकी हंसीमें कुछ ऐसी बात थी जिससे उसके मुखपर अनुभूति और परिपक्वताकी झलक प्रकट होने लगी। इससे उसका चेहरा सुन्दर प्रतीत होने लगा।

इतनेमें हम घर पहुंच गये। मैंने उससे अन्दर आनेको कहा और बताया कि मेरे भी उसके जैसे बच्चे हैं। एक क्षण तक वह सोचता रहा। फिर एक निर्णायक ढङ्गसे उसने अन्दर आनेसे इनकार कर दिया। वह लोगोंके यहां नहीं आया करता था। इसके अतिरिक्त आज रात उसे और भी काम था। उसने कहा कि मैं फिर आऊंगा। वह अपनी प्रतिज्ञाका पक्का मालूम पड़ता था क्योंकि मैंने देखा कि जानेके पहले उसकी काली आंखें मेरे घरके दरवाजेको पहचाननेका प्रयत्न कर रही हैं। वह जाने लगा तब मैंने उसके सिरपर स्नेहपूर्वक हाथ फेरा। कृतज्ञता-प्रदर्शनार्थ इसका उत्तर उसने अपनी आंखों द्वारा दिया।

ज्यों-ज्यों मेरे और उसके बीच फासला बढ़ता गया "तरजुमान" की नन्ही और तेज आवाज धीमी पड़ती गयी।

बहुत दिनों तक मैंने रुस्तमकी प्रतीक्षा की, पर कई दिन निकल जानेपर भी वह न आया। ज्यों-ज्यों रोटीकी कीमत बढ़ती गयी त्यों-त्यों रुस्तमका ख्याल मेरे दिलमें टीसें मारने लगा।

(२)

शाम-प्रदेशमें निर्धनता और दुर्भिक्षके दृश्योंने रुस्तमसे हुई भेंटको एक बार फिर मेरे मनमें ताजा कर दिया—उन भयानक दिनोंमें उसकी आयु मुश्किलसे नौ सालकी होगी और वह चार प्राणियोंको पाल रहा था। मैंने सोचा, पता नहीं अब उसकी वह सुन्दर आंखोंवाला वीरोंका-सा मुख निर्धनोंके कब्रिस्तानमें किसी गुमनाम कब्रमेंसे आकाशकी ओर देखते हुए हृदय-विदारक प्रश्न कर रहा है। परन्तु क्या उसके नन्हें-से निर्बल शरीरमें छिपा उसका बलवान हृदय उस समय तक मृत्युको प्राप्त हो सकता है जब तक उसकी माता और उसकी छोटी बहनें अनाहारके कष्ट भोग रही हैं ?

* एक प्यास्तर = एक पैसा

अपने छोटे मित्रोंमें सबसे अधिक प्रिय मुझे रुस्तम था; परन्तु 'शाम'में एक छोटी-सी अरब लड़की आयी। मेरे हृदयमें रुस्तमके साथ ही वह भी बैठ गयी।

महायुद्धके अन्तिम वर्षमें एक बार मैं पहाड़ी प्रदेशके दौरेसे वापस आ रही थी। बीमारी और दुर्भिक्ष उत्तरोत्तर वृद्धिपर थे और लोगोंके दल-के-दल देशको छोड़ रहे थे। भूखे बच्चे, जिनके चेहरोंकी हड्डियां निकल आयी थीं और रङ्ग पीला होकर हरा-सा हो गया था, जिनकी आंखें अपनी कोटरोंके अन्दर धंस गयी थीं और जिनके मुख भूखके मारे खुल गये थे, सैकड़ोंकी तादादमें आवारा फिर रहे थे और "हम भूखे हैं!" चिल्ला रहे थे। उनकी आवाज इतनी हृदय-विदारक थी कि मुझे मनुष्यकी बेकसीपर लज्जा आने लगी।

पहाड़ोंकी शुद्ध हवामें नीबू और सन्तरेके फूलोंकी सुगन्धि फैली हुई थी। यह हवा दिमागमें नशा-सा ला रही थी। आकाश, वायु, वृक्ष—सबने मुझपर अपने रङ्ग और खुशबूका जादू किया। पर बच्चोंकी मुसीबत देखकर हृदय फटा जाता था—वे बच्चे जिनकी पीठें खम खाये हुई थीं, जिनके बाल बिखरे हुए थे, जिनके चेहरे कुरूप और आंखें निस्तेज हो गयी थीं—वे बच्चे जो मृत्युकी प्रतीक्षा कर रहे थे। ऐसा मालूम होता था कि प्रकृतिका सौन्दर्य हमपर मखौल उड़ा रहा था।

मैं 'बेरोत'में आयी तो मेरे दिलपर एक बोझ-सा था। युद्धने हमारे हृदयोंमें कष्टकी अनुभव-शक्ति उत्पन्न कर दी थी और मैं भूल गयी थी कि इस संसारमें मेरा कोई पृथक् अस्तित्व भी है। मैं कष्ट-पीड़ितोंमें मिल गयी थी और अपने आपको उन्हींमें गिनने लगी थी।

बाजारमें गाड़ी एका-एक रुक गयी। मैंने ख्याल किया कि शायद घोड़े भूखे हैं, इस कारण एकदम ठहर गये हैं। परन्तु जब मैंने देखा कि कोचवान पूरे जोरसे लगाम खींच रहा है तब जल्दीसे बाहर निकल आयी। एक स्त्री गाड़ीके सामने पड़ी थी। सबसे पहले मेरी दृष्टि उसके सूजे हुए लाल-पीले पांवपर पड़ी। फिर मैंने उसका उतरा हुआ चेहरा देखा, जिसपर उसने एक लाल रङ्गका रूमाल बांध रखा था। उसकी आंखें बुरी तरहसे बन्द हो रही थीं। उसकी टांगोंपर तीन छोटे-छोटे बच्चे नवजात बिलौटोंके समान सरसरा रहे थे। एक उनमेंसे एक वर्षका था। दूसरेकी आयु तीन वर्षसे ज्यादा न होगी। उनके मुंह बन्दरोंके बच्चोंके समान थे और वे अपनी चौंधियाई हुई बीमार आंखोंसे लोगोंकी तरफ घूर-घूर कर देखने लगते थे। करीब पांच बरसकी एक लड़की, जिसके सिरपर लाल-सा कपड़ा बंधा हुआ था और जिसका शरीर एक फटे हुए नीले लहंगेसे ढका हुआ था, उस स्त्रीपर झुकी हुई थी और उसके हाथ मल रही थी।

बाजारके दोनों तरफ छोटे-मोटे दूकानदार शान्त बैठे इस दृश्यको देख रहे थे। भूखे बच्चोंकी आवाजें अभी तक मेरे कानोंमें गूंज रही थीं। मैं जल्दी-जल्दी बाजारमें किसी रोटीवालेकी दूकान ढूंढ़ने लगी। मैंने ख्याल किया कि निश्चय ही यह औरत भूखसे मर रही है, क्योंकि शहरमें इस प्रकारकी घटनायें आम थीं। वापस आकर मैंने रोटियां उस छोटी लड़कीके हाथमें दे दीं। परन्तु मैंने देखा कि गिरी हुई औरतका चेहरा न खानेके कारण उतना पीला नहीं मालूम होता। लड़कीने, जिसके लाल रूमालकी ओटमें दो मोटी-मोटी काली आंखें थीं और जिसका पीला मुख एक बुढ़ियाकी तरह मालूम हो रहा था, पहले मेरी ओर देखा और फिर रोटियोंकी तरफ। तत्पश्चात् उसने एक अमानुषिक स्वरमें कुछ कहा।

जिस भाषामें वह बोल रही थी मैं उससे अपरिचित थी। बातचीत करते हुए भी वह अपनी माताकी कनपटियों और कलाइयोंको बड़ी गम्भीरतासे मलती रही। अन्तमें पीछेसे एक मनुष्यने फ्रांसीसी भाषामें कहा—"श्रीमतीजी, आप घबरायें नहीं, इस स्त्रीको ऐसे ही बीमारीका दौरा हो जाया करता है।"

मैंने मुड़कर देखा तो एक मोटा-सा दूकानदार मेरे पास खड़ा था। उसने रोटियां अपने हाथमें ले लीं और कहने लगा—"इस औरतको मिर्गीका रोग है। यह अक्सर इसी तरह जमीनपर गिर पड़ती है, जैसे मर गयी हो, और अगर इसकी लड़की न होती, तो वास्तवमें यह कभीकी मर गयी होती। यह लड़की ही इन सबकी सेवा करती है। रोटी मुझे दे दीजिये। जब इसकी माता होशमें आ जायगी तब लड़की उसे रोटी खिला देगी। (एक लड़केकी ओर मुंह करके) अहमद, थोड़ा-सा पानी लाना।"

लड़कीने मेरी तरफ देखा और सिरके इशारेसे मानो दूकानदारकी बातका समर्थन किया। उसकी काली आंखें

मेरी आंखोंसे मिलीं। उनकी नरमी और मिठासने मेरे दिलको पिघला दिया। इस मैले और बीमारीसे भरे हुए हाथोंवाली रुग्ण लड़कीकी आत्मा एका-एक अपने सारे गुप्त सौन्दर्यके साथ मेरी आंखोंके सामने प्रकट हो गयी।

× × × ×

इस रात एक खानकाहके खुले बालाखानेपर बैठकर मैं खजूरोंकी हरी-हरी छत्रियोंके ऊपर पहाड़की सफेद चोटियोंकी तरफ देख रही थी। एक ओर समुद्र और आकाशकी नीलिमा क्षितिजके एकान्तसे निर्जनतामें धीरे-धीरे आकर मिल गयी

शाम प्रदेशका तारकालोकित आकाश, ठण्डक और प्रकाशसे विह्वल वायु, हमारे सिरोंपर झुकी पड़ती थी। दो कुमारियां लम्बे-लम्बे काले कपड़े और सफेद-सफेद टोपियां पहने हुए बरामदेमेंसे गुजर गयीं। मैं शोकके अन्धकारमें मग्न चुपचाप वहीं बैठी रही।

बागमें बुलबुलकी एक ललना कुछ विचित्र-सी आवाजमें गा रही थी—"हे चन्द्र, हे चन्द्र......" उसकी लम्बी तानें अनन्तके छोरको छूती मालूम होती थीं। दूसरी ओर सन्तरेके वृक्षोंके झुण्डमेंसे गुजरनेवाली हवा मनुष्यके हृदयको पार करके बह रही थी। मुझपर भी इनका प्रभाव हुआ। कष्ट और दुर्भाग्यके इस उपाय-रहित रोगका मुझपर कोई प्रभाव न रहा। मैंने कहा—"इस रोगका इलाज मृत्यु ही करेगी।" इस नये विचारके साथ ही मेरे सीनेमें पड़ी एक पक्की गिरह आपसे आप खुल गयी। मैं सन्तुष्ट हो गयी। मेरे मुंहसे ये शब्द निकले—"एक समय आयगा कि इस आकाशकी दूसरी ओर रुस्तम और वह छोटी लड़की हाथमें हाथ दिये प्रसन्न-चित टहला करेंगे। तब उनकी माता और बहनें उनकी मददकी मोहताज न होंगी।" *

* तुर्की कहानी।

उनका जाना

आह ! चले ही जायेंगे क्या ? सचमुच मुझे अकेली छोड़।
विमल प्रेमके इन कोमल पौधोंको निष्ठुरतासे तोड़॥

जायेंगे ? यह कैसे होगा ! उन्हें नहीं जाने दूंगी।
रुको निराशे ! तुम्हें न अपने मनमें मैं आने दूंगी॥

उन्हें रोकनेकी आशाका दीप जलाये बैठी हूं।
बाधाके स्वरूप पथपर ये नेत्र बिछाये बैठी हूं॥

लोक, लाज, कुल-मान, प्रतिष्ठा सभी भुलाये बैठी हूं।
कैसे जावेंगे ? प्राणोंकी होड़ लगाये बैठी हूं॥

देख सकेंगी क्या ये आंखें, चुप होकर उनका जाना।
उगते ही उगते रविका काले बादलमें छिप जाना॥

खिलनेसे पहले ही कोमल कलित कलीका मुरझाना।
आह ! रोक लो, सह न सकूंगी इस प्रकार उनका जाना॥

—सुभद्राकुमारी चौहान

अन्तर्राष्ट्रीय यहूदियोंका प्रतिहिंसात्मक प्रलय-सङ्गठन

इलाचन्द्र जोशी

Therefore, saith the Mighty One of Israel, Ah, I will ease me of mine adversaries and avenge me of mine enemies.
—Isaiah I. 24.

And I commanded and search hath been made and it is found that this city of old time hath made insurrection against kings and that rebellion and sedition have been made therein.
—Ezra IV. 19.

फ्रान्सकी राज्यक्रान्तिके समयसे लेकर आजतक संसारके राजनीतिक रङ्गमञ्चपर निरन्तर अशान्ति, उत्पात तथा उथल-पुथलकी ताण्डव-लीला प्रलयङ्कर, रणरगित तालमें अभिनीत होती चली आयी है। पर कौन सूत्रधार किन अभिनेताओंको किस उद्देश्यसे इस ओर आकर्षित करके नचा रहा है, बहुत कम लोग इस रहस्यमय तथ्यसे परिचित हैं।

अधिकांश लोगोंकी धारणा है कि वर्तमान युगकी राजनीतिके हर्ता-कर्ता निर्धन श्रमजीवी हैं। पर बाह्य कोला-हलका गहन आवरण भेदकर जो लोग शान्त तथापि सुतीक्ष्ण दृष्टिसे विश्व-क्रान्तिके मर्ममें आंखें गड़ानेमें समर्थ हैं, वे जानते हैं कि वास्तविक तथ्य बिलकुल इसके विपरीत है। निर्धन श्रमजीवी नहीं, अमित धनशाली पूंजीपति अपने अपार अर्थबलसे रहस्यमय उपायों द्वारा कर्णकारोंको अपना स्वार्थ-साधन बनाकर निखिल राजनीतिक चक्रको यथेच्छ रूपसे परिचालित कर रहे हैं। इन पूंजीपतियोंकी एक विशिष्ट जाति है, एक निजी संस्कृति है, एक निराला सङ्गठन है। इनका कोई विशेष राष्ट्र नहीं है। ये न तो अंगरेज हैं, न फ्रान्सीसी, न जर्मन और न अमेरिकन। ये हैं अन्तर्राष्ट्रीय यहूदी संस्थाके सदस्यगण।।

प्रत्येक शिक्षित तथा अर्द्धशिक्षित व्यक्ति "यहूदी" शब्दसे परिचित है। पर हमारे देशमें शिक्षिततम व्यक्ति भी यहूदियोंके सम्बन्धमें केवल इतना ही जानते हैं कि उनका धर्ममत ईसाइयोंसे भिन्न है। बिरला ही कोई इस बातसे परिचित होगा कि इंगलैण्डका यहूदी अन्तःकरणसे अंगरेज नहीं है, जर्मन यहूदी वास्तवमें जर्मन नहीं है, अमेरिकन यहूदी अमेरिकाको अपना राष्ट्र नहीं समझता। अर्थात् यहूदी किसी भी राष्ट्रसे अपनेको जड़ित करना नहीं चाहते। उनका केवल एक अपना निराला, अन्तर्राष्ट्रीय, विश्वव्यापी ऐक्य तथा सङ्गठन है। "भ्राम्यमाण यहूदी" (Wandering Jew) —यह कथन संसारमें लोकोक्तिकी तरह प्रसिद्ध तथा बहु-प्रचलित हो गया है। इसकी उत्पत्तिका कारण कुछ दूसरा है, पर अब इसका अर्थ यह है कि यहूदी लोग निरन्तर, सचल, प्रगतिशील तथा अस्थिर अवस्थामें राष्ट्रसे राष्ट्रान्तरमें भटकते चले जाते हैं। वे लोग इस समय संसार-भरमें विच्छिन्नावस्थामें वर्तमान हैं, पर उनका जातीय ऐक्य हजारों वर्षोंसे इस समयतक पूर्णमात्रामें अविभक्त तथा सुदृढ़ रहा है।

ईसाकी मृत्युके बाद, उनके धर्ममतके बहुल प्रचारके अनन्तर, यहूदियोंके ऊपर जो अमानुषिक अत्याचार हुए, पाशविक पीड़नका जो प्रबल प्रकोप हुआ, उसके कारण सम-दुःखसे दुःखित होनेपर उनकी जातीय एकता दृढ़से दृढ़तर होती चली गयी, और दलित, गलित अवस्थामें निपट असहाय होनेपर भी "मुई खालकी स्वांस" की तरह उनकी हाय भीतर-ही-भीतर प्रलयङ्कर आवेगसे विस्फूर्जित होने लगी। धीरे-धीरे समय आया, और संसारने देखा कि अपने देशसे निकाली गयी, शक्तिशाली ईसाई-सम्प्रदाय द्वारा तिरस्कृत, बहिष्कृत और विताड़ित इस क्षुद्र जातिने संसारके समस्त आर्थिक क्षेत्रमें अपना आधिपत्य जमाकर अर्थ-लोलुप ईसाइयोंको अपने नाचमें यथेच्छ नचानेके लिए प्रलयङ्कर तथा ऐन्द्रजालिक रुद्रदण्ड अपने हाथमें ले लिया है। इस तथ्यसे ईसाइयोंकी घृणा यहूदियोंके प्रति कुछ कम नहीं हुई, बल्कि तुषाग्निकी तरह भीतर-ही-भीतर और भी अधिक प्रज्वलित होने लगी। और, ईसाइयोंकी घृणा जितनी बढ़ती गयी, यहूदियोंकी प्रतिहिंसा भी उसी परिमाणमें अधिकाधिक धधकती चली गयी। इसका फल यह हुआ कि विश्वव्यापी ईसाइयोंके बहु-विस्तृत धार्मिक, सामाजिक तथा राजनीतिक जालको

नष्ट-भ्रष्ट करना ही मुट्ठीभर यहूदियोंका एकमात्र उद्देश्य तथा चरम ध्येय बन गया ।

फ्रान्सकी राज्यक्रान्तिके समय ही यहूदियोंको पहले-पहल अपनी रुद्रशक्ति प्रदर्शित करनेका अवसर प्राप्त हुआ । लाजार अपने L'Antisemitisme शीर्षक फ्रेञ्च पुस्तकमें इस सम्बन्धमें लिखता है—"फ्रान्सीसी राज्यक्रान्तिके युगमें यहूदियोंके बैङ्करों, व्यापारियों, कवियों, लेखकों तथा धर्म-प्रचारकोंने भिन्न-भिन्न भावोंसे प्रेरित होकर एक ही

रूसके क्रान्तिकारियोंका अग्रणी, हेर्त्सेन यह यहूदी था

उद्देश्यकी ओर प्रयत्न किया । वह उद्देश्य था—सार्वजनिक विध्वंस द्वारा ईसाइयों तथा ईसाई धर्मका विनाश ।" जिन लोगोंका ख्याल है कि केवल रूसी राज्य-क्रान्तिके समयसे ही यूरोपमें ईसाई धर्मके विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ हुआ है, वे भयङ्कर भूल करते हैं । बहुत पहलेसे यहूदी इसके लिए गुप्त आन्दोलन करते चले आते थे । फ्रान्सीसी विप्लवके अवसरपर उनकी गुप्त चेष्टाओंका प्रकाश्य फल संसारके दृष्टि-गोचर हुआ । तबसे वे लोग सतत प्रयाससे निरन्तर अपने उद्देश्यको आगे ढकेलते चले जाते हैं । विगत यूरोपियन महायुद्धके मूलमें यहूदियोंकी ही पार्थिव शक्ति वर्तमान थी, और युद्धके अन्तमें यूरोपियन राष्ट्रोंमें (रूस, जर्मन, आस्ट्रिया आदि देशोंमें) जो युग-विवर्तनकारी क्रान्तियां मचीं, सदियोंसे प्रतिष्ठित प्रबल साम्राज्य-शक्तियां चूर्ण-विचूर्ण हो गयीं, यह सब यहूदियोंके ही विध्वंसकारी पराक्रमका परिणाम था ।

रूसमें कम्यूनिज्मकी प्रतिष्ठामें पूंजीपति यहूदियोंका कितना हाथ है, यह बात बहुत कम लोगोंको मालूम है । "कम्यूनिज्म" और "पूंजीपति" ये दो शब्द मूलमें ही परस्पर-विरोधी होनेपर भी यह तथ्य परम सत्य है कि यहूदी धन-पतियोंकी सहायतासे हो रूसमें जार-शासनका विनाश तथा साम्यवादकी स्थापना सम्भव हुई है । इस विरोधाभास (Paradox) का रहस्य दो-एक शब्दोंमें नहीं समझाया जा सकता । इसलिए हम इस लेखमें धीरे-धीरे इस इन्द्रजालको समझानेकी चेष्टा अन्ततक करते रहेंगे ।

हम पहले ही कह चुके हैं कि शताब्दियोंसे ईसाइयोंके अमानवीय, दानवीय अत्याचार तथा उनकी निबिड़ घृणा (जो इस समयतक पूर्ववत बनी है) के कारण यहूदियोंमें डार्विनके विकासवादके सिद्धान्तानुसार आत्मरक्षाकी चिन्ता प्रबल हो उठी । धीरे-धीरे उन्होंने आर्थिक आधिपत्य द्वारा अपनी सत्ता पूर्णतया प्रतिष्ठित कर डाली । जब उन्होंने पार्थिव (अर्थात् आर्थिक —क्योंकि इस युगमें पृथ्वी माताका सारा सत्त्व अर्थने ही शोषण कर लिया है) शक्ति प्राप्त कर ली, तो दलित मानवकी स्वाभाविक प्रवृत्ति—प्रतिहिंसाने उनकी आत्माको घर दबाया । टाल्सटायने अपने जगत्-प्रसिद्ध उपन्यास Kreutzer Sonata में समस्त संसारके पुरुष-समाज द्वारा अत्याचार-पीड़िता अबला-जातिकी तुलना यहूदियोंसे की है । उनका कहना है कि जिस प्रकार यहूदी लोगोंने सामाजिक क्षेत्रमें ईसाइयों द्वारा तिरस्कृत तथा विताड़ित होकर आर्थिक क्षेत्रमें एकाधिपत्य प्राप्त करके अपने विपक्षियोंको दासताके पाशमें बांध लिया है, उसी प्रकार स्त्रियोंने अन्य सब क्षेत्रोंमें पुरुषों द्वारा अपमानित, लाञ्छित तथा पीड़ित होकर काम-राज्यमें अपने आवेगोत्पादक रूप द्वारा पुरुषोंको प्रतिहिंसाके रूपमें श्रृङ्खलाबद्ध कर रखा है । तात्पर्य यह कि ईसाइयोंके प्रति यहूदियोंकी प्रतिहिंसात्मक प्रवृत्ति एक

वास्तविक तथ्य है। ईसाई धर्मके समूल विनाशकी ओर ही उनका लक्ष्य है। संसारसे यदि ईसाई धर्म एकदम उठ जाय तो हजारों वर्षोंके अपमानका बदला चुकाकर शताब्दियोंसे "भ्राम्यमाण यहूदी" (Wandering Jew) स्थिरता प्राप्त करके शान्त हो सके। तबतक उसे चैन नहीं। पर यह उद्देश्य तभी सफल हो सकता है, जब समाजमें असन्तोष, उच्छृङ्खलता तथा नास्तिकता फैले। इसमें सन्देह नहीं कि यहूदी-धर्ममें आस्तिकता कूट-कूटकर भरी है। पर आधुनिक अन्तर्राष्ट्रीय यहूदी-सम्प्रदाय धार्मिक नहीं, एक सुसङ्गठित जातीय संस्था है। यदि घोर नास्तिकता द्वारा भी वह अपनी प्रतिहिंसाकी आग बुझा सके, तो वह भी उसे स्वीकृत है। इसलिए हम देखते हैं कि गुप्त प्रचार तथा अपने आयत्ताधीन संसार-व्यापी प्रेस-सङ्गठन द्वारा यहूदी-समाज इधर दो-तीन शताब्दियोंसे निरन्तर धर्म (Religion) के विरुद्ध जन-साधारण (proletariat) को भड़का रहा है। यही कारण है कि फ्रान्सीसी राज्यक्रान्तिके समयसे "चर्च"-विनाशी आन्दोलन निरन्तर जारी है।

स्वयं एक क्षीण minority (अल्पसंख्यक) होनेपर भी यहूदी बहुसंख्या (majority) के महत्त्वसे भलीभांति परिचित हैं। क्षुधा-पीड़ित, दलित, असन्तुष्ट साधारण जनता (प्रोलेटेरियट) की संख्या ही सबसे अधिक होती है। इस जनताको अपने अर्थ-बलसे भड़काकर, उसमें अधिकाधिक असन्तोष फैलाकर अपनी इच्छानुसार नचाना यहूदी धन-पतियोंके बायें हाथका खेल है। ईसाई समाजके विरुद्ध उन्हें उत्तेजित करनेसे ही उनका चरम उद्देश्य सिद्ध हो सकता है। फ्रेञ्च विप्लवके बाद विगत महायुद्ध ही यहूदियोंको एक ऐसा अवसर मिला जो उनकी इस स्वार्थ-सिद्धिके लिए अत्यन्त उपयुक्त था। युद्धकी ज्यादतियों तथा अत्याचारोंसे जनतामें जो असन्तोष फैला, उसका यथोचित लाभ उठाकर वे रूस, आस्ट्रिया, जर्मनी आदि देशोंमें प्रलयङ्कर क्रान्ति मचानेमें समर्थ हुए।

साम्यवादकी कल्पना पहले-पहल यहूदी-मस्तिष्कसे ही उत्पन्न हुई थी। फ्रान्सीसी क्रान्तिके पहले विश्वविख्यात यहूदी दार्शनिक स्पिनोजा (Spinoza) ने क्रान्तिकारी भावोंका प्रचार प्रारम्भ किया था। उसका कहना था कि शासक-सम्प्रदायका मुख्य उद्देश्य स्वतन्त्रता तथा समानता होना चाहिए। इसके बाद जिस युग-प्रवर्तक क्रान्तिकारी—कार्ल मार्क्स—के सिद्धान्तोंका भयङ्कर प्रकोप हम इस युगमें प्रत्यक्ष देख रहे हैं, वह भी एक यहूदी था। जो फ्रीमेसन संस्था गुप्त तथापि निश्चित उपायोंसे अन्तर्राष्ट्रीय क्रान्तियोंके मूलमें अपनी लोमहर्षक शक्ति परिचालित करती है, उसके अधिकांश सदस्य यहूदी हैं। वर्तमान रूसी शासनके मूल प्रतिष्ठाताओंमें लेनिनकी माता यहूदी थी और ट्राट्सकी स्वयं यहूदी था। रूसमें जब प्रथम राज्यक्रान्ति भड़कनेका समाचार मिला तो लेनिन उस समय ज्यूरिखमें था। वहां एक वृद्ध यहूदी व्यापारी-

यहूदियोंका जानी दुश्मन, खूंख्वार जालिम
जार निकोलस

ने उसे आर्थिक सहायता देकर रूस भेजा था। १९१९ में बोल्शेविक रूसकी शासक-मण्डलीके ५४५ सदस्योंमेंसे ४४७ यहूदी थे! १९१८ के मार्च मासमें हङ्गरीमें सोवियट प्रजातन्त्र स्थापित हुआ। यहूदियोंकी चेष्टासे ही यह सम्भव हुआ था। इस नये शासनके जो अधिपति वहां नियुक्त हुए थे, वे प्रायः सभी यहूदी थे, जिनमें मुख्य बेला कुन (Bela Kun) था, जो हङ्गरीका लेनिन माना जाता है। जर्मनीमें साम्राज्यवादका पतन भी यहूदियों द्वारा ही सम्भव हुआ था। इस जर्मन क्रान्तिके

अन्यतम नियन्ता कुर्त आयज़नर (Kurt Eisner) ने स्वयं अपने एक साथीसे इस सम्बन्धमें कहा था—"केवल ग्यारह क्षुद्र व्यक्तियोंने यह क्रान्ति मचायी है, और इन ग्यारहोंकी स्मृति सदा अमर बनाये रखनेका प्रयत्न होना चाहिए।" ये ग्यारहों शासन-विधायक म्यूनिखकी फ्रीमेसन संस्था (जिसके अगम, अगोचर, रहस्यमय कारनामे साम्राज्यवादियोंके दिल दहला रहे हैं) के ११ नम्बरवाले गुप्त भवन (Lodge) के सदस्य थे। यहूदी पादरी (Rabbi) मागसनेने कहा था—"साम्यवादी, मेनशेविक, बोल्शेविक आदि कोई भी क्रान्तिकारी संस्था किसी भी नामसे क्यों न पुकारी जाती हो, सबके प्रतिष्ठाता, संरक्षक तथा परिचालक यहूदी ही हैं।" (La peril judeo-maconnique के उद्धरणसे)

एक प्रसिद्ध कम्यूनिस्ट लेखकने १९१९ में लिखा था—"यह बात बिना किसी अत्युक्तिके कही जा सकती है कि रूसकी महाक्रान्ति यहूदियों द्वारा ही हुई है। क्या रूसकी अत्याचार-पीड़ित, दलित कर्मकार-जनता सम्पत्तिवादियोंके वज्रभारसे कभी किसी उपायसे भी अपनेको मुक्त करनेमें समर्थ हो सकती थी? कदापि नहीं। यहूदियोंने ही रूसकी साधारण जनताको अन्तर्राष्ट्रीयताके नव-प्रभातकी ओर अग्रसर किया है और इस समय भी वही उसकी समस्त शासन-प्रणालीको परिचालित कर रहे हैं। यह स्वाभाविक ही है कि सभी सोवियट संस्थाओंके निर्वाचनमें यहूदी विशिष्ट बहुसंख्यामें वर्तमान हैं। यहूदी जिस विशेष चिह्नको अपनाकर शताब्दियोंसे सम्पत्तिवाद (अर्थात् क्रिश्चियनवाद) के विरुद्ध संग्राम करते चले आते हैं, रूसके 'प्रोलेटेरियट' ने भी उस पांच नोकवाले लाल सितारेको अपना चिह्न (Symbol) बना लिया है।"

एक जर्मन लेखकने लिखा था—"रूसमें ईसाइयोंका रक्त सहस्र धाराओंमें बहाया जा रहा है, और यहूदी नेता ट्राट्सकीके अनुयायीगण अन्यान्य यहूदी क्रान्तिकारियोंके सिद्धान्तोंको आश्चर्यजनक, अभावनीय परिणामोंकी ओर अग्रसर करते जाते हैं। इन यहूदी क्रान्तिकारी लेखकोंके नाम इस प्रकार हैं—स्पिनोजा, हाइने (Heine), हेर्त्सेन (Herzen), मार्क्स तथा लासाले।" इनमें स्पिनोजा दार्शनिक था, हाइने जर्मनीके तीन श्रेष्ठ कवियोंमेंसे एक गिना जाता है, हेर्त्सेन एक रूसी यहूदी था; जो एक साथ साहित्यिक, दार्शनिक तथा राजनीतिज्ञ था और अपने क्रान्तिकारी विचारोंके कारण रूससे निर्वासित कर दिया गया था; वह रूसी क्रान्तिकारियोंके अग्रणियोंमेंसे एक था।

क्रान्तिके बाद जब लेनिन सोवियट राष्ट्रका अधिष्ठाता बन गया तो प्रारम्भमें उसे विनष्ट स्थितिके पुनर्निर्माणके लिए अनेक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा। अपनी उत्कट औद्योगिक "स्कीमों" को कार्यरूपमें परिणत करना उसके लिए एकदम असम्भव होता यदि अमेरिकाके यहूदी धनपतियोंने उसे सहायता न दी होती। रूसके पञ्चवर्षीय कार्यक्रममें यहूदियोंका कितना हाथ है, यह बात बहुत कम लोगोंको मालूम है। पर विशेषज्ञोंसे यह बात छिपी नहीं है।

कम्यूनिज्मका प्रचार करनेसे यहूदियोंके धनबलपर तनिक भी आंच नहीं आ सकती। कम्यूनिज्मका मुख्य उद्देश्य है व्यक्तिगत सम्पत्ति—विशेषकर भूसम्पत्ति—का निराकरण। यहूदियोंका कोई विशेष देश न होनेसे वे अन्तर्राष्ट्रीय रूपमें निवास करते हैं, और इस कारण भूसम्पत्तिसे उनका कोई सम्पर्क नहीं रहता। संसारमें शायद ही कोई ऐसा यहूदी आप पायेंगे जो खेती-बारीसे कुछ भी सम्बन्ध रखता हो। इसका कारण यह भी है कि मध्ययुगके ईसाई राजाओंने उन्हें कहीं भी जोतनेके लिए जमीनका एक टुकड़ा देना भी उचित न समझा और घोर पैशाचिक अत्याचारों द्वारा वे पग-पगपर विताड़ित होते जाते थे। इसलिए आत्मरक्षार्थ उन्होंने विशुद्ध धनके क्षेत्रमें अधिकार प्राप्त करना प्रारम्भ कर दिया। आज उनका अन्तर्राष्ट्रीय अर्थ-सङ्गठन ऐसा जबर्दस्त है कि भले ही समस्त राष्ट्रोंका विनाश हो जाय, पर उनकी आर्थिक शक्तिका बाल भी बांका नहीं हो सकता। यह हम पहले ही कह चुके हैं कि यहूदी न तो अंगरेज हैं, न फ्रेञ्च, न जर्मन, न अमेरिकन। वे एक अन्तर्राष्ट्रीय जाति हैं। इसलिए किसी विशेष राष्ट्रसे उनका स्वार्थ सम्बन्धित नहीं है, फलतः किसी विशेष राष्ट्रकी उन्नति भी उन्हें अभीष्ट नहीं, बल्कि प्रत्येक (क्रिश्चियन) राष्ट्रके पतनसे ही उनका उद्देश्य सिद्ध होता है। मजेकी बात यह है कि संसार-भरके कुल बैङ्क यहूदियोंके हाथमें हैं। इसका अर्थ यह है कि समस्त क्रिश्चियन राष्ट्र उन्हींकी दयापर अवलम्बित हैं। यहूदियोंके अर्थबलके विनाशकी सम्भावना तब होती जब थोड़ेसे भी बैङ्क ईसाइयोंके हाथ आ जाते। पर यहां तो यह हाल है कि एक यहूदी

बैङ्कर मरा तो पुश्त-दर-पुश्त उसीके वंशज बैङ्कोंपर अधिकार जमाये रहते हैं। यदि कोई बैङ्कर निःसन्तान हुआ तो वह किसी यहूदीको ही गोद लेता है। अपनी जाति, वंश तथा रक्तका ऐसा जबर्दस्त ख्याल यहूदीको रहता है कि वह यथा-सम्भव कभी किसी ईसाईसे वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित नहीं करता। इसका फल यह हुआ है कि अनेक राष्ट्रोंमें विच्छिन्नावस्थामें रहनेपर भी उनका पारस्परिक सहयोग अत्यन्त विस्मयजनक है। यही कारण है कि उन्हें अपनी प्यारी मातृभूमि फिलस्तीनको छोड़े इतनी शताब्दियां बीत गयी हैं, तथापि उनके रूप-रङ्गमें अभीतक इजरायलका ही विशुद्ध रक्त

यहूदियोंकी प्रतिहिंसाका फल—बोल्शेविक क्रान्तिमें हत्याकाण्ड

प्रवाहित होता चला आता है। क्रिश्चियन (अर्थात् एरियन) रक्तके संसर्गसे अपने पवित्र सेमिटिक रक्तको सुरक्षित रखना वे अपना परम कर्तव्य समझते हैं। उनके एक प्रसिद्ध मसीहा, Ezra ने बहुत पहले उन्हें विदेशी रक्तसे अपनेको अछूता रखनेके लिए बार-बार सतर्क कर दिया था। तबसे वे लोग परम श्रद्धापूर्वक इस उपदेशकी पालना करते चले आते हैं। यूरोप अथवा अमेरिकाके किसी भी यहूदीके रूप, रङ्ग तथा आकृतिपर आप यदि गौर करें तो आपको मालूम होगा कि उसके चेहरेमें आर्य-रूप, (जो कि प्रायः सभी पाश्चात्य ईसाइयोंकी आकृतिमें पाया जाता है) किसी अंशमें भी वर्तमान नहीं है। दो हजार वर्ष पहले जो सेमिटिक रक्त, जो हिब्रू भाव यहूदियोंमें वर्तमान था, वह आज भी उसी अमिश्रित, विजातीय स्पर्श-वर्जित अवस्थामें संरक्षित पाया जाता है। जगत्-प्रसिद्ध जासूस माता हरी इसी कारणसे अपनेको एक भारतीय स्त्री बताकर दुनियाको ठग गयी कि वह भारतीय है। यहूदी होनेके कारण उसका रङ्ग वर्तमान भारतीयोंकी तरह ही धूसर था।

अतएव देखा जाता है कि ईसाई जातिसे यहूदियोंका पार्थक्य मूलगत है। तिसपर जब हम देखते हैं कि सदियोंसे वे अपने धर्म तथा जाति-रक्षापर अटल रहनेके कारण ईसाइयों द्वारा किस प्रकार निपीड़ित होते चले आये हैं, तो यह बात आसानीसे समझमें आ जाती है कि वर्तमान ईसाई राष्ट्रोंके प्रति उनकी आत्मामें विद्रोही भावोंका होना अत्यन्त स्वाभाविक है। आज हम सदियोंके यहूदी इतिहासका पठन समाप्त करनेके बाद अपनी आंखों देख रहे हैं कि उनकी प्रतिहिंसा किस प्रकार कार्य-रूपमें परिणत हो रही है। वह दिन दूर नहीं है, जब संसार देखेगा कि यहूदियोंके युग-विवर्तनकारी प्रकोपसे उत्तेजित बहुसंख्यक नास्तिक जनता कट्टर ईसाइयोंको उसी प्रकार जीवितावस्थामें दग्ध कर रही है, उसी तरह निष्ठुरतासे उन्हें मर्दित, दलित, लाञ्छित तथा हनन कर रही है, जिस प्रकार मध्य युगमें तथा उससे पहले ईसाइयोंने यहूदी शहीदोंको किया था। रूसी राज्यक्रान्तिके अवसर-पर बोल्शेविकों (अर्थात् यहूदियों) ने जिस बीभत्स कठोरता तथा निर्दयतासे काबूमें न आनेवाले ईसाइयोंको अपमानित तथा पद-दलित करके उनकी हत्या की थी, इस बातसे सभी परिचित हैं। पर यह तो अभी इब्तदाये इश्क है।

मध्ययुगमें यहूदी किस प्रचण्ड घृणा तथा उग्र हिंसाकी दृष्टिसे ईसाइयों द्वारा देखा जाता था, इस विषयकी पुस्तकोंसे विश्व-साहित्य भरा पड़ा है। हर बातमें, हर काममें, हरेक हरकतमें उसे पग-पगपर जो निर्यातन सहन करना पड़ता था, उसका वर्णन नहीं हो सकता। यहूदीको ईसाइयोंने कभी मनुष्य नहीं समझा है। उसे एक बीभत्स जीव, एक अक्षम्य parasite (परोपजीवी) के बतौर वे लोग देखते चले आये हैं। शेक्सपीयरके सुप्रसिद्ध नाटक The Merchant of Venice में चित्रित, शायलक नामके एक यहूदीका चरित्र विश्व-विख्यात हो गया है। इस चित्रणसे मालूम होता है कि शेक्सपीयरके समान उदार-चरित कवि भी जातीय संस्कार

(prejudice) से प्रेरित होकर यहूदियोंके प्रति अनुरक्त न था। शायलकको उसने एक पररक्त-(अर्थात् ईसाई रक्त-) शोषीके रूपमें ही दिखलाया है। तथापि एक वास्तविक कवि होनेके कारण अपनी अन्तप्रेरणाको वह धोखा नहीं दे सकता था। इसलिए उसने एक स्थानपर निर्यातित यहूदीका अन्तर्क्रन्दन आन्तरिक समवेदनापूर्वक व्यक्त किया है। शायलक एक स्थानपर कहता है—

"He has disgraced me, laughed at my losses, mocked at my gains, scorned my nation, cooled mine friends, heated mine enemies, and what's the reason ? I am a Jew : Has not a Jew eyes ? has not a Jew hands, organs, dimensions, senses, affection, passions, fed with the same food, hurt with the same weapons, subject to the same diseases, healed by the same means, warmed and cooled by the same Winter and Summer as a Christian is ? If you prick us do we not bleed ? if you tickle us do we not die ? and if you wrong us shall we not revenge ?"

अर्थात—"उसने (नाटकके क्रिश्चियन नायकने) मुझे अपमानित किया है, मेरी क्षतिपर वह हंसा है, मेरे लाभकी उसने खिल्ली उड़ायी है, मेरी जातिसे घृणा की है, मेरे मित्रोंको मेरे प्रति विरक्त किया है; मेरे शत्रुओंको भड़काया है; यह सब किस लिए? केवल इसीलिए कि मैं एक यहूदी हूं: क्या यहूदीके आंखें नहीं हैं? क्या उसके नाक-कान, हाथ पांव आदि इन्द्रियां, उसकी मनोवृत्तियां, उसकी कोमल वासनायें आदि उसी भोजनसे पुष्ट नहीं हैं, उन्हीं अस्त्रोंसे आहत नहीं होतीं, उन्हीं रोगोंसे आक्रान्त नहीं होतीं, उन्हीं उपायोंसे शान्त नहीं होतीं, उन्हीं हेमन्त तथा ग्रीष्मसे शीतल तथा उत्तप्त नहीं होतीं, जैसे कि एक ईसाईकी? जब तुम हमारे शरीरमें सुई चुभाते हो तो क्या उससे रक्त नहीं निकलता? जब तुम हमें गुदगुदाते हो तो क्या हमें हंसी नहीं आती? हमें विष देते हो तो क्या हम नहीं मरते? और जब हमारे प्रति अत्याचार करोगे तो क्या हम उसका बदला नहीं लेंगे?"

एक दीर्घकाल-पीड़ित आत्माके अन्तस्तलका विस्फूर्जित आवेग इससे अच्छी तरह और कोई कवि व्यक्त नहीं कर सकता।

केवल मध्ययुगमें ही नहीं, आधुनिक युगमें भी यहूदीके प्रति ईसाइयोंकी घृणा उसी प्रचण्ड रूपमें वर्तमान है। इस हेतुवाद (Rationalism) के युगमें भी उसी उन्मत्त विद्वेष, उसी रक्त तृषित मनोवृत्तिका परिचय, "कुलतुर" (kultur—उत्कर्ष) के हामी आधुनिक "सभ्य" ईसाइयोंने दिया है और दे रहे हैं। १८७३ में जर्मनीकी आर्थिक स्थिति बहुत-कुछ अंशमें उसी प्रकार बिगड़ गयी थी जैसी महायुद्धके बाद। इस अर्थ-सङ्कटका कारण जर्मनोंने अनुमानसे यहूदियोंका अर्थ-शोषण बतलाया। जनता जब असन्तुष्ट अवस्थामें थी तो अकस्मात् किसी अप्रसिद्ध जर्मन लेखकने एक पैम्फलेट 'जर्मनोंपर यहूदियोंकी विजय"—शीर्षक निकाल दिया। विद्वेषका यह बीज उपयुक्त मौसम और उपयुक्त क्षेत्रमें वपन हो गया। इस क्षुद्र पुस्तिकाने यहूदियोंके विरुद्ध जिस उत्कट विद्वेषका प्रचार किया वह थोड़े ही अर्सेमें दावाग्निकी तरह जर्मनी होते हुए सारे यूरोपमें फैल गयी। फिर एक बार मध्ययुगकी तरह यहूदियोंके विनाशकी प्रेरणासे ईसाइयोंके मस्तिष्कमें ताण्डव मच गया। यहूदियोंके ऊपर बेभावकी मार पड़ने लगी; अत्यन्त निर्दयतासे वे कत्ल किये जाने लगे, जर-जमीन-जोरूसे वे वञ्चित होने लगे, उनकी स्त्रियोंपर पाशविक अत्याचार होने लगा और धर्षितावस्थामें वे विनष्ट की जाने लगीं। यूनिवर्सिटियों, राजकीय विभागों तथा सामाजिक संस्थाओंसे वे बहिष्कृत होने लगे। खुले आम, दिन-दहाड़े ये सब कार्रवाइयां होने लगीं। बिसमार्कने उस आन्दोलनको विशेष प्रोत्साहन दिया। १८७९ में बर्लिन तथा ड्रेसडेनमें यहूदी-विरोधी संस्था (Antisemitic league) की स्थापना हो गयी। यूरोपके अन्यान्य स्थानोंमें भी यह आग फैल गयी। रूसमें इस विद्वेषाग्निने सबसे अधिक प्रकोप दिखाया। जारने स्पष्टतया जनताके आगे अपना यह मनोभाव व्यक्त कर दिया कि जहांतक बन पड़े, यहूदियोंको तङ्ग किया जाय। आधुनिक युगमें यहूदियोंकी सबसे अधिक हत्यायें आरमीनिया-को छोड़कर रूसमें ही हुई हैं। जोवित यहूदियोंको भी वहां कुछ कम यन्त्रणायें नहीं दी गयीं। महायुद्धके समयतक वहां यहूदियोंका निर्यातन निरन्तर समरूपसे जारी रहा। १९१३ में लन्दनमें अन्तर्राष्ट्रीय गोरी स्त्रियोंके व्यापारके विरोधमें एक कानफरेन्स हुई थी। इस अवसरपर हेर्त्स नामके एक प्रति-

ष्ठित यहूदीने इस बातपर संसारका ध्यान आकर्षित करना चाहा कि रूसी जारका "पीला टिकट" कैसा अनर्थकारी था, जिसके अनुसार किसी भी यहूदी स्त्रीको समस्त रूसी राज्यमें बेरोक-टोक वेश्या-वृत्ति करनेकी पूरी स्वतन्त्रता दी जाती थी, यद्यपि साधारण यहूदी जनताके लिए वहां पग-पगमें बन्धन थे। इसका अर्थ स्पष्ट ही यह था कि जार यहूदी स्त्रियोंको केवल वेश्यावृत्तिके ही उपयुक्त समझता था। इसका बदला यहूदियोंने एक बार युद्धके पहले भी लिया था—जब रूसकी आर्थिक समस्या विकट हो उठी और यहूदी बैङ्करोंसे कर्ज लेनेके अतिरिक्त कोई चारा उसके पास न रहा। पैरिसमें राथ्सचाइल्डके साथ उसने इस सम्बन्धमें बातचीत चलायी। पर राथ्सचाइल्ड तथा उसके सहयोगियोंने पहले जारसे यह शर्त करा लेना आवश्यक समझा कि रूसमें आयन्दासे यहूदियोंपर कोई अत्याचार न होने पाये। जारने आर्थिक तथा राजनीतिक क्षति सहना स्वीकार किया, किन्तु यहूदियोंकी शर्त माननेपर वह राजी न हुआ। महा-युद्धके पहले रूसमें संसार-भरके यहूदियोंकी आधी संख्या निवास करती थी। अर्थात् कुल १,४९,००,००० यहूदियोंमें-से ७४,९००,०० रूसमें रहते थे। और रूसमें ही उनपर अत्याचार भी सबसे अधिक होते थे। यही कारण था कि यहूदियोंने जी-जानसे बोलशेविक क्रान्तिमें सहयोग दिया, अथवा यह कहना अधिक उचित होगा कि इस क्रान्तिके मूलमें ही यहूदी थे। जारशाहीका अन्त होते ही यहूदियोंको रूसमें विशेष सुविधायें प्राप्त हो गयीं। इस प्रकार निराश्रित, अनाथ, असहाय यहूदियोंने अपनी जातीयतापर दृढ़ रहकर, प्रचण्ड अध्यवसायसे अप्रतिहत विरोधावस्थाओंको निरन्तर खण्डित करते हुए, समग्र संसारका आर्थिक शासन अपने आयत्ताधीन करके अन्तको रूस जैसे प्रबल पराक्रमी देशके ईसाई साम्राज्यवादको चूर्ण-विचूर्ण कर दिया, और इस प्रकार अपनी प्रतिहिंसाकी आग बहुत-कुछ अंशमें बुझायी। पर इस अग्निकी विकट ज्वाला तबतक पूर्णतया शान्त न होगी जबतक ईसाई साम्राज्यवाद तथा ईसाई मतवादका लेश भी संसारमें रहेगा। शताब्दियोंसे निरन्तर कत्ल, निर्यातित तथा निर्वा-सित किये जानेपर भी जो अमर, चिरन्तन यहूदी इस विंश शताब्दीतक अपनी सत्ता पूर्ण रूपसे कायम रखनेमें समर्थ है, उसकी भयङ्करताका अनुमान सहजमें किया जा सकता है। उसकी जाति अत्याचारियोंपर पूर्ण प्रतिहिंसा चुकानेके लिए ही अबतक टिकी हुई है।

बोल्शेविक हत्याकाण्डका
दूसरा दृश्य

त्सूरिखमें लेनिनको इसी मकानमें एक यहूदीने रूसी क्रान्तिके लिए आर्थिक सहायता दी थी

जिस निर्दयतासे ईसाइयोंने यहूदियोंका हनन किया था, ठीक उसी भयङ्करतासे रूसी क्रान्तिके समय बोल्शेविकों (अर्थात् यहूदियोंके अनुचरों) ने ईसाइयोंका विनाश किया। यह भयङ्करता कैसी विकट थी, इसके अनुमानके लिए एक साधारण उदाहरण हम यहांपर देते हैं। "जब अगस्त १९१९ में रूसी वालण्टियर कोरने कीफ शहरपर अपना कब्जा कर लिया तो उसने जो अत्याचार वहांके प्रतिरोधियोंपर किये उनकी जांचके लिए एक कमीशन नियुक्त होकर वहां पहुंचा। कमीशनने देखा कि सारा हत्या-गृह शोणितसे प्लुत था। यह शोणित इतना अधिक था कि तरलावस्थामें न होकर, जम गया था और कई इञ्च गाढ़ा था। इसमें भेजा, खोपड़ियोंकी हड्डियां, कलेजोंके टुकड़े, आंतें आदि मानवीय अङ्गोंके भग्नांश मिश्रित थे। देखकर दिल दहल उठता था। सब दीवारें गोलियोंसे बिलकुल छिदी थीं और उनमें मस्तिष्क तथा हड्डियोंके टुकड़े चिपके हुए थे। डेढ़ फुट चौड़ी, प्रायः इतनी ही गहरी एक लम्बी नालीसे होकर सब रक्त जमीनके भीतर एक खाईकी ओर बहकर चला जाता था। यह खाई ऊपरतक खूनसे तर थी। कत्ल किये जानेके बाद नगरवासियोंकी लाशें मोटर-लारियोंमें भर-भरकर शहरसे बाहर जङ्गलमें एक खत्तेके भीतर डाल दी जाती थीं। एक बगीचेके कोनेमें एक और खत्ता था। उसमें अस्सीके करीब लाशें पड़ी थीं। किसी लाशकी अंतड़ियां निकाल दी गयी थीं, किसीकी आंखें गायब थीं किसीके हाथ पांव कटे थे, और कुछके टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये थे। एक कोनेमें आंखें, जीभें, हाथ और पांव अलग-अलग ढेर किये हुए दिखायी देते थे। यह अमानुषिक लोम-हर्षक दृश्य देखकर आतङ्कसे सर्वाङ्ग जर्जरित और प्रकम्पित हो उठता था।" केवल इतना ही नहीं, स्त्रियोंकी हत्याओंका वर्णन इससे भी अधिक विभीषिकापूर्ण है। अनेक जमीन्दारों तथा अफसरोंकी स्त्रियोंके स्तन काटकर टुकड़े-टुकड़े कर दिये जाते थे और उनकी जननेन्द्रियां अत्यन्त वीभत्स रूपसे जलायी जाती थीं। प्रतिहिंसाका भूत इसी प्रकार सवार होता है। (La terreur rouge en Russie से।)

एक छोटे शहरके हत्याकाण्डका जो वर्णन ऊपर दिया गया है, अन्यान्य स्थानोंमें इससे भी भयङ्कर घटनाओंके उदाहरण मिलते हैं। १९१८-१९ के बोल्शेविकोंकी कोपाग्निके शिकार कितने व्यक्ति हुए इसका ठीक-ठीक हिसाब लगाना कठिन है, तथापि इस सम्बन्धमें प्रोफेसर सारोलियाने १९२३ में जो आंकड़े प्रकाशित किये थे, वे इस प्रकार हैं—१९०० पादरी, ६००० अध्यापक, ९००० डाक्टर, ५४,००० अफसर, २६०,००० सिपाही, ७०,००० पुलिस कर्मचारी, १२,९५० छोटे-बड़े जमीन्दार, ६३९,३५० बिद्योपजीवी व्यक्ति (intelligentsia), १९३,२९० कर्मकार, ६१८,००० किसान। पर उपर्युक्त दो वर्षोंमें हत्याकाण्ड समाप्त हो गया हो, ऐसी बात नहीं। कई वर्षोंतक यह चक्र चलता रहा, और रूसी लेखक मेलगुनोवने (La terreur rouge en Russie में) अन्दाज लगाया है कि प्रायः पन्द्रह लाख व्यक्ति प्रतिवर्ष रूसमें कत्ल किये गये। रोमां रोलां कम्यूनिज्मके कट्टर पक्ष-पाती होनेपर भी, इस (संसारके इतिहासमें विरल) हत्या-काण्डकी यथेष्ट निन्दा कर चुके हैं। मेक्सिम गोर्की रूसी सोवियटका सदस्य है। इसलिए वह स्पष्टतया इसकी निन्दा नहीं कर सकता। तथापि दबी जबानसे उसने जो कुछ कहा है, उससे स्पष्ट ही विदित हो जाता है कि वह भी इसका समर्थन न कर सका।

कुछ भी हो, यहूदी रूसमें अपना बदला यथेष्ट परिमाणमें ले चुके हैं, यह निश्चित है। आस्ट्रिया तथा हंगरीमें भी उन्होंने अपने हृदयकी आग बहुत-कुछ बुझायी है। इसके बाद पुर्तगालमें और हालमें स्पेनमें क्रान्ति मचाकर उन्होंने ईसाइयोंके विरुद्ध जो विकट आन्दोलन शुरू कर दिया है, उससे समाचार-पत्रोंके पाठक परिचित होंगे। स्पेन और पुर्तगालमें मध्ययुगमें यहूदियोंपर जो जुल्म हुआ था उसका जोड़ संसारके इतिहासमें अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। यहूदी यूरोपमें पहले-पहल स्पेनमें ही आकर बसे थे, और वहीं उनकी बसासत सबसे अधिक थी। पर रोमन कैथलिक चर्चके उद्योगसे उनके समूल विनाशका जो आन्दोलन शुरू हुआ उसका इतिहास अत्यन्त लोमहर्षक है। इसका परिणाम यह हुआ कि एक भी यहूदी वहां प्रकाश्य रूपसे रहनेमें समर्थ न हुआ। कत्ल होनेसे जो बचे उनमेंसे कुछ तो ईसाई बन गये और शेष गुप्त रूपसे, "भेष" बदलकर रहने लगे। यह गुप्त यहूदी सम्प्रदाय इतिहासमें "मारानोस" (Marranos) के नामसे परिचित है। पर आज यहूदी Masters of the situation हैं और बाघ मारकर बाघम्बरपर बैठ गये हैं।

संसारके समस्त बैङ्कोंपर यहूदियोंका एकाधिपत्य है, यह बात पहले ही कही जा चुकी है। बैङ्कोंपर अधिकार होनेका क्या अर्थ है, बहुत कम लोग यह बात समझते हैं। इसका अर्थ यह है कि समस्त अन्तर्राष्ट्रीय गवर्नमेण्टोंकी किल्ली यहूदियोंके हाथ है। बिना यहूदियोंकी इच्छाके अमेरिका मित्र-राष्ट्रोंको "मोरेटोरियम" नहीं दे सकता। यदि "मित्र-राष्ट्रों" को कर्ज देनेसे यहूदियोंका स्वार्थ सिद्ध होता है तो उन्हें कर्ज मिल जायगा, यदि नहीं होता, तो नहीं मिलेगा। महायुद्धके समय जर्मनीके साम्राज्यवादका नाश होनेमें यहूदियोंका स्वार्थ था (क्यों था, यह बात पहले समझायी जा चुकी है), इसलिए "मित्र-राष्ट्रों" को कर्ज भी मिला और अमेरिका उनकी तरफसे युद्धमें भी शरीक हुआ। पर अब बात ही दूसरी है। अब इंगलैण्ड और फ्रान्सके विरुद्ध चलनेमें ही यहूदियोंका स्वार्थ है; क्योंकि ये दो देश ऐसे हैं जो "राष्ट्रवाद" और "साम्राज्यवाद" की कठिन शृङ्खलासे ईसाई धर्म तथा ईसाई राजनीतिको सुरक्षित अवस्था में जकड़े हुए हैं। इसीलिए हम देखते हैं कि इंगलैण्डका राजनीतिक सङ्कट देखकर अमेरिका आज पुलकित होता है। इस समय संसारमें यहूदियोंका सबसे जबर्दस्त सङ्गठन अमेरिकामें ही है। वहां प्रेसीडेण्टोंको कठपुतलियोंकी तरह स्थापित करना और हटा देना उनके बांये हाथका खेल है। जिसे उन्होंने अपने विश्व-व्यापी क्रान्ति-चक्रमें सहायताके योग्य समझा, उसके लिए अमित अर्थ पानीकी तरह बहाकर राष्ट्रपतिके आसनमें प्रतिष्ठित कर देते हैं। हूवरकी मनोवृत्ति इधर दो-एक वर्षोंसे उन्हें कुछ ऐसी जान पड़ी जो उनके गुप्त राजनीतिक षड़यन्त्रोंके लिए हानिकारक सिद्ध होती थी। रूजवेल्टको उन्होंने अपनी सामयिक नीतिके उपयुक्त पाया, अतएव अत्यन्त सरलतासे उसे उक्त पदपर स्थापित कर दिया। वास्तवमें अमेरिकामें जनमत नहीं है (यद्यपि प्रकाश्यतः वहां जनसत्तात्मक शासन वर्तमान है), वहां केवल यहूदी-मतका राज्य है। अमेरिकाके एक यहूदी, बी० एम० बारूखने सगर्व यह घोषित किया है कि—"महायुद्धके समय मेरे हाथ जो शक्ति थी, वह संसारके किसी अन्य व्यक्तिको प्राप्त न थी।"

केवल बैङ्कोंमें ही नहीं, संसारके अन्तर्राष्ट्रीय प्रेसपर भी उनका कब्जा है। संसार-भरके बड़े-बड़े सम्पत्तिवादी तथा साम्यवादी पत्रोंपर उनका अधिकार है। इसका फल यह देखा जाता है कि सभी प्रमुख उत्तरदायित्वपूर्ण पत्र अपना स्वतन्त्र मत स्पष्टतः व्यक्त नहीं करने पाते, और प्रकटमें या परोक्षमें केवल यहूदी धनपतियोंके उद्देश्यका ही प्रचार करते हैं। अमेरिकाके प्रसिद्ध पत्रकार जान स्विण्टनने एकबार कहा था—"अमेरिकामें प्रेसकी स्वाधीनता बिलकुल नहीं है। यदि कोई व्यक्ति अपनी स्वतन्त्र सम्मति किसी पत्रमें प्रकाशित कराना चाहता है, तो वह कदापि प्रकाशित नहीं हो सकती। मुझे १५० डालर इसलिए मिलते हैं कि मैं अपने पत्रमें अपनी निजी सम्मति न छापूं। हम केवल (यहूदी-) धनपतियोंकी कठपुतलियां हैं। हमारा समय, हमारी योग्यता, हमारा जीवन, सब इन्हीं लोगोंकी सम्पत्ति समझिये। हम बुद्धिजीवी वेश्या (intellectual prostitutes) हैं।" मिसेज वेब्सटरका कहना है—"यदि यह कहा जाय कि इस देश (इंगलैण्ड) में कोई भी ऐसा पत्र नहीं है जो यहूदियोंके स्वार्थ-सम्बन्धी पत्रोंपर अपनी स्वतन्त्र सम्मति दे सके, तो कोई अत्युक्ति न होगी।" फ्रान्सकी भी यही हालत है—केवल आज ही नहीं, बहुत पहलेसे। १८९४में राशफोरने कहा था—"प्रेसकी ओर देखो! फ्रांसीसी प्रेसका फ्रांसमें अस्तित्व ही नहीं है। उसमें यहूदियोंका ही पूरा अधिकार है।" जर्मनीमें प्रेसका तीन चौथाई हिस्सा यहूदियोंके हाथ है। आस्ट्रियामें युद्धके पहले भी सारे प्रेसपर यहूदियोंका कब्जा था, यही कारण था कि वहां आसानीसे वे लोग क्रान्ति मचानेमें सफल हुए थे। संसारकी टेलिग्राफिक एजेन्सियां भी यहूदियोंकी मुट्ठीमें हैं। इसका फल यह होता है कि जिस समाचारको यहूदी धनपति अपने उद्देश्यके प्रचारमें बाधक समझें वह दुनियाके किसी पत्रमें नहीं छप सकता। यह यहूदियोंकी प्रेस-सम्बन्धी शक्तिका ही परिणाम था कि प्रारम्भमें यहूदी-विरोधियोंने रूसी बोल-शेविक शासनके विरुद्ध जो संसार-व्यापी भयङ्कर आन्दोलन शुरू कर दिया था, और जिसके कारण साम्राज्यवादी तथा राष्ट्रवादी देशोंने रूसके साथ व्यापार-सम्बन्धी आदान प्रदान भी बिलकुल बन्द कर दिया था और सोवियट स्टेटको स्वीकृत (recognize) करना नहीं चाहा था, अन्तको उक्त आन्दोलन दबा दिया गया और सोवियट स्टेट अन्य राष्ट्रों द्वारा स्वीकृत हुआ और व्यापारका आदान-प्रदान फिरसे जारी हो गया। प्रेस ही स्वपक्षी अथवा विरोधी प्रचारका मुख्य

साधन है। आज हम देखते हैं कि संसारमें यद्यपि कम्यूनिज्म दिन-दिन उन्नतिकी ओर अग्रसर होता जाता है, पर कैपिटेलिस्ट पत्र भी अब उसका विशेष विरोध नहीं करते, केवल अपनी बाह्य नीति कायम रखनेके लिए कभी-कभी एक-आध मामूली-सी बात उनके खिलाफ लिख देते हैं, जिससे स्पष्ट है कि पत्रका सम्पादक विश्वासमें साम्राज्यवादी होनेपर भी भीतरसे यहूदियोंकी नीति ही बर्त रहा है।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि ईसाई सभ्यताका विनाश ही यहूदियोंका परम ध्येय है। इसके लिए सबसे उपयुक्त उपाय उन्हें यही प्राप्त हुआ है कि जनतामें धर्म तथा ईश्वरके प्रति पूर्ण विरक्ति तथा घृणाका भाव फैलाया जाय। इस उपायसे यहूदी धर्ममें भी आघात पहुंचता है, सन्देह नहीं। पर यहूदियोंके लिए अब धर्मका प्रश्न उतना
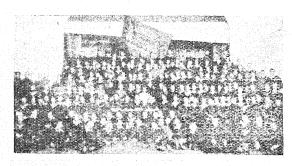
एक अन्तर्राष्ट्रीय यहूदी संस्थाके सदस्यगण। झण्डेपर लिखा है—"अन्तर्राष्ट्रीयता दीर्घजीवी रहे!"

नहीं रहा, जितना जातिका। वह अपने जातीय ऐक्यमें आंच भी नहीं आने देना चाहते, इसलिए यदि धर्मके विनाशसे भी ईसाई जातियोंका ध्वंस सम्भव है तो वे इस उपायको पूर्णमात्रामें अपनाना उचित समझते हैं। इस उद्देश्यके प्रचारके लिए उन्होंने अत्यन्त उग्र उपाय निर्दिष्ट किये हैं। आजकल हम देखते हैं कि कामोत्तेजना-सम्बन्धी विचारोंका सर्वत्र विपुल प्रचार हो रहा है। यह यहूदियोंकी सुसङ्गठित प्रेस-शक्तिका ही फल है। कामोत्तेजक पुस्तकों, सिनेमाओं तथा थियेटरों द्वारा नव-युवकोंके हृदयोंमें उद्वेग उत्पन्न होनेसे वे स्वभावतः उच्छृङ्खलताकी ओर झुक जाते हैं, और धर्मके प्रति अश्रद्धाकी प्रथम और अन्तिम सीढ़ी यही है। सिनेमाकी बड़ी-बड़ी, मुख्य-मुख्य कम्पनियां यहूदियोंके ही हाथ हैं। सिनेमाओं द्वारा केवल नैतिक उच्छृङ्खलता ही नहीं, क्रान्तिकारी विचारोंके प्रचारमें भी उन लोगोंको बड़ी सुविधा प्राप्त होती है। युद्धके जो अनेक फिल्म आजकल हमलोग देखते हैं, उनका उद्देश्य ही यही है कि जनतामें युद्ध (अर्थात् क्रान्ति) की प्रवृत्ति जागरित करना। कहनेको तो यह कहा जाता है कि युद्धकी विभीषिका दिखाकर जनताको उससे निरत करना ही ऐसे फिल्मोंका उद्देश्य है; पर विज्ञजन जानते हैं कि वह विभीषिका नव-युवकोंके रक्तमें अधिक उत्तेजना उत्पन्न करती है। "विश्वमित्र" के किसी पिछले अङ्कके चयनिका-विभागमें इस सम्बन्धमें संसारके विशेषज्ञोंकी सम्मतियां उद्धृत करके यह दिखाया जा चुका है कि वास्तविक तथ्य क्या है। गम्भीर श्रेणीके दार्शनिक ज्ञानके बजाय पार्थिव, भौतिक, इहलौकिक विज्ञानका ही बहुल प्रचार किया जा रहा है। फ्रेञ्च विप्लवके समयसे ही क्रान्तिकारियोंको यह अनुभव हो चुका है कि जनतामें वास्तविक ज्ञानका प्रचार क्रान्तिके लिए घोर हानिकारक है। इसलिए फ्रान्सीसी क्रान्तिके अन्यतम कर्णधार रोबेसपियेर (Robespierre) ने कहा था—"लेखकगण जनताके भयङ्कर शत्रु समझे जाने चाहिए।" उसके साथी दूमा (Dumas) का कहना था कि सब विद्वानोंको "गिलोटिन" द्वारा कत्ल कर देना चाहिए। वर्तमान रूसमें हम इसी मतवादकी प्रबलता पाते हैं। विद्वज्जनोंकी वहां जो दुर्गति हुई है उससे सभी परिचित हैं। हजारोंकी तादादमें वे लोग कत्ल किये गये हैं और जो बचे हैं वे या तो रूस छोड़कर भाग निकले हैं, या अपना विचार-स्वातन्त्र्य पूर्णतया खोकर सोवियट सरकारके इच्छाधीन चल रहे हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुरके दार्शनिक विचारोंके प्रति वर्तमान रूसियोंके मनमें तनिक श्रद्धा नहीं है। तथापि वह रूसमें आमन्त्रित किये गये थे। इसका कारण यह है कि उनसे अच्छा प्रचारक रूसी सरकारको और कोई नहीं मिल सकता था। बड़े आडम्बरके साथ उनका स्वागत करके सोवियट सदस्योंने उन्हें इस प्रकार वशमें कर लिया कि वह मुग्ध हो गये, और भली भांति यह बात जानते हुए भी कि जिन दार्शनिक तथा आध्यात्मिक आदर्शोंका प्रचार आजतक वह करते चले आये हैं, कम्यूनिस्ट मूलतः उसके विरोधी हैं और अपने नवयुवकोंको बिलकुल उसके विपरीत शिक्षा दे रहे हैं, रवीन्द्रनाथ

संसार-भरमें ढोल पीटकर उनका गुणगान करने लगे। रूसमें जनसाधारणको जो शिक्षा दी जा रही है वह पूर्णतः औद्योगिक तथा वैज्ञानिक है, उच्च अङ्गकी संस्कृतिसे उसका कोई सरोकार नहीं है। निपट अशिक्षान्धकारमें रहनेसे यह कई गुना बेहतर है, सन्देह नहीं। तथापि इसमें बहुतसे खतरे भी हैं, जिनसे रवीन्द्रनाथ सबसे अधिक परिचित होनेपर भी चुप हैं। असल बात हम पहले ही कह चुके हैं कि रवीन्द्रनाथने वृद्धावस्थामें विशुद्ध प्रचारकका पेशा अख्तियार कर लिया है। मुसोलिनीने भी इसीलिए उन्हें आमन्त्रित किया था, और मजा यह कि फासिज्म और कम्यूनिज्म दिन और रातकी तरह परस्पर-विरोधी होनेपर भी रवीन्द्रनाथने दोनोंकी प्रशंसा समभावसे की है। इधर फारसमें भी वह इसी

यहूदी क्रान्तिकारी वोलदोरास्की, जो यहूदी विरोधियों द्वारा अत्यन्त निष्ठुरतासे कत्ल किया गया था

उद्देश्यसे बुलाये गये थे, इसलिए हम देखते हैं कि वे वहांकी रीति-नीतिकी कोरी, निर्जला प्रशंसा करने लगे हैं। अस्तु।

यहूदी और फ्रीमेसन संस्था (जो प्रधानतः यहूदियों द्वारा परिचालित है) केवल ऐसे विद्वानोंके मतवादका प्रचार यथाशक्ति कर रहे हैं जिनके विचार ईसाई संस्कृतिके विध्वंसमें सहायक हो सकते हैं। फ्रायड (Freud) के काम-विकार तथा मनोविकारके आतङ्कजनक सिद्धान्तोंका जो ऐसा विस्तृत प्रचार हम आज सभ्य जगत्‌में देखते हैं, इसका कारण यही है। आधुनिक युगके प्रसिद्धतम यहूदी वैज्ञानिक आइनस्टाइन (Eeinstein) के सापेक्षवाद (Relativity) का सिद्धान्त फ्रीमेसनके उद्देश्यके अनुकूल है; इसलिए आज हम सर्वत्र इसी वैज्ञानिकका जय-जयकार सुनते हैं। आइनस्टाइनकी प्रतिभा इस योग्य है, सन्देह नहीं। पर यह निश्चित है कि यहूदियोंके प्रभाव तथा प्रतापके बिना वह कभी लोकप्रिय न हो सकता; क्योंकि उसके सिद्धान्त अत्यन्त गणित-जटिल तथा साधारण-बुद्धि-अगम्य हैं। पर फ्रीमेसनकी चेष्टासे उसके सम्बन्धमें कई ऐसी पुस्तकें निकल गयी हैं जो सर्वसाधारणको अत्यन्त प्राञ्जल भाषामें सरलतया उसके सिद्धान्तोंका मर्म समझा देती हैं। "Eein tein in non-mathematics" की श्रेणीकी पुस्तकें इसके प्रमाण हैं। यहांपर यह जतला देना अप्रासङ्गिक न होगा कि आइनस्टाइन एक कम्यूनिस्ट है। उसके यहूदी होनेके कारण बहुतसे ईसाई उसे घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं। १९२९ में जब बर्लिनकी सिटी कौंसिलने उसे उसकी योग्यताके आदर-स्वरूप एक मकान तथा जमीन प्रदान करना चाहा तो कौंसिलके कई सदस्योंने इस बातपर इस कारण आपत्ति प्रकट की थी कि वह एक यहूदी है!

यदि कोई धार्मिक मतवाद ईसाई धर्म तथा ईसाई सभ्यताका मूलतः विरोधी हो तो उसे किसी अंशमें अपनानेमें फ्रीमेसन संस्था नहीं हिचकिचाती। थियोसोफी (Theosophy) एक ऐसा धर्म है जो चरम भौतिकता तथा परम आध्यात्मिकताके दो सिरोंमें झूलता है। असल बात यह है कि यह कोई धर्म ही नहीं है, केवल अनेक संयुक्त धर्मोंका एक माया-चक्र है, जिसकी उत्पत्ति संसारमें एक विशिष्ट प्रकारकी राजनीतिक मनोवृत्ति जागरित करनेके लिए हुई है। सभी जानते हैं, इसकी उत्पादिका मादाम ब्लावात्स्की (Madame Blavatsky) एक रूसी महिला थी जो रूसके क्रान्तिकारियोंसे सहानुभूति रखती थी। इटलीके राष्ट्रीय आन्दोलनमें उसने गैरीबाल्डीका साथ भी दिया था। उसकी मृत्युके कुछ वर्ष बाद श्रीमती बेसाण्टने उक्त धार्मिक संस्थाका तत्त्वावधान अपने हाथोंमें ले लिया और एक नया मसीहा खड़ा करके यूरोपमें इस राजनीतिक धर्मका विशेष प्रचार आरम्भ कर दिया। प्रारम्भसे ही यह संस्था गुप्त रूपसे फ्रीमेसन सङ्घसे सम्बन्धित थी। १९२२ में पैरिसकी फ्रीमेसन शाखा Grand Orient के साथ थियोसोफिकल सोसाइटीके सम्मिश्रणका उत्सव Droit Humain नामक मन्दिरमें बड़ी धूमधामसे प्रकाश्यतः मनाया गया। १८८९ में पैरिसमें अन्तर्राष्ट्रीय कर्मकारोंकी कांग्रेसका अधिवेशन हुआ। मिसेज बेसाण्ट उक्त कांग्रेसमें डेलीगेट होकर आयी थीं। मार्क्सिस्टों

(अर्थात् कम्यूनिस्टों) ने उसके साथ-साथ अपनी अन्तर्राष्ट्रीय कांग्रेसका अधिवेशन मनाया। एक और तीसरी कांग्रेस इसके साथ बैठी, जो भूतात्मवादियोंकी थी, और थियोसोफिज्मसे जिसका विशेष सम्बन्ध था। मिसेज बेसाण्टने एक प्रस्ताव पेश किया कि ये तीनों संस्थायें एक-साथ मिलायी जायं, क्योंकि इन तीनोंका चरम उद्देश्य एक ही है।

इन सब बातोंसे स्पष्ट ही विदित हो जाता है कि यहूदी लोग संसारमें अपना मायाजाल फैलानेके लिए कैसे विस्तृत, व्यापक तथा विचित्र उपाय काममें ला रहे हैं। एक तरफ सम्पत्तिवादके ऊपर उन्होंने अपना प्रभुत्व जमा रखा है, दूसरी ओर उसी सम्पत्तिवादके प्रताप द्वारा वे कम्यूनिज्मकी आग संसारमें फैला रहे हैं; पर स्वयं औलिम्पुसके ग्रीक देवतोंकी तरह (जो ट्रोजन और ग्रीक वीरोंको लड़ाकर तमाशा देखा करते थे) परम सुरक्षितावस्थामें, वर्तमान सभ्यताके ऊपर शासन कर रहे हैं। इस विरोधाभासात्मक जातिमें एक तरफ ट्राट्सकीके समान प्रोलेटेरियट पैदा होते हैं तो दूसरी ओर राथ्सचाइल्ड जैसे धनाध्यक्ष उपजे हैं। पर दोनोंका अन्तिम ध्येय एक ही है—युग-युगान्तव्यापी अत्याचारका पूर्ण प्रतिशोध लेना। फ्रान्सीसी क्रान्तिके समयसे लेकर इस समयतक अनेक गुप्त तथा प्रकट उपायोंसे यहूदी-जाति इसी एक उद्देश्यकी ओर धावित होती चली गयी है। फ्रान्सकी राज्य-क्रान्तिके समयतक यूरोपमें ईसाई सभ्यताका बोलबाला था, आज यहूदी सभ्यता विजय-गर्वसे स्फीत है। सब ईसाई राष्ट्र आज उसके पैर चूमकर अपनेको कृतार्थ समझ रहे हैं। सब उसके इशारोंपर नाच रहे हैं। वह बायीं आंखसे पलक मारती है तो युद्ध होता है, दाहिनी आंखसे सङ्केत करती है तो शान्ति होती है। लीग आफ नेशन्सका सङ्गठन उसीने किया है। Alliance Israelite universlle (विश्वव्यापी यहूदी सङ्गठन) के आधारपर ही राष्ट्र-परिषद् प्रतिष्ठित हुआ है। इस प्रकार सम्पूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक तथा आर्थिक शक्ति यहूदियोंके हाथ आते देखकर ईसाइयोंमें आतङ्क छा गया है। मुट्ठीभर यहूदियोंने वज्रकठोर यातनायें सहकर भी अपनी जातिके प्रति श्रद्धावान् तथा अपने विश्वासके प्रति दृढ़ रहकर परस्पर भ्रातृत्वके अपूर्व सङ्गठनमें आबद्ध होकर आज जो यह विश्वविजयकी महान् शक्ति प्राप्त कर ली है, और प्रतिशोधका पूर्ण साधन आयत्त कर लिया है, उससे किसीका कैसा ही मतभेद क्यों न हो, उनके प्रबल अध्यवसाय, कठोर साधना तथा सुतीक्ष्ण बुद्धिकी प्रशंसा करनी ही पड़ती है। उनके प्राचीनतम पुरखे—उनके मसीहा—बहुत पहले जिन क्रान्तिकारी उद्गारोंको गरज गये हैं उनसे उन्होंने यथेष्ट शिक्षा ली है।

मेरे घटमें जीवन भर दो

[गान]

मेरे घटमें जीवन भर दो !

यह जो छन-छन छीज रहा है, उसको लेकर दृढ़तर कर दो।

मेरे घट में जीवन भर दो ॥

ज्यों-ज्यों मैंने इसे संजोया

त्यों-त्यों अधिकाधिक है खोया

जीवनदाता, मेरा आग्रह मेरे मनसे आज बिखर दो।

मेरे घट में जीवन भर दो ॥

आत्म-वञ्चना की अंधियारी

ढके हुए है प्रज्ञा सारी

मेरी गहरी मोह-निशा को प्रियतम तुम ज्योतिर्मय कर दो।

मेरे घट में जीवन भर दो ॥

बहुत भूलता भूल न पाता

जगका कैसा अद्भुत नाता

मेरे इस प्रवृत्तिमय मनको जीवनमय निवृत्तिमय कर दो।

मेरे घटमें जीवन भर दो ॥

लुटा हुआ हूं, दीन-हीन हूं

कलुषित हूं, मनका मलीन हूं

धो-धोकर अपने आंसूसे मेरा हृदय धवल प्रभु, कर दो।

मेरे घटमें जीवन भर दो।

—रामनाथ 'सुमन'

कोमागातामारू

श्री सत्यदेव विद्यालङ्कार

कलकत्ता हाईकोर्टमें देशभक्त बाबा गुरुदत्तसिंहजीने भारत-सचिवपर दो लाख रुपयेका जो दावा किया था, उसके गत मासमें खारिज होनेका समाचार समाचार-पत्रोंमें प्रकाशित हो चुका है और उनके साढ़े सात वर्षोंके अज्ञातवासकी कहानी छायारूपमें मासिक विश्वमित्रके पहले अङ्कमें प्रकाशित हो चुकी है। पर, यह बहुत कम लोगोंको मालूम है कि वयोवृद्ध बाबाजीने सरकारपर दो लाखका दावा क्यों किया था और क्यों उनको साढ़े सात वर्षों तक अज्ञातवास करना पड़ा था ? कोमागातामारू जहाजकी कहानीका जानना उसके लिए आवश्यक है।

बाबा गुरुदत्तसिंहजी मलायामें डेयरी फार्म, खेती और ठेकेदारीमें हजारों रुपये महीनेकी आमदनी करते हुए भी सिखोंके आपसके झगड़े निपटानेमें प्रायः लगे रहते थे। दीन-दुःखियों और आपद्ग्रस्त लोगोंके लिए आपके हृदयमें सहज प्रेम था। भारतसे रोजगारकी तलाशमें जानेवाले बेकार लोगोंको मलायामें आपके यहां ही आश्रय मिला करता था। अन्यायके विरोधमें अकेले खड़े होनेमें आपने बड़े-से-बड़े सरकारी अधिकारीका भी कभी भय नहीं माना। इन सब सद्गुणोंका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि सिङ्गापुर-मलाया आदिमें आप बहुत अधिक लोकप्रिय हो गये। अपने कष्टोंकी पुकार लेकर जनता आपके पास आने लगी। यही समय था जब कि अपने अध्यवसायी, मितव्ययी और परिश्रमी स्वभावके कारण भारतवासी, विशेषतः पञ्जाबी सिख विदेशोंमें जाकर समृद्ध होने लगे और वहां बड़ी-बड़ी जायदादें खड़ी करने लगे। अपने देशमें विदेशियोंका इस प्रकार समृद्ध होना उन देशोंके निवासी सहन नहीं कर सकते थे। जो भारतीय 'कुली' रूपमें उन देशोंमें जाते थे, उनका उन देशोंमें 'राजा' बनना सहन नहीं किया जा सकता था। काली चमड़ी वाले हिन्दुस्तानीका गोरोंकी बराबरी करना उनका सरासर अपमान था। कैनाडा सरकारने इस अपमानके प्रतिकारमें एक कानून बनाया। १९०३-४ से १९१० तक कोई दस हजार भारतवासी कैनाडामें पहुंच चुके थे। उनमें ९० सैकड़ा सिख थे और ९० सैकड़ा में भी ८० सैकड़ा फौजोंसे छुट्टी पाये हुए सिपाही थे। १९०८ में कैनाडामें उनकी जायदाद लगभग २ करोड़ १९ लाख रुपयेकी होगी। पहले इन सबको कैनाडासे निकालनेका यत्न किया गया। जब इस यत्नमें सफलता नहीं मिली, तब १९१० में ९ मईको इस आशयका कानून बनाया गया कि "कैनाडामें वही व्यक्ति जहाजसे उतर सकेगा जो कि सीधा अपने देशसे कैनाडाके लिए टिकिट खरीदकर बिना कहीं जहाज बदले हुए सीधा कैनाडा पहुंचेगा या जो कैनाडासे अपने देशके लिए रिटर्न टिकट खरीदकर अपने देश गया होगा।" इसीके साथ कानूनकी दूसरी धारा इस आशयकी थी कि "एशियासे आनेवाले प्रत्येक व्यक्तिके पास कैनाडा उतरनेके समय २०० डालर होना आवश्यक है।" इस कानूनका सीधा आशय यह था कि भारतवासी कैनाडा न आ सकें और कैनाडासे भारतको आया हुआ भारतवासी भी फिर कैनाडाको न लौट सके। उस समय ऐसी कोई कम्पनी नहीं थी, जिसके जहाज भारतसे सीधे कैनाडा जाते हों। हांककांग या जापानमें जहाज बदलना पड़ता था और इन स्थानोंसे कैनाडाके लिए दूसरा टिकिट खरीदना होता था। इस कानून-का सबसे अधिक बुरा परिणाम उनके लिए हुआ जिन कैनाडा-निवासी भारतीयोंने अपने परिवारके लोगोंको भारतसे कैनाडा बुलाया था। उस दृश्यको आंखोंके सामने तो लाइये, जब कि बच्चे और स्त्रियां जहाजपर खड़े हुए वर्षोंके बाद अपने पिता और पतियोंसे मिलनेको लालायित हों, दूसरी ओर समुद्रके किनारेपर खड़े हुए पिता और पति अपने बच्चों और स्त्रियोंसे मिलनेको उतावले हों—और उनके बीचमें खड़ी हुई कानूनकी दीवार उनको परस्पर मिलनेतक न दे और उलटे पैर लौटनेके लिए विवश करके बिना मिले ही आंखोंसे परे हटा दे! इससे अधिक करुणापूर्ण दृश्य और क्या हो सकता था? पत्थरका हृदय भी पसीज जाय। आह भरकर रह जाने और दो आंसू बहा लेनेके सिवा उनके पास और क्या था? अपने सम्बन्धियोंकी सहायताके भरोसे विदेशमें धनोपार्जन करनेका

सुख-स्वप्न देखते हुए जो लोग अपना सर्वस्व फूंककर किसी प्रकार कैनाडा पहुंचनेका प्रबन्ध करते होंगे, उनके इस प्रकार लौटाये जानेकी अवस्थाका दृश्य और भी अधिक हृदयद्रावक और रोमाञ्चकारी था। उनके लिए तो वह बेमौत ही मरना था। ऐसे निराश, निःसहाय, आपद्ग्रस्त और पूरे अर्थोंमें अनाथ लोग कैनाडासे लौटकर हांगकांग और सिङ्गापुरमें इकट्ठा होने लगे। एक बड़ी विकट समस्या उठ खड़ी हुई। इस समस्याने एक प्रचण्ड आन्दोलनको जन्म दिया।

आन्दोलनका श्रीगणेश वैध-उपायोंसे हुआ। १९११ के दिसम्बर मासमें वैङ्कोवार (कैनाडा) में 'खालसा दीवान सोसाइटी' और मलाया-सिङ्गापुरमें 'यूनाइट (?) इण्डिया लीग'की स्थापना की गयी। ओटावामें कैनाडा सरकारके पास डेपुटेशन भेजा गया। डेपुटेशनसे कहा गया कि भारत-सरकारसे परामर्श करनेके बाद कुछ जवाब दिया जायगा। सन् १९१३ में सरदार बलवन्तसिंह (जो पीछे फांसीपर लटका दिये गये), सरदार नन्दसिंह और सरदार नारायणसिंहका एक और डेपुटेशन ओटावा भेजा गया। ओटावासे वह लन्दन गया। लन्दनके कैक्सटन हालमें १४ मई १९१३ को एक सभा हुई, जिसमें कैनाडा-सरकारके कार्यकी निन्दा की गयी और कानूनोंको रद्द करनेपर जोर दिया गया। बादशाह, पार्लमेण्ट और भारतमन्त्रीको प्रस्तावोंकी नकलें भेजी गयीं। यह डेपुटेशन भारतमें भी आया और यहां आकर भारत-सरकार तथा अन्य सार्वजनिक संस्थाओंसे भी मिला। इस वैध-आन्दोलनका परिणाम कुछ भी न निकला।

असन्तोषकी बढ़ती हुई इस आगमें उसी समयकी कुछ घटनाओंने घी डालनेका काम किया। नयी देहलीमें रकाबगञ्ज गुरुद्वाराकी दीवारें इन्हीं दिनों गिरायी गयी थीं। मलायामें ६० सिखोंको गिरफ्तार करके मद्रास ले जाकर छोड़ दिया गया था, जहांकी भाषाका समझना उनके लिए कठिन था और जहां उनके पास खर्चके लिए एक पाई तक न थी। कैनाडासे निराश होकर लौटे हुए अच्छे-अच्छे घरोंके लोगोंको भी आजीविकाके लिए मेहनत-मजूरी करनी पड़ती थी। सिखोंमें असन्तोष, आवेश, रोष और विक्षोभ पैदा करनेके लिए ये घटनायें बहुत थीं। फिर इन्हीं दिनोंमें महात्मा गान्धीने दक्षिण अफ्रीकामें ऐतिहासिक सत्याग्रह शुरू किया था। वहां भारतीयोंके प्रति होनेवाले अत्याचार और अन्यायसे भी असन्तोषकी इस आगने विकट रूप धारण किया।

इन सब घटनाओंसे बाबाजीका मन भी उद्विग्न हो उठा। कैनाडासे लौटे हुए भारतीयोंकी अवस्थाका अध्ययन करनेके लिए आप १९१३ के नवम्बर मासमें हांगकांग आये और वहांकी एक सार्वजनिक सभामें सम्मिलित हुए। आपसे इस आन्दोलनका नेतृत्व करनेके लिए कहा गया। आपने अपनी ठेकेदारी, डेयरी फार्म और खेतीके कारबारकी कुछ भी परवाह नहीं की। सब सांसारिक लालच और मोहमायासे ऊपर उठकर आपने अपनेको सर्वतोभावेन इस आन्दोलनमें लगा दिया। सर्वसाधारणके सामने आपने अपनी आयोजना पेश की। वैध आन्दोलनमें आपका विश्वास न था। डेपूटेशन पहले ही निरर्थक सिद्ध हो चुके थे। आपके दो प्रस्ताव थे। एक तो यह कि कलकत्तासे सीधे कैनाडाके लिए जहाज चलाये जायं और दूसरा यह कि कैनाडाके बैङ्कमें एक लाख डालर भारतसे कैनाडा जानेवालोंकी जमानतके रूपमें जमा कर दिये जायं। आप कैनाडा-सरकारकी सचाईको कसौटीपर कसकर भारतीयोंमें आत्म-विश्वास तथा निःसीम साहस पैदा करते हुए उनके गौरवकी पताका संसारमें फहराना चाहते थे। 'गुरु नानक नेविगेशन कम्पनी' की स्थापना की गयी। चार जहाज चलानेका विचार किया गया। दो कैनाडासे कलकत्ता और दो बम्बईसे ब्राजील आने-जानेके लिए। परीक्षणके तौरपर पहले एक जहाज चलानेका निश्चय किया गया। जनतामें उत्साह इतना था कि ८० लाखके कम्पनीके शेयर खरीदनेके वायदे बातकी बातमें हो गये।

एक जापानी कम्पनीसे "कोमागातामारू" जहाज ठेकेपर लिया गया। ठेका, कम्पनीके एजेण्ट मि० ए० बोर्न और बाबाजीमें हुआ। ठेकेकी कुछ शर्तें नीचे दी जाती हैं। इनसे पाठकोंको यह भी पता चल जायगा कि कितने बड़े कामकी जिम्मेवारी बाबाजीने अपने ऊपर ली थी। इन शर्तोंपर कोई टीका-टिप्पणी करनेकी आवश्यकता नहीं। कुछ शर्तें ये हैं—

१—कप्तान, दूसरे अफसर, इञ्जिनियर, फायरमैन और क्रूका वेतन और तेल, रंगाई, बीमेका सब खर्च जहाजके मालिक देंगे। कोयला, लकड़ी, बन्दरगाहका किराया आदि सब बाबाजीके जिम्मे रहेगा।

२—हांगकांगके सिक्कोंमें ११ हजार डालर प्रतिमास जहाजका किराया हांगकांगमें कम्पनीके एजेण्टको देना होगा। एक मासका किराया शर्तनामेपर हस्ताक्षर करनेके साथ ही, दूसरे मासका किराया शर्तनामेके अनुसार काम शुरू होनेके बाद सप्ताह-भरमें, और दो मासका किराया १४ दिनमें, पर जापानसे कैनाडाके लिए जहाज चलनेसे पहले ही दे देना होगा। उसके बाद दो मासका किराया दो मास बाद। फिर प्रतिमास देना होगा।

३—इस प्रकार किराया देनेमें चूक होनेपर जहाज तुरन्त वापस ले लिया जायगा, जिसके लिए किसी प्रकारके हर्जाने-का दावा नहीं किया जा सकेगा और न पेशगी जमा किया हुआ ही लौटाया जायगा।

४—३१ मार्च १९१४ को जहाज तैयार करके हांगकांग पहुंचा दिया जायगा और उसके बाद २० घण्टेमें ही उसको रवायन करके काममें ले आना होगा।

५—अफसरोंकी जगहके अलावा बाकी सब जगह बाबा-जीके अधिकारमें रहेगी। वे जिसको चाहेंगे, उसको ही जहाजमें चढ़ने देंगे।

६—कप्तानको बाबाजीका आदेश मानना होगा और उनकी शिकायतपर कम्पनी कप्तान या अन्य किसी अफसरको बदल देगी।

७—यदि मरम्मतके लिए कहीं जहाजको ४८ घण्टोंसे अधिक समयके लिए रुकना पड़ा, तो किराया नहीं दिया जायगा और यदि मौसमकी खराबीसे रुकना पड़ा, तो किराया दिया जायगा।

८—यदि कहीं जहाज नष्ट हो गया, तो पेशगी जमा किया हुआ किराया समयके हिसाबसे लौटा दिया जायगा।

९—साधारण व्यापारके काममें ही जहाज लाया जायगा। लड़ाईका सामान तथा निषिद्ध और जहाजको नुकसान पहुंचानेवाले पदार्थ जहाजपर नहीं लादे जायेंगे।

१०—डाक्टरके रहने और भोजनकी व्यवस्था बाबाजीको करनी होगी।

११—बन्दरगाहमें रविवारके दिनके कामके लिए इञ्जि-नियरों और अफसरोंको ५० सैण्ट और क्रूको १२ सैण्ट प्रति-दिनके हिसाबसे बाबाजीको देना होगा।

१२—विवादास्पद विषयोंका फैसला पञ्चायतसे ही कराया जायगा।

१३—कारण्टीनका सब खर्च बाबाजीके जिम्मे रहेगा।

१४—जहाजपर लादे गये मालपर किये गये दावेके जिम्मेवार बाबाजी होंगे।

१५—रास्तेमेंसे लिये जानेवाले यात्रियोंकी सब आवश्यक-ताओंकी पूर्ति और जहाजमें पानी, रसोई, दवा, डाक्टर आदिकी सब व्यवस्था बाबाजीको करनी होगी। हांगकांगमें इमिग्रेशन लाइसैन्स और जहाजमें यात्रियोंके सुभीतेके लिए आवश्यक मरम्मतका सब खर्च बाबाजी देंगे और इस मरम्मतमें लगनेवाले समयका किराया भी।

१६—जहाज जिस अवस्थामें लिया जायगा, उसी अवस्थामें लौटाया जायगा।

१७—जहाजमें यात्रियोंको ले जा सकनेका सरकारी परवाना जहाजके मालिक लेकर देंगे।

पिछली तीन शर्तोंसे पाठक यह समझ गये होंगे कि जहाज माल ढोनेके कामका था, यात्रियोंके कामका नहीं। कोमागातामारूके कैनाडासे लौटनेपर बजबजमें जो गोलीकाण्ड (जिसका कुछ वर्णन मासिक-विश्वमित्रके प्रथम अङ्कमें किया जा चुका है) हुआ था, उसकी जांचके लिए नियुक्त सरकारी कमेटीने यह स्वीकार किया था कि जहाजमें ५३३ यात्रियोंके लिए व्यवस्था की गयी थी। ५०० टिकिटोंका बिक जाना निश्चित था। इससे बाबाजीको एक लाख डालरकी आमदनी होती। खर्च काटकर भी बहुत-सा लाभ रहता। माल ढोनेमें होनेवाली आमदनी उसके अलावा थी। कोयले वगैरहमें एक यात्राका खर्च १० हजार डालरसे अधिक नहीं होता। पहली सफल यात्राके बाद तो कहना ही क्या था? बाबाजी-का यह दावा था कि प्रत्येक यात्रामें एक लाख डालरका लाभ अवश्य होगा।

'श्रेयांसि बहुविघ्नानि।' जहाज तैयार हो गया। ५०० टिकिट बिक गये, १२५ डालर जमा कराकर ५०० यात्रियोंके लिए लाइसेन्स भी ले लिया गया और कानूनकी बाकी सब शर्तें भी पूरी कर दी गयीं कि २५ मार्च १९१४ को बाबाजी-को एकाएक गिरफ्तार कर लिया गया और उनके आफिस-पर भी पुलिसने कब्जा कर लिया। कागजोंकी जांच-पड़तालके बाद जमानतपर रिहा किया गया और २८ मार्चको

अदालतमें उपस्थित होनेपर पुलिसने मुकदमा वापस ले लिया। यात्रियोंमें भय पैदा हो गया और वे बहक गये। परिणाम यह हुआ कि यात्रियोंकी संख्या ६०० से घटकर १६९ रह गयी। बाबाजी इसपर भी निराश नहीं हुए। सब अनिच्छुक यात्रियोंका किराया वापस कर दिया गया। जहाजको शङ्घाईमें छः दिन और कोबे (जापान) में पांच दिन नये यात्री होनेके लिए ठहरना पड़ा। जिनके पास यात्राके लिए किराया नहीं था और कैनाडा पहुंचकर अपने इष्ट-मित्रोंसे लेकर किराया देनेका जिन्होंने वायदा किया था, उनको भी मजबूरीकी हालतमें साथ लिया गया। इस प्रकार २४ हजार डालर उधारखातेमें डाले गये। मुकदमा वापस लेनेके बाद भी जहाजको लङ्गर उठानेका हुक्म नहीं मिला और उधर किराया चढ़ना शुरू हो गया। हांगकांग-सरकारको हर्जानेका नोटिस दिया गया। उस समयके स्थानापन्न गवर्नरसे बाबाजी मिले तो मालूम हुआ कि हांगकांग-सरकारने कैनाडा सरकार और भारत-सरकारसे कोमागातामारू जहाजके सम्बन्धमें राय मांगी थी। इसीलिए जहाजको रोक रखा गया था। छः दिनमें भी जब कोई जवाब नहीं मिला और इधर कानूनी तौरपर जहाजको रोकनेका कोई भी कारण नहीं था तथा असन्तोष भी सीमाको पार कर रहा था, तब हांगकांग सरकारने अपने सिरसे बला टाली। जहाजको लङ्गर उठानेका हुक्म दे दिया।

४ अप्रैल १९१४ को कोमागातामारूने हांगकांगसे प्रस्थान किया। शङ्घाई और कोबेमें भी कुछ कम मुसीबतोंका सामना नहीं करना पड़ा। २१ मईको जहाज विक्टोरिया (कैनाडा) पहुंचा। डाक्टरी परीक्षामें जहाज और यात्री पूरे उतरे। कानूनकी बाकी सब शर्तें भी पूरी कर दी गयीं। २२ मईकी रातमें ही जहाज वैङ्कोवर पहुंच गया। यात्री यात्राको सफल और पूर्ण मानकर एक दूसरेको बधाई दे रहे थे, अपने सगे-सम्बन्धियों और इष्ट-मित्रोंसे मिलनेके मनसूबे बांध रहे थे। पर आपत्तियोंकी उठती हुई घनघोर घटाकी किसीको कल्पना भी नहीं थी। बन्दरके मास्टरके आफिसमें जहाजकी रिपोर्ट देने जाने तकके लिए भी किसीको उतरने नहीं दिया गया। किसी शर्तकी अवज्ञा अथवा किसी अन्य कारणसे लौटनेके लिए विवश किये जानेवाले भी बन्दरपर उतर सकते थे और सरकार द्वारा नियत किये हुए स्थानमें लौटनेके समय-तक आराम कर सकते थे, पर कोमागातामारू जहाजके यात्रियोंके साथ कानूनका यह साधारण व्यवहार भी नहीं किया गया। वे जहाजसे उतरकर किनारेपर पर भी नहीं रख सकते थे। व्यापारीय दृष्टिसे बाबाजी जहाजपर बहुत-सा सामान भी लाद ले गये थे। पर वह भी जहाजसे उतारने नहीं दिया गया।

कैनाडा-सरकारके जिस कानूनका ऊपर उल्लेख किया गया है, वह धर्म-प्रचारकों, व्यापारियों, विद्यार्थियों, पर्यटन करनेवाले यात्रियों और सरकारी अधिकारियोंपर लागू नहीं होता था। जहाजके यात्रियोंमें ग्रन्थी और मौलवी होनेसे धर्म-प्रचारकों, विद्यार्थियों और व्यापारियोंकी संख्या कोई ५० के लगभग थी। बाबाजी तो जहाजके मालिक अथवा ठेकेदार होनेसे व्यापारी ही थे। कुछ और नहीं तो बाबाजीका इतना काम तो जरूर था कि वह जहाजपर लाया हुआ माल किनारेपर उतारते और वापिसी यात्राके लिए कुछ माल मिल सकता तो उसको जहाजपर ले लेते। ऐसे मालकी चुङ्गी देते और जहाजके यात्रियोंके लिए भोजन तथा पानीका प्रबन्ध करते। इसलिए बाबाजीको जहाजसे उतरनेका पूरा अधिकार था। उन्होंने अधिकारियोंको इस बातका भी पता दिया कि ४ जून १९१४ से पहले उनको २२ हजार डालर बतौर जहाजके किरायेके मालिकोंको देना है और किसी बैङ्ककी मार्फत इसका प्रबन्ध करना है। अधिकारियोंने इसको भी अनसुना कर दिया। वैङ्कोवरके सिखोंने मि० बर्डको कानूनी सलाहकार नियुक्त किया। सब मामला समझनेके लिए उसने बाबाजीसे मिलनेके लिए जहाजपर जानेका यत्न किया। उसको भी जहाजपर जाने नहीं दिया गया। जहाजसे इमिग्रेशन आफिसर, खालसा कमेटी गुरुद्वारा वैङ्कोवर, कैनाडा-सरकार, भारत-सरकार, ब्रिटिश-पार्लमेण्ट, बादशाह पञ्चमजार्ज, नाभा और पटियालाके महाराज, चीफ खालसा दीवान अमृतसर और हिन्दू-सभा आदिको तार देनेमें हजारों रुपये खर्च किये गये। पर सब व्यर्थ सिद्ध हुआ।

कैनाडा-सरकारके सालिसिटर्सकी मार्फत हरजानेका नोटिस दिया गया। उस नोटिसपर भी सरकारने कुछ ध्यान नहीं दिया।

नियमके अनुसार ऐसे व्यक्तिको, जिसके मामलेका अभी अन्तिम फैसला न हुआ हो, जमानतपर भी छोड़ा जा सकता

था। पर कोमागातामारूके यात्रियोंको जमानतपर छोड़नेसे भी इनकार किया गया। अन्तमें केवल जहाजपर लाये हुए मालको उतारने और नया माल ढोनेकी आज्ञा मांगी गयी, जिससे कि जहाजके लाने और ले जानेका कुछ खर्च तो निकल सके। पर इसके लिए भी मंजूरी नहीं दी गयी। फिर यह कहा गया कि कोमागातामारूके कुछ यात्रियोंके विरुद्ध 'टैस्ट-केस' किया जाय और उसके द्वारा इस मामलेका फैसला कर लिया जाय। पर सरकारको यह बात भी मंजूर नहीं हुई। किनारे-पर अपने खर्चसे एक अस्थायी मकान बनाकर मामलेका अन्तिम फैसला हुएतक यात्रियोंको वहां ठहरानेकी अनुमति मांगी गयी। वह अनुमति भी न मिली। जहाजके यात्रियोंके वकीलोंने सरकारको पत्र-पर-पत्र और तार-पर-तार देकर यह बतानेका यत्न किया कि यात्रियोंने सरकारी कानूनका अक्षरशः पालन किया है और कैनाडामें उतरनेका कानूनन उनको पूरा अधिकार है। पर चिकने घड़ेपर पानीकी बूंदकी तरह सरकार-पर किसी भी पत्र या तारका कुछ भी असर नहीं हुआ।

इन सब यत्नोंमें निराश होकर यात्रियोंकी कमेटीने लौटनेका निश्चय किया और लौटनेके लिए सरकारसे लिखा-पढ़ी करनेके लिए अपने वकीलोंको लिखा। सरकारके सामने यात्रियोंकी ओरसे दो तरहके प्रस्ताव उपस्थित किये गये, जिनमेंसे किसी एकके भी मान लेनेपर यात्री सन्तुष्ट हो जाते। पहलेका आशय यह था कि जहाजसे माल उतारने और नया माल ढोनेकी अनुमति दी जाय। इस काममें जितना समय लगे, उतने समयके लिए यात्रियोंसे लापता न होनेकी जमानत ले ली जाय और हर रोज चाहे उनकी हाजिरी भी ली जाय। असमर्थ लोगोंके लौटनेका किराया सरकारकी ओरसे दिया जाय। दूसरेका आशय यह था कि १० से २० हजार डालर तक सरकारकी ओरसे यात्रियोंके लौटनेका खर्च दिया जाय। मार्गके लिए भोजन और पानीका सब प्रबन्ध किया जाय। इन शर्तोंमें किसीके भी स्वीकार करनेपर तुरन्त लौटनेकी इच्छा प्रकट की गयी। बाबाजीके साथ उनका छः वर्षका बालक भी था। बाबाजीने बालक सहित इंगलैण्ड जानेके लिए ही जहाजसे उतरनेकी आज्ञा मांगी। सरकारने यात्रियोंकी इस मांगपर भी कान नहीं दिया।

जहाजको पानीमें खड़े हुए दो मास होनेको आये। हांग-[illegible] चले हुए कोई तीन मास बीतते होंगे। जहाजपर पीनेका पानी नहीं रहा और खाद्य-सामग्री भी सब समाप्त होने लगी। इमिग्रेशन आफिसको यात्रियोंके बीमार पड़नेका समाचार दिया गया और लिखा गया कि बीमार व्यक्तियोंको अस्पताल पहुंचानेको व्यवस्था की जाय। इसपर भी कुछ ध्यान नहीं दिया गया।

लौटते हुए कुछ नये यात्रियोंको साथ लेनेका विचार केवल इसलिए किया गया कि जहाजका कुछ खर्च वसूल हो जाय। बाबाजीने जहाजका ठेका अपने नामसे बदलकर वैङ्कोवरमें रहनेवाले सरदार भागसिंह और मि० रहीमके नामसे कर दिया। उन्होंने सरकारसे जहाजपर जानेकी आज्ञा इसलिए मांगी कि जो यात्री कैनाडासे भारत जाना चाहें, उनके लिए योग्य व्यवस्था की जा सके। इस मांगको यह कह कर टाल दिया गया कि मि० रहीम और भागसिंहके जहाजपर जानेसे नया झञ्झट उठ खड़ा होगा [illegible] यात्री हैं, उनसे अधिकके लिए स्थानकी गुञ्जाइश नहीं है। जब लिखा गया कि जहाजको ५७० यात्रियोंके लिए सार्टि-फिकेट मिला हुआ है, तब भी कुछ ध्यान नहीं दिया गया।

इधर यात्री अपने इन यत्नोंमें लगे हुए थे और उधर यात्रियोंमें फूट डालने, बाबाजीके विरुद्ध उनको भड़काने और भोजन-सामग्री समाप्त होनेके बाद भी ठीक-ठीक रसद न पहुंचाकर उनको भूखों मारने और उनकी कोई भी बात न मानकर उनको सतानेकी पूरी कोशिश की जा रही थी। जब ये उपाय विफल होते दीख पड़े, तब शक्ति आजमायी जाने लगी। १९ जुलाईको 'सी लायन' नामके मोटर लञ्चपर पुलिसके जवान सवार होकर जहाजकी ओर बढ़े। लञ्चको जहाजके साथ बांधा जाने लगा। यात्रियोंने उसका प्रतिवाद किया तो उनपर गरम पानीका फौवारा छोड़ा गया। यात्री समझ गये कि दालमें कुछ काला है। बाबाजीको उनके बच्चेके साथ सुरक्षित रखनेके लिए एक केबिनमें यात्रियों द्वारा बन्द कर दिया गया। इधरसे कोयला और उधरसे गोलियोंकी वर्षा होने लगी। लञ्चसे जहाज ऊंचाईपर था। इसलिए यात्री लाभमें रहे। कोयला तो अपना काम करता ही था, पर उस कोयलेकी मारसे लञ्चकी खिड़कियों आदिमें लगा हुआ शीशा टूट-टूटकर गोलियोंसे भी अधिक बुरी चोट करता था। पुलिसके

जवान बुरी तरह घायल हुए। लञ्चमें भगदड़ मच गयी। लञ्चको जहाजके साथ बांध दिया गया था। इसलिए भागना भी मुश्किल था। यात्री कोयलेके शस्त्रास्त्रसे काम लेंगे—इसकी पुलिसको कल्पना भी न होगी। अस्तु, सिपाही किसी तरह जान बचाकर भागे। कैनाडामें ही नहीं, समस्त अमेरिका और यूरोपमें भी इस घटनासे विक्षोभ पैदा हो गया। यात्रियोंमें केवल दो-तीनको ही साधारण चोट लगी होगी। पर पुलिसका शायद ही कोई आदमी मार खाने और घायल होनेसे बचा होगा। विजयका सेहरा यात्रियोंके माथे बंधा। शक्ति परीक्षामें वे पूरे उतरे। उनका हौसला बढ़ा और वे पत्थरकी चट्टानकी तरह बिलकुल दृढ़ हो गये। भूख-प्याससे वैसे ही मरना था। क्यों न इस प्रकार वीरोंकी मौत मरा जाता? बस, इस विचारने उनको अमर बना दिया। अमृत छकनेवाला अकाली भी क्या कभी मृत्युसे डरा है? 'कार्यं वा साधयेयं शरीरं वा पातयेयम्' का अमोघ मन्त्र पढ़कर जान हथेलीपर रखकर सभी सब प्रकारकी आपदाओंका सामना करनेके लिए तैयार हो गये।

कैनाडा-सरकार इस गुस्ताखीको कैसे सहन कर सकती थी? पुलिसकी हारके बाद फौजकी शक्ति आजमायी जाती है। लड़ाईके दो जहाजोंने लड़ाईके सामानसे लैस होकर जहाजको दोनों ओरसे जा घेरा। एक ओर सैनिक शक्तिका यह प्रदर्शन और दूसरी ओर ३६० निहत्थे, असहाय और भूख-प्याससे तङ्ग आये हुए लगभग तीन माससे समुद्रमें जहाजपर कैदमें पड़े हुए बीमार लोगोंकी हंसते-खेलते मृत्युको आलिङ्गन करनेकी अद्भुत तैयारी। राजपूती परम्पराके आदी और गुरु गोविन्दके प्यारे हिन्दुस्तानियोंके लिए इस समय दूसरा उपाय ही क्या बचा था? यात्रियोंकी सभा हुई। दो ही मार्ग थे। एक यह कि भूखे-प्यासे, बिना अन्न-जलके जहाजका लङ्गर उठाकर लौट पड़ते और रास्तेमें ही कहीं बेमौत मर जाते। दूसरा यह कि कैनाडाके तटपर गोलियोंका शिकार होकर शहीद हो जाते। शहीद होनेका निश्चय किया गया और उसके लिए एक नये ही मार्गका अवलम्बन करना तय पाया गया। वह यह था कि लोहेकी सीकों, छड़ियों और कोयले आदिसे तो पहले सामनेवालोंका मुकाबला किया जाय। कुछ लोगोंने इस 'युद्ध'के लिए लाल मिर्चोंकी बुकनी और घोल भी तैयार कर लिया। यह निश्चय हुआ कि जब इस 'युद्ध'में पीछे हटना पड़े, तब सब यात्री नीचेके तहखानोंमें भाग जायं। आक्रमण करनेवाले भी उनके पीछे तहखानोंमें जरूर आयेंगे ही। उनके आनेके बाद कोयलेपर तेल छिड़ककर आग लगा दी जाय और इस प्रकार दुश्मनके साथ जलकर भस्म हुआ जाय। इधर आत्म-समर्पणके इस महायज्ञकी तैयारी हो रही थी और दूसरी ओर लङ्का-दहनका भयानक आयोजन किया जा रहा था।

वैंङ्कोवरके भारतवासी कोमागातामारूके लिए सर्वस्व न्यौछावर करनेका सङ्कल्प कर चुके थे। उन्होंने निश्चय किया कि जैसे ही जहाजसे आग उठती दीख पड़े, वैसे ही वैंङ्कोवरमें जहां-तहां आग लगा दी जाय। यदि कहीं यह भेद खुल जाय और किसीको इस सम्बन्धमें गिरफ्तार किया जाय, तो भी पहले आदमीके गिरफ्तार होते ही शहरको फूंकना शुरू कर दिया जाय। बड़ी विकट समस्या थी।

कैनाडा-सरकारने जहाजके नष्ट होनेकी अवस्थामें जापानको हरजाना तक देनेका निश्चय कर लिया था। इसी विचारसे जापानी अफसरों और नौकरोंको जहाजसे उतारनेका यत्न भी किया। पर यात्रियोंने जापानियोंको जहाजसे उतरने नहीं दिया। इसलिए भी यात्रियोंपर अन्धाधुन्ध गोली चलाकर जहाजको डुबाने और किसी जापानीके घायल होनेका खतरा अपने ऊपर लेनेका साहस कैनाडा-सरकारको नहीं हुआ। गीदड़-भभकियां बहुत दिखायी गयीं और यात्रियोंको लङ्गर उठानेका नोटिस भी दिया गया। पर मृत्युके बाद किसका भय रह जाता है? इसलिए इन सब बातोंमें कैनाडा-सरकारको मुंहकी खानी पड़ी। उधर वैंङ्कोवरके प्रस्तावित लङ्का-दहनकी खबर कैनाडा-सरकारके कानोंमें पहुंचते ही अधिकारी घबरा उठे और अब उनकी ओरसे सुलहकी बातें पेश हुईं। वैंङ्कोवरके भारतवासियोंके पास अधिकारी पहुंचते तो वे जहाजवालोंके पास जानेका टका सा जवाब दे देते और जहाजवाले वैंङ्कोवरकी कमेटीके पास जानेका रास्ता दिखा देते। इस कशमकशके बाद सरकारको रुकना पड़ा। वैंङ्कोवरकी कमेटीके सदस्योंको जहाजपर जाने, यात्रियोंको भोजनका सामान पहुंचाने और लौटनेकी शर्तोंको तय करनेके लिए विचार-विनिमय करनेकी अनुमति देनी पड़ी। दूसरा युद्ध टल गया और उसके साथ ही निरपराध हिन्दुस्तानियोंके

सूनका कलङ्क कैनाडा-सरकारके माथे लगनेसे टल गया और टल गया वैङ्कोवर शहरका भीषण लङ्का-काण्ड । छः दिन बाद यात्रियोंको अन्न-जलके दर्शन हुए और वैसे लहीनों बाद उन्होंने पेट भरकर खाना खाया । सरकार यात्रियोंको लौटनेका खर्च भोजन-सामग्रीके साथ देनेको तैयार हुई । भोजन-सामग्री तुरन्त और लौटनेका किराया जहाज लौटानेके बाद जहाजके ठेकेदारोंको देना तय हुआ । २२ जुलाईको जहाजपर मुंह-मांगी भोजन-सामग्री सरकारकी ओरसे पहुंचायी गयी और २३ जुलाई १९१४ को जहाजने वापस लौटनेके लिए लङ्गर उठाया । यात्रियोंके लिए सरकारका इतना झुकना भी कुछ कम गौरवास्पद नहीं था । पर अपने ही कानूनोंको सरकार द्वारा इस प्रकार पददलित किये जानेका दृश्य यात्रियोंको और भी अधिक भड़कानेवाला था ।

वैङ्कोवरके भारतीयोंकी अपने भाइयोंके लिए सच्ची सहानुभूति, अलौकिक त्याग तथा दृढ़ संकल्पकी गौरवपूर्ण कहानी और बादमें इन्हीं यत्नोंमें अपने सर्वस्व-बलिदानका, यहां तक कि कुछ एकके गोलीके शिकार होने और फांसीपर लटकने तकका,वीरतापूर्ण किस्सा एक स्वतन्त्र लेखके विषय हैं। जहाजवालोंका वैङ्कोवरवालोंसे गुप्त पत्र-व्यवहारका मनोरञ्जक वर्णन भी विस्तार रूपसे इस लेखमें नहीं दिया जा सकता । ऐसे ही कुछ महत्त्वपूर्ण और मनोरञ्जक विषयोंको छोड़कर, जिनके बिना कि यह लेख पूरा हुआ नहीं समझना चाहिए, पाठकोंको जहाजके यात्रियोंके साथ ही कैनाडाके किनारेसे मुंह फेर लेना चाहिए और यात्रियोंकी मुसीबतोंसे भरी हुई अगली कहानीको हृदयपर पत्थर रखकर पढ़ना चाहिए ।

यह किसको मालूम था कि कोमागातामारूका उत्तरार्ध पूर्वार्धसे भी अधिक कष्टोंसे भरा हुआ होगा और हांगकांग लौटनेकी आशाओंपर भी तुषारपात होनेवाला है । जहाज १६ अगस्तको योकोहामा (जापान) पहुंचा । वहीं बाबाजीको औपनिवेशिक सचिवका पत्र मिला कि हांगकांगमें जहाजका कोई भी यात्री उतरने नहीं पायगा । जहाजके मालिकोंने कप्तानको जहाजको कोबे ले जानेका हुक्म दिया । १८ अगस्तको योकोहामासे चलकर जहाज २१ अगस्तको कोबे पहुंचा । वहां सिन्ध-निवासी श्री जवाहरमल जोतीराम मानसुखानी एम० ए० (सम्भवतः इस समयके स्वामी गोविन्दानन्दजी, जो कि उस प्रान्तके एक विख्यात कांग्रेस कार्यकर्ता और नौजवान-दलके नेता हैं) ने जहाजके यात्रियोंका शानदार स्वागत और आतिथ्य-सत्कार किया । वहां रहनेवाले सब भारतवासियोंको इकट्ठा किया । यहां जहाजके कर्मचारियों और यात्रियोंमें परस्पर कुछ वैमनस्य भी हो गया । जहाज खाली करानेकी चेष्टा की गयी । पर ३ अक्टूबर १९१४ तकका ठेका होनेसे इस चेष्टामें सफलता मिलनी कठिन थी । हांगकांग जाना अब व्यर्थ था । इसलिए कलकत्ता जानेका निश्चय किया गया । पर जहाजके कर्मचारी तङ्ग आ चुके थे । फिर हांगकांगसे कलकत्तातकके खर्चका प्रश्न भी कुछ मामूली नहीं था । भारत-सरकार और उसके जापानस्थित प्रतिनिधिमें तारों-द्वारा यह निर्णय हुआ कि जहाज कलकत्ता न आकर मद्रास आवे और मद्रास आनेके लिए १९ हजार येन तक भारत-सरकार खर्च करे । यात्रियोंसे मद्रासकी बात गुप्त रखी गयी । पर जहाजके चलते ही भेद खुल गया । २ मीलकी दूरीपर यात्रियोंसे तङ्ग आकर जहाजको फिर लङ्गर डालना पड़ा । यहांसे जहाज तब तक न चल सका जब तक कि मद्रास न जाकर जहाजको कलकत्ता ले जानेके लिए ही ठीक न कर दिया गया । २ सितम्बरको कोबेसे चलकर जहाज १६ सितम्बरको सिंहापुर पहुंचा । यहां भी जहाजको बन्दरगाहसे ९ मील दूरीपर ही रोक दिया गया । यहां कुछ लोग नौकरीकी तलाशमें उतरना चाहते थे, श्री जवाहरमल और उनके भाईको यहांसे बम्बईके लिए जहाज बदलना था और बाबाजीको अपने कारबारके सम्बन्धमें कुछ आवश्यक कार्य था । पर नहीं । एक बात भी नहीं सुनी गयी । जहाजको ९ मीलकी दूरीसे ही लङ्गर उठाकर कालपीका रास्ता नापना पड़ा । यहां जहाज २६ सितम्बरको जब पहुंचा, तब एकाएक उसको कुछ दूरीपर ही रोक दिया गया । डोंगियोंपर बैठकर वहांके निवासी जहाजके यात्रियोंको कुछ सामान बेचने आते हैं । पर उनको भी इस जहाजके पास आनेसे रोका गया । यात्री समझ गये कि यहां भी आफतका कोई पहाड़ टूटनेवाला है । रातभर जहाजको वहीं रोक रखा गया और यात्रियोंपर कड़ा पहरा लगा दिया गया । २७ सितम्बरको सवेरे ही एक लञ्चपर सवार होकर कुछ यूरोपियन अफसर जहाजपर आ धमके । उनके पीछे ही फौजके पञ्जाबी सिपाही भी पहुंच गये । पर थे सब साधारण वेशमें । जहाजकी पूरी तलाशी ली गयी । २८ता० को भी फिर तलाशी ली गयी । कहा यह

गया कि पहले दिनकी तलाशी चुङ्गीवालोंने ली थी और दूसरे दिनकी तलाशी पुलिसकी ओरसे ली गयी है। २९ को फिर सब यात्रियोंके पहने हुए कपड़ोंकी तलाशी ली गयी। तलाशीकी इस विधिके बाद पुलिसके पूरी तरह सन्तुष्ट हो जानेपर जहाजको कलकत्ताकी ओर बढ़नेके लिए लङ्गर उठाने दिया गया। २९ सितम्बरकी दुपहरको जहाजके बजबज पहुंचते ही उसकी चाल धीमी हुई कि यात्रियोंके अन्तःकरणमें सन्देह पैदा हुआ। वे किसी अशुभकी कल्पना कर ही रहे थे कि जहाजको कलकत्तेसे १७ मीलकी दूरीपर बजबजमें ही रोक दिया गया। उस दिन यात्री न तो भोजन बना सके और न चाय-पानीकी ही तैयारी कर सके। उनको कहा गया कि भोजनका सब उचित प्रबन्ध सरकारकी ओरसे किया गया है, उनको कष्ट उठानेकी आवश्यकता नहीं। पर क्या मालूम था कि कैनाडाके किनारेपर आत्मोत्सर्गके महान् यज्ञके अलौकिक अनुष्ठानका उन्होंने जो अनुपम संकल्प किया था, वह बजबजमें पूरा होनेको था? बजबजके गोलीकाण्डकी कहानी कुछ लम्बी है। इस कहानीके अन्तमें इतना लिखना आवश्यक है कि बजबजमें जहाजसे यात्रियोंको जबरन् उतारा गया और उनको जहाजपरसे अपने साथ कुछ भी सामान नहीं लेने दिया गया। कुछ यात्री तो बदनपर पूरे कपड़े तक नहीं पहन सके। बाबाजीका सेक्रेटरी कानूनी कामकाजके कागज भी साथ नहीं ला सका। डालर, पौण्ड, येन और हुण्डियोंके रूपमें लाखों रुपया और यात्रियोंकी व्यक्तिगत सम्पत्ति भी सबकी सब जहाजपर ही रह गयी। इसी सम्बन्धमें बाबाजीने भारत-मन्त्रीके विरुद्ध कलकत्ता हाईकोर्टमें दावा किया था, जो खारिज हो चुका है और इसी समय बजबजमें बरसती हुई गोलियोंसे बचकर साढ़े सात वर्षतक आपको अज्ञातवास करना पड़ा था।*

---

* इसी लेखके लेखक द्वारा लिखित शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली देशभक्त बाबा गुरुदत्तसिंहजीकी विस्तृत जीवनीके कुछ अध्यायोंके आधारपर। यह लेख खास तौरपर 'विश्वमित्र' के लिए ही लिखा गया है।
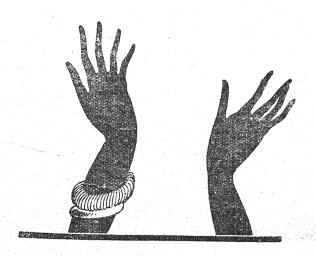
विवाह-वैचित्र्य

श्री पी० एन० बोस बी० ए० (वेल्स)

हममेंसे बहुतेरे जानते होंगे कि शादी किसे कहते हैं, लेकिन ऐसे बहुत थोड़े हैं जिन्हें यह मालूम होगा कि संसारके विभिन्न भागोंमें अतीतमें इसके क्या-क्या रूप थे और वर्तमान में क्या हैं। यह संसार इतना विस्तृत है और इसमें भिन्न-भिन्न रीति-रिवाजोंके इतने मनुष्य हैं कि एक विशेष देशके अधिवासीके लिए संसारके दूसरे किसी देशकी विवाह-प्रणालीको समझना बड़ा मुश्किल है। जिस तरह कि एक देशका पहनावा दूसरे देशके पहनावेसे मेल नहीं खाता, ठीक उसी तरह दो महादेशोंकी विवाह-प्रणालियां भी एक दूसरेसे जमीन-आसमानका फर्क रखती हैं। उदाहरणके लिए भारतीय विवाह-प्रणाली—जिससे हम सभी परिचित हैं, अफ्रिका या अस्ट्रेलियावालोंके लिए आश्चर्यमय सिद्ध होगी। भारतवर्षमें ऐसे व्यक्ति अनेक हैं, विशेषकर मुसलमान, जो दो-तीन शादियां करते हैं, लेकिन अगर कहीं आप यह बात किसी युरोपियन नेटिवसे कहें, तो वह अवाक् हो जायगा। इसी तरह हम भी जब 'साल्ट लेक सिटी' की बातें सुनते हैं तो दङ्ग रह जाते हैं। वहां मनुष्योंका ऐसा समुदाय है, जो युक्त राज्य (अमेरिका) के नाना भागोंके व्यक्तियोंसे बसा हुआ है। ये साल्ट लेक-निवासी खूब मिल-जुल कर रहते हैं। उनके ब्याह नहीं होते ; लेकिन कोई भी व्यक्ति इच्छानुसार अनेक स्त्रियोंके साथ रमण कर सकता है। स्त्रियोंको भी यही स्वतन्त्रता है ; वे भी चाहे जितने पुरुषोंके साथ हिलें-मिलें। वहां सदाचारकी कोई कैद नहीं और न स्त्री-पुरुष-विषयक संयमका कोई ध्यान। कोई भी व्यक्ति, चाहे पुरुष हो अथवा स्त्री, स्वेच्छानुसार अपनेको प्रसन्न रख सकता है। लेकिन यहां यह सोचनेकी भूल न करनी चाहिए कि वहांवाले सब दुरात्मा और विषयी हैं। वे सब सुशिक्षित और सम्भ्रान्त हैं जो अमेरिकाके कुलीन वंशोंसे निकालकर बसाये गये हैं। विवाहकी यह रस्म हमें बड़ी विचित्र मालूम देती है, लेकिन ऐसा भी एक स्थान है जहां ब्याह-शादियोंमें इससे भी अधिक विचित्रता है और वह स्थान भी भारतके सन्निकट—तिब्बत—है।

तिब्बतमें कुछ पुरुष (दो, तीन, चार, पांच या छः) एक स्त्रीसे विवाह करते हैं। वह स्त्री सबकी सम्मिलित भार्या होती है और पारी-पारीसे सबके साथ विहार करती है। अवश्य ही यह बड़ा अप्रीतिकर कार्य है कि आपकी स्त्रीके और भी कई हकदार हों। किन्तु सबसे अधिक कष्टकर तो यह है कि अपनी पारीके आने तक धैर्य्यपूर्वक कैसे समय बिताया जाय। उदाहरणके लिए—यदि आपकी स्त्रीके छः पति हैं तो आपको पांच दिन तक धैर्य्य रखना होगा, तब कहीं छठवें दिन आप उसके हकदार होंगे। लेकिन संयमी तिब्बती इस क्रियाके अभ्यासी हैं। उन्हें पांच दिन तक ठहरना अखरता नहीं, बल्कि इसे वे पसन्द करते हैं। एक बार एक अभ्यागतने एक लामासे कहा—"तुम लोग इस असभ्य प्रणालीको कैसे पसन्द करते हो ?" लामाने ईषत् आश्चर्य्य और दुःखके साथ कहा—"देखो, हम लोग तुम्हारी तरह स्वार्थी नहीं हैं जो एक स्त्रीके लिए परस्पर साझेदारी न निभा सकें।" वहां ईर्ष्याद्वेषका नाम नहीं है तब क्यों ऐसी विचित्र प्रथा जीवित न रह सके ! कई पुरुष एक ही स्त्रीसे काम चला लेते हैं, इसका कारण यही है कि साधारणतः वे बड़े गरीब हैं, और शादीमें खर्च होते हैं टके ; इसलिए वे अलग-अलग एक-एक स्त्रीका खर्च संभाल नहीं सकते। ऐसी दशामें वे अपनी-अपनी पूंजी एक-साथ भिड़ाकर एक स्त्रीसे ब्याह कर लेते हैं जो सबका काम देती है। लेकिन, अगर कहीं इन सबोंमें कोई-एक एकाएक रुपये आ जानेसे धनी हो जाता है, तो फिर साझेकी औरतसे उसका काम नहीं चलता और वह इस सामूहिक स्त्रीको छोड़कर दूसरी स्त्रीसे ब्याह कर लेता है और मजेमें दिन काटता है। गड़ेरिये, बहुधा कई मिलकर एक ही स्त्री रखते हैं। लेकिन जमींदार, रईस और धनीमानी एक ही औरतसे न सन्तुष्ट होकर कईसे शादी करते हैं। जिनके पास जरूरतसे ज्यादा पैसा है, वे स्त्रियोंकी एक बड़ी तादाद रखते हैं।

तिब्बतमें एक स्त्रीके जो कई पति होते हैं वे बहुधा भाई-भाई होते हैं। स्त्रीका चनाव सबसे बड़ा भाई करता है ;

लेकिन यह बात तय-सी रहती है कि जब उसकी शादी हो जाती है तो दूसरे छोटे भाई भी तब तक उस स्त्रीके भागीदार बने रहते हैं जब तक वे एक ही कुटुम्बमें निवास करते हैं। और, अगर कहीं बड़ा भाई शादी न करे, बल्कि दूसरा या तीसरा करे, तो विवाहिता स्त्री भी क्रमशः दूसरे और तीसरे भाई की पत्नी होती है, साथ ही उसके सभी छोटे भाई भी अपनी भाभीके अधिकारी होते हैं। बड़े भाईका, अपने छोटे भाईकी स्त्रीपर कोई बस नहीं, लेकिन बड़े भाईका ब्याह होते ही छोटे भाइयोंका उसकी स्त्रीपर हक हो जाता है। एक और बात यह भी है कि यदि छोटा भाई विवाह कर लेता है तो बड़े भाई या भाइयोंको घरसे अलग हो जाना पड़ता है। यद्यपि, साधारणतः भाइयोंके एक ही सामूहिक स्त्री रहती है, तो भी, जैसा कि शरत्चन्द्र दास, जो तिब्बत भ्रमण कर आये हैं, कहते हैं—"एक पिता या चाचाके लिए अपने पुत्र या भतीजेकी स्त्रीके साथ रहना साधारण बात है, यहांतक कि उन्नत कुटुम्बोंमें भी पिता अपनी पुत्रवधूका सम्भोगी हो जाता है।"

इस प्रथापर जो लोग आश्चर्य्य प्रकट करते हैं, कभी-कभी प्रश्न करते हैं कि ऐसे समूहकी स्त्रीके जब सन्तान उत्पन्न होती है तो किसकी कहलाती है? क्योंकि कोई इस बातका दावा नहीं कर सकता कि वह अमुक पुत्र या पुत्रीका पिता है। लेकिन तिब्बतियोंको इसमें कुछ भी आपत्ति नहीं है। सब बच्चे बड़े भाईके लड़के-लड़की कहलाते हैं। वे उसे पिता और उसके छोटे भाइयोंको चाचा कहते हैं। लेकिन जब बड़ा भाई मर जाता है तो परिस्थिति कुछ जटिल हो जाती है। ऐसी स्थितिमें स्त्री अपने इच्छानुसार छोटे भाइयोंमें किसीको अपना पति चुन लेती है। अगर कहीं वह दूसरे भाईको पसन्द करती है तो बाकी छोटे भाइयोंका फिर उसपर कब्जा हो जाता है। और यदि वह छोटे भाइयोंमेंसे किसी एकके साथ विवाह करे तो उससे छोटे भाइयोंका उसपर अधिकार रहता है। लेकिन वही स्त्री यदि सबसे छोटे भाईके साथ रहना पसन्द करती है तो वह सिर्फ उसीकी होकर रह जाती है और बड़े भाइयोंका उसपर कोई बस नहीं रहता।

किन्तु तिब्बत ही ऐसा स्थान नहीं है जहां कई पुरुष एक स्त्री रखते हैं। संसारके दूसरे देशोंमें भी ऐसी प्रथा है। भारतके नाना प्रान्तोंमें भी यह प्रथा देखी जाती है, जैसे पञ्जाब, दक्षिण भारत और आसामके कुछ भागोंमें। भूटान, नेपालकी जातियोंमें, नीलगिरी पर्वतके टोडोंमें मार्शलद्वीप और एस्कीमोजोंमें भी यह प्रथा प्रचलित है। बहुपतिके ठीक उल्टा, बहुपत्नी-प्रथा भी अनेक स्थानोंमें प्रचलित है। इस प्रथाके अनुसार एक पुरुष कई स्त्रियोंसे विवाह करता है। बहुपति-प्रथासे इस प्रथाका प्रचलन कहीं अधिक है। इसलाम और हिन्दू-धर्म इस प्रथाकी स्वीकृति तो देते ही हैं, प्रत्युत कई स्त्रियोंसे विवाह करनेको यथेष्ट प्रोत्साहन भी देते हैं। इसलाम सिर्फ चार स्त्रियां तक रखनेकी आज्ञा देता है; किन्तु हिन्दू-धर्मने संख्याकी कोई सीमा नहीं बांधी। तात्पर्य यह कि हिन्दू-शास्त्रोंके अनुसार आप असंख्य स्त्रियोंका जीवन नष्ट कर सकते हैं। हम कुलीन हिन्दुओंके सम्बन्धमें सुनते और पढ़ते हैं कि वे इतनी अधिक शादियां करते थे कि सब स्त्रियोंको पहचानते भी न थे। हां, पारी-पारीसे एक ससुरालसे दूसरीमें जा-जाकर जीवन बिता देते थे। पूर्व देश और मुसलमानोंमें अब भी यही प्रथा जारी है, किन्तु पश्चिममें कानूनने इस प्रथाको रोक दिया है।

कहते हैं कि सम्राट् सोलोमनके ७०० स्त्रियां और ३०० रखेलियां थीं। इसका कारण यह कि वह धनी था। आज भी मध्य अफ्रिकाका एक मुखिया १०० स्त्रियोंसे विवाह कर सकता है और करता भी है, किन्तु एक साधारण व्यक्ति केवल एक ही स्त्रीसे शादी करता है। मध्ययुग तक यूरोपीय यहूदियोंमें बहुपत्नी-प्रथा थी। प्राचीन कालके दासोंमें यह प्रथा केवल प्रधान (hief) और राजों तक ही सीमित थी। प्राचीन स्कैण्डीनेवियामें भी राजा बहुविवाह करते थे। केवल वे ही नहीं, वहां कोई भी एक वास्तविक विवाह करनेके पश्चात् रखेलियोंकी मनमानी संख्या रख सकता था। प्राचीन युगके आयरिशोंके राजा भी कई स्त्रियां रखते थे।

बहुपति और बहुपत्नी-प्रथा हमें आश्चर्यजनक अवश्य जान पड़ेगी, किन्तु एक प्रकारकी विवाह-प्रथा और भी है जो इन दोनों प्रथाओंसे अधिक आश्चर्यचकित करनेवाली है। इस प्रथाको समूह-परिणय कहते हैं। यह बहुपति और बहुपत्नी-प्रथाका संयोग है। कतिपय मानवजाति-शास्त्रके ज्ञाताओंका कथन है कि प्राक्-ऐतिहासिक कालमें यही प्रथा प्रचलित थी; उस समय एक विवाह या बहुविवाहकी प्रथा सर्वथा अज्ञात थी। आज भी प्रशान्त महासागरके द्वीपोंमें यह प्रथा विद्य

मान है। यहाँके कुछ कबीले समूह-परिणय-प्रथाके अतिरिक्त और किसी प्रकारकी विवाह-प्रथाकी कल्पना भी नहीं करते।

समूह-परिणयका अर्थ है —एक पुरुष-समूहका दूसरे स्त्री-समूहसे विवाह करना। इसके अनुसार अनेक पति और अनेक स्त्रियां एक साथ रहती हैं। समूहका प्रत्येक पुरुष सब स्त्रियोंके साथ रमण कर सकता है; इसी प्रकार प्रत्येक स्त्री सब पुरुषोंके साथ सम्भोग कर सकती है। दक्षिण भारतके टोडोंमें यदि चार-पांच भाइयोंमें कोई अवस्था पाकर शादी कर लेता है तो उसकी स्त्री सब भाइयोंको अपना पति मान लेती है; और ज्यों-ज्यों प्रत्येक भाई पुरुषत्वको प्राप्त होता है, स्त्री भी उसके साथ केलिकलाप करने लगती है। इस प्रकार दुधमुंहे बच्चे भी उम्र पाकर मातृवत् भाभीके पति हो जाते हैं और निस्सङ्कोच अपनी कामवासना तृप्त करते हैं। साथ ही, इस स्त्रीकी सब बहनोंकी अवस्था जब परिपक्व हो जाती है तो सब भाई उन्हें हथिया लेते हैं। इस प्रकार सब बहनें पत्नियां और सब भाई पति हो जाते हैं। सैण्डविच द्वीप और मेलानेसियामें उपर्युक्त पुरुष-समूहसे बड़े आकारके पुरुष-समूह हिलमिलकर स्त्री-समूहके साथ निवास करते हैं। किन्तु उनमें वैवाहिक नियम बड़े कठिन हैं। कोई स्त्री या पुरुष अपने इस समूहसे पृथक् किसीके साथ सम्भोग नहीं कर सकता।

हम लोगोंने देख लिया कि संसारके नाना विभागोंमें विवाहकी कैसी-कैसी विचित्र प्रथायें प्रचलित हैं। अब हम उन विधियोंके कुछ उदाहरण देंगे, जिनके अनुसार पत्नी प्राप्त होती है। असभ्योंकी तो बात दूर रही, कहीं-कहीं तो सभ्य समाजमें भी विवाह-पद्धतिके बड़े भेद हैं। हमारे देश और चीन तथा साधारणतः समस्त पूर्वमें माता-पिता विवाह पक्का करते हैं और पति-पत्नी तब तक एक दूसरेका मुंह नहीं देख सकते जब तक विवाह-संस्कार समाप्त न हो जाय। हम लोग इस प्रथासे इतने परिचित हैं कि हमें इसमें कोई कमी नहीं जान पड़ती, किन्तु जब एक विदेशी इस विवाह-पद्धतिको सुनता है तो उसके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहता। इसी प्रकार हमें भी पाश्चात्य-विवाह-प्रणालीपर आश्चर्य होता है। पश्चिमीय देशोंमें माता-पिता शादी तय नहीं करते, बल्कि युवक और युवतियाँ स्वतन्त्रतापूर्वक एक दूसरेसे मिलती हैं और स्वेच्छानुसार अपना प्रेमपात्र ढूढ़ लेती हैं। पूर्वीय यूरोपकी विवाह-पद्धति पूर्व और पश्चिमकी पद्धतियोंका सुन्दर सम्मिश्रण है। वहां मातापिता शादी तय कर देते हैं, किन्तु युगल प्रेमी संस्कारके पहले ही यौन-रसास्वादन कर लेते हैं। वेस्टर मार्कका कहना है, कि कहीं-कहीं तो तब तक विवाह पक्का नहीं किया जाता जब तक स्त्री गर्भवती नहीं हो जाती।

आसामके कुकी-लुशाइयोंमें साधारण विवाहके पूर्व ये क्रियायें पूरी की जाती हैं—जब एक पुरुष किसी स्त्रीके प्रति आसक्त हो जाता है और उससे विवाह करनेको लालायित होता है, तो वह युवतीके माता-पिताके पास पहुंचता है और उन्हें शराब भेंट करता है। फिर बातचीत होती है। यदि माता-पिता उसे अपना दामाद बनाना पसन्द करते हैं, तो भावी दामाद अपने भावी सास-ससुरके घर तीन वर्ष तक रहता है और गुलामकी तरह चौका-टहल करता है। तीन वर्ष बीतनेपर युवतीके साथ उसकी शादी कर दी जाती है; लेकिन अभी यह स्वतन्त्र नहीं होता। उसे फिर दो वर्ष तक, पहलेकी तरह अपनी ससुरालमें गुलामी करनी पड़ती है। पांच वर्ष समाप्त होनेपर वह स्वतन्त्र होता है और अलग मकान बनाकर रहने लगता है। विवाह-संस्कार हो जानेपर दामादको अपने सास-ससुरको दो रुपये भी देने पड़ते हैं। अधिकांश खेतिहरोंको स्त्री मोल लेनी पड़ती है। इसमें उन्हें अपनी गांठसे नकद कुछ देना नहीं पड़ता, किन्तु बदलेमें बहुत दिनों तक सास-ससुरकी मजूरी करनी पड़ती है और इस तरह श्रमके रूपमें पत्नी-प्राप्तिका मूल्य चुकाना पड़ता है।

आस्ट्रेलियाके आदि निवासी भी इसी प्रकार विवाह करते हैं, किन्तु स्त्री पानेके लिए उन्हें न मजूरी करनी पड़ती है और न दाम देना पड़ता है। जब किसीको औरतकी तलाश होती है तो वह उसके घरवालोंके पास जाता है और अपना प्रस्ताव पेश करता है। यदि उसका प्रस्ताव स्वीकृत हो जाता है तो एक कण्ट्राक्ट पक्का किया जाता है जिसके अनुसार विवाह करनेवाले पुरुषको अपनी पत्नीके बदलेमें अपनी बहन, लड़की या रिश्तेकी और कोई लड़की देनी पड़ती है। वहां पत्नी प्राप्त करनेका एकमात्र साधन यही है कि स्त्रीके बदलेमें एक दूसरी स्त्री या लड़की दी जाय। यदि मौकेसे आपको बदलौवलके लिए कोई लड़की न मिली तो ब्याह होना दूभर हो जायगा। इस बदलौवलके लिए जरूरी नहीं

कि आप अपनी ही बहन दें। कोई भी लड़की, छोटी चाहे बड़ी दे सकते हैं, लेकिन हो वह आप हीके कुनबेकी। न्यू-गायनामें भी यही प्रथा प्रचलित है, लेकिन वहां स्त्री-विनिमयके अतिरिक्त कुछ रकम भी देनी पड़ती है। सुमात्रामें जिसके एक लड़का और एक लड़की होती है वह अपनी लड़कीको अपने लड़केकी स्त्रीके बदलेमें दे देता है और वह पुरुष जो उस लड़कीको पाता है, या तो उसे अपनी पुत्रीके समान पालता-पोसता है या फिर उसके साथ अपनी ही शादी कर लेता है। स्त्री पानेके लिए एक भाईको अपनी बहन बदलेमें देनी पड़ती है, और यदि सगी बहन न हुई तो चचाजात बहन देनी पड़ती है। अक्सर स्त्री पानेके लिए लोग अपने मित्रों और दूसरे सम्बन्धियोंसे लड़की उधार ले लेते हैं, और ब्याह हो जानेपर अपनी स्त्री उन्हें सौंप देते हैं।

स्त्री पानेका एक और भी साधन है; और वह है, उसे जबर्दस्ती पकड़ लाना। स्वयं मनु महाराजने भी इस पद्धतिकी व्यवस्था दी है और अतीतमें इसका पालन भी व्यापक होता था। आज भी इस प्रथाका लोप नहीं हुआ है। मडगास्कार, मध्य-एशियाके जङ्गलियों, होटेनटाट्स,आस्ट्रेलिया और ब्रिटिश कोलम्बियाके अधिवासियोंमें अब तक यह प्रथा विद्यमान है। हां, अवश्य ही इसमें बहुत कुछ हेरफेर भी हुआ है। कहीं-कहीं तो इस प्राचीन पद्धतिकी विडम्बनामात्र शेष है, जिसका वर्णन नीचे दिया जाता है।

एक कबीला दूसरे पड़ोसी कबीलेके विरुद्ध युद्धकी घोषणा कर देता है और सब पुरुषोंको मार डालता है; जब युद्धके अन्तमें विजयीपक्षवाले उस कबीलेके सब पुरुषोंको मार डालते हैं तो उनकी स्त्रियोंको उठा ले जाते हैं। और उनके साथ विवाह कर लेते हैं। आप लोग सोचेंगे कि वे स्त्रियां इन हत्यारोंके साथ कैसे राजी हो जाती हैं। किन्तु बात ऐसी नहीं है। कुछ स्वाभाविक क्रोध प्रकट करनेके पश्चात् वे मान जाती हैं और नये प्रकारका जीवन उन्हें सुखमय प्रतीत होने लगता है। इसे ही बलपूर्वक विवाह करना कहते हैं। किन्तु कुछ कबीलेवाले तो सिर्फ, जबर्दस्ती औरतें उठा ले जानेका स्वांग भरते हैं। ब्रिटिश न्यू गायनाके कोकोंमें यह प्रथा है कि विवाहके दिन, दूल्हेको छोड़कर वरपक्षके मनुष्य कन्याके माता पिताका घर घेर लेते हैं और मजाकिया मारपीट व कौवारोरके बाद दुलहिनको उठा ले जाते हैं। दुलहिन जोरसे निकल भगती है और खूब तेजीसे दौड़ती चली जाती है; और जब पकड़ ली जाती है तो छुड़ानेके नखरे करती है, चिकोटी काटती है और हाथ-पैर झटकती है। इसी बीच वरपक्ष और कन्यापक्षमें नकली लड़ाई होती है। इस भीड़में दुलहिनकी मां भी हाथमें लाठी या कुदाल लिये हुए प्रत्येक निर्जीव पदार्थपर चोट करती है और वरपक्षवालोंको भी कोसती है। अपनी कन्याको छुड़ानेमें असफल हो वह रो-रोकर पृथ्वीपर गिर पड़ती है। इतनेमें गांवकी स्त्रियां भी आकर रोने-पीटनेमें हाथ बटाती हैं। कन्याकी माता तीन दिन तक अपनेको अत्यन्त शोकार्त दिखाती है। उसको छोड़कर कन्यापक्षवाले सभी कन्याके साथ उसकी ससुराल तक चले जाते हैं। इसके बाद गांवके लड़के मकानों और बगीचोंमें नकली लूटपाट मचाते हैं और कौड़ियोंके गहनों तथा मछली मारनेके जालकी भांति 'मूल्यवान' वस्तुओंको छोड़कर दो एक कम कीमती चीजें उठा ले जाते हैं।

हिन्दीमें प्रकाशन

श्री उमादत्त शर्मा

हिन्दी बोलने और समझनेवालोंकी संख्या भारतमें सबसे अधिक है। स्वाभाविक सरलताके कारण, मद्रासके सिवा—प्राय: सभी प्रान्तोंके लोग, आवश्यकता पड़नेपर टूटी-फूटी हिन्दी बोलते और समझते हैं। इसी गुणके कारण, महात्माजी और कांग्रेसने भी हिन्दीके राष्ट्रभाषा होनेकी घोषणा की है। वैसे कुछ प्रान्तीयताके रङ्गमें रंगे हुए लोग, हिन्दीको दरबानों और कुलियोंकी भाषा बताते हैं। परन्तु सबके हृदयमें हिन्दीके राष्ट्रभाषा होनेके गुण छिपे हुए हैं। यदि यह बात न होती, तो गुजरात और महाराष्ट्रकी फिल्म-कम्पनियां, हिन्दी-फिल्मोंकी बाढ़ न ला देतीं, न बङ्गाल और मद्रासकी फिल्म-कम्पनियोंका ध्यान कभी इधर आकृष्ट होता। पारसियोंकी हिन्दी-नाटक-मण्डलियां भी इसी बातके प्रमाण हैं। ये लोग समझते हैं कि हिन्दीमें तैयार की हुई फिल्में और नाटक ही समस्त भारतमें दिखाये जा सकते हैं और उनसे पैसा मिल सकता है। हिन्दीके हितकी कामनासे प्रेरित होकर पारसी-नाटक-मण्डलियां, हिन्दी नाटकोंका आयोजन नहीं करतीं, न प्रान्तीय फिल्म-कम्पनियां ही हिन्दी-प्रचारके लिए हिन्दी-फिल्में तैयार करती हैं। उनका लक्ष्य पैसा प्राप्त करनेकी ओर है। राष्ट्रभाषा हिन्दी, अपनी उदार राष्ट्रीयताके कारण, कलाविहीन और साहित्यिक-छटा न होनेपर भी, इन फिल्म-कम्पनियों और नाटक-मण्डलियोंको काफी धन देती है, बल्कि यों कहना चाहिए कि हिन्दी-भाषा-भाषी दर्शकोंपर ही इनका जीवन अवलम्बित है। तात्पर्य यह कि हिन्दी ही राष्ट्रभाषा होने योग्य है और वही धीरे-धीरे अपना स्थान ग्रहण करती जा रही है। निकट भविष्यमें शासन-सुधार होनेपर हिन्दी उस स्थितिमें पहुंच जायगी, जिसकी कल्पना बीस वर्ष पहले बहुत कम आदमियोंने की होगी। उसी राष्ट्रभाषा हिन्दीमें प्रकाशन-कार्य किस स्थितिमें है, हमें इसपर संक्षेपमें विचार करना है। प्रकाशनके दो विभाग हैं। पत्र-प्रकाशन और पुस्तक-प्रकाशन। गत दस वर्षोंमें इन दोनोंमें काफी उन्नति हुई है। दस वर्ष पहले किसी हिन्दी-समाचार-पत्रकी तीन-चार या अधिक-से-अधिक पांच हजार प्रतियोंका छपना, उन्नतिकी चरम-सीमा समझा जाता था। परन्तु इस समय एक साप्ताहिक पत्र सत्रह हजार छपता है, और भी कई पत्र, काफी संख्यामें प्रकाशित होते हैं। गत दस वर्षोंमें हिन्दी दैनिक पत्रोंने आशातीत उन्नति की है। दस वर्ष पहले केवल कलकत्तेसे ही दो-तीन दैनिक पत्र निकलते थे, किन्तु इस समय लगभग एक दर्जन हिन्दी दैनिक पत्र, विविध स्थानोंसे प्रकाशित होते हैं। इनमें दो-तीन पत्रोंको छोड़कर प्राय: सभी स्वावलम्बी हैं। स्वावलम्बी ही क्यों हैं, दो पत्र तो बहुत अच्छे लाभपर चलते हैं। तीन पत्रोंके छपनेकी संख्या दस हजारसे ऊपर बतायी जाती है। एक पत्रकी विज्ञापनकी मासिक आमदनीका इन पंक्तियोंके लेखकको निजी ज्ञान है। दो वर्ष पहले उस पत्रको १६ हजार रुपये मासिककी आमदनी केवल विज्ञापनोंसे थी, जो भारतमें प्रकाशित होनेवाले किसी भारतीय अंगरेजी दैनिकसे शायद कम हो। दिन-पर-दिन दैनिक पत्रोंके पाठक बढ़ते जाते हैं और साथ-ही-साथ उनकी मांग भी बढ़ती जाती है। वह दिन दूर नहीं है जब कि इन दैनिकोंकी संख्या पचास हजार और एक लाख तक पहुंच जायगी। परन्तु हमारे देशमें कलाकौशलका अभाव है, इससे पर्याप्त पाठकोंके मिलनेमें जैसी कठिनाई है, विज्ञापन मिलनेमें उससे भी अधिक अड़चनें हैं। तारोंके अनुवादका झञ्झट, लीनो मेशीनका अभाव और रौटरी-मेशीनोंकी अधिक अर्थ-साध्य होनेके कारण निरुपयोगिता इस विषयमें काफी अड़चनें हैं। और तो और, अभी तक हिन्दीमें अच्छा टाइपराइटर तक नहीं बना। पोस्टरोंके टाइप नहीं बन पाये। देशके धनी लोग यदि इस ओर ध्यान दें, तो एक बड़े अभावकी पूर्ति हो सकती है। अनेक लोग काममें लग सकते हैं और केवल एक टाइपराइटर बनानेसे ही लाखों रुपये पैदा हो सकते हैं। हिन्दी-टाइपके अच्छे फेसका टाइपराइटर तैयार करनेसे मराठी और हिन्दी दोनोंमें चल सकता है। हिन्दीमें शार्ट-हैण्ड रिपोर्टरों और सहकारी सम्पादकोंका अकाल है, किन्तु आगे चलकर इस विषयमें बहुत उन्नति होनेवाली है। क्योंकि

बहुत जल्द समाचार-पत्रोंमें प्रतिद्वन्द्विता चलनेवाली है, उस समय केवल भावुकतासे काम न चलेगा। जिसके पत्रका अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग अच्छा होगा, जिसमें उपयोगिता और नवीनताका सन्निवेश होगा, वही पत्र चलेगा, उनके वाह्य-स्वरूपको आकर्षक और अन्तरङ्गको उपयोगी बनानेके लिए उपरोक्त अड़चनों और त्रुटियोंको पार करके अभावोंकी पूर्ति करनी होगी। नहीं तो होनेवाली प्रतिस्पर्द्धामें सफलता प्राप्त न होगी।

साप्ताहिक पत्रोंका युग बीत गया। बिना किसी विशेष उपयोगिता और नवीन विश्लेषणके साधारण साप्ताहिक पत्र न चल सकेंगे। उनका जीवन, विचार-गाम्भीर्य और नवीन खोज तथा नवीन विश्लेषण बहुत कुछ सम्पादकके व्यक्तित्वपर निर्भर होगा। मासिक पत्रोंमें भी नवीन आदर्शको लेकर ज्ञानवर्द्धक ऐसी सामग्री सङ्कलित करनी होगी, जो पाठकोंको और कहीं न मिलती हो। मासिक पत्रोंमें भरतीके मैटरसे काम न चल सकेगा। परन्तु जो सञ्चालक और सम्पादक, इस उपयोगिताको ध्यानमें रखकर कार्य करेंगे, उन्हें सफलता प्राप्त होगी। सर्वसाधारणपर उनके लेखोंका काफी प्रभाव पड़ेगा और लोकमतको वे अपने पक्षमें कर सकेंगे। परन्तु मासिक पत्रोंके सम्पादनका कार्य वे ही लोग सफलतापूर्वक कर सकेंगे जो विद्वान, मनोविज्ञानके पण्डित और दूरदर्शी तथा अध्ययनशील होंगे। मासिक-पत्रोंका सम्पादन करना, साधारण आदमियोंका काम न रहेगा।

हिन्दीमें पुस्तक-प्रकाशनका काम, उन्नतिकी ओर अग्रसर हो रहा है। पिछले दस-बारह वर्षोंमें प्रकाशित पुस्तकोंको संख्या जहां बढ़ी है, वहां प्रकाशकोंकी भी बाढ़-सी आ गयी है। प्रकाशनमें पूंजी, उस विषयके ज्ञान और पुस्तकोंके निर्वाचन तथा उचित रीतिसे विज्ञापन करनेकी आवश्यकता है। इन सब बातोंसे सम्पन्न, जो लोग इस क्षेत्रमें आये हैं, उन्हें उनके साधनोंके अनुसार सफलता भी प्राप्त हुई है। लेकिन दूसरी प्रान्तीय भाषाओंकी अपेक्षा, हिन्दी इस विषयमें अभी बहुत पीछे है। इसके कई कारण हैं। सबसे बड़ी कठिनाई तो यह है कि अभी तक सुरुचिपूर्ण पाठकोंकी हिन्दीमें बहुत कमी है। बंगलाके कई उच्च कोटिके मासिक पत्र दस-दस हजार छपते हैं, बङ्गालियोंको अपने मासिक पत्रोंके पढ़नेकी बड़ी उत्सुकता रहती है। विद्वान् बङ्गाली और बङ्ग-महिलायें, उनमें लिखना गौरवकी बात समझती हैं। यही बात पुस्तकोंके सम्बन्धमें है। अच्छे-अच्छे लेखकों और लेखिकाओंकी पुस्तकोंके प्रकाशित होनेकी, पाठक बाट जोहते रहते हैं। फल यह होता है कि उनकी वे पुस्तकें धड़ा-धड़ बिक जाती हैं, जिससे लेखकोंको रायल्टीके रूपमें काफी लाभ होता है और प्रकाशकोंको तो पुस्तकोंकी बिक्रीसे लाभ होता ही है। मराठी और गुजरातीमें भी सुरुचिपूर्ण पाठकोंकी संख्या काफी हो गयी है। हिन्दी इस विषयमें बिलकुल पिछड़ी हुई है। हिन्दीमें सबसे पहली कमी तो नियमित पुस्तक-विक्रेताओंकी है। स्कूली किताबें बेचनेवाले साधारण पुस्तक-विक्रेता ही थोड़ी बहुत साहित्यिक पुस्तकें बेच लेते हैं, वही उनकी बिक्रीका सबसे बड़ा साधन है। परन्तु हिन्दी-पुस्तक-विक्रेताओंमें बड़ी अराजकता फैली हुई है। उनकी न कोई सभा-समिति है, न वे किसी कायदे-कानूनकी पाबन्दी करते हैं। जिन पुस्तकोंपर उन्हें ज्यादा कमीशन मिलता है या उनकी गली-सड़ी और बिलकुल नीचे दरजेकी पुस्तकोंके बदलेमें जो अच्छी-बुरी पुस्तकें मिलती हैं, उन्हींको अधिक कमीशन दे-दिलाकर अधिकांश पाठकोंके गले मढ़ देते हैं और अच्छी पुस्तकें रखी रह जाती हैं। इस विषयमें जब तक पाठकोंकी रुचि परिष्कृत न हो, तब तक सुधार होनेकी बिलकुल आशा नहीं है। हिन्दीमें पुस्तक-परिवर्तनकी प्रथा भी बुरी तरहसे फैली हुई है। इससे अच्छे प्रकाशकोंको बहुत अधिक हानि उठानी पड़ती है, और साधन-सम्पन्न होनेपर भी वे सफल नहीं होते। बनारसके ज्ञान-मण्डल कार्यालयकी ऊंचे दरजेकी पुस्तकें इसी असाध्य रोगके कारण, अलमारियोंकी शोभा बढ़ा रही हैं। अजमेरकी सस्ता साहित्य-सीरीज, गुजरातके सस्तुं साहित्य वर्द्धक कार्यालयके पद-चिन्होंपर चलकर और काफी रुपया लगाकर भी सफल नहीं हुई। बङ्गालके शरच्चन्द्र चटर्जी, भारतमें सर्वश्रेष्ठ औपन्यासिक समझे जाते हैं। बङ्गालमें उनके उपन्यास, वसुमती-साहित्य-मन्दिर और गुरुदास चटर्जीके यहांसे अलग-अलग रूपोंमें निकलते हैं। दोनों स्थानोंसे प्रायः प्रतिवर्ष उनके नवीन संस्करण निकलते हैं। हिन्दीमें भी इण्डियन प्रेस प्रयागने उनके उपन्यास प्रकाशित करनेका अधिकार प्राप्त किया है। लगभग दस वर्षसे शरत् बाबूके

उपन्यास, हिन्दीमें वहांसे निकल रहे हैं, लेकिन अभी तक उनका पहला संस्करण भी समाप्त नहीं हुआ! इसका कारण? कारण है सुरुचिपूर्ण पाठकोंकी कमी। उनपर कमीशन भी अधिक नहीं मिलता, न पुस्तक-विक्रेताओंको वे परिवर्तनमें मिल सकते हैं। तब फिर उनकी बिक्री कैसे हो? यदि साधन-सम्पन्न इण्डियन प्रेस, रद्दी-सद्दी प्रकाशकोंकी गली-सड़ी पुस्तकें उनके बदलेमें लेकर अपने प्रेसमें रख ले, तो एक बरसमें ही शरत् बाबूके उपन्यासोंके कई संस्करण हो सकते हैं!

पिछले कुछ वर्षोंमें—हिन्दीमें भी कई सुयोग्य लेखकों और कवियोंका उद्भव हुआ है। हिन्दीके लिए यह बड़े सौभाग्यकी बात है। परन्तु उन्हें जब तक अच्छे प्रकाशक न मिलें, वे कुछ भी नहीं कर सकते। और अच्छे प्रकाशक, नियमित पुस्तक-विक्रेताओंके अभावमें पनप नहीं सकते। थोड़ा बहुत विज्ञापन करके तथा लेखकोंकी प्रसिद्धि करके यदि प्रकाशक कुछ हाथ-पैर मारनेकी कोशिश करते हैं, तो लेखक महाशय, उन्हें उठने नहीं देते और सुयोग मिलते ही प्रकाशकोंकी निन्दा करने लगते हैं। बेशक, नालायक प्रकाशकोंकी निन्दा करनी चाहिए और उन्हें कदापि प्रोत्साहन नहीं देना चाहिए। किन्तु बिना सोचे-समझे उनके आचरणकी निन्दा करना, स्वयं लेखकोंके लिए भी कम भयावह नहीं है। जैसे अच्छे लेखकोंकी आवश्यकता है, वैसे ही सुयोग्य प्रकाशकोंकी भी जरूरत है। बिना अच्छे प्रकाशकोंके—लेखक, उद्भट लेखक होकर भी क्या कर लेंगे? जो लेखक अच्छे होंगे और पाठकोंकी रुचिको पूर्ण करेंगे या अपनी जोरदार कलमके बलसे उनकी मनोवृत्तिको बदलनेमें समर्थ होंगे, प्रकाशक उनके चरणोंमें उनकी कृतिका यथेष्ट पुरस्कार लेकर स्वयं उपस्थित होंगे। हिन्दीमें अहम्मन्यताने घर कर रखा है। पर-श्रीकातरताका भाव चारों ओर व्याप्त है। अच्छे लेखकों और वयोवृद्ध साहित्यिकोंकी पगड़ी उछालनेको कुछ नवीन लेखकोंने अपने समर्थ और सुलेखक होनेका प्रमाण मान लिया है। इसी अहम्मन्यता और इसी दूषित मनोवृत्तिके कारण प्रकाशक उनकी सुन्दर कृतियोंको प्रकाशित करनेमें असमर्थ हैं। लेखक महाशयोंसे यदि १०-१६ फार्मके उपन्यासकी लिखाई पूछी जाती है, तो लेखक महाशय, पाश्चात्य लेखकों और प्रकाशकोंका उल्लेख करके बड़ी-बड़ी डींग हांकने लगते हैं। वे १०-१६ फार्मके उपन्यासकी लिखाई—पन्द्रह सौ और दो हजार रुपये मांगते हैं। वे यह नहीं सोचते कि हिन्दी अभी अंगरेजी, फ्रेञ्च या जर्मनके समकक्ष नहीं है। वे स्वाधीन देशकी भाषायेंहैं, जिनकी राष्ट्रभाषा एक है, जो इस कलामें उन्नतिकी पराकाष्ठा तक पहुंच गये हैं। शिक्षाका काफी प्रचार है और उन्नत कलाकौशलके कारण पाठकोंकी बहुत बड़ी संख्या है। एक-एक उपन्यासकी दस-दस लाख प्रतियोंका बिक जाना भी कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। यहां अभी तक हिन्दीके प्रसिद्ध उपन्यास-लेखक प्रेमचन्दजीका बढ़िया-से-बढ़िया कोई भी उपन्यास दस हजार अब तक नहीं बिका होगा। ऐसी दशामें लेखकोंका आकाशसे बातें करना कभी उनके और प्रकाशकोंके लिए लाभदायक सिद्ध नहीं हो सकता। दूसरी ओर प्रकाशकोंने भी धांधली मचा रखी है। वे दो और चार रुपये फार्मपर मौलिक रचना प्राप्त करनेके सुख-स्वप्न देखते हैं। वह समय चला गया और वे प्रकाशक और लेखक भी स्वर्गवासी हुए। अच्छी रचनाके लिए अच्छा पुरस्कार देना होगा और पुस्तकोंकी खपतके लिए नवीन उपायोंका अवलम्बन करना होगा। हिन्दीका क्षेत्र दिन-पर-दिन बढ़ता जाता है। बङ्गाल आर गुजरात तथा महाराष्ट्रके समान सुरुचि उत्पन्न होने तथा यथेष्ट शिक्षा प्रचार होनेपर हिन्दीमें बंगला, मराठी और गुजराती आदिसे भी अधिक पुस्तकें बिकेंगी। लेखकों और प्रकाशकोंको भी तभी यथेष्ट लाभ होगा। परन्तु इस विषयमें लेखकों और प्रकाशकोंके दृष्टि-कोणमें जो अन्तर है, उसको समझकर दूर करना होगा और पुस्तक-विक्रेताओंपर भी नियन्त्रण करना होगा, नहीं तो शीघ्र प्राप्त होनेवाली सफलतामें बहुत दिन लगेंगे।

अगले अङ्कमें प्रकाशकोंके अनाचार, पुस्तक-विक्रेताओंकी धांधली तथा टेक्स्ट बुक कमेटियोंके अनर्थकारी कृत्योंपर प्रकाश डालकर कुछ नवीन उपायोंके अवलम्बन करनेके सम्बन्धमें विचार प्रकट किये जायेंगे।

———

हमारी वेश्यायें और हमारा समाज

श्री हेरम्ब मिश्र

किसी वेश्याका कोई 'नाथ' नहीं होता—सभी वेश्यायें अनाथ हैं। समाज वेश्याओंकी बातें सुननेको तैयार नहीं; उनको बोलनेका अवसर भी नहीं देता—वेश्यायें मूक हैं। वेश्याओंके पीछे—अपने आनन्द और वासना-तृप्तिके लिए—धन, यौवन और स्वास्थ्यका नाश करनेवालोंमें, या वेश्याओं-की कमाईके हिस्सेसे तेमञ्जिला-चौमञ्जिला मकान बनाने और जमींदारियां खरीदनेवालोंमें एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं मिल सकता जो बीमारी अथवा अन्य विपत्तियोंके समय वेश्याओंकी सहायता करे;—वेश्यायें असहाय हैं। समाजमें ऐसी धारणाकी प्रबलता है कि वेश्याओंको बुरा बताना पुण्य है; वेश्याओंको कभी समाजमें मिलाना न चाहिए; छिपकर वेश्याओंकी जूतियां चाटनेवाले भी प्रकट उनको दोष ही देते हैं; लाख, सच्चे दिलसे प्रायश्चित और पश्चात्ताप करनेपर भी वेश्यायें आम तौरसे अपनायी नहीं जा सकतीं;—वेश्यायें परित्यक्त हैं।

और मनुष्य-समाजमें एक साधारण प्रवृत्ति दुर्बलोंको सतानेकी होती है। कहनेवालोंने तो यहां तक कहा है कि देवता भी दुर्बलोंकी हत्या करते हैं—"देवोऽपि दुर्बलघातकः" वाला कथन मशहूर है। फिर, हमारा समाज, जिसकी रूढ़ियों, नियमों और भावनाओंकी रचना पुरुषों द्वारा ही हुई है, यदि इन अनाथ, मूक, असहाय और परित्यक्त अबलाओंके साथ अन्याय करे, तो यह एक प्रकारसे स्वाभाविक ही कहा जायगा। किन्तु अफ़सोस, और विचार करनेकी बात यह है कि यह अन्याय आवश्यकतासे अधिक होता है—और इस असीम अन्यायका सिलसिला जारी रखकर समाज एक भीषण पापका घड़ा भर रहा है। न्यायके लिए न हो तो न सही; मनुष्यताके नामपर न हो तो न सही; स्वयं समाजके कल्याण और उन्नतिका तकाजा है कि अन्यायका यह सिलसिला रोका जाय; वेश्याओंकी वास्तविक स्थिति-परिस्थितिपर उचित विचार किया जाय और उनके सुधारके उपाय सोचे और अमलमें लाये जायं। साथ ही, यह भी विचार करना आवश्यक है कि वेश्याओंके सिर जो-जो कलङ्क मढ़े जाते हैं उनमें कौन-कौनसे और कहां तक युक्तियुक्त हैं। और थोड़ी देरके लिए यह सोचना भी उचित है कि वेश्याओंके साथ न्याय करनेसे समाजका कहां तक और कितना उपकार हो सकता है।

वेश्याओंपर पहला आक्षेप यह किया जाता है कि वे धन-का नाश करती हैं, अर्थात् समाजके लोगोंको बहुत आर्थिक हानि पहुंचाती हैं। एक विद्वान् लेखकने हिन्दुस्तान-भरकी वेश्याओंकी आमदनीका अन्दाजा लगाया है, और जिस तरह मि० हेनरी फोर्डकी आयकी चर्चा करते समय लोग घण्टे और मिनिटका हिसाब करते हैं, उसी तरह (वेश्याओंकी आयका ब्याज आदि जोड़कर) बताया है कि प्रति घण्टे इनके द्वारा इतना धन-शोषण होता है, साथ ही आपने यह भी बताया है कि जितनी आय इस देशकी वेश्याओंको है उतने धनसे विदेशोंमें बड़े-बड़े कारखाने चलते हैं! कहना कठिन है कि उक्त विद्वान् लेखकको यह आक्षेप और यह तुलना किस प्रकार युक्तियुक्त मालूम हुई।

कपड़ेके बड़े-बड़े कारखानोंकी आर्थिक स्थिति बहु-राष्ट्रगत होती है—किसी देशसे रुई खरीदी जाती है, कहीं कपड़ा बनता है और कहीं जाकर बिकता है। किन्तु वेश्याओंकी आमदनी एक-राष्ट्रगत होती है; उसकी स्थिति कपड़ेके कार-खानोंकी पूंजीसे एकदम भिन्न है। दोनोंकी तुलना हो ही नहीं सकती। और यदि राष्ट्रीय दृष्टिसे विचार किया जाय तो वेश्याओंको अर्थ-हानिके लिए उतना दोष नहीं दिया जा सकता जितना कि दिया जाता है। वेश्याओंके पीछे रुपया खर्च होना अवश्य ही बुरा है; परन्तु किसीको यह आश्वासन दिलानेकी आवश्यकता नहीं कि भारतवर्षकी सारी गरीबी और मुहताजीकी बाइस एकमात्र वेश्यायें ही नहीं हैं। वेश्यायें रुपये लेकर लोगोंका मनोरञ्जन करती हैं, इसी कारण वे वेश्या कही जाती हैं—जो लोग वेश्याओंके घरमें पांव रखते हैं वे पहलेसे ही समझ रखते हैं कि उन्हें रुपये खर्च करने पड़ेंगे। वेश्यायें चोरी, डकैती या ठगी नहीं करतीं। उपन्यासों और नाटकोंमें जो वेश्याओं द्वारा जहर खिलाकर, या धोखेबाजी करके या गुण्डोंसे डरवाकर रुपये ऐंठनेकी बातें पायी जाती हैं वे

अतिरञ्जित हैं और केवल इस बातकी गवाही देती हैं कि उनके लेखकोंको वेश्याओंकी वास्तविक परिस्थितिका ज्ञान नहीं। वेश्यायें बैङ्कोंमें जालसाजी नहीं करतीं; चर्बी मिलाकर घी नहीं बेचतीं; किसीकी हालत खराब देखकर कड़े-से-कड़े ब्याजपर उसे रुपये देकर अन्तमें उसका सर्वस्व हरण नहीं करतीं; परलोकमें सुख दिलानेका जिम्मा लेकर दक्षिणा नहीं ग्रहण करतीं; झूठा दिवाला नहीं मारतीं; बदनीयतीसे तमस्सुक लिखकर रुपया नहीं उठातीं—वेश्याओंको जो लोग रुपये देते हैं, अपने सुखके लिए, अपनी पूरी रजामन्दीसे और अपनी इच्छासे देते हैं। यदि यह धन-क्षय है तो इसका दोष उन पुरुषोंको न देकर इन अबलाओंको देना पक्षपात और अन्याय नहीं तो क्या है? वेश्याओंसे मकान-भाड़ा समाजवाले ही पाते हैं; वेश्यायें समाजवालोंसे ही गहने, कपड़े, तेल, फुलेल वगैरह खरीदती हैं। आत्म-रक्षाके लिए जिनको वेश्यायें तनख्वाह या वृत्ति देती हैं वे लोग समाजमें ही रहते हैं। जो लोग वेश्याओंको डरा, धमका या ठगकर रुपये लेते हैं, वे भी समाजमें ही रहते हैं। कितनी वेश्यायें ऐसी हैं जिनकी कमाईका एक बड़ा—कहीं-कहीं तो पूरा-हिस्सा—दूसरे लोग लेते हैं; और ये लोग समाजमें ही रहते हैं। वेश्याओंकी चिकित्साकर उनसे चौगुनी पचगुनी फीस और दवाकी कीमत वसूल करनेवाले चिकित्सक भी समाजमें ही रहते हैं। इस तरह, वेश्याओंको जो धन दिया जाता है वह लौटकर समाजमें ही चला आता है। राष्ट्रीय दृष्टिसे विचार करनेपर इनके द्वारा धन-क्षय होनेका प्रश्न कहीं नहीं टिक सकता। वेश्याओंके वेशभूषाको देखकर अकसर लोगोंको उनकी आर्थिक स्थितिके सम्बन्धमें भ्रम होता है। गहने, कपड़े, सजावट आदिका आडम्बर उनके लिए अनिवार्य होता है। जिस दूकानमें चिराग न जले उसमें कौन सौदा खरीदने जायगा? और जिस दूकानकी सजावट अधिक होती है उसकी ओर ही अधिक ग्राहक झुकते हैं। गहने, कपड़े और श्रृङ्गारमें वेश्यायें कोई स्वारस्य नहीं अनुभव करतीं—ये उनके लिए विज्ञापन या वर्दीकी ही तरह हैं। प्रेम या अधिकारकी भित्ति उनको प्राप्त नहीं, जिससे वे इच्छा होनेपर इनको त्याग सकें, या इनको गौण ही समझ सकें। वेश्याओंका खर्च भी अधिक होता है। औसतन, एक-एक वेश्याके छः-छः आश्रित रहते हैं, जो अपने भोजन-वस्त्र और आरामके लिए एक दिन भी उधार नहीं कर सकते। प्रत्येक वेश्याके साथ, उसकी कमाईको हड़पते रहनेवाला एक दल अवश्य रहता है। पांच-पांच, छः-छः सौ रुपयेके वस्त्रादि धारण करनेवाली अनेक वेश्यायें ऐसी हैं जिनको छूंछे भात या सूखी रोटीके साथ खानेके लिए तरकारी या दाल नसीब नहीं होती। भड़कीली-से-भड़कीली सजावटवाली अनेकानेक वेश्यायें ऋणसे बेतरह ग्रस्त हैं। कलकत्ते, बम्बई, काशी आदिमें कितने ही महाजन ऐसे हैं जो वेश्याओंको ऋण देनेका ही व्यवसाय करते हैं। दैनिक किश्त और सूदपर इन्हें ऋण दिया जाता है, और यह ब्याज प्रतिशत ४९) बैठता है। किन्तु जो लोग यह महाजनी करते हैं, उनमें एक भी आदमी ऐसा न मिलेगा जो कलेजेपर हाथ रखकर कह सके कि किसी वेश्याके यहां उसका एक भी पैसा डूबा हो। वेश्यायें बहुत ही गरीब हैं।

वेश्याओंपर दूसरा आक्षेप यह किया जाता है कि वे गन्दी और भयङ्कर बीमारियोंका प्रचार करती हैं—वे रोगोंकी खान हैं। बम्बईसे प्रकाशित होनेवाले एक गुजराती साप्ताहिक पत्रने इस विषयको लेकर बहुत हाय-तोबा मचाया है, तिलका ताड़ बनाया है। इसमें सन्देह नहीं कि ये बीमारियां अत्यन्त घातक हैं, परन्तु यह निःसङ्कोच कहा जा सकता है कि इस विषयमें भी साधारण समाजकी धारणा अतिरञ्जित और दूषित है। यदि गिनतीके हिसाबसे देखा जाय, तो हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि जितनी वेश्यायें इन रोगोंसे पीड़ित हैं, समाजमें रहनेवाली उनसे चौगुनी स्त्रियोंको ये रोग हैं, और समाजमें सिर ऊंचा करके चलनेवाले पुरुषोंमें तो दसगुने लोग ऐसे हैं, जिन्हें ये बीमारियां हैं। अस्पतालोंमें रोगोंके विवरणकी जो सूची रखी जाती है, उसको देखनेसे स्पष्ट प्रकट होता है कि समाजमें रहनेवाले लोगोंमें बहुत लोग इन बीमारियोंसे ग्रस्त हैं। इन बीमारियोंकी अनेक पेटेण्ट और साधारण दवायें, खूब विज्ञापन-बाजीके साथ, धड़ल्लेसे बिका करती हैं। पर क्या उन्हें वेश्यायें ही खरीदती हैं? उनमेंसे हजार पीछे दो शीशियां भी मुश्किलसे वेश्याओंके यहां पहुंचती होंगी। यदि इन बीमारियोंके कारण ही किसीको त्याज्य समझना चाहिए तो समाज अपने उन व्यक्तियोंको क्यों नहीं त्याग देता जिनको ये रोग हैं? और इसे तो सभी जानते हैं कि ये बीमारियां संक्रामक होती हैं। फिर सवाल यह है कि वेश्याओंको ये रोग कहांसे होते

हैं? मान लीजिये कि "क" नामकी एक वेश्या है और उसे घातक बीमारियां हैं। वे बीमारियां उसको किस तरह हुईं? अवश्य ही वे या तो उसकी मातासे, या जन्म देनेवाले पुरुषसे, या किसी 'दोस्त'से मिली हैं। इसके लिए उस बेचारीका क्या दोष?

लोग कहते हैं कि वेश्यायें लगावट-रिझावटमें निपुण होती हैं, भड़कीले शृङ्गार करती हैं, उद्दीपनकी सामग्री होती हैं—उन्हें देखते ही कितने ही लोगोंका मन बेकाबू हो जाता है और वे वेश्या-विहारमें गर्क हो जाते हैं। किन्तु जो लोग गर्क होते हैं, क्या वे दोषी नहीं? सवाल यह है कि पहले वे वेश्याके घर जाते हैं, या पहले वेश्या ही उनके घर जाकर उन्हें फंसाती है? वेश्यायें रूप-यौवनका व्यवसाय करती हैं—यह खुली हुई बात है, शोभा-शृङ्गार, लगावट-रिझावट उनके लिए अनिवार्य है। जिस वेश्याके ग्राहक-दलमें जैसे हाव-भावकी चाह रहती है, उसकी पूर्ति उसको करनी पड़ती है। सिर्फ दूकानदारीवाला नियम है। किन्तु क्या हम थोड़ी देरके लिए भी इस बातपर विचार करते हैं कि समाजमें रहनेवाली कितनी ही भौजाइयां, सालियां और सलहजें, तथा कितनी ही मजदूरनियां ऐसी हैं जो लगावट-रिझावट आदिमें वेश्याओंके कान काट सकती हैं? चार-पांच साल पहलेकी बात है, एक व्यक्तिने स्तनोंके सुधारके लिए एक दवा बनायी थी—पीछे किसी कारण उन्होंने उस व्यवसायको बन्द कर दिया। उन्होंने बताया था कि जितनी शीशियां उन्होंने बेचीं, वे सब-की-सब समाजमें ही बिकीं, और कितनी ही शीशियां तो कठिन पर्देके अन्दर पहुंच गयीं! इसका क्या जवाब है? किसी पर्वके अवसरपर घरमें जो अच्छे-अच्छे भोजन बनते हैं, उन्हें घरवाले खाते हैं; किन्तु हलवाई जो रोज-रोज तरह-तरहकी मिठाइयां बनाता है वह अपने स्वाद-सुखके लिए नहीं। वेश्यायें अपने सुखके लिए शृङ्गार नहीं करतीं। किन्तु क्या किसीने इस बातका पता लगानेकी चेष्टा की है कि समाजमें रहनेवाले उन लोगोंकी संख्या कितनी है जो अपनी-अपनी गृहिणियोंके कपड़े, गहने, तेल-फुलेल आदिकी फर्मायशें पूरी करनेके लिए ही बेईमानी करते हैं, घूस लेते हैं, दूसरोंका गला घोंटते हैं, झूठ बोलते हैं, दिवाला तक मारते हैं? स्त्रियोंके शृङ्गारके जो उपादान यहां तैयार होते हैं और विदेशोंसे आते हैं, उनका बहुत बड़ा भाग समाजके अन्दर ही खपता है। वेश्याओंके अन्तरसे जो लोग परिचित हैं, वे इस बातकी गवाही देंगे कि कोई भी वेश्या शरीरपर कितनी ही दिवाली क्यों न मनाये, उसके हृदयमें होली ही जलती रहती है।

वेश्याओंके मत्थे सबसे बड़ा दोष व्यभिचारका मढ़ा जाता है, परन्तु हम साफ भूल जाते हैं कि उनके पापमें उनके 'दोस्तों' का भी हिस्सा रहता है। साथ ही हम यह भी भूल जाते हैं कि समाजमें भी, बहुत जगहोंपर, अत्यन्त जघन्य व्यभिचार होते हैं। कितनी जगह तो धर्मकी ओटमें और धर्मके नामपर पाप होता है। समझनेकी बात तो यह है कि कोई स्त्री व्यभिचारके ही उद्देश्यको लेकर वेश्या-वृत्ति नहीं ग्रहण करती।

इस तरह, वेश्याओंपर जितने भी आक्षेप किये जाते हैं वे अतिरञ्जित या अनुचित हैं, और उनकी गति वेश्याओंके बदले समाजकी ही ओर होनी उचित है। वस्तुतः वेश्यायें दयाकी पात्री हैं। नारी-हृदय खुल्लम-खुल्ला पाप करने और लज्जा त्यागनेको तभी तैयार होता है जब किसी घोर विपत्तिका पहाड़ सिरपर टूट पड़ता है, और परिस्थिति अत्यन्त निष्ठुर और भीषण हो जाती है। मनुष्य-प्राणी स्वभावसे ही समाज चाहता है—किन्तु वेश्यायें समाजसे बाहर रहती हैं, अपने सगे-सम्बन्धियोंकी ओर भी वे देख नहीं सकतीं। यह कम दुःख नहीं है, और यह कैसा दुःख है इसे भुक्तभोगिनियां ही जानती हैं। फिर चारों ओरसे अनुचित तथा अन्यायपूर्ण तिरस्कार और फिटकार! प्रेमके लिए एक आधारकी आवश्यकता प्रत्येक अबला-हृदयको स्वाभाविक ही होती है—इस प्राकृतिक आवश्यकताकी आग वेश्याओंके हृदयमें धधकती ही रहती है। कुत्ते या बिल्ली या तोता पालनेसे मनका बहलाव या प्रतारण हो सकता है, वह 'आग' नहीं बुझ सकती। फिर, अनिवार्य खर्चके लिए धनकी चिन्ता; वेश्याओंकी कमाईसे हिस्सा पानेवालों और पानेवालियोंके निष्ठुर और सतर्क आचरण; गुण्डोंके उपद्रव, और मूक, असहाय तथा अनाथ अवस्था! स्त्री-हृदयमें कितनी ही कोमल आकांक्षायें और अभिलाषायें होती हैं, जिनका मूल्य स्त्रियां ही समझती हैं। ये अरमान वेश्यायें पूर्ण नहीं कर सकतीं! और सबसे बढ़कर, रोग-शोक, सन्ताप

और दरिद्रताकी गुप्त किन्तु गहरी मार ! इनकी अवस्थापर विचार करनेसे पत्थर भी पसीज सकता है—किन्तु समाज टस-से-मस नहीं होता ! स्वयं महात्मा गान्धीने, एक बार मद्रासमें भाषण करते हुए इन्हें "पतित बहनें" कहा था, और इनकी ओरसे दया और क्षमाकी प्रार्थना की थी। किन्तु उन महापुरुषकी बातें भी समाजके दिमागमें नहीं धंसी ! यह हमारे लिए दुर्भाग्य और अफसोसकी बात है।

वेश्याओंके बीच अनेक स्त्रियां ऐसी हैं जिनकी स्मरण-शक्ति विलक्षण है, कितनों हीकी बुद्धि सुतीक्ष्ण है, कितनों हीमें त्याग और सहनशीलताकी भावनायें हैं—यदि वेश्यायें वेश्या-वृत्तिसे छुड़ाकर समाजमें मिला ली जायं तो इन गुणों-का अच्छा उपयोग समाजकी भलाईके लिए हो सकता है, और उन अभागिनियोंकी यातनायें भी कम हो सकती हैं। वेश्या-गृहोंमें अनेक गर्भपात होते हैं, अनेक लड़के बिलटाये जाते हैं और जो बच पाते हैं उनकी जिन्दगी बर्बाद हो जाती है। क्या इस जन-नाशके पाप और क्षतिसे समाजको बचना न चाहिए ? वेश्याओंको समाज ही वेश्या बनाता है—समाजके अन्दर ही कितनी बातें, कितनी ही स्थिति-परि-स्थिति ऐसी होती है जिससे वेश्या होनेवाली स्त्रियां इस नारकीय जीवनको स्वीकार करनेको मजबूर हो जाती हैं।

वेश्याओंका अस्तित्व समाजके लिए बहुत ही बड़ा कलङ्क है—और जब तक यह कलङ्क मौजूद है, तब तक सिर ऊंचा करना समाजके लिए सम्भव नहीं। समाज यदि अपनी मर्यादा चाहता है और यदि अपना कल्याण चाहता है—और यदि अन्यायका मार्जन चाहता है—तो उसे चाहिए कि उन स्थितियों और कारणोंका पूर्ण अन्वेषण और निवारण करे जिनसे कितनी ही औरतोंको प्रतिवर्ष वेश्या-वृत्ति स्वीकार करनी पड़ती है। और, साथ ही इसका भी प्रबन्ध होना चाहिए कि वेश्याओंको वेश्यावृत्तिसे छुड़ाकर, और उन्हें क्षमाकर, समाजमें मिला लिया जाय, और उनको उचित व्यवसाय और आश्रयका प्रदान किया जाय; और जो वेश्यायें स्वास्थ्य और वयसके लिहाजसे विवाह-योग्य हैं उनका विवाह करा दिया जाय। यह एक रोजमें होनेवाला काम नहीं है – किन्तु है अत्यन्त आवश्यक।

वेश्याओंके उद्धारके लिए हमें प्रबल आन्दोलन करना पड़ेगा—कितने ही नवयुवकोंको सम्पूर्ण समय इसी काममें लगाना पड़ेगा। और यह काम बहुत धीरे होगा।

यह आन्दोलन जितना शीघ्र आरम्भ हो, उतना ही अच्छा।

—

लखनऊके नवाब और उनकी इमारतें

श्री पीताम्बर झा

इतिहास-प्रसिद्ध लखनऊ नगरीकी दर्शन-लालसा आंखों-को बेचन कर रही थी। अवसर पाते ही मैंने अपने एक शुभ-चिन्तकके साथ १२ दिसम्बर १९३० को तूफान-मेलसे वहांके लिए प्रस्थान किया। मेल हवासे बाजी मारती अपने नामको सार्थक करती आगे बढ़ रही थी, और मेरे मनमें उप-युक्त लालसाकी सजीव उत्कण्ठा उथल-पुथल मचा रही थी। किस तरह छोटे-छोटे स्टेशनोंको लांघती हुई गाड़ी आगे बढ़ रही थी, इसका ध्यान भी मुझको नहीं था। दूसरे दिन सन्ध्या समय मैं मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्रकी पावन नगरी अयोध्यामें ट्रेनसे उतर गया। सरयू पुलिनपर बसी हुई

ईमामबाड़ेका मुख्य प्रवेश-द्वार

अयोध्याकी अनुपम शोभाका क्या वर्णन करूं? सैकड़ों गगनचुम्बी अमल, धवल मन्दिरोंके स्वर्ण-कलशपर धर्म-केतु फहराते देख हृदयको अपार आनन्द उपलब्ध हुआ। शहरमें बिलकुल शान्ति देखी। हां, साधुओं और बन्दरोंका कोलाहल-पूर्ण अधिकार यात्रियोंपर आतङ्क बरसा रहा था। मैं दूसरे दिन दस बजे दिनकी गाड़ीसे आगे बढ़ा। ६ बजे सन्ध्याको मेरी गाड़ी लखनऊके विशाल स्टेशनपर आकर खड़ी हुई। ऐसा सुन्दर और विशाल रेलवे स्टेशन इसके पहले मैंने नहीं देखा था। भारतवर्षकी राजधानी दिल्ली और कलकत्ता जैसे बड़े नगरोंके रेलवे स्टेशन इसके आगे फीके जंचे। वेटिंग रूमकी सजावट देखते ही बनती थी। मैं स्टेशनके निकट ही धर्मशालामें ठहरा। रास्तेकी थकावट थी, रातको कहीं बाहर नहीं निकला। दूसरे दिन नित्य कर्मोंसे निवृत्त हो शहरके दर्शनीय स्थानोंका दर्शन करने चला। दिन-भरके लिए चार रुपयेपर एक सुन्दर तांगा ठीक किया और उसपर सवार हो आगे बढ़ा। लखनऊ नगरी युक्तप्रान्तकी राजधानी होने जा रही है, इसलिए नयी सरकारी इमारतोंकी अधिक वृद्धि होती दिखायी पड़ी। क्रमशः केसर बाग, लाल बाग और गुलाब बाग देखकर मेरा हृदय बाग-बाग हो गया। लखनऊका चिड़िया-घर कलकत्तेके चिड़िया-घरसे बहुत छोटा है, परन्तु वहांके
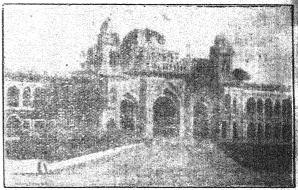
मच्छी-भवनका सम्मुख द्वार

चीते तथा अन्यान्य जन्तुओंसे यहांके चीते और अन्यान्य जन्तुओंको कुछ अधिक स्थानमें घूमनेकी स्वतन्त्रता दी गयी है। शेर-बब्बरोंके निवास-स्थानके आगे अथाह जलकी लम्बी और गहरी खाई है। चीते अपने स्थानपर बन्धन मुक्त हैं; आजादीसे उतने स्थानपर घूम-फिर सकते हैं। यहांका जादूघर भी कलकत्तेके जादूघरसे छोटा है, पर है सुन्दर। विविध प्रकारकी पुरानी चीजोंका संग्रह देखते ही बनता है। इन सब स्थानोंका निरीक्षण करता हुआ मैं लखनऊके विलासी नवाबोंकी पुरानी इमारतोंको देखने गया। उन विलासी नवाबोंकी विषय-वासनाकी क्रीड़ा-भूमिपर उन विशालकाय

इमारतोंको अपने निर्माताके अत्याचारजनित संहारके शोकमें आंसू बहाते देख अपार दुःख हुआ। क्षणिक वैभवकी मस्ती में बहनेवाले अत्याचारियोंकी अधोगति देखकर भी उनके अनुगामियोंकी आंखें क्यों नहीं खुलतीं? गरीब किसानोंकी गाढ़ी कमाईको पानीकी तरह बहाकर करोड़ों रुपयोंके खर्चसे बनायी हुई अनेकों इमारतें लखनऊके अतीत वैभवका स्मरण दिला रही हैं। नवाब वाजिदअलीकी अनुपम, विशाल इमारत आज सूनी अवस्थामें दर्शकोंके दिलपर दर्द पैदा कर रही है। देशके दुर्भाग्यसे न मालूम कितना अपव्यय उस समय हुआ था। वहांसे आगे बढ़कर नवाबके किलेका भग्नावशेष—जो सरकारकी कृपासे सुरक्षित है—देखा। किलेके भीतरी गेटकी दीवारोंपर तोपके गोलोंका चिन्ह अब भी दिखायी

रौशन महल

पड़ता है। दीवारें अब भी खड़ी हैं। किलेके भीतर प्रधान भवनके खण्डहरके भीतर एक कमरेमें लखनऊ शहरका चित्र (युद्ध-कालका) है। नवाबी सेनाके साथ अंगरेजी सैनिकोंने युद्धकर किस तरह सफलता पायी इसका ज्ञान उस चित्रसे भलीभांति हो सकता है। उस किले-की चारों ओर अनेकों पुरानी तोपें (जो अब कामकी नहीं हैं) लगी पड़ी हैं। भवनके नीचे जिस तहखानेमें नवाबने अपने परिवारकी रक्षाका प्रबन्ध किया था, भीतर जाकर उसका भी निरीक्षण किया। उसकी बनावट देखते ही बनती थी। बाहर-वालोंको कुछ भी पता नहीं लगता है कि इसके भीतर भी कोई तहखाना है। पेचीली गोल सीढ़ियोंसे वहां जाना पड़ता है। गाइड (निर्देशक) की सहायतासे इसकी विशेष जान-कारी प्राप्त होती है।

उस स्थानके महलोंको उस रूपमें देखते ही दुनियाकी परिवर्तनशीलताका अनुभव होता है। जिस स्थानकी सजावट कभी स्वर्गकी समता करती थी, आज वह गीदड़, चमगीदड़ों का क्रीड़ा-कुञ्ज बना हुआ है। वहांसे आगे बढ़कर मैं नवाब निजामुद्दौलाका समाधि-मन्दिर (इमामबाड़ा) देखने गया। किलेसे आगे बढ़नेपर मेरी दृष्टि गोमतीकी क्षीणधारापर पड़ी जो मेखलाकी भांति लखनऊके कटिप्रदेशमें लिपटी हुई कल-कल नाद करती आगे बढ़ रही है। वहांका दृश्य बड़ा ही आकर्षक था, उसके पास ही नवाबका बनवाया हुआ विशाल मच्छी भवन अपनी अनुपम बनावटसे दर्शकोंको अपनी ओर
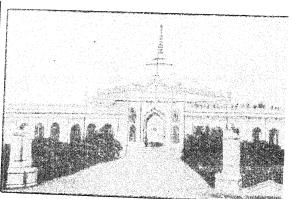
शाहनजफ महल

आकर्षित करता हुआ दिखायी पड़ा। वहांसे कुछ आगे बढ़ने-पर किङ्ग जार्ज मेडिकल कालेजका सुविस्तृत दर्शनीय भवन दीख पड़ा। कालेजके पास नवाब निजामुद्दौलाका वह गगन-चुम्बी समाधि-मन्दिर जो बहुत लम्बी-चौड़ी जगहमें करोड़ों रुपयेके कलेजेपर खड़ा था, दीख पड़ा। विशालकाय महलको देख मैं आश्चर्यचकित रह गया। न मालूम कितने करोड़ रुपयेपर पानी फेर नवाबके समाधि-मन्दिर का निर्माण किया गया होगा। प्रवेश द्वारको पार कर और भी कई द्वारोंको लांघता हुआ मैं प्रधान प्राङ्गणमें प्रविष्ट हुआ। सुन्दर चिकने प्रस्तर-खण्डोंसे निर्मित उस विशाल प्राङ्गणके किनारे वह भव्यभवन खड़ा था, जिसके भीतर नवाब ने समाधि ली थी। विशाल झाड़फानूश और कीमती शीशेसे

सजे भवनके भीतर नवाबका समाधि-स्थान था। उन सब स्थानोंको देखकर मैं बाहर आने हीको था कि वहांके एक गायडकी भूल-भुलैयामें पड़कर 'भूल-भुलैया' देखनेके लिए एक अठन्नीको टेंटसे निकालकर उसके पीछे पीछे गुप्त द्वारसे महलके ऊपरकी ओर चला। पेचीली सीढ़ियोंके सहारे उस गगन-स्पर्शी गुम्बदकी ओर बढ़नेमें अपूर्व आनन्द प्राप्त करने लगा। पेचीली गलियोंकी गोदमें विनोद करता हुआ गायड अपनी बहादुरीकी तारीफमें तल्लीन था और मैं उसके पीछे मन्त्रमुग्धकी भांति चल रहा था। महलके शिखरपर काफी लम्बी-चौड़ी जगह थी। उसपरसे लखनऊ शहरका मानचित्र आंखोंके आगे झूलने-सा लगा; बड़ी ऊंची अट्टालिकाओंसे नगरकी अपूर्व शोभा सजीव-सी उद्भासित होने लगी। लखनऊके पुराने नवाबी महलोंकी अपूर्व छटा आंखोंके आगे दिखायी पड़ने लगी। इन इमारतोंके निर्माणमें गरीबोंके अर्जित न मालूम कितने रुपये खर्चकर उन स्वर्गीय नवाबोंने अपनी विलास-वासना पूरी की थी। यही अपव्यय उनके पतनका कारण हुआ। अत्याचार-पीड़ित प्रजाओंने ऊबकर उनका साथ छोड़ दिया होगा, तभी सब तरह सम्पन्न रहनेपर भी आज सिर्फ उनकी कब्रें उनका स्मरण दिला रही हैं। उन पुरानी इमारतोंमें कहीं-कहीं आज कल स्कूल हैं। इस तरह एक-एक करके मैं रौशनमहल, शाहनफत्र महल, अवधके नवाब और बेगमका समाधि-महल छत्तर महल, ला मार्टिनियर कालेज अवलोकनकर छः बजे सन्ध्याको वापस लौटा। डेरेपर लौट आनेपर भी मेरी आंखोंके सामने उन महलोंकी अलौकिक छटाकी छाया-रेखा झिल-मिलाती रही, धूमिल नहीं होने पायी। दुनियामें कोई मनुष्य अमर होकर नहीं आया, किन्तु उसके पीछे उसके समाधि-स्थानपर बरसता हुआ सुमन उसके वन्दनीय यश-सौरभका प्रसारकर उसकी आत्माको स्वर्गमें शान्ति प्रदान करता तथा उसका वह अभिनन्दीय स्मारक पुरानी गाथा गाकर दर्शकोंको अपार आनन्दका अनुभव करा उनके सत्-पथका प्रदर्शक बना रहता है। और इसके विपरीत कार्य करनेवालेकी स्मृति शून्य भूमिमें बिखर जाती है।

अस्पृश्य

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

रामानन्दने पाया गुरुका पद,
सारा दिन उनका कटता है जप-तपमें,
सन्ध्याके समय देवताको भोज्य करते हैं अर्पित,
इसके बाद भङ्ग होता है उनका उपवास-
जब वह अन्तरमें ठाकुरका प्रसाद पाते हैं।

उस दिन था मन्दिरका उत्सव,
राजा आये, रानी आयीं,
और आये दूर-दूरसे पण्डितगण,
नाना चिह्नधारी, नाना सम्प्रदायोंके भक्तदल।
सन्ध्याके समय स्नान समापन करके
रामानन्दने नैवेद्य अर्पित किया
देवताके पद तलमें,—
अपने अन्तरमें उन्हें प्रसाद प्राप्त न हुआ,
आहार न हो सका उस दिन।

इसी प्रकार जब दो सन्ध्यायें कट गयीं,
हृदय रह गया शुष्क होकर,
गुरु मिट्टीपर सिर रखकर बोले—
"देवता! मुझसे क्या अपराध हुआ?"
देवता बोले—"मेरा वास क्या केवल वैकुण्ठमें है?
उस दिन मेरे मन्दिरमें जिन लोगोंने प्रवेश नहीं पाया
मेरा स्पर्श तो उन सबके सर्वाङ्गमें है!
मेरा ही पादोदक लेकर
प्राण-प्रवाहिणी उनकी शिरामें बहती है।
उनके अपमानसे मुझे चोट पहुंची है,
आज तुम्हारे हाथका नैवेद्य अशुचि है।"

"लोक-स्थितिकी रक्षा करनी होगी, प्रभु,"—
कहकर गुरु देवताकी ओर ताकते रहे।
देवताकी आंखें दीप्त हो उठीं, बोले—

"जो लोक-सृष्टि स्वयं मेरी है,
जिसके प्राङ्गणमें सब मनुष्य निमन्त्रित हैं,
उसके बीच अपनी लोकस्थितिका घेरा डालकर
मेरे अधिकारमें तुम सीमा बांधना चाहते हो,
इतना बड़ा तुम्हारा दुस्साहस है !"

रामानन्द बोले—"प्रातःकाल ही यह सीमा
छोड़कर चला जाऊंगा,
कर दूंगा अपना अहङ्कार दूर, तुम्हारे विश्वलोकमें।
रातका तीसरा पहर था,
आकाशके तारे मानो ध्यानमग्न थे,
गुरुकी निद्रा टूट गयी, सुना—
"समय हो गया है, उठो, प्रतिज्ञा पालन करो।"
रामानन्दने हाथ जोड़कर कहा—"अभी गहन रात्रि है,
पथ अन्धकार है, पक्षी नीरव हैं।
प्रभातकी प्रतीक्षामें हूं।"
देवताने कहा—"प्रभात क्या रात्रिके अवसानमें होता है?
जिसी क्षण तुम्हारा चित्त जाग्रत हो गया है,
मेरा सन्देश तुमने सुन लिया है,
उसी क्षण प्रभात हो चुका।
जाओ, अपना व्रत पालन करनेके लिए।"

रामानन्द आये बाहर पथमें एकाकी,
मस्तकके ऊपर ध्रुवतारा जाग रहा था।
पार किया उन्होंने नगर, पार किया ग्राम।
नदीके तीरपर श्मशान था, चण्डाल शव-
दहनमें व्यस्त था।
रामानन्दने दोनों हाथोंसे उसे जकड़ लिया छातीसे।
उसने भीत होकर कहा—"प्रभु, मैं चण्डाल हूं,
नाभा मेरा नाम है,

हेय है मेरी वृत्ति,
मुझे अपराधी न बनाइये।"
गुरु बोले—"अन्तरमें मैं था मृत, अचेतन,
इसीलिए इतने दिन तुम्हें न देख पाया,
इस कारण तुम्हींसे मेरा है प्रयोजन,
नहीं तो मृतकका अन्तिम सत्कार न हो सकेगा।"

गुरु आगे बढ़े चले।
भोरका पञ्छी बोल उठा,
अरुण आलोकमें प्रभातका नक्षत्र मिल गया।
कबीर बैठे हैं अपने प्राङ्गणमें,
कपड़ा बुन रहे हैं और गुन-गुन गान गाते हैं।
रामानन्द बैठे उनके पास,
उन्हें गलेसे लिपटा लिया।
कबीरने व्यस्त होकर कहा—
"प्रभु, जातिका मैं हूं मुसलमान,
जुलाहा हूं, वृत्ति मेरी नीच है।"
रामानन्द बोले—"इतने दिनों तक तुम्हारा
सङ्ग प्राप्त न हो सका, मित्र !
इसीलिए मैं अन्तरमें नग्न हूं,
चित्त मेरा धूलिसे मलिन है,
आज मैं तुमसे शुचि वस्त्र पाकर पहनूंगा,
मेरी लज्जा दूर हो जायगी।"

शिष्यगण खोजते-खोजते पहुंच गये वहां,
धिक्कार देते हुए बोले—"यह क्या किया, प्रभु?"
रामानन्दने कहा—"अपने देवताको इतने
समय तक जहांपर मैंने खो दिया था,
आज उन्हें वहीं खोजकर पा लिया है।"
आकाशमें हुआ सूर्यका उदय,
प्रकाश जगमगा उठा गुरुके
आनन्दित मुखमें। *

---

* ऊपर दी गयी कविता रवीन्द्रनाथने अपने नव-प्रचारित गद्यमय छन्दमें लिखी है। हमने अनुवादमें उनके छन्द तथा शब्दोंको यथारूप देनेकी चेष्टा की है। अमेरिकन कवि वाल्ट ह्विटमैनके स्वच्छन्द छन्दसे भी रवीन्द्रनाथ कितना आगे बढ़ गये हैं, पाठक कृपया इस बातपर भी ध्यान दें। यह कविता 'प्रवासी' की पौष-संख्यामें छपी है—अनुवादक।

उन्नीसवां परिच्छेद।

गङ्गातटपर शान्तिके सम्बन्धमें जो उदार और पवित्र धारणा मेरे मनमें उत्पन्न हुई थी उसका जोश स्थायी न रहा। एक अज्ञात भीतिकी भावनाने मेरे दुर्बल हृदयको एक भीषण पाषाणके दुर्विसह भारकी तरह दबा लिया था, और वह किसी तरह हटना नहीं चाहता था। इसलिए शान्तिके अनुनय वचनोंका स्मरण करके नित्य उसके पास जानेका इरादा करता, पर नित्य चौक तक जाकर निष्फल प्रयत्नके बाद बीच-हीमें लौट आता। कई दिन इस प्रकार बीत गये। मनमें यह धड़का भी लगा था कि शान्तिकी स्थिति न जाने कैसी विकट हो उठी है। क्योंकि उस दिन उसने कैसी ही उपेक्षा-का भाव क्यों न दिखाया हो, कमलकुमारीके स्त्री-स्वभावो-चित घृणाका प्रकोप वह अधिक दिन तक किसी प्रकार भी सहन न कर सकेगी, यह बात मैं भली भांति जानता था। मैं असमञ्जसमें पड़कर बड़ी बेचैनी मालूम कर रहा था।

एक दिन प्रबल चेष्टासे साहस करके उस गलीके उत्तरी सिरेपर टहलने लगा जहां शान्ति रहती थी। उन लोगोंके मकानसे काफी दूर हटकर किसी बहानेसे इधर-उधर चक्कर लगाने लगा। उद्देश्य यह था कि अगर उनका नौकर दिखायी दे तो उससे एकान्तमें यथार्थ स्थिति मालूम करूं। दो पैसेकी मूंगफली लेकर तोड़-तोड़कर खाने लगा और किसी तरह समय बिताने लगा। घण्टे-भरसे ज्यादा हो गया, पर रामरतन नहीं दिखायी दिया। बड़ा परेशान था। एक बार इच्छा हुई, स्वयं चला जाऊं; पर लाख चेष्टा करनेपर भी हिम्मत नहीं होती थी,—कमलकुमारीकी वही क्रोध-रक्तिम, घृणा-विकृत मूर्ति आंखोंके आगे घूमने लगती। ज्योंही मकानकी ओर दो कदम पांव बढ़ाता त्योंही सिर चकराने लगता और पांव ऐसे बेबस कांपने लगते जैसे वे मेरे अपने पांव न हों। लाचार घाटकी तरफ लौट चला। पर वहां भी किसी प्रकार मन नहीं लगता था। सोच रहा था कि जिस अज्ञात भौतिक अथवा मानसिक भयसे, शान्तिके इतने निकट होनेपर भी मैं उससे नहीं मिलने पाता, वह कैसा प्रचण्ड है! फिर एक बार उस गलीकी ओर गया, फिर व्यर्थ-काम होकर लौटा। रात बहुत देर तक यही स्थिति रही। अन्तको स्वप्नावस्थामें यूनिवर्सिटीको लौट चला। दूसरे दिन फिर आया, पर यही हाल रहा। जब तीसरे दिन भी चेष्टा सफल न हुई—न तो मकानके भीतर जानेका ही साहस कर सका, और न नौकर ही कहीं दिखायी दिया—तो अपनी कायरतापर विचार करके मैं आतङ्कसे कांप उठा। सोचने लगा—"तब क्या सचमुच अब शान्तिके साथ मेरा मिलना कभी नहीं हो सकेगा? क्या कोई समाचार भी उसके सम्बन्धमें किसी तरह प्राप्त नहीं होगा? आज तक यह ख्याल था कि असमञ्जसके कारण उससे नहीं मिल रहा हूं, वर्ना जब चाहूं, मिल सकता हूं। इसलिए इस विश्वासके कारण मनमें एक प्रकारका धैर्य था। पर अब जब अपनी दुर्बलात्माकी वास्तविक स्थितिका परिचय मुझे हुआ, तो मैं बेतरह घबरा उठा। शान्तिका वही दृढ़ कण्ठस्वर कानोंमें गूंजने लगा—"तुम कायर हो!" मेरा हाथ अपने सिर पर रखकर शपथ लिवाया था, वह भी स्मरण हो आया, फिर अन्तको असहाय अवस्थामें आंसुओंसे छलछलाती हुई विह्वल आंखोंकी जिस करुणा-व्याकुल चितवनसे उसने मुझे देखा था उसकी स्मृति रह-रहकर मेरे हृदयको आलोड़ित करने

लगी। मैं ऐसा मालूम करने लगा जैसे उसकी बड़ी-बड़ी, स्निग्ध-तरल आर्द्र आँखें निरन्तर मेरा मर्म चीरकर देख रही हों। कितना ही उन्हें भुलानेकी चेष्टा करता था, पर वे स्वतः रूपसे जागरित होकर मुझे व्यतिग्रस्त कर रही थीं। कैसा क्लान्त, करुणीय, कातर भाव उनमें झलक रहा था! सोचते-सोचते मेरी आँखें आर्द्र हो आयीं और इच्छा होती थी कि कहीं एकान्तमें बैठकर जी भरकर रोऊं। मनमें कहने लगा—"शान्ति! शान्ति! प्यारी शान्ति! अपनी प्रेममयी आत्मासे मुझमें बल सञ्चारित करो कि समस्त विश्वका बन्धन तोड़कर तुमसे मिल सकूं!" इच्छा होती थी कि धरती फाड़ूं और आकाश चीर डालूं। पर हायरे, इस दुर्बल मानवात्माकी नीचता तथा अक्षमताका कुछ ठिकाना भी है! एक तरफ तो ऐसा प्रचण्ड आवेग मेरे भीतर प्रबल वात्याकी तरह विस्फूर्जित हो रहा था, दूसरी ओर मुझे इतना साहस नहीं होता था कि सब सामाजिक तथा लौकिक बाधाओंको तुच्छ करके बेधड़क जाकर शान्तिसे पास ही उसके मकानमें मिलूं।

इस प्रकार आकाश-पातालकी भावनाओंमें निमग्न होने-पर भी मेरा मस्तिष्क अत्यन्त सचेत होकर, निरन्तर निराश होते हुए भी बिना उकताये शान्तिके नौकरकी तलाशमें व्यस्त था। रास्तेमें गुजरनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको मैं गौरसे देख रहा था। अंधेरा हो चला था। दूकानोंमें एक-एक करके बत्तियां जलने लगी थीं। अचानक इस अस्पष्ट प्रकाशमें सामनेकी ओर रामरतनकी-सी शक्लका एक आदमी जाता हुआ दिखायी दिया। मैं उन्मत्त आनन्दसे उन्मादकी तरह उस ओर दौड़ा। निकट आकर देखा—हां, वही था। मेरी आंखोंने मुझे धोखा नहीं दिया। युगोंके बिछोहके बाद प्रियजनके मिलनसे शायद ऐसा हर्ष किसीको न होता होगा, जैसा इस समय मुझे इस नौकरके मिलनेसे हुआ। अपनेको संभालकर, संयत हास्यसे मैंने उसे ठहराकर पूछा—"कहो भाई, क्या हाल है? घरमें सब कुशल तो है?"

वह पहले तो मुझे देखकर कुछ चकराया। फिर सिर नवा-कर बोला—"आप तो अच्छे हैं?"

"शान्तिदेवी—" मेरा गला कांप रहा था, हृदय धड़क रहा था, इसलिए अधिक कुछ बोल न सका।

"जिस दिन आप आये थे, तबसे दोनोंमें कुछ खटपट-सी हो गयी है। शान्तिदेवीने तबसे स्कूल जाना भी छोड़ दिया है। कमलकुमारी किसी दूसरे मकानमें जानेकी बात सोच रही हैं, शान्तिदेवीके साथ शायद नहीं रहना चाहतीं।"

मेरा यह हाल था कि जैसे कोई हथौड़ेसे मेरी छातीपर चोट मार रहा हो। आंखोंके आगे निपट अन्धकार छा गया। कुछ क्षणके लिए सन्न रहकर मैंने पूछा—"इस वक्त मकानपर कौन-कौन हैं?"

"शान्तिदेवी अकेली बैठी हैं। कमलकुमारी आजकल तड़के मकान छोड़कर चली जाती हैं, रातको बहुत देरमें आती हैं। दोनोंमें बोलचाल बिलकुल बन्द है।"

"जब कमलकुमारी दूसरे मकानमें चली जायंगी, तो तुम किसके साथ रहनेका विचार कर रहे हो?"

वह जरा मुसकराया। फिर बोला—"हमारे लिए तो पेटका सवाल बड़ा है, बाबूजी। जो दो रोटी ज्यादा देगा, वहीं रहेंगे। शान्तिदेवी तो अब नौकरी भी छोड़कर बैठ गयी हैं। इधर जबसे दोनोंमें अनबन हुई है तबसे उन्हें दो जून भरपेट खाना दूभर हो गया है। कभी-कभी तो भूखी रहती हैं। बनियेके यहांसे चीजें उधार लाकर मैं उन्हें खिला रहा हूं। पर अब वह भी पैसे मांगता है।"

सिरसे पैरतक मेरा रक्त उत्तप्त हो उठा। अपनी का-पुरुषताको धिक्कारकर बिना अधिक विवादके सीधा शान्तिके मकानकी ओर चल दिया। मेरा सारा सङ्कोच, सारी जड़ता पलभरमें काफूर हो गयी थी। जब मकानके पास पहुंचा, तो बेखटके सीढ़ियोंसे होकर ऊपर गया, और दृढ़तापूर्वक दरवाजा खटखटाया। उसी दम किवाड़ खुला। मुझे देखकर शान्ति विस्मय-विह्वल होकर कुछ देर तक मेरी ओर ताकती रही।

बीसवां परिच्छेद

कमरेमें लालटेनका क्षीणालोक जल रहा था। शान्तिको विमूढ़ावस्थामें देखकर मैंने कहा—"क्या पहचाना नहीं? तुम्हें तो जैसे काठ मार गया है!" कहते ही अपने वाक्यकी रूढ़ता स्वयं मेरे कानोंमें खटकने लगी। इसलिए उस पर कोमलताका आवरण डालनेके लिए मैं यथासाध्य मुखमें स्निग्ध भाव लानेकी चेष्टा करके मुसकराया।

पर शान्तिने मेरे परिहासमें सहयोग नहीं दिया। वेदना-व्याकुल कण्ठसे बोली—"इतने दिनों तक तुमने मुझे जैसा रुलाया है, इस सम्बन्धमें इस समय मैं कुछ नहीं कहना चाहती। जैसे भी हो, आज मेरे पास आ गये, यही अपना परम भाग्य मानती हूं।" यह कहकर उसने अञ्चलसे अपना मुंह ढांप लिया। स्पष्ट ही वह रो रही थी।

अत्यन्त कातर होकर मैंने उसका हाथ पकड़ा। बोला—"मुझे क्षमा करो, शान्ति! मुझसे दोष अवश्य हुआ है, मैं स्वीकार करता हूं। पर तुम नहीं जान सकतीं कि इस बीच मैं कैसे झञ्झटोंमें फंसा रहा हूं।"

मैंने उसके मुंहसे उसका अञ्चल हटानेकी चेष्टा की, पर वह दृढ़तापूर्वक उसे हाथसे जकड़े रही। मैंने कहा—"छी छी शान्ति! तुम नादान बच्चोंकी तरह रो रही हो! मुंह खोलो न! पहले मेरी बात सुनो, समझो; इसके बाद भी अगर उचित समझोगी तो रोना, मैं कुछ न बोलूंगा।"

मेरी बात सुनकर शान्तिने धीरे-धीरे अञ्चलसे आंखें पोंछकर मुंह खोला, पर आंखें नीचेकी ओर किये रही।

उसका बांया हाथ पकड़कर मैंने उसे कुरसीपर बिठाया और स्वयं भी बैठ गया। फिर बोला—"मैंने सुना है, तुमने स्कूलकी नौकरी छोड़ दी है?"

वह उसी प्रकार नत-दृष्टिसे चुप रही। मानिनीका मान-भञ्जन करनेकी यह मेरी पहली ही चेष्टा थी। अभी इस कलामें मैं नौसिखिया था। इसलिए कुछ समझमें न आता था कि किस प्रकार उसे समझाया, मनाया जाय।

मैंने फिर कहा—"यहां तो तुम्हें रहने और खाने-पीनेकी असुविधा होगी? आगे क्या करनेका विचार है?"

मेरे इस प्रश्नसे उसका आहत अभिमान गर्जित हो उठा। तमककर बोली—"मैं कहीं जाऊं, मरूं चाहे जीऊं, किसीकी बलासे! मेरी किसे क्या गरज पड़ी है!"

"आह शान्ति! क्यों नाहक ऐसी कठोर बातोंसे दिल दुखाती हो। तुम्हें नहीं मालूम कि इतने दिनों तक तुम्हारी चिन्तासे मेरी भूख जाती रही है, नींद हराम हो गयी है। मैं रात-दिन इसी फिक्रमें हूं कि तुम्हारी समस्या किस प्रकार हल हो।"

मेरी अन्तिम बात सुनकर वह फिर एक बार झल्ला उठी। बोली—"मेरी समस्या हल करनेकी कोई जरूरत नहीं है! समस्या! मुझे क्या कोई अनाथाश्रमकी स्त्री समझ लिया है, जो दयावश मेरे अन्न-वस्त्रके उपायका प्रश्न आपके आगे उपस्थित हुआ है? यह दया आपको ही मुबारक रहे! मेरी समस्या थोड़े ही दिनोंमें आप-से-आप हल हो जायगी, फिर सब निश्चिन्त होकर सोयें।" यह कहकर वह फिर मुंह ढांपकर सिसक-सिसककर रोने लगी। अपनी मूर्खताका यह प्रलयङ्कर परिणाम देखकर मैं सन्न रह गया। वास्तवमें मेरी अन्तिम उक्ति अत्यन्त अपमानकर तथा कटु थी। बात मुंहसे निकलते ही मैं स्वयं चिन्तित हो पड़ा था, पर जब एक बार मुंहसे निकल गयी तो फिर उसे लौटा लेनेका कोई उपाय न था। अनजानमें जो घोर अपमान उसका कर चुका था, उसका निराकरण कैसे करूं, यह बात मेरी समझमें किसी तरह न आयी। त्रस्तव्यस्त होकर मैंने उसके पांव पकड़ लिये और व्याकुल कण्ठसे बोला—"शान्ति! शान्ति! मुझे क्षमा करो! मेरा मतलब ऐसा बिलकुल नहीं है, जैसा तुमने समझा है। मुझे तुमपर दया करनेका क्या अधिकार है! मैंने जो कुछ कहा है, वह अपनी गरजसे। दयाके योग्य तो मैं हूं। कबसे तुमसे दयाकी भिक्षा चाहता हूं, पर तुम अत्यन्त निष्ठुरतासे मेरे दिलपर हथौड़ेकी चोट चला रही हो! देखो, मिन्नतें कर रहा हूं, अब चुप करो, न रोओ! कोई आयेगा तो क्या सोचेगा!"

मेरी इस करुण प्रार्थनाका उसपर यथेष्ट असर होता दिखायी दिया। उसने मेरी ओरको मुंह फेरा और आंसू पोंछने लगी। हिचकियां अभी जारी थीं।

मैंने कहा—"मेरी बातका तुमने उलटा अर्थ लगाया है, इसके लिए मैं तुम्हें दोष नहीं देता। यह मेरी निर्बुद्धिताका ही दोष है। तुम्हारी समस्यासे मेरा मतलब हम दोनोंकी समस्यासे था। मैं बहुत दिनोंसे यह सोच रहा हूं कि इस मकानमें तुम्हारा रहना अब किसी प्रकार भी नहीं हो सकता। हम दोनोंको बनारस छोड़कर कहीं दूसरी जगह जाना होगा।"

शान्ति अब संभलकर बैठ गयी थी। मेरी बात सुनकर उत्सुक होकर बोली—"कहां जानेका विचार है?"

"तुम्हीं बताओ, कहां जाना चाहिए?"

"मेरे लिए तो अब कालके घर भी ठौर नहीं है। मैं कहां बताऊं! फिर भी लखनऊमें मेरा एक भाई है, उसके पास जानेका विचार कर रही हूं।"

उसकी इस बातसे मेरे हृदयपर एक चोट-सी पहुंची। जिस रङ्गीन रोमान्सकी सुनहली कल्पनाके मधुर मोहसे मेरा मन आच्छन्न हो रहा था, वह टूटता हुआ दिखायी दिया। आज दो बार अपनी मूर्खतापूर्ण बातोंसे उसे रुला चुका था। बड़ी मुश्किलसे मनानेमें समर्थ हुआ था। इसलिए अपनी वास्तविक इच्छाको प्रकट करनेमें डर रहा था कि कहीं फिर अनजानमें कोई ऐसी उजड्ड बात न कह बैठूं जिससे वह फिर एक बार रोने लग जाय। फिर भी साहस बटोरकर बोला—"अगर मैं तुम्हें किसी दूसरी जगह ले चलूं तो क्या तुम्हें मेरे ऊपर विश्वास नहीं होगा? देखो, खूब सोच-समझकर ठीक-ठीक उत्तर देना, जिससे मेरे मनमें कोई शङ्का न रह जाय।"

वह कुछ भी असमञ्जसमें न पड़कर स्पष्ट शब्दोंमें बोली—"अविश्वासका तो कोई प्रश्न ही नहीं उठना चाहिए। पर विचारने योग्य बात तो यह है कि दूसरी जगह जानेका कोई उद्देश्य भी है या नहीं! मैं तो इसमें दोनोंकी बदनामीके सिवा कोई लाभ नहीं देखती हूं।"

उस दिन शान्तिने जिस ढंगकी बातें की थीं उसमें और आजकी बातमें कितना अन्तर था! तब क्या वह मुझे परखना चाहती थी कि मैं दृढ़-सङ्कल्पवाला आदमी हूं या नहीं?

मैंने कहा—"लाभ-हानि, नाम-बदनामका प्रश्न ही क्या दुनियामें अधिक महत्त्वपूर्ण है? आत्माका सच्चा आवेग क्या तुच्छ है? दो आत्माओंके स्वर्गीय सम्मिलनका कोई मूल्य नहीं है? दो प्यासे हृदयोंकी प्रेमाकांक्षा झूठी है?"

शान्ति मेरी बात सुनकर कुछ सकुचा गयी, पर क्षण-भरके लिए। दूसरे ही क्षणमें उसने अपनेको संभाल लिया और दृढ़, संयत कण्ठमें बोली—"वास्तविक प्रेमाकांक्षा कदापि झूठी नहीं हो सकती, पर प्रश्न है अधिकारी और अनधिकारी-का। क्या हम लोग वास्तवमें इसके अधिकारी हैं?"

उसके इस प्रश्नसे मुझे अत्यन्त आश्चर्य हुआ। मेरे लिए इस बातका अनुमान लगाना बड़ा कठिन हो गया कि उसकी झिझक कहांपर है। मैं स्पष्ट ही देख रहा था कि मेरी इतने दिनोंकी अनुपस्थितिमें मेरे सम्बन्धमें एक प्रकारका अविश्वास उसके मनमें उत्पन्न हो गया था। घोर सङ्कट, चरम परीक्षाके समय स्त्री किसी पुरुषके ऊपर पूर्णतया निर्भर करनेके पहले अपने गुप्त संस्कारके वश उसकी जिस विशेष योग्यता, जिन विशेष गुणोंको परखना चाहती है, मुझमें शायद वह उसका अभाव-सा मालूम करने लगी थी। इसी कारण उसकी यह द्विविधा थी।

अत्यन्त व्यथित होकर मैंने कहा—"तुम आज यह कैसे अनोखे ढंगकी बातें कर रही हो, शान्ति? तुम्हारे अविश्वास और सन्देहका कारण मैं तो कुछ भी मालूम नहीं कर पाता!"

अवज्ञाकी रूखी हंसीसे मेरी बात उड़ाकर, वेदना-म्लान दृष्टिसे शान्ति बोली—"जो आदमी मेरी स्थितिसे भली भांति परिचित होनेपर भी इतने दिनों तक मुझे अकेली छोड़ सकता है, इस बातकी खबर तक लेना भी उचित नहीं समझता कि मैं जीती हूं या मर गयी हूं, उसके प्रति अगर अविश्वास-का भाव बढ़ने लगे तो आश्चर्य ही क्या है!"

शान्तिके इस मार्मिक व्यङ्ग तथा रुखाईसे उसके प्रति मेरा हृदयावेग दुगना बढ़ गया। रही-सही द्विविधा भी मेरे मनसे जाती रही और मन-ही-मन यह निश्चय करके कि इस दुःखिनी स्त्रीके जीवनसे अपना जीवन जड़ित करके मृत्यु-पर्यन्त उसकी रक्षा करता रहूंगा, मैं इस उन्मादक भावनाके नशेसे उत्तेजित हो उठा।

उमङ्गके साथ बोला—"देखो शान्ति, मैं तुमसे पहले भी क्षमा मांग चुका हूं, फिर मांगता हूं। मैं आज तक तुम्हारे पास क्यों नहीं आया, तुम्हें समझानेपर भी तुम इसका कारण नहीं समझोगी। इसलिए उस सम्बन्धमें अब अधिक विवाद वृथा है। अगर तुमने मुझमें कभी कुछ भी मनुष्यत्व पाया हो तो उसे साक्षी करके कहता हूं कि मैं पूर्ण रूपसे तुम्हारी इच्छाके अधिकारमें हो चुका हूं। इसलिए तुम्हारा यह अविश्वास, तुम्हारी यह रुखाई अत्यन्त निष्ठुरतासे मेरा कलेजा चीरे डालती है।"

मेरे कण्ठस्वरकी सहृदयतासे शान्तिको कुछ आश्वासन-सा मिला। उसके चेहरेका रूखा भाव धीरे-धीरे बदलने लगा और उसके हृदयका स्वाभाविक मधुर रस उसकी आंखोंमें फिर एक बार छलक उठा। मैंने एक लम्बी सांस ली।

उसने सलज्ज दृष्टिसे पूछा—"तुम क्या विचार कर रहे हो? मुझसे कहां चलनेको कहते हो?"

"मेरी तो यह राय है कि कुछ दिन निरुद्देश्य भ्रमण किया जाय। उसके बाद जहां तुम्हारा मन लगेगा वहीं स्थायी

रुपसे रहेंगे। इस समय हम दोनोंका मन डांवाडोल है, इसलिए यहां बैठे-बैठे कुछ भी निश्चय नहीं किया जा सकता कि कहां जायंगे, कैसे रहेंगे, क्या करेंगे। इस समय मुख्य चिन्ता तो यह होनी चाहिए कि जितनी जल्दी हो सके बनारस छोड़ दें।"

शान्ति कुछ देर चुप रही। फिर एका-एक उत्तेजित होकर बोली—"चलना हो तो फिर देर काहेकी! आज रात ही क्यों न चल दिया जाय!" एक अस्वाभाविक उद्दीप्तिसे उसका मुख चमक रहा था। मैं देखकर चकित रह गया।

घबराकर बोला—"आज तो मैं तैयार होकर नहीं आया हूं। इस समय रुपये भी मेरे पास नहीं हैं। कल बैङ्कसे रुपये लेने होंगे।"

शान्तिने व्याकुल होकर कहा—"इस असमञ्जसकी स्थितिमें मुझे एक-एक मिनट युगके बराबर जान पड़ने लगा है। आजकी लम्बी रात कैसे कटेगी, यही सोच रही हूं!"

"जहां इतने दिन कट गये हैं, वहां एक रात और भी कट जायगी। कोई चिन्ताकी बात नहीं है। कल मैं तैयार होकर आऊंगा। उसके बाद जहां भगवान्‌की इच्छा होगी वहींका टिकट कटाकर चल पड़ेंगे। इस समय देर हो गयी है, मैं जाता हूं।"

"तुम्हारा क्या भरोसा कि कल आओगे! पिछली बार भी तो तुमने कहा था कि जल्दी आऊंगा!"

"नहीं शान्ति, अब वह बात नहीं रही। अबकी तो बात ही दूसरी है। आज रात तुम निश्चिन्त होकर सोना। खानेका क्या बन्दोबस्त है? कहो तो बाजारसे पूड़ियां ला दूं?"

"नहीं, मुझे इस वक्त बिलकुल भूख नहीं है। कुछ खाया न जायगा।"

मैंने कहा—"यह न होगा। मेरे पीछे तुम भले ही भूखी रहो, पर सारी स्थितिसे परिचित होनेपर मैं अपने सामने तुम्हें इस दशामें छोड़ नहीं सकता। सुना है कि आज तक बनियेके यहांसे तुम जिनस उधार मंगाती थीं, अब वह भी उधार नहीं देता।"

आश्चर्यसे शान्तिने पूछा—"किसने तुमसे यह बात कही?"

"रामरतनने।"

"झूठ कहता है! मैंने कभी जिनस उधार नहीं मंगायी। बराबर नकद पैसे दिये हैं। हां, इधर दो एक दिनसे अब कुछ नहीं मंगाती।"

"कुछ भी हो, इस समय मैं बाजारसे पूड़ियां ले आता हूं। बहुत जल्दी लौटकर आता हूं, तुम बैठी रहो।"

शान्ति मना करती रही, पर मैंने एक न सुनी और बाजारकी ओर चल दिया।

इक्कीसवां परिच्छेद

जब बाहर आया तो हृदयमें एक प्रकारका अप्राकृतिक हर्षोल्लास समाया हुआ था, यद्यपि एक कोनेमें एक अज्ञात भय-जनित तीव्र धड़कन भी जारी थी। विलायतके "नाइट" लोगोंकी तरह मेरा मनोभाव हो रहा था, और मनमें ऐसा अनुभव कर रहा था कि एक योग्य महिलाके प्रेमके कारण मैं अपने भावी जीवनकी महत्त्वाकांक्षाओंको तिलाञ्जलि देकर महान् त्याग कर रहा हूं। इस भावनाके कारण मैं एक अपूर्व गर्वसे स्फीत हो रहा था।

एक दूकानपर जाकर गरमागरम पूड़ियां तुलवायीं और कुछ मिठाई भी लेकर वापस चला आया। अभी तक न तो रामरतन ही आया था, न कमलकुमारी। शान्ति अकेली दुबककर बैठी थी। मुझे देखकर बोली—"मैं तो अकेलेमें डरके मारे थरथरा रही थी!"

मैं मुसकराया। वह भी अपने सहज, स्निग्ध, मधुर हास्यसे मुसकरायी। कैसी प्यारी, कैसी भोली उसकी चितवन थी! मेरे मर्ममें एक अनोखी वेदना लहराने लगी, साथ ही एक आतङ्क भी छा रहा था। मैं ऐसा अनुभव कर रहा था कि भीतर-ही-भीतर उसकी हत्याका षड्यन्त्र रच रहा हूं।

शान्तिने कहा—"इतनी मिठाई, इतनी पूड़ियां किसके लिए ले आये? मैं तो इसका आधा भी न खाऊंगी! तुम भी खाओ!"

"नहीं, इस समय मुझसे न खाया जायगा। मैं होस्टलमें जाकर ही खाऊंगा। तुम खाओ।"

"तुम्हें खाना पड़ेगा!" यह कहकर वह उठी और जाकर बाहरकी तरफका दरवाजा, जिसे मैं इरादतन खुला छोड़ आया था, बन्द करने लगी।

मैंने घबराकर कहा—"यह क्या करती हो ! इसे खुला ही रहने दो न !"

"न !" कहकर मेरी बात तुच्छ करके, एक हठीली लड़कीकी तरह उसने आखिर दरवाजा बन्द कर ही दिया और भीतरसे चिटखनी लगा दी। मैं भयभीत हो उठा। वह आकर कुर्सीपर बैठ गयी। इस समय चिन्ताका लेश भी उसके शान्त तथा प्रसन्न मुखमण्डलमें वर्तमान नहीं था। निष्पाप बालिकाकी तरह निष्कपट दुष्टता उसकी चञ्चल आंखोंमें झलक रही थी। उसके सिरपरसे साड़ी नीचेको खिसक गयी थी, अथवा उसने इरादतन, जानबूझकर खिसका दी थी। आज कुछ देर पहले जो व्यथित, म्लानभाव उसके मुखमें देखा था, उसमें और इस समयके भावमें कितना अन्तर था !

मैंने कहा—"तुम जिद्द करती हो तो मैं जाता हूं !" यह कहकर मैं उसे डरानेके लिए सचमुच उठने लगा।

उसने मेरा हाथ जोरसे पकड़ लिया और बोली—"मैं तुम्हें जाने न दूंगी, कैसे जाते हो, जरा देखूं !" यह कहकर वह अनोखे, दुष्टताजनित हास्यसे मुसकराने लगी।

लाचार होकर मुझे बैठना पड़ा। पर कलेजा धड़क रहा था।

वह मुझसे खानेकी जिद करने लगी। मैंने कितना इनकार किया, पर वह न मानी। बोली—"नहीं तो मैं भी न खाऊंगी।"

लाचार होकर मैंने एक टुकड़ा मिठाईका उठा लिया और धीरे-धीरे चूहेकी तरह दांतसे कुतर-कुतरकर खाने लगा।

शान्तिने दो-एक पूड़ियां खायी होंगी कि बाहरसे दरवाजा खटखटानेकी आवाज आयी। जिस बातका डर था, वही हुआ।

मैं स्तब्ध बैठा रहा। शान्तिने जाकर दरवाजा खोला। जिस व्यक्तिने प्रवेश किया वह रामरतन नहीं, कमलकुमारी थीं। मेरी अजीब हालत थी। शान्तिका सिर अभी तक वैसा ही नङ्गा था। कमलकुमारीने एक बार हिंस दृष्टिसे उसकी ओर देखा, एक बार मेरी ओर। मेजपर पड़ी हुई मिठाई-पूड़ियों पर भी वही क्रूर दृष्टि फिरायी। फिर सीधे भीतर चली गयीं। भीतर जाकर रामरतनको पुकारने लगीं। कई बार पुकारा। जब कोई उत्तर न मिला तो बड़बड़ाने लगीं। उनका बड़बड़ाना बाहरके कमरेमें स्पष्ट सुनायी दे रहा था। इसके बाद ऊंचे स्वरमें मकानकी दीवारोंको सुनाकर कहने लगीं—"निगोड़ेकी रखवालीमें सारा घर छोड़के जाती हूं, मुआ दिनभर बाहर गायब रहता है। इधर रण्डी-भड़वोंके मारे नाकमें दम है। आधी-आधी रात तक बेहयाईसे बाज नहीं आते। इन बेशरमोंके लिए क्या एक यही मकान रह गया है ! चुल्लू-भर पानीमें डूब नहीं मरते !"

मुझे जैसे काठ मार गया हो। स्तब्ध निश्चलावस्थामें सन्न बैठा रहा। शान्तिने कहा—"सुनते हो ! इस हालतमें अब मैं कैसे एक क्षण भी यहां रह सकती हूं ! नहीं, मुझे आज ही ले चलो ! अभी !"

मुझे उसपर बेतरह गुस्सा आ रहा था। उसीके हठके कारण ये सब बातें सुननी पड़ी थीं। तिसपर उसे इतना धैर्य नहीं कि एक रात किसी तरहसे और काट ले। बड़ी विकट समस्या उसने मेरे सामने उपस्थित कर दी।

मैंने कहा—"अभी कैसे ले चलूं। आजकी रात किसी तरह काटो, कल सवेरे सब ठीक हो जायगा। बिना रुपयेका बन्दोबस्त किये क्या फकीरोंकी तरह भीख मांगकर फिरनेका इरादा है ?"

वह हठपूर्वक बोली—"कुछ भी हो, इस मकानमें तो मैं आज रात किसी प्रकार न रहूंगी, गलेमें फांसी लगाकर मर जाऊंगी, बनारसमें ही आज रहना है तो किसी दूसरे मकानमें मुझे ले चलो। कालका घर भी यहांसे अच्छा।"

मैं परेशान था। उसकी स्थितिकी विकटताका भी अनुभव कर रहा था, पर क्रोध भी आता था। अन्तको लाचार होकर बोला—"अच्छी बात है। तैयार हो जाओ। अपना कपड़ा-बिस्तरा संभालकर रख लो।"

मेरी बात सुनकर शान्तिका चेहरा जगमगा उठा। अत्यन्त प्रसन्न होकर वह उठ बैठी और बेझिझक भीतर जाकर अपनी चीजें संभालकर रखने लगी। मैं भी भीतर जाकर उसे सहायता देने लगा। वह एक बक्समें कपड़े सजाकर रखने लगी और मैं उसका बिस्तरा बांधने लगा। एक दरी, एक गद्दा, एक लिहाफ, एक कम्बल, एक चादर, एक कौण्टरपेन तथा एक तकिया—कुल इतनी चीजें बांधनी थीं। किसी तरह जल्दी-जल्दी लपेटकर बांधा। शान्ति जब कपड़े बदलकर बक्स बन्द कर चुकी तो मैंने कहा—"चलो !"

कमलकुमारी बगलवाले कमरेमें थीं। शान्ति उनके पास जाकर अत्यन्त नम्रतापूर्वक, स्वाभाविकतासे बोली—"जीजी, जो कुछ अपराध मुझसे हुआ हो, क्षमा करना! जा रही हूं। अब यह काला मुंह फिर कभी तुम्हें न दिखाऊंगी।"

मैं कमलकुमारीके कमरेके बाहर आड़में खड़े रहकर उत्सुकतापूर्वक भीतरकी ओर झांक रहा था। कमलकुमारीका मुंह शान्तिकी बात सुनकर विस्मय अथवा भयसे एकदम फीका पड़ गया। लालटेनके अस्पष्ट प्रकाशमें भी मैं स्पष्ट उनके मुंहमें उड़नेवाली हवाइयां देख रहा था। शान्ति इतनी जल्दी ऐसा दुस्साहसिक निश्चय करेगी, यह बात उनकी कल्पनाके अतीत थी। शान्तिने उन्हें प्रणाम किया, पर वह न तो एक शब्द बोलीं, न प्रत्याभिवादन ही किया।

बाहर जाकर कुलीको बुला लानेका समय मेरे पास न था। रामरतन भी अभी तक न आया था। मैंने एक हाथमें बिस्तरा पकड़ा, एकमें बक्स। शान्ति दियासलाई जलाकर अन्धकार सीढ़ियोंका रास्ता दिखाने लगी। बड़ी मुश्किलसे हम लोग नीचे पहुंचे। सामान एक कुलीके हवालेकर बड़े रास्तेपर जाकर एक तांगा किया और एक खास धर्मशालेका नाम बताकर तांगेवालेसे वहां ले चलनेको कहा।

धर्मशालेमें पहुंचकर जब वहांके प्रबन्धकसे मिला और एक अच्छे कमरेका प्रबन्ध कर देनेकी प्रार्थना उससे की, तो वह टालमटोल करने लगा। अर्थात् उसने अस्पष्ट भाषामें यह भाव जताना चाहा कि मुफ्तमें रहनेके लिए यहां कोई कमरा खाली नहीं है। मैं उसका आशय तत्काल समझ गया। असमयमें हम लोग आये थे। हमारी गरज़ देखकर ही उसने यह भाव दिखाया था। मैंने उसे यथेष्ट किराया देनेकी प्रतिज्ञा की। वह प्रसन्नतासे दांत दिखाता हुआ उठ खड़ा हुआ और ऊपर एक कमरेमें ले गया। बत्ती जलानेपर देखा कि सारा कमरा कूड़ेसे भरा है। एक आदमी बुहारी देनेके लिए बुलाया। बुहारी हो जानेपर खाटका बन्दोबस्त करना पड़ा। एक रुपया खाटके लिए भाड़ा अलग तय हुआ। बिस्तरा खोलकर मैंने खाट पर बिछा दिया। पानीका एक घड़ा रखवा दिया। लोटा और गिलास शान्ति साथ ही लेती आयी थी। उसके रहनेका जब सब प्रबन्ध ठीक हो चुका तो मैंने कहा—"अब तुम आरामसे यहां सो जाओ। कल सबेरे मैं लौटकर आ पहुंचूंगा।"

शान्तिने अनमनी-सी होकर कहा—"यह तो सब ठीक हुआ, पर मैं इस अपरिचित स्थानमें रातको अकेली कैसे रहूंगी, यही सोचती हूं। मैं तो डरके मारे अकड़कर रात हीमें मर जाऊंगी, सुबह मेरी खबर लेकर क्या करोगे!"

उसकी स्थिति मैं खूब समझ रहा था, पर मेरी स्थिति भी कम विकट नहीं थी। कैसे इस समस्याका समाधान हो, यह बात हम दोनोंमेंसे कोई भी निश्चित रूपसे नहीं समझ पाता था।

मैंने कहा—"तो तुम्हीं बताओ न, कि क्या करूं!"

शान्ति कुछ देर तक चुप बैठी सोचती रही। फिर दबी हुई जबानमें बोली—"तुम भी अगर एक खाट मंगाकर यहीं लगा लो तो कैसा हो!" मैं घबरा उठा। उसने मुझपर विश्वास करके ही ऐसा कहनेका साहस किया था, सन्देह नहीं; पर मैं यथार्थमें कायर था। इस दुस्साहसके योग्य मैं अपनेको नहीं पाता था। साथ ही यह भी सोच रहा था कि जब उसकी रक्षाका पूरा भार मैंने अपने ऊपर ले लिया है और कल उसे निरुद्देश्य अपने साथ ले चलनेका इरादा कर रहा हूं, तो इस प्रकार लौकिकताका ख्याल रखकर चलना केवल मूर्खता है। फिर भी मनमें अभी यथेष्ट दुर्बलता वर्तमान थी। सोचने लगा कि किया क्या जाय? उसे उस हालतमें अकेली छोड़ना भी वास्तवमें अन्याय था। घोर असमञ्जसमें पड़कर अन्तको मैंने शान्तिसे ही पूछा—"तुम्हीं बताओ, शान्ति, क्या मेरा इस कमरेमें सोना लौकिक, धार्मिक, किसी भी दृष्टिसे उचित है?"

पर शान्ति पहले ही अपने मनमें इस शङ्काका समाधान कर चुकी थी। इसलिए मेरे प्रश्नसे कुछ भी व्यतिव्यस्त न होकर वह स्वाभाविकतापूर्वक बोली—"सङ्कटके समय लौकिक नियमोंका पालन मैं अपरिहार्य नहीं समझती। धार्मिक दृष्टिसे मेरा तुमपर पूर्ण विश्वास है।"

पर मुझे अपने ऊपर विश्वास नहीं था। इसलिए भय तथा द्विविधाके कारण अस्थिर हो रहा था और चित्त डांवाडोल था। कोई अन्य गति जब नजर न आयी तो मैं समझ गया कि मुझे हर सूरत आज इसी कमरेमें रात बितानी पड़ेगी और यमयातना अनिवार्य है। अतः खाटका प्रबन्ध करनेके लिए नीचे गया। पर मालूम हुआ कि अब कोई खाट शेष नहीं रही। ऊपरसे नीचे जाने और फिर वापस आनेमें मुझे

मुश्किलसे तीन मिनट लगे होंगे। पर इतनी ही देरमें शान्तिका बुरा हाल हो गया था। उसके चेहरेपर घबराहटके चिन्ह स्पष्ट दिखायी देते थे। हांफती हुई बोली—"अभी एक आदमी हमारे कमरेके दरवाजेपर खड़े होकर मेरी ओर घूर रहा था। मैं डर गयी कि कहीं मेरा गला न दबा दे! मैंने सुना है कि धर्मशालोंमें बड़े चोर रहते हैं, और बदमाश, गुण्डे भी।"

मैं ठठाकर हंस पड़ा। बोला—"गांवकी पर्दानशीन औरतें भी इतना नहीं घबरातीं। तुम शहरमें रहनेवाली एक शिक्षिता महिला होनेपर भी इस कदर डरती हो!"

"प्राण तो सबके समान होते हैं, शिक्षिता हो चाहे अशिक्षिता! खाट मिली?"

"नहीं। पर जब मुझे यहां सोना ही पड़ेगा तो खाट और फर्शमें कोई विशेष अन्तर मैं नहीं समझता। दरी और कम्बल मुझे दे दो। दरी बिछाऊंगा, कम्बल ओढ़ूंगा, इससे मेरा काम चल जायगा।"

शान्तिने घबराकर कहा—"यह कैसे हो सकता है! ठण्डसे अकड़ जाओगे!"

"दूसरा उपाय ही क्या है!"

"तुम खाटपर सोओ, मैं नीचे सोऊंगी।"

मैंने अवज्ञापूर्वक उसकी बात हंसीमें उड़ा दी। पर वह फिर जिद करने लगी। मैं एक तो योंही नाना दुर्भावनाओंके कारण परेशान था, तिसपर उसका यह अनावश्यक, असम्भव हठ देखकर बेतरह चिढ़ उठा। बिगड़कर बोला—"अगर तुम नाहक जिद करोगी तो मुझे उठकर यहांसे चले जाना पड़ेगा।"

मेरे इस कठोर आचरणसे शान्तिका मुख व्यथासे अत्यन्त म्लान हो आया। मैंने तत्काल कण्ठस्वर यथाशक्ति कोमल करके उसे दिलासा देते हुए कहा—"देखो शान्ति, एक तो मैं दिन-भरका थका हूं, तिसपर तुम व्यर्थका हठ कर रही हो। मेरी चिन्ता बिलकुल न करो। मैं बड़े आरामसे फर्शपर सोऊंगा। घोड़े बेचकर। मुझ जैसे फक्कड़ आदमीपर ऐसी छोटी-मोटी तकलीफोंका कोई असर नहीं पड़ सकता।" यह कहकर मैंने जाकर दरवाजा बन्द कर दिया। शान्तिसे दरी और कम्बल लेकर नीचे लेट गया।

शान्तिने लेटे-लेटे कहा—"कब तक फक्कड़ रहोगे? ब्याह कब करोगे? तुम्हारे घरवाले अभी तक इस सम्बन्धमें चुप क्यों हैं?"

मैंने कहा—"घरवालोंको क्या अधिकार कि वे मेरी इच्छाके विरुद्ध मेरे ब्याहकी तैयारी करें!"

"'मेरी इच्छाके विरुद्ध' का अर्थ मैं न समझी। क्या तुम सदा क्वांरे रहना चाहते हो?"

"इरादा तो यही है।"

"ऐसा इरादा करनेवाले लोग संसारमें इने-गिने ही होते हैं, जो किसी महान् आदर्शके पालन या प्रचारका व्रत लेनेके कारण ही ऐसा करते हैं। तुम्हारा कौन-सा महत् उद्देश्य है, मैं भी जरा सुन लूं!"

शान्तिके इस व्यङ्गमें क्या कुछ वेदना भरी थी? यह इसलिए कहता हूं कि उसकी आवाज अन्तको कुछ लड़खड़ाती हुई-सी प्रतीत हुई, यद्यपि उसने उसमें यथेष्ट स्वाभाविकता लानेकी चेष्टा की थी।

मैंने कहा—"अपना महत् उद्देश्य तुम्हारे आगे अभीसे खोलके अगर रख दूं तो उसका सारा महत्त्व जाता रहेगा, और, सम्भव है, वह बीच हीमें भ्रष्ट हो जाय। इसलिए मेरी बात रहने दो। पर अपने सम्बन्धमें तो कहो कि तुम किस उद्देश्यसे अभी तक क्वांरी बनी हो! जरा मैं भी तो सुन लूं!"

प्रश्नके रूपमें इस प्रकार पलटा जवाब पाकर शान्तिने स्पष्ट ही अच्छे विनोदका अनुभव किया। खिलखिलाती हुई आवाजमें बोली—"हटो! मुझसे ऐसा प्रश्न करते तुम्हें शरम नहीं मालूम होती!"

मेरा साहस बढ़ गया। मैंने कहा—"शरमकी एक ही कही! ऐसा कौन-सा बेजा प्रश्न मैंने किया है! मैं सच कहता हूं, शान्ति, मुझे बहुत दिनोंसे यह जाननेकी उत्सुकता है कि तुम इस अवस्था तक कैसे कुमारी रह गयीं, और अपने भावी जीवनके सम्बन्धमें तुम्हारी क्या धारणा है।"

शान्ति कुछ देर तक चुप रही। फिर अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक बोली—"एक दिन तुम्हें आपसे आप मालूम हो जायगा कि मैं क्यों जीवन-भर क्वांरी रहनेका इरादा करती हूं।"

मेरा सारा उत्साह पलभरमें ठण्डा पड़ गया। जैसे किसीने मेरे हृदय पर सद्य-विगलित बर्फका एक बड़ा डंडेल

दिया हो। अभी तक फर्शपर केवल एक दरीके ऊपर लेटकर, और इस जाड़ेके मौसममें भी केवल एक कम्बल ओढ़कर ही मैं काफी गरमी मालूम कर रहा था। पर शान्तिके इस एक वाक्यसे मैं थरथराने लगा और मालूम करने लगा कि एक कम्बल मेरे लिए यथेष्ट नहीं है। सातका अङ्क बनकर बिल्लीकी तरह दुबक गया। बहुत देर तक दोनों मौनावस्थामें स्तब्ध भावसे लेटे रहे।

शान्तिने ही पहले मौन भङ्ग किया। बोली—"क्या नींद आ गयी?"

मैंने कम्बलके भीतरसे ही कहा—"क्यों? क्या कुछ चाहिए?"

"बत्ती क्या जली रहेगी?"

"जबतक जलती है, जलने दो न! क्या हर्ज है!"

फिर निस्तब्धता छा गयी।

कुछ देर बाद वह फिर बोली—"मुझे डर लगता है!"

मैं रह न सका। झल्लाकर बोला—"दुत! बातें बनाती हो!"

वह खिलखिला पड़ी।

फिर तत्काल गम्भीर होकर बोली—"नहीं, सच कहती हूं। मुझे सचमुच आज बड़ा भय मालूम होता है। न जाने क्यों। रात-भर आज नींद नहीं आनेकी। मैं इसी चिन्तामें हूं कि हम लोग कहां जा रहे हैं, क्यों जा रहे हैं, और इसका परिणाम आगे क्या होगा। मैंने तो अपने सम्बन्धमें जो-कुछ निश्चय कर लिया है, उसके कारण निश्चिन्त हूं। पर मुझे तुम्हारी चिन्ता है। यूनिवर्सिटी छोड़कर तुम मेरे कारण अपने भावी जीवनके सुख और आशाओंको तिलाञ्जलि देनेपर तुले हुए हो। इसके लिए जीवन-भर तुम्हारी कृतज्ञ रहूंगी। पर तुम्हारे इस निःस्वार्थ-त्यागका मूल्य मेरी कृतज्ञतासे बहुत अधिक है, यह बात मैं अच्छी तरह जानती हूं; इसीलिए इतनी चिन्तित हूं।"

उसकी एक-एक बात बरफके गोलेकी तरह मेरे हृदयपर चोट मार रही थी। उसने अपने सम्बन्धमें क्या निश्चय कर रखा है, यह बात पूछनेका तनिक भी साहस नहीं होता था। और, पूछनेपर भी वह इस बातका कोई स्पष्ट उत्तर देगी, इसकी भी मुझे बिलकुल आशा न थी। मन-ही-मन कहने लगा—'हे नारी! तुम्हारा चरित्र पुरुषके लिए अगम, अगोचर, है, ज्ञानी लोग इस बातकी घोषणा बहुत पहले कर चुके हैं। ब्रह्मामें भी शक्ति नहीं कि तुम्हारे अन्तस्तलकी जटिल गुत्थियोंको सुलझा सके।' प्रकटमें बोला—"अब सोनेकी फिक्र करो। मेरे लिए चिन्ता करनेकी इस समय कोई आवश्यकता नहीं है। कल जल्दी उठना है।" यह कहकर मैं करवट बदलकर फिर एक बार अच्छी तरहसे कम्बल लपेटकर सोनेकी चेष्टा करने लगा। पर बहुत देर तक नींद न आयी। बीचमें कुछ देरके लिए आंख लगी, पर फिर ठण्ड और दुश्चिन्ताके कारण नींद उचट गयी। सारी रात बड़े कष्टमें बीती। आज उस दिनकी बात याद करके सोच रहा हूं कि वह कष्टकी रात ही क्या मेरे जीवनकी एकमात्र सुखकी न रात थी?

बाईसवां परिच्छेद

दूसरे दिन तड़के उठकर शान्तिके स्नानादिका प्रबन्ध करके उसके लिए बाजारसे पूड़ियां लाकर रख गया, और स्वयं अस्नातावस्थामें यूनिवर्सिटीको चलने लगा।

शान्तिने कहा—"मैं भी तुम्हारे साथ चलती हूं।"

मैंने कहा—"क्या बावली हुई हो! मेरे साथ यूनिवर्सिटी आकर क्या करोगी? सारे बनारसमें दोनोंकी ख्याति फैल जायगी। मैं अभी थोड़ी देरमें लौटकर चला आता हूं। तुम तब तक शान्त होकर बैठी रहो!"

पर वह बेतरह घबरायी हुई थी। कांपती हुई आवाजमें बोली—"अगर न लौटे! तो मेरी क्या दशा होगी! बापरे!" वह वास्तवमें कांपने लगी। उसकी आंखें सहसा छलछला आयीं और भीतरी-ही-भीतर न जाने किस कल्पनाके आवेगसे विह्वल होकर टप-टप आंसू गिराने लगी। उसने अञ्चलसे मुंह ढांप लिया।

अत्यन्त व्यथित होकर मैंने उसे दिलासा देते हुए कहा—"छी-छी, शान्ति! तुम्हारा यह कैसा आचरण है! तुम्हें अभी तक मेरे ऊपर विश्वास नहीं हुआ! अभी तक तुम मुझे समझी नहीं। कैसी असम्भव कल्पना तुम्हारे मनमें उत्पन्न हुई है! तुम्हारी आशङ्का कैसी निर्मूल है! कैसा अन्याय तुम मेरे ऊपर करती हो! ओह!"

वह सिसकते हुए बोली—"तुम्हारे ऊपर मेरा बिलकुल अविश्वास नहीं है। अपने खोटे भाग्यका ही मुझे खटका है। जन्म-जन्म तक मैं तुम्हारा ऋण नहीं भूलूंगी।" यह कहकर

उसने एका-एक अपने दोनों हाथोंसे मेरे पांव छू लिये। हड़-बड़ाकर मैंने पांव हटा लिये और पीछे हट गया। घबराकर बोला—"यह क्या ! यह क्या ! यह क्या करती हो, शान्ति ! तुम्हें हो क्या गया है ! क्यों मुझे अधिक लज्जित करती हो ! स्वप्नमें भी कभी मेरे सम्बन्धमें ऐसी धारणा न करना कि म तुम्हें किसी प्रकार कभी छोड़ूंगा। मुझे दुःख केवल इसी बातका है कि तुम मुझे अभी तक न समझ पायीं। यह दुःख कितना बड़ा है, समझाने पर भी तुम न समझोगी। कुछ भी हो, मैं तुमसे प्रार्थना करता हूं कि तुम कुछ देर निश्चिन्त होकर यहां चुपचाप बैठी रहो, मैं अभी आया। अगर मेरे लौटनेमें कुछ देर हो भी गयी, तो भी तुम्हें घबराना न चाहिए। मैं सीधे होस्टल जाऊंगा। वहांसे बिस्तरा और बक्स उठाकर बैंक जाना होगा। वहांसे रुपये लेकर फौरन् यहां चला आऊंगा। बोलो, तुम्हारी क्या राय है ? जाऊं ?"

शान्तिने अञ्चलसे आंखें पोंछते हुए कहा—"जाओ।"

"तुम घबराओगी तो नहीं ?"

उसने उसी प्रकार विगलित स्वरमें उत्तर दिया—"नहीं।"

मैंने कहा—"तुम्हारी आवाज अबतक कांप रही है। मुझे तो इस हालत में तुम्हें छोड़कर जानेका साहस नहीं होता।" यह कहकर मैं निराश दशामें फर्शपर पलथी मारकर बैठ गया।

शान्ति संभलकर बैठ गयी। शान्त होकर बोली—"नहीं नहीं, तुम जाओ, देर न करो। जाकर" जल्दी आना। मुझे अब ढाढ़स हो गया है। अब चिन्ता न करो।"

फिर-फिर उसे समझा-बुझाकर बाहर चला आया। पर उसकी वही आर्त, करुण मूर्ति, वही विह्वल, व्याकुल आंखें बहुत देरतक मेरे हृदय पर, मस्तिष्क पर नाचती रहीं। सोच-सोचकर मेरा हृदय भाव-गद्गद हो आया और बलात् आंखें भर आयीं। इच्छा होती थी कि सिसक-सिसककर, जी भर-कर रो लूं। रूमालसे आंखें पोंछीं और एक तांगेपर चढ़ बैठा, शायद आज किसी पर्वका दिन था। दशाश्वमेध पर गङ्गा स्नानार्थी स्त्री-पुरुषोंकी खासी भीड़ थी। बङ्गालिनें अपने सदाम केशोंकी बहार दिखाती हुई, 'आछे-जाछे' बोलती हुई बड़ी हड़बड़ी दिखा रही थीं। मेरा तांगा जब भीड़से हटकर आगे खुली हवामें निकल आया तो मुझे अपनी स्थितिपर एक बार भली भांति विचार करनेका अवकाश मिला। आकाश-पातालकी अनेकानेक सम्भव-असम्भव, उद्भट, अनोखी कल्पनायें मेरे मस्तिष्कपर उछल-कूद मचाने लगीं। शान्तिको कहां ले चलना चाहिए, उसका सारा भार अपने ऊपर लेकर मैंने उचित किया है या नहीं, कब तक उसे निभा सकूंगा, कहां तक मैं इस दुस्साहसका अधिकारी हूं, आदि बहुत-सी बातोंपर विचार करनेकी चेष्टा करने लगा। पर किसी एकका भी ठीक उत्तर नहीं मिलता था। केवल रह-रहकर उसकी वह वेदना-विभोर, करुण-कातर छवि आंखोंके आगे भासमान हो रही थी। और, जितना ही उसका चिन्तन करता था, उतना ही हृदय भर-भर आता था, और आंखें छलछला उठती थीं। मन-ही-मन कहने लगा—"शान्ति, प्यारी शान्ति, किस क्रान्त-कोमल मायासे तुमने मेरा वज्र-कठोर हृदय पिघलाकर ऐसा कुसुम-सुकुमार, वेदनाशील बना डाला है !" मैं कभी ऐसा न था, कभी अपने पिछले जीवनमें एक बूंद आंसू भी मैंने किसी भी कारणसे नहीं बहाया था। जब पिताजीकी मृत्यु हुई थी, मेरी अवस्था उस समय पन्द्रह सालसे अधिक न थी। उनके मरनेपर मुझे जो दुःख हुआ, उसका वर्णन नहीं कर सकता, और ऐसा होना स्वाभाविक भी था। पर, न मालूम क्यों, मुझे किसी प्रकार भी रोना न आया। छोटे भैया, यहांतक कि बड़े भैया भी रोये; पर मैं पत्थरकी तरह जड़ बना रहा। आज यह हालत थी कि एक स्त्रीकी करुण दशाके स्मरण-मात्रसे हृदय उमड़-उमड़ पड़ता था, और गङ्गाकी उद्वेल तरङ्गोंकी तरह पछाड़ खाना चाहता था। मैं जानता हूं कि लोग मुझे भावुक कहकर तिरस्कृत करेंगे। करें। इसके वे पूरे अधिकारी हैं। पर मैं केवल इतना ही कहनेकी धृष्टता करता हूं कि स्थिति-विशेषके फेरमें पड़नेपर वीर-से-वीर पुरुष भी भावुक बन जाता है। और इस भावुक-तामें कितना स्वाद है ! जिसे इसका अनुभव ही नहीं हुआ है, उस व्यक्तिको इसका आनन्द कैसे समझाया जा सकता है !

होस्टल पहुंचनेपर उमापतिको इस बातकी कैफियत देनी पड़ी कि रात कहां गायब रहा। टालमटोलकी बातें करके किसी तरह उससे पिण्ड छुड़ाया। पर अपने साथियोंके सामने अपना बोरिया-बंधना कैसे उठा ले जाऊं, यह समस्या मेरे लिए विकट हो उठी। इस प्रकार एका-एक बिना किसी पूर्व

सूचनाके होस्टल छोड़कर सदाके लिए चले जाना कोई आसान काम नहीं था। इससे एक तो उन लोगोंको आश्चर्य होता, दूसरे उनके मनका सन्देह बढ़ता, तीसरे वे लोग अवश्य मुझे स्टेशन तक पहुंचानेकी जिद करते। मैं बड़ी द्विविधामें पड़ गया। अन्तको वे लोग अपने-अपने क्लासोंमें उपस्थिति देनेके लिए जानेको तैयार हुए। उमापति मेरे ही साथ रहकर दिन-भर गप्पें उड़ानेकी इच्छा-सी प्रकट कर रहा था। पर मैंने यह कहकर टाल दिया कि मुझे बुखार आ रहा है और मैं एकान्तमें लेटे रहना चाहता हूं। फलतः वह भी निराश होकर चल दिया। उन सबके चले जानेपर मैंने अपनी सभी छोटी-मोटी चीजें और कपड़े-लत्ते बक्समें संभालकर रखे और बिस्तरा होलडालमें बांधा। एक तांगा ले आया और उसमें आसबाब लाद दिया। कमरा बन्द करके, चाबी अपने परिचित किसी एक मेसके महाराजको दे दी। डुप्लीकेट उमादत्तके पास थी।

इसके बाद बैङ्कमें जाकर रुपये लेनेमें भी काफी देर हो गयी। मनमें धड़का लगा था कि शान्तिके प्राण उड़ रहे होंगे। खैर, किसी तरह जब सुरक्षितावस्थामें शान्तिके पास लौटकर पहुंचा और उसे जीता पाया तो एक आरामकी सांस ली। शान्ति मुझे देखकर जिस अपार हर्षके कारण उछल पड़ी उसका वर्णन नहीं हो सकता। खाटपरसे उठकर मेरे स्वागतके लिए उठ खड़ी हुई और आनन्दोज्वल मुखपर उल्लास-की दीप्ति झलकाकर उसने मेरा हाथ पकड़ लिया। मुझे ऐसा भास हुआ कि वह अपने आपेमें नहीं है। उसका यह उल्लास अस्वाभाविक-सा जान पड़ा।

जब शान्ति स्थिर हुई तो उसने कहा—"अब निश्चय कर लो कि कहां चलना होगा।"

मैंने कहा—"तुम्हीं बताओ। कहां ठीक रहेगा। सोचो।"

"अब मैं सोचनेका कष्ट अधिक न उठाऊंगी। तुम तैयार होकर आ गये हो, बस। अब चाहे कहीं चलो, चाहे न चलो, मैं हर हालतमें राजी हूं।"

मैं मुसकराने लगा। मैंने बहुत सोचा। बनारसके बाद मुझे इलाहाबाद ही एक ऐसी जगह मालूम दी जहां मैं गङ्गा-यमुना सङ्गमकी विस्तृत शोभा देख-देखकर कुछ दिन स्वच्छन्दतापूर्वक बिता सकता था। बोला—"चलो, तुम्हें प्रयागमें सङ्गमके दर्शन और स्नान कराऊं।"

वह खिलखिला पड़ी। बोली—"तुम्हारी गङ्गाजी मेरे स्नानसे अशुद्ध हो जायंगी, इसकी भी कुछ खबर है!"

मैंने अत्यन्त गम्भीरता तथा सहृदयतापूर्वक कहा—"मैं उल्टा गङ्गाजीको तुम्हारे पवित्र स्पर्शसे शुद्ध कराना चाहता हूं।"

मेरी बातमें शान्तिके प्रति आन्तरिक श्रद्धा टपकती थी। आज पहली मर्तबा भावावेगमें मैंने उसके प्रति यह भाव व्यक्त किया था। इसलिए वह कुछ देर तक आश्चर्य-चकित, स्तम्भित तथा विह्वल-सी रह गयी।

* * *

स्टेशन पहुंचकर ड्योढ़ेका टिकट लिया। प्रायः चार बजे गाड़ी आयी। गाड़ी लदी हुई आयी थी, पर स्टेशनपर बहुत-से यात्री उतर गये। एक सुभीतेका डिब्बा मिल गया। दोनों चढ़ बैठे। शान्तिके लिए एक बर्थमें बिस्तरा बिछाकर फैला दिया। वह आरामसे बैठ गयी। इञ्जनने सीटी दी। बनारसके विद्यार्थी-जीवनको मैंने सदाके लिए प्रणाम किया। गाड़ी चलने लगी।

क्रमशः

दाना खिरमन है हमें, कतरा है दरिया हमको,
जुजमें आता है नजर कुलका तमाशा हमको।

इन भारतीय छात्रोंसे अपना पिण्ड कैसे छुड़ाया जाये? मैं इस उलझनमें फंसा था। दुर्भाग्यकी बात तो यह थी कि अब जाफर भी तुर्की-ब-तुर्की जवाब देने लगा था। मुझमें ताब नहीं कि इनमें किसीको चुप करा सकूं। इनमें इतनी ले-दे हो चुकी है तब भी इनमें यह गरमी है तो इनसे एक शब्द कहना बर्रोंके छत्तेमें हाथ डालना है। बहुत उधेड़बुनके बाद मुझे यही ठीक जंचा कि यहांसे उठ चलूं। मैंने वेटरको पुकारा कि दाम दूं; पर वह नदारद था। इतनेमें मार्टा बोली—"ओह! इन भलेमानसोंने कान खा लिये। हमसे कुछ दूर रहते तो क्या हानि थी। छी! छी!! मैं तो समझती थी कि सत्यानाशी दरिद्रताके कारण जर्मन संसारमें सबसे पतित हो गये होंगे, लेकिन अभी ऐसे धनी लोग भी हैं जो शिष्टाचारमें हमसे भी गिरे हुए हैं।" यह शब्द उन्हें जहरकी तरह लगे। शायद इस उद्धत छोकरीपर जबर्दस्त डांट पड़ती, पर वेटर आ गया और मैंने उससे बिल मांगा। वह हमारा हिसाब करने न पाया, क्योंकि मार्टाकी सखी फ्राउलाइन एलीजाबेथने बैरेको डांटा और कहा कि—"नहीं, अभी बिल मत दो। पहले इनको यहांसे बाहर करो।" इसपर हमारे इर्दगिर्द सनसनी फैल गयी। कई आवाजें एक साथ आयीं—"इनको धक्का देकर बाहर फेंको। ये गुण्डे हैं" आदि। कुछ नवयुवक कुरसियोंसे उठने भी लगे। लेकिन मैनेजरने नीतिसे काम लिया और वेटरोंने जि-जित्सुकी सफाई दिखायी। अकस्मात इनका हाथ मोड़ दिया और इन्हें बाहर घसीट ले गये। इन्हें सड़कपर छोड़ा और आप दरवाजेपर डट गये कि ये दङ्गाई फिर न घुसें। बला टली और दो-चार मिनटोंमें ही फिर काफेमें रंगकी तरङ्गे पूरे जोरसे लहराने लगीं। जाफर भी हममें खूब घुल-मिल गया। गपशपका बाजार गरम हो उठा और पता चला कि ऐसे अवसरपर यूरोपियन नवयुवक आपसमें द्वन्द्व युद्ध करके अपने अरमान निकालते हैं। किसीने दूसरेको गालीका एक शब्द कहा कि उसे द्वन्द्वयुद्धकी चुनौती मिल गयी। तिथि और समय नियत हो गया, मध्यस्थ चुन लिया गया और आपसमें लड़कर कजिया पाक कर देते हैं। ये लोग कर्मवीर हैं, इन्हें आत्म-सम्मानका गौरव है और ये समयका मूल्य पहचानते हैं, इसलिए घण्टों बकवास करना या लड़ते-झगड़ते रहना इनका स्वभाव नहीं है। मैं तो निश्चय न कर सका कि यह उपाय उत्तम है या अधम; किन्तु, इसमें अवश्य वक्त बरबाद नहीं होता। इसके अलावा यह वीरमार्ग है।

"देखो ! देखो !! इसे देखो !!!" मार्टाने अकचकाकर कहा और हम सबकी नजर उस युगल जोड़ीपर पड़ी जिसपर स्वयं मार्टाकी आंखें गड़ गयी थीं। एक नवयुवक और उसके बगलमें सुषमाकी आगार एक नवयुवती इठलाती और बल खाती हमारी ओर आ रही थी। दोनोंके चेहरोंसे खून बरस रहा था। उनके मुखकी चमक-दमक निराली थी। उनकी एक-एक डग बताती थी कि ये परम सौन्दर्यके मदसे चूर-चूर हो रहे थे। कपड़ोंकी सजधज और सुन्दरीके मणि-

एक प्रसिद्ध चित्रकारसे इस व्यंग चित्रमें दिखाया है कि विदेशियोंने अपने धनके बलसे किस प्रकार जर्मन नारीका सत्यानाशकर मौज उड़ायी।
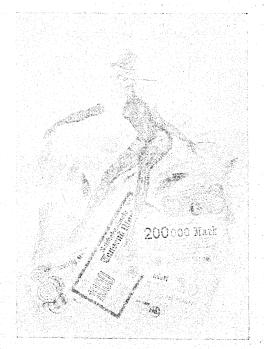
मुक्ता-खचित आभूषण बता रहे थे कि इनमें 'यौवन, धन-सम्पत्ति, प्रभुत्व और अविवेकता'का पूरा राज है। इनके जलजलेने इस महफिलमें फड़फड़ाहट मचा दी।

पायी खबर जो आमदे-फस्ले-बहारकी।
क्या फड़फड़ाके मुर्गे-गिरफ्तार रह गये॥

यद्यपि सबकी जबान बन्द थी, पर मनसे सब वाह ! वाह ! कर रहे थे। एक टेबलपर यह जोड़ा बठा और थोड़ी देरमें चांदीके बरफदानमें शराब आयी और ढलने लगी। अब-तक मार्टा आपेमें नहीं थी; अपनी सुध-बुध इन नवा-गन्तुकोंके अर्पण कर चुकी थी। अब वह सचेत हुई और बोली—"यह नाजनी हमारे बैरेकी जोरू है।" यह सुन जाफर बोला—"भाई वाह ! अच्छी जोड़ी बनी है। कहां वह नौज-वान परी और कहां यह बूढ़ा खूसट, जिसके चेहरेपर सौ झुर्रियां पड़ गयी हैं। यह तो किसी किरोड़ीमलकी लड़की होगी जो यों गुलछर्रे उड़ाती है।" इसपर मार्टाने एक करुणा-विगलित दुःखान्त कहानी सुना दी।—जो बैरा हमारी खिदमतमें तैनात है वह प्रसिद्ध चित्रकार क० है। युद्धसे पहले उसकी संसारमें धाक थी। आय भी यथेष्ट थी। स्वयं कैसरने उससे अपना रङ्गीन चित्र बनवाया। जर्मनीके सभी नामी चित्रागारोंमें इसकी प्रतिभाके नमूने संग्रह किये गये हैं। १९१८ तक यह लखपती था। इसकी अपनी कोठियां थीं जिनमें संसारकी कलाके उत्कृष्ट नमूने जमा किये गये थे। बैङ्कमें भी रुपया जमा था। अपनी मोटर थी। सभी सुखसाधन मौजूद थे और किसी बातकी चिन्ता न थी। इसका विवाह भी एक सम्पन्न और सम्भ्रान्त कुलमें हुआ। तीन बरस पहले तक पति-पत्नीमें अपार प्रेम था। एक दूसरेपर प्राण देते थे। इनके एक लड़की और दो पुत्र थे। हृष्ट-पुष्ट और सांचेमें ढले हुए। एक पुत्रको पिताने गलतीसे दवाके बदले अपने हाथों विष दे दिया। जब पुत्र छटपटाने लगा तो उसे अपने किये हुए अनर्थका पता चला। कई विशेषज्ञ बुलाये गये,पर मौतका पैगाम पहुंच चुका था। लाख कोशिश की गयी लेकिन किसीकी एक न चली। उस दिनसे इस दम्पतिमें सुलह न हुई। कुछ समय बाद बर्लिनमें विप्लव हुआ और दूसरे लड़केको न मालूम कैसे गोली लगी। वह चलता-फिरता चल बसा। एक लड़की रह गयी। वह बोर्डिंग हाउसमें रहती थी। इसलिए पत्नीको अपनी सून-सान हवेली काट खानेको दौड़ने लगी। युद्धके बाद मार्क गिरने लगा। इससे बैङ्कका रुपया चौपट हो गया। अपने दोनों बच्चोंकी स्मृतिमें उसने एक मकान शिक्षा-विभागको दान दे दिया। इसमें अनाथ छात्रोंके रहनेका प्रबन्ध है। वर्तमान सङ्कटमें इसे दूसरा घर भी बेचना पड़ा। कुछ दिन बाद पत्नीने इसका साथ छोड़ दिया। अब यह इस अंगरेजके साथ रहती और मौज मारती है। अभी तक कानूनन इनका सम्बन्ध-विच्छेद नहीं हुआ लेकिन यह बैरा अब उसे परदेशी समझता है। वह भी

इसे अनदेखा कर देती है। मानो दोनों एक दूसरेको जानते ही नहीं। इतना ही नहीं, स्त्री इतनी निर्लज्ज और ढीठ हो गयी है कि पतिका दिल कबाब करनेके लिए बहुधा इंगलिसेस काफे आती है और अपने यारके साथ खुले खजाने रंगरलियां करती है। पर धन्य है महाशय क० को कि विषके घूंटकी तरह सब पी जाता है। कई मित्रोंने आग्रह किया कि अंगरेजपर पत्नीको उड़ानेका मामला कर दो और काफी हर्जाना वसूल करो; पर इसने साफ नन्ना बोल दिया। यह चाहता तो कई हजार पौण्ड वसूल कर सकता और इस घोर सङ्कटसे मुक्ति पा लेता। लेकिन इस दार्शनिकको जैसे काठ मार गया हो। इस विषयमें टस-से-मस होनेका नाम नहीं लेता। इस पर तुर्रा यह कि कभी-कभी यह अपनी पत्नी और उसके नवीन प्रेमीकी खिदमतमें भी हाजिर रहता है। अपनी पत्नीको Madame (मेरी मालकिन) सम्बोधन करता है, आदाब बजाता है और सिपाहीकी तरह उसकी सेवामें तैनात रहता है। पर अभी तक किसीने इसकी सूरतमें जरा फेरफार होते नहीं देखा। मजाल कि चेहरेपर बल पड़ जाये।

> दुश्नाम होके वह तुरस-अबरू हजार दे,
> यां वह नशा नहीं जिन्हें तुरसी उतार दे।

इस विख्यात चितेरेने अपना पेशा एकदम छोड़ दिया है। आज तीन वर्षसे किसीने इसे तूलिका हाथमें लेते नहीं देखा। पर कहा जाता है कि वह बरसोंसे रातको गुप्त रूपसे अपने नष्ट-भ्रष्ट कुटुम्बका पट तैयार कर रहा है। वह कहता है कि मैं अब इसी कामके लिए जीवित हूं। जिस क्षण यह पूरा हो जायेगा, मेरा जीवन-दीप भी बुझ जायेगा। इसकी बेटी भी अब बड़ी हो गयी है और अपने माता-पितासे नहीं मिलती। वह एक धनी अमेरिकनसे शादी करनेका चक्र रच रही है।

यह किस्सा सुनकर मुझे इस मरदुएपर क्रोध आया। धिक्कार है इसके पुरुषत्वपर कि अपनी स्त्रीका यह दुश्चरित्र देखकर भी इसका खून नहीं खौलता। यह तो उल्टा उसे प्रोत्साहन दे रहा है। ऐसा नारकीय दृश्य भारतमें देखनेको नहीं मिल सकता। मैंने अपने भाव मार्टापर प्रकट किये। जाफर भी यह अजीब माजरा सुन गुस्सेसे जलभुन रहा था। उसने भी इस नपुंसकपर लानत भेजी। किन्तु मार्टाने बताया कि वह केवल तलाक दे सकता है; पर स्थितिमें इससे क्या फर्क आयेगा? उसे कुछ रुपये मिलेंगे; लेकिन पापकी यह कमाई उसके कोमल प्राणको कुचल डालेगी। वह अब भी अपनी स्त्रीपर मरता है। इसलिए उसके दर्शनसे परमानन्द प्राप्त करता है। इसपर लोग उसे छेड़ते हैं और बुरा-भला कहते हैं। यही कारण है कि वह मिट्टीका ढेला बन गया है। असल बात तो यह है कि प्रेमकी इस फिलासफीको यूरोपवाले ही समझ सकते हैं। जिस देशमें, स्त्री जितनी बार चाहे अपना पति बदल सकती है वहां यह कायर देवता है; क्योंकि अवसर मिलनेपर भी वह अपनी पत्नीके पापाचारसे पैसा पैदा करना नहीं चाहता। इस देशमें पति पत्नीको और औरत मर्दको जूतेकी तरह बदलते रहते हैं। सम्भवतः यह कलाप्राण आत्मा अपने पवित्र प्रेमको कलुषित न होने देना चाहती हो। मेरे लिए तो यह एक नया नमूना है और पुकार रहा है :—

> गर जौके-सैर है कुछ, तो देख मेरे दिलको,
> यह भी है एक नमूना जामे जहांनुमाका।

बहुत देर तक काफेमें बैठे रहे। मालूम हुआ कि जाफर तीन महीनेसे बर्लिनमें है और प्रायः तीन सौ पौण्ड लुटा चुका है। हिन्दुस्तानी भाइयोंने इसकी खूब हजामत की है। इसलिए उनसे भागता रहता है। मुझसे बोला—"आपकी शक्ल नयी मालूम हुई। इसलिए आपके पास बैठा हूं। नहीं तो पास न फटकता।" इसके सिवा उसे मार्टा और उसकी सहेलीमें दिलचस्पी थी। इस वजहसे भी हमारे साथ बैठा। मजा देखिये कि मैं चार पांच बार मार्टासे मिल चुका हूं और मुझे उसके नामके अतिरिक्त किसी बातकी खबर नहीं, और जाफरको उसका पता तक मालूम। उसने बताया कि ये दोनों नवयुवतियां विश्वविद्यालयमें दर्शन-शास्त्रका अध्ययन करती हैं। यह सुनकर स्वयं इनके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। न मालूम जाफर कबसे इनका पीछा कर रहा है। अब तक तो यह हाल था :—

> गैर लें महफिलमें बोसे जामके,
> हम रहें यों तिश्नालब पैगामके।

आज उसे इनकी भेंट नसीब हुई। मुझे इसकी यह लगन बहुत बुरी लगी। मुझे यह देखकर घोर दुःख हो रहा था कि भारतीय छात्र इस प्रकार अपने धन और स्वास्थ्यका नाश कर रहे थे। लेकिन मैं कर ही क्या सकता था। जो

मुझे उस रोज शामको अपने साथ चलनेका निमन्त्रण दिया। अपने राम तो ऐसी दावतोंकी फिराकमें रहते ही हैं सो हां कर दी। मैंने इस लड़केसे यह भी कह दिया कि मेरे पास पैसे नहीं हैं। इसपर उसने कहा—"इसकी कोई परवा नहीं। मैं आज तुम्हें करज दिला दूंगा। ग्यारह बजे मेरे साथ चलना।" अन्धेको क्या चाहिए? दो आंखें। यदि मुझे इस सङ्कटमें ऋण मिल जावे तो प्राण बचें। अब नया गुल खिला। हमारे मकानके सामने मिठाईकी दूकान है। मालकिन है एक लड़की। उसकी बुरी हालत थी। बर्लिनकी अमेरिकन क्या मिला, इसने जीवन-धन पा लिया। अब तक भूखी प्यासी ठोकर खाती फिरती थी। पेटकी आग बुझानेके लिए सैकड़ों स्वांग भरे; धोखेबाजीपर कमर कसी और सदा पापका जाप किया; लेकिन बरसों दाने-दानेको तरसती रही। पेट और पीठ एक हो गये। जिस देशमें सारी बस्ती भूखों से भर गयी हो वहां एक दूसरेकी सहायता करे या भेड़ियोंकी तरह आपसमें मारकाट करके दूसरेका मांस नोच खाये। अमेरिकनकी मित्रतासे इसका पेट रह गया। यह समझी कि वह युवक मुझसे विवाह कर लेगा और मेरा दरिद्र दूर हो
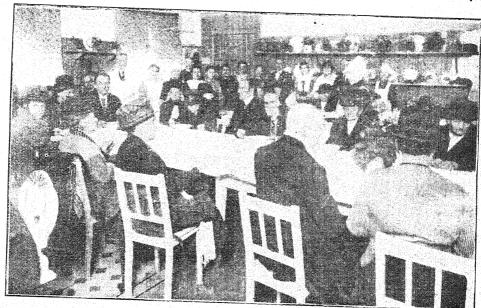
बर्लिनके विनष्ट धनी अपना पुराना सामान बेच रहे हैं कि पेटमें आहुति दें।

गलियोंमें मारी-मारी फिरती थी। खानेका ठिकाना नहीं, सर छिपानेको ठौर नहीं और गली कूचोंमें डोलते फिरनेका अन्त नहीं। बाहर गांवसे आयी है। माता-पिता मर गये हैं। जमीन-जायदाद कुछ नहीं है। एक भाई है, उसकी ठीक देख रेख न हो सकनेके कारण वह किसी कामका न रहा। आवारागर्दीमें उसने अपना समय गंवाया। बर्लिनका चक्कर काटते, एक रोज इस लड़कीके भाग जगे कि एक अमेरिकन नवयुवकसे मुठभेड़ हो गयी। उससे इसकी परवरिश होने लगी। धीमे-धीमे जान पहचान बढ़ती गयी और गहरी छनने लगी। यह तो पापी पेटकी मारी थी, 'सबसे बड़ी भूख, जो पावे सो चूख।' जायेगा; किन्तु उसके भाग्यमें शादी बदी न थी। अमेरिकनने उससे साफ कह दिया कि "ब्याहके सपने भूल जाओ, तुम्हारी मेरी किस बातमें बराबरी है जो तुम्हें घर डालकर अपने मातापिताको मुंह दिखाऊं। पर मैं तुम्हें कष्टमें नहीं डालना चाहता। तुम छोटी-मोटी दूकान कर लो तो रुपयेसे मदद कर सकता हूं।" बीस-पचीस डालर देकर यह दूकान खुलवा दी और आप गायब हो गया। अब भाई बहन मिलकर कारबार चलाते हैं, थोड़ी बहुत गुजर हो रही है। बिक्री जर्मन सिक्के मार्कमें होती है। इनका जमा करना अपना सर्वनाश करना है क्योंकि इनका मूल्य वायुवेगसे घट रहा है।

इसलिए यह लड़की जान पहचानके कुछ विदेशियोंको मार्क कर्ज देती है और उनके बदले बादको डालर, फ्रैङ्क, पाउण्ड आदि स्थिर विदेशी सिक्के लेती है। उस्तेदों फाब्री मुझे इसी-के पास ले गया। भाई बहन दोनों उपस्थित हैं, मेरा परिचय कराया गया। फाब्रीने मेरी तारीफके पुल बांध दिये और मजा यह कि वह मेरे विषयमें नाममात्रकी जानकारी नहीं रखता। मुसकराकर, लोचके साथ बोला—" मि० जोशी इण्डियासे आते हैं। आपका जन्मस्थान प्रसिद्ध नगर सुराबाया है। इनके पिता काफे और शकरके बहुत बड़े व्यापारी हैं। मेरे बहुत पुराने दोस्त हैं। अब तक कुरफ्यूर्स्टनडामपर एक होट-लमें रहते थे। मेरे आग्रह करने पर हमारे ही मकानमें आ गये हैं।" उसकी ऐसी बेतुकी बातें सुनकर मैं हक्काबक्का रह गया। उसकी झूठी बातोंका खण्डन करूं तो अभीसे दोनोंका जी खट्टा हो जाय और हमारी मित्रता पर तो 'सर मुंड़ाते ही ओले पड़ जायें;' मगर यह तो निरी बेपरकी हांक रहा है। यह लड़की पड़ोसमें ही रहती है और कलको भण्डा फूट जावे तो मुझे क्या समझेगी। मैं भोंदू बना हुआ इस उलझनमें फंसा हूं, और उन दोनोंकी बात भी पूरी न सुन पाया कि उस

नष्टप्राय धनी सरकारी रेस्टोरण्टमें भोजन कर अपना अहोभाग्य समझ रहे हैं।

रमणीने अपना दराज खोला और जर्मन नोटोंका एक बहुत बड़ा पुलिन्दा सामने रख दिया। बहुत नाज नखरेके साथ, मृदु हास्यसे बोली—" रख लीजिये। ये दो डालरके नोट हैं, जब कभी आपके पैसे आनेमें देर हो तो बेतकल्लुफ होकर मेरे पाससे उधार ले जाइयेगा।" मैं घबराया। दो डालरके मार्कोंसे मैं क्या करूंगा। इटालियन छोकरा समझा होगा कि इसके पास ज्यादा रुपये होंगे तो साथ ही मजेमें उड़ायेंगे। मैंने उससे कहा—"दो डालरसे मैं क्या करूंगा? अभी तो मेरे पास कुछ पैसा है। आप मुझे कुल आधा डालरके मार्क दीजिये। जरूरत पड़ने पर फिर ले जाऊंगा।" उसने ऐसा ही किया। नोट खीसेमें डाले और धन्यवाद देकर रास्ता नापा। मकान पहुंचनेपर मैंने फाब्रीसे कहा—"तुमने तो मेरे बारेमें ऊटपटांग न मालूम क्या-क्या बक दिया। मैं कलकत्ते से आ रहा हूं। तुम बोले सुराबायासे आया हूं। मेरे वहांसे इटली और सुराबाया बराबर दूर होंगे। कलको इस लड़कीको खबर लग जाय तो हम दोनोंको गालियां देगी और उधार मिलना बन्द हो जायेगा। गप भी ऐसी हांकते हो कि जमीन और आस्मानके कुलावे मिला देते हो।" मेरी बात सुनकर

वह कहकहे मारने लगा और फिर बोला—"मुझे क्या खबर ? मैं तो समझा था तुम जावासे आये हो, जर्मनमें जावाको भी इण्डिया कहते हैं। परवा नहीं, काम बन गया है। मैं उसे कुछ दिन बाद ठीक पता दे दूंगा। इन मामूली बातोंका ख्याल कौन रखता है।"

*

फ्राउ फान फेबेंरका हृदय पसीज गया है। सफेद रोट और मक्खनने उसपर मेरा जादू डाल दिया है। इस बुढ़िया-को देख मैं अन्नका महत्व समझ रहा हूं। 'अन्नं ब्रह्म, तस्मादन्नमुपास्व।' यह श्रुतिका वाक्य है। अन्न ब्रह्म है, इसलिए उसकी पूजा कर। वास्तवमें उपनिषद्की यह आज्ञा नहीं है; यह तो प्रकृतिका कठोर विधान है। यदि अन्न न हो तो विश्वमें महामृत्युका एकच्छत्र राज हो। तब स्वयं ब्रह्म महाकालके अन्धकारमय गर्भमें विलीन हो जाये। उस समय ब्रह्मानन्द लोप हो जायेगा। निरानन्दकी धूम मच जायगी। इस 'अङ्गं गलितं पलितं मुण्डम्, दशन विहीनं जातं तुण्डम्' जर्जर देह बुढ़ियाको देखिये कि पेटमें सफेद रोट और मक्खन पड़ते दमकने लगी है। पहले मैं समझा था इसकी सूरतमें निराशाकी अमिट छाप लग गयी होगी।

यह वह हालत है कि हंसतेको रुला देती है,
जो हंसाने मुझे आयेगा वह रो जायेगा।

पर अब इसमें फुर्ती आ गयी है। विधिका कैसा नियम है कि चङ्गे भोजन मिले कि मुरदेकी तबीयत भी बहाल हो गयी। यह है अन्नका माहात्म्य जिससे सारी सृष्टिके सब जीव उत्पन्न होते हैं। इसी कारण सदानन्द पन्थी और संन्यास मार्गी नजीरने रोटी और आटे-दालके बयानमें लिखना अपना धर्म समझा। उसने ठीक ही कहा है :—

इन रोटियोंके नूरसे सब दिल है पूर-पूर,
आटा नहीं है—छलनीसे छन-छन गिरे है नूर।
हरगिज किसी तरह न बुझे पेटका तंदूर,
इस आगको मगर ये बुझाती हैं रोटियां।

अन्नके कारण ही विश्वमें ज्योति है। इस वृद्धाका चन्द्र-बदन इन रोटियोंके प्रकाशसे ही दमकने लगा है। आधा रोट और दो छटाक मक्खनने इसके 'ब्रह्म'को तृप्त कर दिया—उसे सोतेसे जगा दिया। लेकिन संसारके असंख्य निर्धन जो 'हाय अन्न! हाय पेट' कर रहे हैं और तड़प-तड़पकर अपना प्राण, उनका अन्तिम कौर भी छीन लेनेवाले पूंजीपतियोंकी वेदीपर चढ़ा रहे हैं, उनका पाप किसे लगता होगा। मुझे रूसकी याद आयी। वहां शूद्र धर्मका बोलबाला है। किसानों और मजदूरोंका राज है। हमारी सभ्यता और संस्कृतिको वहां 'पतित' समझा गया है। पर कोई पूंजीपति न रहनेके कारण वहां अधिक नहीं तो पेटभर अन्न सबको मिल रहा है। ऐसी स्थितिमें लाख बुराइयां होने पर भी रूसको बुरा क्यों कहा जाये? उधर कोठीवालोंको देखिये, बैङ्कका खाता बढ़ानेके लिए सबसे बड़ा धर्मात्मा भी नीच-से-नीच पाप करनेको कमर कसके तैयार बैठा है। इन सेठों, साहूकारोंको भारतका पवित्र 'अहिंसा परमो धर्मः' सिद्धान्त भी ठीक न कर सका। हमारे धनी मांस नहीं खाते, लेकिन आदमीको सारा ही निगल जाते हैं। ऐसोंको कौन धर्म और कौन नीति रास्तेपर ला सकेगी। इनकी धूर्तता देखिये कि इधर एक पाठशाला खोली तो उधर हजारोंको मिट्टीमें मिला दिया। क्या सेठ हजारीमल और क्या मि० मिलियोनेयर सब संसारकी आंखोंमें दानवीर गिने जाते हैं। किन्तु सिवा कुछ अर्थ-शास्त्रज्ञोंके और कौन जानता है कि इस दान और वदान्यताने ही जनताकी आंखोंमें धूल डाल रखी है। जो हो, मैं आज प्रत्यक्ष देख रहा हूं कि किसीको अन्नसे वञ्चित करनेसे बड़ा पाप कोई हो नहीं सकता।

फ्राउ फान और कन्या फेबेंर बहुधा काला रोट और जलमय सूपसे अपना निर्वाह करती हैं। कभी-कभी सबसे सस्ती चर्बी खरीद लाती हैं और रोटमें चुपड़कर उसका स्वाद लेती हैं और अपना परम सौभाग्य समझती हैं। हफ्तेमें दो दिन इनकी तकदीर खुलती है और ये दोनों एक म्युनिसिपल रेस्टोरेण्टमें जाती हैं जहां सरकार, कारपोरेशन और कुछ जर्मन जमीन्दारोंने मिलकर इतने सस्ते भोजनका प्रबन्ध किया है कि उसे बिना मूल्य ही समझना चाहिए। किन्तु अधिकांश जर्मनोंके लिए इस भोजनका उपभोग करना भी दुश्वार हो रहा है। जो लोग कौड़ी-कौड़ीको तरस रहे हैं, उन्हें पाई भी अखरती है। मेरी लैण्डलेडी मुझे आज अपने साथ यह रेस्टोरैण्ट दिखाने ले जा रही हैं। वहां पहुंचे तो काफी भीड़ जमा है। यहां और तो सब ठीक है; कुर्सियां हैं, टेबल है, दस्तरखान है, पर जब भोजन आया तो मालूम हुआ कि यहांके अतिथि वास्तवमें सारसत्वहीन भूसी खा रहे हैं। सूपमें जल और नमकके अतिरिक्त क्या था,

किसीको पता नहीं। फूलगोभीका फूल तो अच्छे भोजनालयोंमें विदेशियोंके लिए तैयार होता है और उसके पत्ते इन अन्न-सत्रोंमें पहुँचाये जाते हैं। ये उबालकर क्षुधाकातर जर्मनोंके आगे रखे जाते हैं। मांस तो सप्ताहमें एक या दो बार बनता है। उस रोज भोजनके दाम बहुत चढ़ जाते हैं। वहां सबसे सस्ता चर्बीदार मांस आता है और मिलता है तोलोंके हिसाबसे। इस भोजनसे ये जर्मन मरेंगे या बचेंगे सो तो भगवान् जाने; किन्तु भोजनको आये हुए जर्मन मृतप्राय ही दिख रहे हैं। इनके शरीरमें रक्तकी बूंद तो ढूंढनेसे ही मिले तो मिले। खूबी यह कि ये सब जर्मन अच्छे घरानोंके हैं और कैसरके समय उच्च पदों पर काम करते थे। इनके पुराने कपड़े शानदार हैं। फटे वस्त्र भी बताते हैं कि कभी इनमें चमक दमक और रौब था। इन्होंने भी राजसी दिन देखे थे। लेकिन आज इनके पहननेवाले लकड़ीका 'सत्त' फांक रहे हैं। 'समयके फेर तें सुमेरु होत भारीको।'

प्रणय ?

विस्तृत जीवन-नभसे मेरे, मिलन-क्षितिज मिलकर सुकुमार।
सीमाहीन प्रणय-सागरको, सीमित करने लगी उदार॥

इस निराश नीरस जीवनमें, आयी प्रेम-मदिर-नव-धार।
मेरा अन्तर-जगत् सुनहला, उसमें करने लगा विहार॥

अरुण, गुलाबी उन गालोंका, कर-पल्लवसे कर शृंगार।
भावुकताके चल-पंखोंपर, उड़कर मैंने कहा पुकार—

"देवि! प्रणय-पीड़ा देकर क्या, फिर देती हो अपना प्यार।
पुलक-पुलकमें मधुर मिलनसे, भरती हो आनन्द अपार?

हुई प्रतीक्षाकी घड़ियोंमें, पुतली यह रो-रो काली।
आंखोंकी मदिरा मोती बन, ढुलक गयी क्यों मतवाली?

आ मेरे जीवनकी रानी, गिरते सुभग सुमनकी हास।
कोमल हृदय-निलयमें मेरे, होवे तेरा मधुर निवास।"

हृदय बढ़ाकर स्वप्न-शून्यसे, टकराकर रोया सुकुमार।
क्षणभर की थी सुखद भावना, था वह मायाका संसार॥

स्वप्न सुखोंसे रंगी लालसा, अश्रु-बिन्दुसे सज निज गात;
नश्वर जीवनकी आभा-सी, तुहिन बिन्दु बन आयी प्रात॥

यही प्रणय है? या जीवनका, है मोहक माया-छवि-जाल।
मुझे प्रणयकी तप्त ज्वालमें, दिखता है मानव-कंकाल॥

—नर्म्मदाप्रसाद खरे
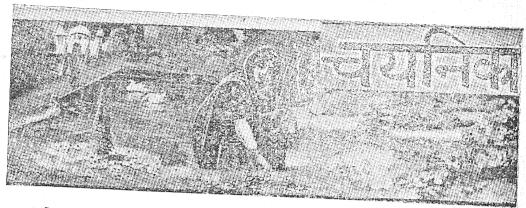
ट्रात्सकीसे जम्हूरियतके सम्पादककी भेंट

ट्रात्सकीसे भेंट करना बहुत कठिन है। वह पत्रवालों-से मिलता ही नहीं। ट्रात्सकीकी एक इण्टरव्यूका मूल्य चार हजार रुपये है। इतना रुपया सब पत्र दे भी नहीं सकते। पर कुस्तुन्तुनियाके पत्र 'जम्हूरियत' के सम्पादकको ट्रात्सकीसे मिलनेकी धुन सवार हो ही गयी। भारतके पत्रोंकी तरह उसे सामर्थ्य नहीं थी कि रुपया देकर ट्रात्सकीसे भेंट करता। इसलिए उसने ऐसी तरकीब निकाली कि उल्टा ट्रात्सकीको ही खसोट लाया। रूसके इस निर्वासित नेताको मछली मारनेका शौक है। प्रिङ्किपो द्वीपमें उसने एक स्थान इस कामके लिए ढूंढ़ रखा था। वह नित वहां बैठकर कांटा डालता था। एक रोज देखता क्या है कि एक खब्बर बूढ़ा किसान भी उसी स्थान पर उससे आगे पहुंच गया है और कांटा डाले बैठा है। ट्रात्सकी उस पर बिगड़ा, उसकी हिमाकत देख खूब झल्लाया और वापस जानेकी तैयारी करने लगा। इस पर यह पलितकेश किसान बोला—

वल्लाह, तू तो गलत तुर्की बोलता है। क्या तू पर-देशी है?

हां!

कहांसे आया है?

म रूसी हूं। मेरा नाम ट्रात्सकी है।

किसानने सर हिलाया और दो-तीन बार ट्रात्सकीका नाम रटा और उसके बाद पूछा—

"तेरा देश किस तरफ है। कौनसी हवा तुझे यहां लायी है।" ट्रात्सकीको आश्चर्य हुआ कि ऐसे आदमी भी रहते हैं जिन्हें उसका नाम तक नहीं मालूम। वह बोला—

मैं रूसका सरदार था। सब मजदूर मेरे अधीन थे। वे मुझे पूजते थे। मेरे सौतेले भाई इससे जलने लगे और उन्होंने षड्यन्त्र रचकर मुझे देशसे निकाल दिया।

तेरे मुल्कका सुल्तान कौन है?

स्टालीन नामका व्यक्ति है। पर वह अधिक दिन न रह सकेगा। उसकी हुकूमतके दिन इने-गिने हैं। उसका तख्त भी जल्दी उलट जायेगा और वह मार डाला जायेगा। ओह! वह अपने गुनाहोंकी बहुत जल्द सजा पायेगा। वह उतना बदमाश नहीं जितना अहमक है।

इस सुल्तानके क्या रक्षक नहीं हैं? क्या उसके सैनिक और संरक्षक नहीं हैं?

जरूर हैं, पर वे सब उससे घृणा करते हैं। वे उसका काम तमाम करनेका मौका ढूंढ़ रहे हैं।

उसके मरने पर तो तू अपने मुल्क चला जायेगा?

इरादा तो यही है।

तब तो तू फिर सुलतान बन जायेगा?

उम्मीद तो है।

इसपर बूढ़े मच्छीमारने बाअदब घुटने टेके और भावी सुलतानसे गिड़गिड़ाकर प्रार्थना की—

खुदाके नामपर मुझे भी अपने साथ ले जाना।

तुझे ले जा सकता हूं, पर शर्त यह है कि भविष्यमें, तू इस स्थानपर मछली मारने न आवे।

बूढ़ा जाने लगा तो ट्राटस्कीने उसे कुछ पैसे दिये। पैसे लेकर बूढ़ा (संपादक) अपने दफ्तर पहुंचा और 'जल्हूरियत' में उस भेंटका ब्योरा प्रकाशित कर दिया।

रूसने पन्द्रह सालमें क्या किया।

रूसने पन्द्रह वर्षमें आश्चर्यजनक उन्नति की है। उसकी औद्योगिक और आर्थिक उन्नति देखकर संसार दङ्ग है। पर उसने देशमें अन्य सुधार भी किये हैं जिनकी सूची लूई फिशरने न्यूयार्कके 'नेशन' पत्रमें दी है—

आर्थिक उन्नतिके अतिरिक्त रूसमें बहुत सुधार हुए हैं जो वर्तमान विप्लवसे उत्पन्न हुए हैं। उदाहरणार्थ—अल्पसंख्यक जातियोंकी सांस्कृतिक स्वतन्त्रता, उच्च शिक्षाका प्रचार (रूसके विश्व-विद्यालयों और कालेजोंमें पन्द्रह लाख छात्र हैं। १९१४ में इनकी संख्या कुल साढ़े पांच लाख थी); निःशुल्क और अनिवार्य प्रथमिक शिक्षा ; अनपढ़ोंकी संख्याका महान् ह्रास (इस समय रूसमें ९० सैकड़ा निवासी साक्षर हैं)। मुसलमान प्रदेशोंमें पर्दाप्रथाका अन्त ; विश्वविद्यालयों, सरकारी नौकरियों आदिमें मजदूरों, किसानों, यहूदियों आदि सबका स्वागत, जिन्हें जारके समयमें शिक्षा भी मना थी ; पत्रों, पुस्तकों और वाचनालयोंका प्रचार ; नयी अदालतोंका स्थापन, जिनमें वकीलोंका कोई स्थान नहीं है ; श्रमजीवियोंमें थिएटर, सिनेमा आदिका प्रचार ; शिशु-रक्षा ; स्त्री-अधिकार ; जनतामें सभ्यता और संस्कृतिका प्रचार (जहां पहले सर्वसाधारण रातदिन शराब पीनेमें मस्त रहते थे, अब उनमें पढ़ने-लिखने, खेलकूद आदिकी आदत पड़ गयी है) ; मजदूरोंको सब सुख-साधनोंका प्रदान ; उन पूंजीपतियोंका अन्त, जो दूसरोंकी कमाई बैठे-बैठे उड़ाते थे ; बेकारीका निष्कासन और संसारकी सर्वोत्तम स्वास्थ्य-नीतिका प्रवर्तन।

बागी गवर्नर।

आयर्लैण्डके नये गवर्नर डी वालेराके दलके हैं। कभी वह पक्के विद्रोही थे। उन पर अमेरिकाके 'टाइम'ने लिखा है—

१९०७ में आयर्लैण्डकी गाड़ियोंकी रजिस्टरी अंगरेजीमें होती थी। डोमनाल उआ बुआखाल्लाने अपनी गाड़ियोंमें अंगरेजीमें नम्बर देना अस्वीकार किया। इस अपराधपर वह गिरफ्तार किया गया और उसे जुर्माना हुआ। उसने वह देना अस्वीकार कर दिया। इसपर उसकी दूकानें जब्त कर ली गयीं। १९१६ के गदरमें बुआखाल्लाने डबलिनके डाकघरको घेरनेमें भाग लिया। वह गिरफ्तार किया गया और इङ्गलैण्डमें नजरबन्द किया गया। उसने छूटनेके बाद भी आकस्मिक आक्रमणोंमें भाग लिया। यह मनुष्य अंगरेजी भाषाका उपयोग तभी करता है जब इसे लाचारी मालूम पड़ती है। अब इस पुराने बागीने राजा जार्जकी शपथ खायी है और यह आयरिश फ्री स्टेटका गवर्नर जनरल नियुक्त किया गया है। बात यह है कि राजा जार्जको इस पदपर वही आदमी नियुक्त करना पड़ता है जिसकी सिफारिश आयर्लैण्डके अध्यक्षने की हो। अध्यक्ष डी वालेराने अपने पुराने मित्र 'डैनियल बकले'को इस पदके लिए ठीक समझा। इस नियुक्तिपर डबलिनवाले विस्मय-विमुग्ध रह गये और संसारमें डी वालेराकी विजयका डङ्का बजा। वहांके प्रजातन्त्रवादियोंका उद्देश्य इस पदको उड़ा देनेका है। एक ऐसे आदमीको गवर्नर जनरल नियुक्त कराकर, जिसने तोड़नेके लिए शपथ ली है, उन्होंने अपनी सफलताका प्रमाण दिया है।

अमेरिकाके खूनी लड़के

अमित धन-मदसे मत्त अमेरिकन जातिमें घोर दुष्कर्मोंकी प्रवृत्ति दिनपर दिन जिस प्रगतिसे बढ़ती जाती है, राष्ट्र-सञ्चालकों तथा समाज-सुधारकोंके लाख प्रयत्न करने पर भी जो किसी प्रकार घटना नहीं चाहती, वह अत्यन्त आश्चर्य-जनक तथा अनर्थकर है। दुष्कर्मको अमेरिकनोंने एक विशेष कलाका रूप दे दिया। सुसङ्गठित तथा वैज्ञानिक उपायों द्वारा जिस कौशलसे अमेरिकाके पेशेवर सभ्य डाकू तथा हत्यारे अपना कुचक्र सफल करनेमें समर्थ होते हैं वह देखते ही बनता है। उनका सङ्गठन ऐसा जबर्दस्त रहता है कि राजनीतिक तथा व्यापारिक क्षेत्रमें भी व्यापक तथा सामूहिक रूपसे उनकी डकैतीका लोमहर्षक चक्र जारी रहता है। बड़ी-बड़ी म्युनिसिपलिटियोंमें उनका अधिकार है, राजनीतिक सभा-समितियोंमें उनके प्रतिनिधि वर्तमान हैं। यह तो सब था ही। इधर एक नयी बात मालूम हुई है। इस आतङ्क-जनक तथ्यके प्रति वहांके समाज-सुधारकोंका ध्यान आकर्षित हुआ है कि वहांके १९ वर्षसे नीचेकी उम्रवाले छोटे-छोटे बालक

भी भयङ्कर हत्यारे बनने लगे हैं, डकैती और चोरीके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या है। "कन्स्टिट्यूशन" नामक एक अमेरिकन पत्र इस सम्बन्धमें लिखता है—

"किसी अध्यापकके एक पन्द्रह वर्षके लड़केने पुलिसके एक आदमीको केवल इसलिए जानसे मार डाला कि उसने उस लड़केको किसी विशेष स्थानपर तैरनेसे मना किया था। किसी व्यापारीके प्रायः इसी उम्रके लड़केने अपनी सौतेली मांकी माताकी हत्या केवल इस कारण कर डाली कि उसने उस लड़केको किसी नाच-पार्टीमें जानेके लिए अपनी मोटर देनेसे इनकार कर दिया। एक दूसरे लड़केने एक आदमीका खून किया, दो लड़कियों पर हमला किया तथा पांच व्यक्तियों पर गोली चलायी, और यह सब केवल 'विनोदार्थ'। इस प्रकारके दुष्कर्मी तथा हत्यारे लड़के और लड़कियोंकी संख्या हमारे देश (अमेरिका) में दिन-दिन बढ़ती जाती है। आश्चर्य यह है कि देशमें बालकोपकारी संस्थाओंकी संख्या इतनी अधिक है, जितनी सभ्यताके किसी भी युगमें, किसी भी देशमें वर्तमान नहीं थी। तिसपर भी यह हालत है। संयुक्त प्रदेशमें इधर आठ महीनेके भीतर जितने दुष्कर्म हुए हैं, उनमेंसे प्रायः चालीस प्रतिशत दुष्कर्मियोंकी आयु बीस वर्षसे कम है। डेट्रायटमें (जहां हेनरी फोर्डका मुख्य कारखाना तथा अधिवास है—वि० स०) केवल नवम्बरके महीनेमें प्रायः तीस सशस्त्र डकैतियां लड़कों द्वारा हुई हैं, जिनमेंसे एक पन्द्रह वर्षके लड़केपर पचास अपराधोंका अभियोग लगाया गया। १८ वर्षके एक लड़केपर चौबीस डकैतियोंका अभियोग लगाया गया। दो बहुत ही छोटी उम्रके लड़के दवाखानोंमें जाकर हमला करते हुए गिरफ्तार किये गये।"

"अब प्रश्न यह है कि इस भीषण अनर्थका कारण क्या है? कुछ लोगोंका कहना है कि वर्तमान नागरिक जीवनकी चञ्चलता, तड़क-भड़क और दुर्नीतिमूलक विनोद-प्रियता ही लड़कोंको इस कुप्रवृत्तिकी ओर ढकेल रही है। वर्षों पहले हमारे लड़के और लड़कियां अपने विनोदके मुख्य साधन पारिवारिक जीवन तथा सामाजिक उत्सवोंमें ही प्राप्त कर लेते थे। पर अब कौटुम्बिक जीवनका कुछ महत्त्व ही न रहा और बिना मोटरमें चढ़कर 'एडवेञ्चरस' (दुस्साहसपूर्ण) जीवन बिताये उनका मनोरञ्जन नहीं होता। मोटरोंके अधिक प्रचलनसे नाना दुष्कर्मोंकी सुविधा तथा प्रलोभन उन्हें प्राप्त हो गया है। एक कारण यह भी है कि बहुत छोटी उम्रमें लड़के अपने बड़ोंकी दुर्नीतिपरायणतासे भलीभांति परिचित हो जाते हैं, और स्वभावतः उनकी प्रवृत्ति भी भोग-विलासकी ओर बढ़ती है। वासनाकी पूर्ण तृप्तिमें जब उन्हें आर्थिक बाधाओंका सामना करना पड़ता है, तो उन्हें हत्या और डकैती सूझती है। इन छोटे-छोटे लड़कोंकी प्रेयसियां होती हैं। उन्हें खुश रखनेके लिए भी उन्हें निषिद्ध कर्मों द्वारा अर्थ प्राप्त करना पड़ता है। हजारों नौजवान लड़के अवैध उपायोंसे शराब बेचनेका पेशा कर रहे हैं; क्योंकि यह पेशा उन्हें सबसे अधिक लाभदायक मालूम हुआ है। इस प्रकार नवीन, सुकुमार हृदयोंमें घोर पापका बीज अंकुरित होकर विकट रूप धारण करता चला जाता है। समाजमें शक्ति नहीं है कि उन्हें सुधार सके, राष्ट्रमें बल नहीं है कि समुचित दण्ड द्वारा उन्हें परास्त कर सके।"

दस हजार बीमारियोंकी एक दवा

हमारे यहां 'पीयूष-सिन्धु', 'सुधासिन्धु', 'अमृतधारा' आदि बहुत-सी ऐसी दवाइयोंका यथेष्ट प्रचार है जो कम से कम सौ बीमारियोंको दूर करनेका दावा रखती हैं। उनकी उपयोगिताकी वास्तविकता कहां तक है, हमें यह नहीं मालूम; पर इतना अवश्य जानते हैं कि जन-साधारणका उनपर काफी विश्वास रहता है। इस प्रकारकी बहुगुणकारी दवाइयोंका प्रचलन केवल हमारे ही देशमें नहीं, संसारके अन्यान्य देशोंमें भी पाया जाता है। फ्रेञ्च पत्र 'वू' के एक लेखसे मालूम हुआ है कि चीनके अनेक 'आयुर्वेद-शास्त्री' भी नाना अद्भुत उपायोंसे ऐसी अमृतोपम औषधियां तैयार करते हैं जो, उनकी रायमें, किसी भी बीमारीको छूमन्तरसे भगा सकती हैं। ये औषधियां कैसी विचित्र होती हैं, उसका वर्णन नीचे दिया जाता है:—

"चीनियोंके मतानुसार हरिणमें विशेष रोगोपकारी औषधियोंके गुण पाये जाते हैं। हांगचौमें मैंने एक ऐसा समृद्ध औषधालय देखा, जिसका मालिक बहुतसे हरिणोंको इसी उद्देश्यसे पालता था। जब कोई हरिण मारा जाता है, तो उसके शरीरकी कोई भी चीज नष्ट नहीं होने दी जाती। बहुतसे ज्वरोंका इलाज हरिणके खुरोंके चूर्ण द्वारा किया जाता है। उसके सींग दुर्बल व्यक्तियोंको 'टानिक' के बतौर

दिये जाते हैं। यहां तक कि उसके जननेन्द्रिय-सम्बन्धी टुकड़े भी विशेष वनस्पतियोंके साथ पीसकर मिलाये जाते हैं और विशेष-विशेष रोगोंके इलाजके लिए उसकी टिकियां बनायी जाती हैं। दूकानमें लाखोंकी तादादमें ऐसी टिकियां रखी थीं जो हरिणकी खाल, हड्डियां, सींग, खुर, बाल आदि सभी चीजोंके मिश्रणसे बनायी गयी थीं। दूकानमें जो सेल्समैन बैठा था, उसने अपना हाथ झटकाकर, प्रत्येक शब्द पर जोर देते हुए कहा—'पृथ्वीतलपर होनेवाली किसी भी बीमारीको ये टिकियां दूर कर सकती हैं।' मैं दवाओंके एक कारखानेमें गया, जहां प्रायः बीस आदमी औषधियोंको पीसकर मिला रहे थे। वे सब-के-सब अन्धे थे। मुझे आश्चर्य हुआ। प्रबन्धकसे मैंने इसका कारण पूछा। वह बोला - 'इस काम-के लिए अन्धे आदमी इस कारण नियुक्त किये जाते हैं कि वे हमारी अमूल्य ओषधियोंके नुसखोंको चुरा न लें। प्रायः तीन सौ वर्षोंसे यह दूकान इन टिकियोंको बनाती चली आती है। इनकी उपयोगिता निर्विवाद प्रमाणित हो गयी है; इसलिए बहुत-से अन्य औषधालय हमारे किसी कारी-गरको रिश्वत दे-दिलाकर उनसे हमारी गुप्त विधि मालूम कर सकते हैं। इस कारण अन्धोंको रखनेसे हम इस सम्बन्धमें निश्चिन्त रहते हैं। दो-तीन व्यक्तियोंने तो गरीबीके कारण स्वयं अपनी आंखें फोड़ी हैं, ताकि उन्हें हमारे यहां काम मिल सके।'

"इसके बाद हम खास दूकानपर गये, जहां अन्यान्य दवायें बिक रही थीं। मेरे गाइडने मेरी दृष्टि शीशेके एक बड़े बर्तनकी ओर आकर्षित की जिसमें भालूके पञ्जे एलकोहलके भीतर डुबोकर रखे गये थे। मालूम हुआ कि यह वातकी अक्सीर दवा है। एक बर्तनमें बच्चोंके दिमागके भेजे खूब अच्छी तरह पकाकर रखे हुए थे, जो कोढ़, खाज आदि बीमारियोंके लिए रामबाण बताये गये। सांप, छिपकलियां, मकड़ियां आदि जन्तुओंका मांस पीसकर बिक्रीके लिए तैयार था, जो राब या शहदके साथ खाये जानेपर एक विशेष रोग-का उपशम करता है, ऐसा मुझे सूचित किया गया। इसके अतिरिक्त भैंसके चमड़े, मकाके डण्ठलका चूर्ण, चूहोंकी हड्डियां, चमगादड़ोंके डैने आदि चीजें भी इस प्रकारके उप-योगोंमें लायी जाती हैं। इन 'पेटेण्ट' दवाओंके फड़कते हुए नाम रखनेमें चीनी किसीसे कुछ कम नहीं हैं। एक दवाका नाम रखा गया है—'दस हजार गुणोंकी टिकिया।' दूसरीका नाम है—'महदानन्दवर्द्धक वटी।'

"केवल इतना ही नहीं। सिर्फ बीमारियोंके इलाजके लिए चीन देशवासी औषधालयोंमें नहीं जाते। यदि किसी सिपाहीको लड़ाईमें जाना होता है, और वह अपनेको हौल-दिल मालूम करता है, तो तत्काल एक वैद्यकी दूकानपर चला जाता है। वैद्य उसे 'बाघके हृदयका चूर्ण' देता है। अथवा वह सबसे अधिक साहसप्रदायक रसायन—किसी डाकूका हृदय—खरीदता है। मेरे गाइडने मुझे एक विज्ञापन दिखाया, जिसमें लिखा था—'प्रसिद्ध डाकू आत्सोंग मर गया है। क्या आप इस भयङ्कर डाकूका हृदय खाकर निडर बनना चाहते हैं? आइये, शीघ्रता कीजिये। क्योंकि इसकी केवल तीन ही टिकिया शेष रह गयी हैं।'"

अमेरिकन इन्श्योरेन्स।

बीमाकी उपयोगितापर इधर हमारे देशवासियोंका ध्यान भी दिनपर दिन बढ़ता जाता है। यही कारण है कि वर्ष-प्रति-वर्ष देशी बीमा कम्पनियोंकी संख्यामें वृद्धि होती जाती है। जीवन-बीमा करानेवालोंकी संख्या यद्यपि देशमें कुछ कम नहीं है, तथापि बहुत कम इस तथ्यसे परिचित हैं कि बीमा कम्पनियोंको इस व्यापारसे किस प्रकार लाभ होता है। हम लोग देखते हैं कि प्रतिवर्ष बहुसंख्यामें ऐसे व्यक्ति अकालमें ही मरते रहते हैं जिन्होंने बीमा किया है। ऐसी दशामें कम्पनियोंका दिवाला पिटनेकी अधिक सम्भावना होनी चाहिए। पर यह धारणा ठीक नहीं है। ये कम्पनियां बड़ी दीर्घ दृष्टि रखती हैं, और लाभ-हानिका मोटा अन्दाज पहले ही लगाकर तब व्यवसाय प्रारम्भ करती हैं। अधिक-से-अधिक हानिकी सम्भावना कहां तक है, इसका हिसाब पहले ही लगाकर कम-से-कम लाभ कितना हो सकता है, इसका भी निर्णय कर लेती हैं। अमेरिकामें संसारकी सबसे बड़ी और सबसे अधिक इन्श्योरेन्स कम्पनियां हैं। वह किस प्रकार चलती हैं, कैसे अपने व्यवसायको सफल बनाती हैं, इस सम्बन्धमें एक लेख Woman's Home Companion नामक पत्रमें छपा है। उसका सारांश नीचे दिया जाता है :—

"विगत पचास वर्षोंमें संयुक्त राज्य (अमेरिका) में कोई भी इन्श्योरेन्स कम्पनी फेल नहीं हुई है। अमेरिकनोंका

विश्वास इन कम्पनियोंपर कितना अधिक है,इसका प्रमाण इसी बातसे मिलता है कि अमेरिकामें १,००,००,००,००,००,००० डालरका बीमा लोगोंने कराया है। कम्पनियां पहले ही अधिक-से-अधिक हानिका हिसाब लगा लेती हैं, तब जाकर अपना व्यवसाय प्रारम्भ करती हैं। यथासम्भव ऐसे लोगोंका बीमा स्वीकार किया जाता है जो डाक्टरी परीक्षाके बाद स्वस्थ सिद्ध होते हैं। इसका फल यह होता है कि प्रतिवर्ष कम्पनियां जिस पूर्व-निर्धारित मृत्यु-संख्याके लिए तैयार रहती हैं, वास्तविक मृत्यु केवल उसके ६० अथवा ७०प्रतिशत ही होती है। इस कारण कम्पनियोंकी बचत प्रतिवर्ष ३०-४० प्रतिशत हो जाती है। कम्पनियां जिन व्यवसायोंपर अपना रुपया लगाती हैं उससे जिस लाभकी सम्भावना होती है, अपने हिसाबमें वे उसे बहुत घटाकर लगाती हैं। अर्थात् यदि उन्हें पांच प्रतिशत लाभकी पूरी आशा होती है तो वे केवल तीन प्रतिशतका ही हिसाब जोड़ेंगी। बीमा करानेवालोंसे वे इस हिसाबसे प्रीमियम लेती हैं कि उसमें उनका सम्भावित व्यय भी निकल आये। इसमें भी उन्हें यथेष्ट बचत होती है। इसके अतिरिक्त वे तब तक लाभांश बांटनेको बाध्य नहीं होतीं जब तक यथेष्ट परिमाणमें आवश्यकतासे अधिक सञ्चय उनके पास न हो। १९१८-१९ में संयुक्तराज्य तथा केनाडामें इनफ्लुएञ्जाका प्रबल प्रकोप होनेके कारण बहुसंख्यामें ऐसे युवक अकालमें ही चल बसे, जिन्होंने केवल कुछ ही 'प्रीमियम' चुकाये थे। ऐसे पांच लाखसे भी अधिक व्यक्ति मर गये और ७० प्रतिशतके बजाय मृत्यु-संख्या शत-प्रति-शतसे भी बहुत अधिक बढ़ गयी। कम्पनियोंको बहुत घाटा हुआ; पर उनके 'फेल' हो जानेका कोई प्रश्न नहीं उठा। किसी व्यक्तिके भी 'पालिसी' के मारे जानेके सम्बन्धमें कोई आशङ्का उदित नहीं हुई। आज इन कम्पनियोंके कुल लाभकी मद २०,००,००,००,००,००० डालरसे भी अधिक है। यह रकम किस प्रकार और किन व्यवसायोंमें लगायी जाती है? जीवन-बीमाध्यक्ष सङ्घकी रिपोर्टसे मालूम होता है कि इन व्यवसायोंमें यह धन लगाया जाता है—फार्म मोर्टगेज, यूनाइटेड स्टेट्स गवर्नमेण्ट बाण्ड, केनेडियन गवर्नमेण्ट बाण्ड, फारिन गवर्नमेण्ट बाण्ड, रेलरोड बाण्ड तथा स्टाक, पालिसी लोन तथा प्रीमियम नोट, इस्टेट, आदि-आदि। इस मन्दीके युगमें अमेरिकन फार्मों (कृषि-व्यवसाय-सङ्घ) की दशा खराब होने पर भी इन्श्योरेन्स कम्पनियोंको उनमें रुपये लगानेसे यथेष्ट लाभ हो रहा है। ८० प्रतिशत 'मोर्टगेज' बड़ी अच्छी स्थितिमें हैं। अर्थात् उनपर नियमित रूपसे खासा व्याज प्राप्त हो रहा है। इसमें सन्देह नहीं, इस समय आवश्यकतासे अधिक उपज होनेके कारण कुछ फार्म अस्थायी रूपसे बन्द हैं। पर उनमें लगाया हुआ धन भी समय पर यथेष्ट फल प्रसव करेगा। 'इस्टेट' (जायदाद) में जो धन लगाया गया है उसका अर्थ यह समझना चाहिए कि बड़े-बड़े होटलों, आफिसों तथा विशाल भवनोंका निर्माण करके कम्पनियां विपुल लाभ सञ्चित करती जाती हैं। बैङ्कों और इन्श्योरेन्स कम्पनियोंमें बड़ा भारी अन्तर समझना चाहिए। बैङ्कोंसे विशेष स्थितिके आ पड़नेपर लोग सब रुपया बहुत थोड़े अर्सेके नोटिससे वापस ले सकते हैं। पर बीमा कम्पनियोंके सम्बन्धमें यह सम्भावना उठ ही नहीं सकती। क्योंकि उन्हें एक निश्चित अवधिके बाद रुपया चुकाना होता है। इस कारण वे दीर्घकालतक, बिना किसी विशेष आशङ्काके, प्राप्त अर्थको विविध लाभदायक रूपोंमें फलीभूत कर सकती हैं। राष्ट्रका धन इन कम्पनियोंके कारण सुरक्षित रहता है। राष्ट्रीय सङ्कटमें भी ये राष्ट्रको यथेष्ट सहायता देती हैं। उदाहरणके लिए, १९३१ में जब बेकारोंकी सहायताके लिए सारे राष्ट्रसे कुल ९,००,००,००० डालर जमा हो सका था, तो इन्श्योरेन्स कम्पनियोंने नाना रूपोंसे इस सम्बन्धमें प्रायः २,६०,००,००,००० डालर प्रदान किये थे। यह रकम समस्त राष्ट्रीय सहायक फण्डसे प्रायः तीस गुना अधिक है!"

स्टालिनकी नृत्य-गान-प्रियता

सोवियट रूसका भाग्य-विधाता स्टालिन कुछ ही दिन पहले तक कट्टर नीतिनिष्ठ था और आमोद-प्रमोद, तथा सङ्गीत-कला सम्बन्धी राग रङ्गोंसे बहुत चिढ़ता था। पर अब देखा जाता है कि वह भी 'जीवनका आनन्द' प्राप्त करनेके लिए लालायित हो उठा है। जर्मन पत्र Vossische Zeitung सूचित करता है कि अब स्टालिन थियेटरों तथा नृत्य-शालाओंमें जाने लगा है और वहांके लीला-विलासमें बड़ी दिलचस्पी लेता है। पत्र लिखता है :—

"स्टालिनके मुंहसे जो सबसे नयी तथा आश्चर्यजनक बात निकली है वह यह है कि 'प्रोलेटेरियटको साज-सज्जा

अलङ्कार तथा शृङ्गारकी बड़ी आवश्यकता है।' उसकी यह बात सुनकर मास्कोका कम्यूनिस्ट सम्प्रदाय घबरा उठा है। स्टालिन अब अक्सर थियेटरोंमें जाता है और 'प्रोलेटेरियन' लोगोंके साथ बैठकर समय-समयपर उल्लासके साथ तालियां बजाता है। यह तथ्य रूसी क्रान्तिके इतिहासमें एक नयी सनसनी पैदा करने वाला है। इस बातसे आश्चर्यान्वित होना स्वाभाविक ही है कि यह कम्यूनिस्ट नेता कलाके प्राचीन, परम्परागत रूपको स्वीकार करनेवाला है। जो कम्यूनिस्ट कलाप्रेमी कलामें नवीन क्रान्तिके पक्षपाती हैं, वे इस बातसे अत्यन्त खेद प्रकट कर रहे हैं कि बोलशेविक रूस नाटकाभिनयमें पेरिसके प्राचीन 'कोमेदी फ्रांसेज' के युगका पक्षपाती हो गया है, नृत्य-कलामें जार लोगोंके समयका अनुकारक बन गया है और चित्रणमें भी प्राचीन पद्धतिका अनुयायी हो गया है। अर्थात् इस सम्बन्धमें उसने बोल्शेविज्मकी निजी सत्ता ही बिलकुल खो दी है। मास्कोमें इस समय पेरिसी कलाका पूर्ण प्रदर्शन हो रहा है, जो तड़क-भड़कमें अत्यन्त सुन्दर, उन्नत और अलंकृत है, किन्तु परम्परागत धाराका अनुसरण उसका मुख्य उद्देश्य है। इन सब मनोमोहक रूप-रङ्गोंको देखकर प्रोलेटेरियन जनता ठीक उसी प्रकार मुग्ध होती है जिस प्रकार जारके युगमें शाही मसनदोंपर बैठकर राजवंशीय लोग आनन्दित होते थे। जब मास्को आपेराकी प्रमुख नर्तकी जेमोनोवा अपनी एक सौ सङ्गिनियोंके साथ नाना रङ्गीन विलासोंसे सजधजकर रङ्गमञ्चपर विराजती है, और वे पैरके अंगूठोंके बल खड़े होकर सर्प विभ्रमसे नाचती हैं, तथा अन्तमें दर्शकोंकी ओर अपने हृदयोन्मादकारी चुम्बनोंको फेंकती हैं, तो उन्मत्त आनन्द ध्वनिसे सारा रङ्गालय गूंज उठता है। स्वयं स्टालिन अपना उल्लास प्रकट किये बिना नहीं रह सकता। वह ठीक उसी तरङ्गित हर्षसे तालियां पीटता है जिस प्रकार उसकी बगलमें बैठा हुआ साधारण श्रमिक। क्योंकि स्टालिनकी अब यह धारणा हो गयी है कि कला-सम्बन्धी क्रान्ति राजनीतिक क्रान्तिके साथ समान तालमें अग्रसर नहीं हो सकती।"

तुर्की स्त्रियोंकी उत्तरोत्तर स्वतन्त्रता

तुर्की स्त्रियोंकी स्वाधीनताके सम्बन्धमें हम लोग रात-दिन सामयिक पत्रोंमें लेख पढ़ते रहते हैं। मुस्तफा कमाल पाशाके क्रान्तिकारी उपयोगोंसे वहांकी स्त्रियोंकी दशा क्या-से-क्या होती जाती है, यह देखकर आश्चर्य होना स्वाभाविक है। तारीफकी बात यह है कि टर्कीमें स्त्री-स्वाधीनता आन्दोलन उत्तरोत्तर तीव्रातितीव्र वेगसे अग्रसर होता चला जाता है। आज वहां जो दशा स्त्रियोंकी है, केवल कुछ ही दिनों बाद आप उसे बिलकुल बदली हुई पायेंगे। पेरिसके 'रेव्यू दे द्यू मोंदे' नामक पत्रमें एक तुर्की लेखक इस सम्बन्धमें लिखता है—

"तुर्की स्त्रियोंको गाजी मुस्तफा कमाल पाशाके शासनमें अपना पर्दा हटाते देखकर उनकी उन्नतिके सम्बन्धमें जो धारणा लोगोंके मनमें उत्पन्न हुई थी, आज देखते हैं कि परिणाम उससे भी आगे बढ़ गया है। यह क्रान्तिकारी परिवर्तन कैसा अद्भुत है, यह बात इस तथ्यपर विचार करनेसे और भी अधिक स्पष्ट हो जाती है कि केवल दस वर्ष पहले एक तुर्की स्त्री केवल अपने बाप, भाई तथा सहजातीय स्त्रियोंके सामने ही बेपर्दा रह सकती थी। बहुत छोटी उम्रमें उसका विवाह एक ऐसे व्यक्तिके साथ कर दिया जाता था जिसे उसने कभी नहीं देखा हो। उसका भविष्य अनिश्चित होता था, क्योंकि उसका पति किसी भी क्षणमें उसे बिना किसी दिक्कतके उससे अपना सम्बन्ध सदाके लिए विच्छेद कर सकता था। पर ज्योंही तुर्की प्रजातन्त्र राज्य पूर्णतया प्रतिष्ठित हो गया, बहुविवाह तथा पर्दा एकदम निवारण किये गये, और विवाह तथा तलाकके नियम सभ्यतम देशोंके अनुरूप ही निर्धारित हुए। आज हम देखते हैं कि स्त्रियां विश्वविद्यालयोंमें पुरुषोंका सामना करती हैं, और प्रत्येक पेशेमें उन्हें पुरुषोंकी तरह समान अधिकार प्राप्त हैं। वे म्युनिसिपल चुनावमें वोट देती हैं, वकालत करती हैं, यहां तक कि पुलिसकी नौकरीमें भर्ती होती हैं! और यह आशा की जाती है कि शीघ्र ही राष्ट्रीय शासन-विधानमें उन्हें लिया जायगा। वे सड़कोंपर पुरुषोंके साथ स्वतन्त्रतापूर्वक विचरती हैं। प्रत्येक सिनेमा, भोजनालय, नृत्यशाला, दूकान तथा आफिसमें स्वच्छन्दतापूर्वक आती-जाती हैं। १९३२ में संसार-भरकी स्त्रियोंकी सौन्दर्य-प्रतिद्वन्द्वितामें करीमा हलिश हानूम नामकी एक तुर्की स्त्रीने सबसे प्रथम स्थान अधिकृत किया है। जब वह रूससे टर्कीको लौटी तो जनताने बड़े समारोह, हर्ष तथा उत्साहसे उसका स्वागत किया। उसका स्वागत

केवल राष्ट्रीय गर्वके कारण नहीं हुआ। उसकी विजय नवीन तुर्की स्त्रीकी उन्नतिके गौरव-चिह्नके बतौर ग्रहण की गयी।"

मनुष्य दीर्घ उपवासके लिए अक्षम है

महात्मा गांधीके पिछले उपवासने देशवासियोंको किस कदर चिन्तित कर दिया था, इस बातसे सभी भली भांति परिचित हैं। कुछ ही दिनोंके उपवाससे उनकी अवस्था अत्यन्त आशङ्काजनक हो गयी थी। इसमें सन्देह नहीं कि इससे पहले वह कई बार दीर्घ उपवास कर चुके हैं, जिसका परिणाम विशेष भयावह नहीं मालूम हुआ था। अपनी मानवातीत कष्टसहिष्णुताके कारण ही वह ऐसा करनेमें असमर्थ हुए थे, अन्यथा अन्य कोई भी मनुष्य उनकी स्थितिमें वैसे दीर्घकाल-व्यापी अनशनोंके बाद जीवित न रह सकता। हमारे देशमें आजकल अनेक राजनीतिक कैदी अन्यायाचरणके विरोधमें उपवास प्रारम्भ कर देते हैं। मेक्स्विनी, यतीन्द्रनाथ तथा महात्मा गांधी जैसे बिरले ही दो-चार व्यक्ति मनुष्य-समाजमें ऐसे पाये जाते हैं, जो अधिक समय तक लङ्घनका पीड़न सह सकते हैं। पर अधिकांश मनुष्य दो-एक दिनके उपवाससे ही परास्त पड़ जाते हैं। इसलिए हमारे अनशन-व्रती राजनीतिक कैदियोंकी समस्याका समाधान देशके लिए अत्यन्त आवश्यक हो गया है। प्राणि-शास्त्र-विशेषज्ञोंका कहना है कि मनुष्यमें सब जीवोंकी अपेक्षा दीर्घ उपवास सहन करनेकी शक्ति बहुत कम है। क्वेलनिशे त्साइटुङ्ग (Kolnische Zeitung) नामक एक जर्मन पत्रमें इस सम्बन्धमें एक रोचक लेख छपाहै, जिसका मर्म इस प्रकार है :—

"कौन जीव उपवासके कितने समयके अनन्तर प्राण त्यागता है, तुलनात्मक दृष्टिसे देखे जानेपर यह बात बड़ी चित्ताकर्षक प्रतीत होतो है। यदि गानेवाली साधारण चिड़िया को बिना दाना-पानीके रखा जाय तो वह दो ही दिनके भीतर प्राण त्याग देती है। गिलहरी तथा अन्य इसी प्रकारके जीव चार दिनके उपवाससे अधिक नहीं ठहर सकते। साहीकी श्रेणीके जो जीव जाड़े-भर निद्रावस्थामें पड़े रहते हैं वे स्वभावतः चार महीने बिना खाये रह सकते हैं। शिकारी जीव (चाहे पशु हो अथवा पक्षी) कई हफ्तों तक भूख मारनेमें समर्थ होते हैं। मछलियां, कछुवे, सांप आदि जीवोंकी उपवास-शक्ति सबसे अधिक प्रबल होती है। वे आठ-आठ, नौ-नौ महीने तक भूखे रह सकते हैं। कुछ सरीसृप (reptiles) ऐसे भी होते हैं जो एक वर्षसे भी अधिक समय लङ्घनमें बिता सकते हैं। मनुष्य, कुछ तो प्रकृतिसे तथा कुछ सभ्यताके प्रभावसे, दीर्घ उपवासके लिए बिलकुल असमर्थ सिद्ध होता है। क्षुधा-सहनकी प्रतिद्वन्द्वितामें वह सब जीवोंसे पिछड़ा हुआ है।

जर्मनीका अनुपम संग्रहालय

जर्मनीका प्रसिद्ध नगर लाइपत्सिख पुस्तक-प्रकाशनका केन्द्र है। वहांके छापेखाने भी संसार भरमें प्रसिद्ध हैं। दुनियाकी ऐसी कोई भाषा नहीं है जिसकी छपाई वहां न होती हो। मुसलिम राष्ट्रीय विद्यालय 'जामए-मिलिया'के अध्यापक डा० जाकिर हुसेनने वहां 'दीवाने-गालिब' छपवाया था। वह इतना सुन्दर छपा कि पांच हजार प्रतियां हाथोंहाथ बिक गयीं। यह हम लोगोंके लिए अवश्यमेव नितान्त लज्जाका विषय है, पर जर्मनोंकी जितनी तारीफ की जाय कम है। वहांका हिन्दी टाइप भी इतना सुन्दर होता है कि वैसा भारतमें देखनेको नहीं मिलता। मैक्समुलरने सारा ऋग्वेद मये सायणकी टीकाके जर्मन टाइपमें छपाया था। संस्कृतकी

लाइफत्सिखके जर्मन पुस्तक-संग्रहालयमें समाचार पत्र आ रहे हैं
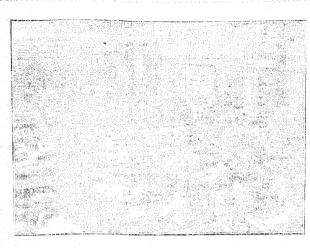
उक्त पुस्तकालयका वाचनालय

अनेक पुस्तकें यहां छपी हैं। लाइपत्सिखमें आपको सब भाषाकी पुस्तकें मिलती हैं। इस नगरमें जर्मनोंने 'डायत्शे ब्यूशराइ' नामसे संसार भरकी जर्मन पुस्तकोंका एक संग्रहालय खोला है। इसे स्थापित हुए गत ३ अक्टूबरको बीस साल हुए। इस अरसेमें इसमें प्रायः तेरह लाख जर्मन ग्रन्थ एकत्र हो गये हैं। बर्लिनका 'दास एको' नामक पत्र इस विषयपर लिखता है :—

यह पुस्तक संग्रहालय जर्मन प्रकाशकोंकी कृपाका फल है, जो इसे अपनी प्रकाशित प्रत्येक पुस्तक बिना मूल्य भेजते हैं। जर्मनीके प्रकाशकोंकी एक समिति है उसने सब प्रकाशकोंको बाध्य कर रखा है कि वे अपने ग्रन्थ यहां भेजें। जितनी अधिक किताबें, अखबार आदि इस 'ब्यूशराइ' में आते हैं उतने संसारमें अन्यत्र किसी पुस्तकालयमें नहीं आते। इसमें वे सब पुस्तकें और पत्र पहुंच जाते हैं, जो जगत्‌के किसी भागमें छपे हों। हर छठे मिनटमें एक पुस्तक यहां आती है। इसमें आपको पहली जनवरी १९१३ के बादके छपे सब ग्रन्थ, समाचार पत्र, सरकारी रिपोर्ट आदि मिल सकेंगे। इस अवधिमें एक पर्चा ऐसा न छपा जो यहां न रखा हो। विदेशोंमें भी जो कुछ जर्मन भाषामें छपता है वह भी यहां पाया जाता है। पेरिसके बिब्लियोटेक नात्सियोनालमें केवल फ्रान्समें छपे सब ग्रन्थ आते हैं। लण्डनके प्रसिद्ध ब्रिटिश म्यूजियममें स्वदेशमें छपे सब ग्रन्थ आते हैं; किन्तु इस संग्रहालयमें विदेशोंमें छपी सब जर्मन पुस्तकें भी आती हैं। अश्लील-से-अश्लील पुस्तक भी इसमें हिफाजतसे रखी जाती है, यदि वह जर्मन भाषाकी हो।

यह संग्रहालय सर्वथा पूर्ण है। इसलिए अब विशेषज्ञ इससे बहुत फायदा उठाने लगे हैं। बर्लिनकी सरकारी लाइब्रेरीमें सब पुस्तकें रखी नहीं जातीं, इसलिए अनेक ग्रन्थों, पत्रों और पर्चोंके लिए इसकी सहायता लेनी पड़ती है। इसमें पाठागार खोलकर छात्रों, अध्यापकों और अन्वेषकोंके लिए सुविधा उत्पन्न कर दी गयी है। इस रीडिङ्ग रूममें अढ़ाई सौ सीटें हैं। इसके अतिरिक्त जिसको किसी पुस्तकके लिए कुछ पूछना हुआ तो उसे सब बातें बतायी जाती हैं। इसके लिए स्वतन्त्र विभाग है जो सालमें हजारों प्रश्नोंका उत्तर देता है। इस संग्रहालयसे पता चलता है कि जर्मनीमें प्रतिवर्ष सत्तर हजार पुस्तकें छपती हैं जिनमें पुस्तक-प्रकाशक केवल सैंतीस हजार ग्रन्थ प्रकाशित करते हैं। प्रायः बाईस हजार पत्र-पत्रिकायें छपती हैं; और समाचार-पत्रोंकी संख्या १७१९४ है।

अमेरिकनोंकी दृष्टिमें तीसरी गोलमेज कान्फरेन्स

इस समय संसारके एक देशके शासनमें परिवर्तन होनेसे विश्वकी राजनीतिमें फरक पड़ जाता है। इसलिए सब देश एशियाकी राजनीतिके उलटफेरको बहुत ध्यानसे देखते रहते हैं। अमेरिका व्यापार व्यवसायमें ब्रिटेनका प्रतिद्वन्दी है। वह स्वभावतः भारतीय राजनीतिक आकाशके परिवर्तनको अध्ययन करता है। वहांके 'टाइम' पत्रने तीसरी गोलमेज परिषद्‌के विषयमें लिखते हुए सम्मति दी है :—

नरम और पतित भारतीयोंने तीसरी कानफरेन्समें भी खूब उछल-कूद मचायी। पहली कानफरेन्स स्वयं महाराज जार्जने उद्‌घाटित की। सारे संसारको यह देखकर चकित होना पड़ा कि मणिमुक्तासे खचित और रङ्ग-बिरङ्गे राजों-महाराजोंने यह कहकर ब्रिटेनका खेल बिगाड़ दिया कि हम भारतके संयुक्त-राष्ट्रमें सम्मिलित हो जायंगे। दूसरी कानफरेन्समें महात्मा गांधी सम्मिलित हुए। इसमें भारतीय आपसमें लड़ गये और उनके मतभेदका यह लाभ उठाया

गया कि ब्रिटेनने जातीय बंटवारेकी अपने मन माफिक घोषणा कर दी। महात्मा गांधीके उपवासने यह भी न चलने दिया। किन्तु ब्रिटेनको एक बातका निश्चय था। उसने भारतके पूर्वी प्रदेश बर्माको अलग करना और उसे स्वतन्त्र शासन विधान देना चाहा। इसका अंगरेजोंको इतना भरोसा था कि दूसरी और तीसरी गोलमेज परिषद्में बर्माके प्रतिनिधि न बुलाये गये। उनकी स्वतन्त्र परिषद् की गयी। पर बी० मावने यह खेल भी बिगाड़ दिया। मावके दलकी गत निर्वाचनमें विजय हुई और उसने बर्माको भारतसे विच्छिन्न करनेका प्रतिवाद गवर्नर द्वारा दिये गये मन्त्री-पदको अस्वीकार करके किया। उसके अनुयायियोंका मत है कि बर्माके अलग होते ही वहांके निवासियोंके टैक्स बढ़ जायंगे। उनपर गोरे लोग धार्मिक जबर्दस्ती करेंगे और बर्मा बेकार अंगरेजोंका स्वर्ग बन जायगा। इसी प्रकार उ० बा० पे और उ० चित दियाको मन्त्रित्व दिया। इन्होंने भी इन्कार कर दिया।

प्रयागमें भारतीय हिन्दू, मुसलमान और सिख आपसमें मिल गये। पं० मदनमोहन मालवीयने विलायतको तार भेजा कि हम मिल गये हैं और ब्रिटिशों द्वारा घोषित जातीय-बंटवारेको नहीं मानते। ब्रिटिश पत्रोंके प्रतिनिधियोंने भी तार भेजे कि यह परिषद् अनधिकारी है। अब प्रश्न उठता है कि भारतमें अधिकारी कौन है? महात्मा गांधी सम्राट्की इच्छापर यरवदा जेलमें आसन जमाये बैठे हैं। तीसरी कानफरेन्समें कोई राजा-महाराजा भी न पहुंचा। हां आगा खां वहां था, जो ब्रिटेनके हाथका पुतला है और कहींका राजा भी नहीं है। उस रोज ब्रिटेनके मजदूर दलने इस तीसरी कानफरेन्समें बैठनेसे इसलिए साफ इनकार कर दिया कि ब्रिटेनकी राष्ट्रीय सरकारने इसमें सब जी-हजूर (Yes-men) भर दिये हैं जो कुछ हकीकत नहीं रखते।

रूसको उत्तम ग्रंथोंका अभाव खटक रहा है

कई लोगोंका भ्रम है कि रूस कला और साहित्यको गिरजों और धनियोंकी भांति उजाड़नेमें लगा है। यह शिकायत स्वयं रूसी भी करते हैं। किन्तु लेनिन आदि नेता कला और उच्च साहित्यके पक्षपाती थे।

सोवियट सरकार पुस्तकोंकी बहुत ध्यानसे देखरेख करती है। यह तो सबको मालूम है कि संसार भरमें सबसे अधिक ग्रन्थ रूसमें छपते हैं। पूंजीवाद और सभ्यताके हामी देश इस विषयमें हमसे बहुत पिछड़े हुए हैं। १९३० के आंकड़े यों हैं:—

रूसमें	...	४९.०६०	पुस्तकें	छपीं
जर्मनीमें	...	२९.९६१	,,	,,
फ्रान्समें	...	९.१७६	,,	,,
अमेरिकामें	...	१०.०२७	,,	,,

ये तो आंकड़े हैं। इसपर भी रूसमें पुस्तकोंका बड़ा अभाव है। रूसके श्रमजीवी पाठक विकसित हो गये हैं। उसे अब वर्तमान साहित्यसे सन्तोष नहीं मिलता। उसे चाहिए उच्च श्रेणीके उत्तम ग्रन्थ। यह उचित आकांक्षा है। किन्तु दुर्भाग्यसे इसका पूरा होना कठिन है। किन्तु प्राचीन ग्रन्थ उत्तम हैं और लेनिनने व्यर्थ ही हमको यह न समझाया था कि हमको भूतकालकी संस्कृतिका आलोचनात्मक अध्ययन करना और जनता तक उसका ज्ञान पहुंचाना चाहिए। बिना इस ज्ञानके साम्यवादकी विजय नहीं हो सकती। प्राचीन उत्तम ग्रन्थोंकी परमावश्यकता है।
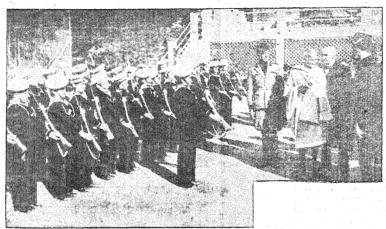
महात्मा गांधी जब इटली गये थे तो फासिस्ट बालिल्ला सैनिकोंने उनका स्वागत किया । यह उसी समयका चित्र है ।

वारसामें कैदियोंने इसलिये विद्रोह कर दिया कि इनसे ठीक सलूक नहो रहा था । कई सैनिक और कैदी हताहत हुए । सैनिकोंकी नयी टुकड़ी बुलायी गयी है ।

बर्लिनके भारतीय छात्र और छात्रायें कई प्राच्य भाषाओंके ज्ञाता ईराकके नये जर्मन राजदूतका सम्मान कर रही हैं।

विलायतके एक गिर्जेमें महात्मा गांधीका यह योग-मुद्रावाला चित्र लटका है, जिसको ईसाइयोंके पवित्र चिह्न क्रासका रूप दिया गया है।

दो साथी—लेनिन और गोर्की

स्काट्सबरोकी अदालतने सात हबशी नवयुवकोंको दो गोरी लड़कियोंपर आक्रमण करनेके अभियोगमें फांसीकी अन्यायपूर्ण सजा दी थी। सुप्रीम कोर्टमें अपील करनेपर न्यायाधीशोंने इस मामलेका पुनर्विचार करनेके लिए स्काट्सबरोकी अदालतसे कहा है। इस मामलेसे संसार भरमें हलचल मच गयी है। पाशविक सभ्यतापूर्ण अमेरिकामें काले हबशियोंका वध साधारण बात है। ऊपरके चित्रमें हबशी बालक स्काट्सबरोके अभियुक्तोंकी ओरसे अदालतके फैसलेके विरुद्ध जुलूस निकाल रहे हैं।
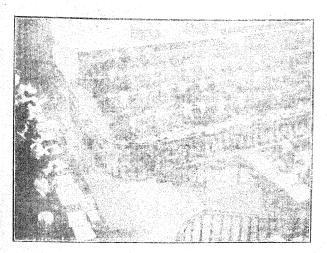
स्पेनकी प्रजातन्त्र सरकार प्रीमो दे रिवेराकी डिक्टेटरशिप स्थापित करनेवाले कुचक्रियोंके ऊपर आज ९ वर्ष बाद मामला चला रही है।

श्री केलप्पन—जिन्होंने गुरुवयूर मन्दिरमें हरिजनोंके प्रवेशके लिए देशवासियोंका ध्यान सर्व प्रथम आकर्षित किया।

क्लीवलैण्डमें पुलिसने बार्नर बेरी नामक हबशीको इसलिए पकड़ा कि वह बहुत शराब पीता है। इस दुबले-पतलेका वजन पक्का ६ मन है और कमर ६६ इञ्च है। जब पुलिसवालोंने कहा कि यह बहुत ज्यादा मोटा हो गया है तो इसने छूटते ही जवाब दिया कि मैं बढ़िया बियर पीता हूं जो तुमको नसीब नहीं। इसे जब मोटरकारमें बिठलाने लगे तो वह धसक गयी। पेट्रोलकी एक लारी मंगायी गयी और बहुत मुश्किलसे इसे उसके भीतर ठूंसा गया। जब थाने पहुंचा तो हवालातके चौड़े किवाड़ इसके लिए बहुत तङ्ग निकले। दीवार तोड़ी गयी तब कहीं बेरी महाशय भीतर जा पाये। दूसरे रोज इसने अदालतमें कहा—"मैं शराब तो जरूर पीता हूं; पर निरपराधी हूं।" इसपर जजने उसको छोड़ दिया।

जापानकी बैरोनेस शिज़ू इशिमोटो सन्तान निग्रहकी कट्टर पक्षपातिनी हैं । गत सन् १९२२ में आप अमेरिकाकी विख्यात सन्तति निरोध आन्दोलनकी नेत्री सैङ्गरको अपने साथ जापान लायी थीं कि वहां भी सन्तति निरोधका प्रचार हो । उनकी चेष्टा सफल हुई । आपके यत्नसे इस समय जापान भरमें अनेक सन्तान निरोधालय स्थापित हो गये हैं; सिर्फ टोकियोमें ६० निरोधालय हैं । हाल ही में आपने भाषण देते हुए कहा था—"केवल सन्तान-निग्रहसे जापानकी समस्या हल न होगी किन्तु उसके लिए आर्थिक स्थितिमें भी हेरफेर करना होगा,......सन्तान निग्रहसे तो केवल अज्ञान और कष्टोंका भार हलका होगा । भाषणके अन्तमें आपने कहा कि यदि १०० वर्ष पहले सन्तान निग्रहका उपाय किया जाता तो जापानकी जन-संख्यामें इतनी अधिक वृद्धि न होती और लोगोंको वासस्थान का कष्ट न होता ।

रूसके वर्तमान डिक्टेटर स्टालीनकी पत्नी नाडेझडा सर्जीना एलील्यूवा—गत नवम्बर मासमें आपकी मृत्यु हो गयी । कहते हैं कि बड़ी शानसे आपका शव-संस्कार किया गया । कबरिस्तानके पांच मीलके रास्तेमें इञ्च-इञ्च पर लाल सिपाही तैनात थे । स्वर्गीय लेनिनके बाद आप ही का इतना शानदार शव-संस्कार हुआ है ।
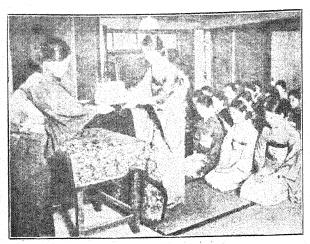
जापान एक प्राच्य देश है किन्तु वहां ऐसे स्कूल अनेक हैं जहां लड़कियोंको गिरस्तीके काम-काजकी शिक्षा दी जाती है, ताकि ब्याह हो जानेपर वे घरके काम-काजको दक्षता पूर्वक संभाल सकें। संसारके अन्य देशोंमें भी ऐसे स्कूल हैं, किन्तु जापानमें इस विषय पर विशेष ध्यान दिया जाता है। पाठक चित्रमें देखेंगे कि स्कूलमें एक छात्राको उसकी योग्यताके लिए पुरस्कार दिया जा रहा है।

नार्वेकी नोबुल पुरष्कार विजेत्री—ज़ी ग्रिट अण्टसेट्के इस वर्ष ५० वर्ष पूरे हुए।

श्रीमती विद्यागौरी नीलकण्ठी—आप लखनऊ, अखिल भारतीय महिला सम्मेलनकी अध्यक्षा थीं।

मण्डी स्टेटकी महारानी ललित-कुमारी देवीको सङ्गीतसे विशेष रुचि है। आप कानपुर, सङ्गीत सम्मेलनकी अध्यक्षा थीं।

कुमारी सीतादेवी डौस हाल ही में बैरिस्टरी पास कर इंगलैण्डसे वापस आयी हैं। आप मद्रास हाईकोर्टके अवसर प्राप्त जज मि० जस्टिस देव डौसकी पुत्री हैं। आपने कोयम्बटूरमें बैरिस्टरी शुरू कर दी है।

सावरमतीके मजदूरने यह कैसा अनर्थ कर दिया !!!
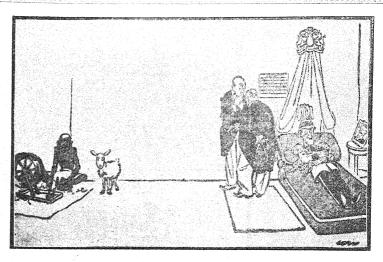
मि० लोके अलमनकसे यह व्यङ्ग चित्र लिया गया है। इसमें दिखाया गया है कि भारतके वायसराय लार्ड विलिङ्गडन ब्रटिश सरकारकी आज्ञानुसार महात्मा गांधीसे यह बात मनवानेके लिए उपवास करेंगे कि पार्लमेण्ट द्वारा स्वीकृत भावी शासन-विधानको अछत मत समझो।

विलायतके 'इगोरा' पत्रकी सम्मतिमें महात्मा गांधीका स्वराज्य-आन्दोलन ब्रटिश जनताका धन दुहनेके लिये है।

लेखक मजदूरसे—तुम मुझे भोजन दो और मेरे लिए वह मोटा काम करो जो करनेके लिए मैं तुमसे कहूं और जिसके करनेका तुम्हें बचपनसे अभ्यास रहा है, और उसके बदले में तुम्हारी दिमागी क्षुधा मिटानेके लिए दिमागी काम करूंगा जिसके करनेका पहलेसे मुझे अभ्यास है।

(Social evils and their remedy) —टाल्स्टाय।

रूस और जापान मञ्चूरियाकी ताकमें बैठे हैं। —"क्लाडरडाल्श" से

हमारा लोक-साहित्य तथा किस्सा तोता-मैना

बचपनसे ही मैं पहाड़ी मेलोंमें सम्मिलित होकर रंगीले कृषक स्त्री-पुरुषोंके नृत्य-गानमें बराबर रस लेता रहा हूँ। वहांके स्वच्छन्द वातावरणमें जो विशुद्ध आनन्द मेरी उन्मुक्त अन्तरात्मामें तरङ्गित होने लगता था, वह अवर्णनीय है। कृषक-कवि जिन नव-नव गीतोंकी झंकृत रचनासे सुन्दरी कृषक-रमणियोंको रिझाते थे, उनका एक-एक पद, एक-एक शब्द मैं बड़े ध्यानसे सुनता था। इसके अतिरिक्त जब रंगीली, छबीली अलबेलियां और मनचले कृषक-युवक रास-मण्डलकी तरह घेरा बांधकर हृदयोन्मादक तालमें गा-गाकर नृत्य करते थे, तो मन्त्र-मुग्ध-सा देखता रह जाता। स्त्रियों और पुरुषोंके घेरे अलग-अलग रहते थे, कहीं-कहीं (विशेषकर उत्तराञ्चलमें) स्त्री-पुरुषोंका एक-साथ सम्मिलित नृत्य भी होता था। इस प्रकार जिप्सी लोगोंकी तरह बन्धनहीन प्राकृतिक जीवनके आनन्दमें मैं एकदम विभोर हो जाता था और उन लोगोंके साथ मेरी सहानुभूति दिन-प्रति-दिन बढ़ती जाती थी। मुझे बहुत दिनोंसे इस बातकी लालसा थी कि उन लोगोंके साहित्यका अध्ययन करके "सभ्य साहित्यिकों" को उससे परिचित कराऊं। मैं जानता हूं कि साहित्य-सम्बन्धी अनेक विलायती तथा देशी पुस्तकोंको पढ़कर हमारे जिन विद्वान् साहित्यालोचकोंको साहित्यिक अजीर्ण हो गया है, वे अवश्य ही कृषक-साहित्यके सम्बन्धमें मेरी उक्ति सुनकर व्यङ्गपूर्वक मुसकरायेंगे। पर बात वास्तवमें हंसनेकी नहीं है। मर्मस्पर्शी साहित्य वही कहलाया जा सकता है, जो प्रकृतिके मूल उत्ससे निःसारित हुआ हो। विशुद्ध कविताका सम्बन्ध ज्ञानसे बिलकुल भी नहीं है। ज्ञान द्वारा कविताको उन्नत, सुसज्जित रूप दिया जा सकता है, सन्देह नहीं। पर वर्षाकी नदी जब प्राकृतिक वेगसे उमड़कर, उद्दाम उमङ्गसे पछाड़ खाकर सागरसे सम्मिलित होनेके लिए लालायित होती है तो उसे अपना अन्तर्क्रन्दन व्यक्त करनेके लिए किसी ज्ञानकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। दो विह्वल अन्तरात्मायें जब पारस्परिक आकर्षणका आवेग हृदयमें अनुभव करती हैं तो बिना किसी शिक्षा तथा संस्कृतिकी सहायताके स्वभावतः अपनी विकलता सरल, साधारण भाषामें परिस्फुट करनेके लिए आकुल होने लगती हैं। यह स्वाभाविक उद्गार ही यथार्थ कविता है। विरही पक्षीका गाना इसीलिए इतना मधुर लगता है कि वह स्वाभाविक है।

पहाड़के कृषक-कवि अपने नव-रचित पदोंके साथ-साथ बीच-बीचमें अपनी वाणीको रोचक बनानेके लिए कुछ ऐसे दोहे जोड़ते रहते हैं, जो हमारे लोक-साहित्यमें प्रसिद्ध हैं। पहले तो मैं समझता था कि ये दोहे भी उनके अपने रचे हुए हैं; पर पीछे जब मेरा ध्यान हमारे लोक-साहित्यकी पुस्तकोंकी ओर आकर्षित हुआ तो मुझे यथार्थता मालूम हुई।

किस्सा तोता-मैना सबसे अधिक लोकप्रिय साहित्यिक पुस्तक है। जहां रामायणको हमारे लौकिक साहित्यके पाठक भक्तिके कारण पढ़ते हैं, वहां किस्सा तोता-मैना चित्त-विनोदार्थ पढ़ा जाता है। पर लोक-प्रसिद्धि दोनोंकी प्रायः बराबर है। 'विश्वमित्र' के पाठकोंमेंसे बहुत ही कम सज्जन ऐसे होंगे जिन्होंने अपने जीवनमें कभी किस्सा तोता-मैना पढ़ा होगा। साधारणतः लोगोंकी यह धारणा रहती है कि वह एक घोर अश्लील पुस्तक है, और उससे किसी उच्च ज्ञानकी आशा भी कोई नहीं करता। अश्लीलताके सम्बन्धमें लोगोंका अपना-अपना अलग स्टैण्डार्ड रहता है। इस सम्बन्धमें विवाद करना मूर्खता है। सभ्य जीवनके कृत्रिम बन्धनोंमें बंधे रहनेके कारण हम लोग जिस बातको अश्लील

समझते हैं, हमारी 'प्रोलेटेरियन' जनता उसे सुन्दर, सुघड़ समझती है। इसमें दोनोंमेंसे किसीको भी दोष देना अन्याय होगा। पर यह होते हुए भी, मेरी तुच्छ सम्मतिमें तोता-मैनाका किस्सा सभ्य दृष्टिसे भी कुछ विशेष अश्लील नहीं है। इसकी रचना-शैली विशेष सुसंस्कृत न होनेपर भी एकदम असंस्कृत भी नहीं जान पड़ती।

इस लौकिक काव्यकी रचना कब हुई, यह बात सन् और तारीख द्वारा ठीक-ठीक नहीं बतायी जा सकती। पर अनुमानसे इतना कहा जा सकता है कि फोर्ट विलियम कालेजके हिन्दी अध्यापक लल्लूलालके युगमें अथवा उसके कुछ ही वर्ष बाद यह भी लिखा गया होगा। क्योंकि लल्लूलालकी बैताल-पचीसीकी भाषासे इसकी भाषा बहुत मिलती-जुलती है। आठ भागोंमें यह किस्सा छपा है। सातवें भागके अन्तमें लेखकका नाम इस प्रकार दिया गया है—"इति श्री तोता-मैना सातवां भाग प० रङ्गीलाल शर्माकृत सम्पूर्णम्।" स्थान-स्थानपर जो कवितायें किस्सेके भीतर दी गयी हैं उनमें भी रङ्गीलालका नाम आया है। किस्सेकी भूमिका इस प्रकार प्रारम्भ होती है—"प्रथम मैं उस पूर्ण ब्रह्म परमेश्वरकी बन्दना करता हूं कि जिसने इस अद्भुत सृष्टिको अपनी शक्तीमात्रसे ही रचना की है और मनुष्यसे लेकर च्यूंटी तकको बनाया और उनका पालन-पोषण करता है इसलिए उस सच्चिदानन्दका स्मरणकर रसिकजनोंके चित्त बहलानेके लिए एक नवीन मनहरण किस्सा तोता-मैनाको अपनी लघुमतिके अनुसार पाठकगणोंको सेवामें अर्पित करता हूं।"

लेखक यद्यपि एक 'नवीन मन-हरण किसा' सुनानेका दावा करता है, तथापि किस्सा पूरा पढ़नेसे स्पष्ट ही यह अनुभव हो जाता है कि लेखकके जमानेमें जो लौकिक कहानियां साधारण जनतामें प्रचलित थीं, उन्हींको ठीक तरह संजोकर, नमक-मिर्च लगाकर, अपनी काव्योक्तियोंसे अलंकृत करके लेखकने पुस्तकाकार प्रकाशित किया है। लौकिक कहानियोंमें काव्य-रचनाके लिए जैसा अच्छा मसाला मिल सकता है, वह अन्यत्र कहीं प्राप्त नहीं हो सकता। अल्फ-लैलाके किस्से लौकिक कथाओंके आधारपर रचित होकर ही अमरता प्राप्त कर गये हैं। ग्येटेके जगत्-विख्यात नाट्य-काव्य फौस्ट (Faust) की रचना एक लौकिक कहानीकी भित्तिपर ही हुई है। ग्येटे बचपनसे ही कठपुतलियोंके अभिनय द्वारा फौस्टकी कहानीसे परिचित था और उसपर एक महानाटक लिखनेका इरादा बहुत पहले कर चुका था। पर कई कारणोंसे वृद्धावस्थामें उसे समाप्त कर पाया। कुछ भी हो, मेरा तात्पर्य केवल इतना ही है कि लोक-प्रचलित कथायें साहित्यका एक मुख्य अङ्ग हैं।

किस्सेका बाहरी ढांचा लेखककी हो भाषा तथा शैलीमें हूबहू वर्णित किया जाता है—"रमणक द्वीपके निकट एक अति उत्तम शोभायमान उपवन फल-फूलोंसे लदा हुआ और अनेक प्रकारसे मनहर रङ्ग-विरङ्गके पक्षी कोयल मोर चकोर हंस सारस आदिसे सुशोभित अनेक तालाब और सरोवरोंसे परिपूर्ण इन्द्रके नन्दन वनके समान था उसी उपवनके अनेक सघन वृक्षोंपर अनेक पक्षियोंने अपना २ निवास स्थान बना रखा था दैवयोगसे एक दिन एक तोता आंधी मेहका मारा अति व्याकुल एक वृक्षपर अपना विपत्ति समय काटनेके लिये आ बैठा उसी वृक्षपर एक मैनाका निवास स्थान था, मैनाने जब वृक्षपर तोताको बैठा देखा तो आंख बदल बड़े क्रोधके साथ बोली कि ऐ तोता! मेरे वृक्षपर क्यों आ बैठा है यहांसे उठ और किसी वृक्षपर चला जा मैनाकी ये बात सुनकर तोता बोला कि हे मैना हम तेरा क्या बिगाड़ते हैं एक डालीपर आजकी रात बिताकर प्रातःकाल अपने स्थानको चले जायंगे यह बात तोतेकी सुनकर मैना बोली यदि तुम हजार बार कहोगे तो भी मैं न मानूंगी क्योंकि मुझे पुरुष जातिसे बड़ी अनिच्छा है संसारमें पुरुषके बराबर बेदर्द जाति कोई नहीं, ऐसी जली २ मैनाकी बात सुनकर तोता क्रोधित होकर बोला कि तू क्या आश्चर्यकी बात कहती है? पुरुषोंको बेपीर बतलाती है। इस बातको तो सब कोई कहता है कि औरतकी जात बड़ी बेपीर और बेमुरौवत होती है क्योंकि किसी कविने कहा है।

त्रिया चरित्र जाने नहिं कोय। खसम मारके सती होय॥

सो हे मैना! बेपीर जात तो औरतकी होती है। मर्दके बराबर तो बातका पक्का और सखुनका सच्चा दूसरा कोई नहीं है ऐसा कौन-सा ऐब तैंने मर्दोंमें देखा जिससे तुझे मर्दोंसे नफरत है, तब तो मैना बोली कि हे तोता! जिन बातोंसे मुझे मर्दोंसे नफरत है वह दास्तान मैं तेरे आगे कहती हूं ध्यान देकर सुन।"

इसके बाद मैना मर्दोंकी बेदर्दीका एक किस्सा कहती है। मैनाका किस्सा सुनकर तोता स्त्रियोंकी निर्दयताके सम्बन्धमें एक कहानी सुनाता है। यही सिलसिला सारी पुस्तकमें जारी है।

श्री रङ्गीलालके एक नाटकीय वर्णनका नमूना भी लीजिये—"कोयल, तुम इस पेड़पर बैठकर मीठे-मीठे शब्दोंको सुना मेरा कलेजा क्यों चाक करती हो। हाय प्राणप्यारी, देखो आपके सामने ये बागके तोता-मैना और पक्षी-गण कैसे चुपके बैठे थे और बिछुड़नेसे अब मुझे बलहीन जानकर अपनी बोली गोलीके समान मारते हैं! हे चम्पकवदनी, अब तेरा वह कोमल स्वभाव कहां गया। हे प्राण प्यारी!"...इत्यादि-इत्यादि। काव्यात्मक गद्यकी भी चाशनी चखिये—"उसकी भोली-भोली चितवन, मन्द-मन्द मुसकान, मोतीसे दसनोंकी हसन व मृगकी-सी चितवन छेदे डालती है।" पद्यका रस भी लीजिये—

नैन विशाल मनोहर सूरत मूरत याकी लगे मन भाई।
नैनन मांहि सुधा वर्षे अंग अङ्गन छाय रही तरुणाई॥
वेसर भाल बिराजत माल गुमान भरे मन लेत चुराई।
रङ्गी कहै छबि आन बसी उर भूलत नाहीं क्योंहु भुलाई॥

इसके अतिरिक्त प्रेम-सम्बन्धी अनेक दोहे पुस्तकमें भरे पड़े हैं। सुना जाता है कि अनेक "रसिका प्रेमिकायें" आज कल भी इन दोहोंको अपने प्रेम-पत्रोंमें उद्धृत करती हैं।

बैताल-पचीसी यद्यपि संस्कृतसे अनुवादित है, तथापि हमारे लोक-साहित्यके मुख्य ग्रन्थोंमें उसकी गिनती है। वर्तमान रूपमें वह हिन्दीमें पहले-पहल कब और कैसे प्रकाशित हुई, इसका इतिहास पुस्तकके प्रारम्भिक कथनमें इस प्रकार दिया गया है—"इसकी हकीकत ऐसी है कि दिल्ली शहरमें महम्मदशाह बादशाही करते थे। जयसिंह सवाई नामका जयनगरका राजा था, उसके पास सोरठ नामक कोई कवि था। उससे बोला कि बैताल-पचीसी कथा संस्कृत बोलीमें बहुत कठिन है, उसको तुम सब लोगोंके हितपर नजर कर ब्रजभाषामें करो। उस समय उस कविने राजाके हुक्म मुवाफिक ब्रजभाषामें की। तदनन्तर बङ्गालके गवर्नर जनरल मारकिस वेल्सली साहब बहादुरके अमलमें डाक्टर जानगिल-क्रिस्त साहबकी मददसे, फिर उसे लल्लूलाल कविने हिन्दुस्तानी जबानमें किया। फिर उसे कप्तान माटेंके हुक्मके मुवाफिक तारिणीचरण मिश्र कविने हिन्दुस्तानी जबानमें सही करके बङ्गालेकी पाठशालाओंके फायदेके वास्ते मुकाबला करके छपवाया।"

इससे यह समझना चाहिए कि वर्तमान ग्रन्थ लल्लूलालने ही लिखा है, तारिणीचरण मिश्र महाशयने केवल उनकी भाषा 'सही' की है। पुस्तककी भूमिकाकी भाषा उर्दू होनेपर भी भीतरका कथानक शुद्ध संस्कृत-पूर्ण हिन्दीमें वर्णित है। बैताल-पचीसीसे आज हमारी 'प्रोलेटेरियन' जनताका वैसा ही मनोरञ्जन होता है, जैसा प्राचीन युगमें धारानगरीकी जनताका हुआ होगा। इससे यह पता चलता है कि हमारे लौकिक साहित्यके वर्तमान पाठकोंकी रुचि कुछ विकृत नहीं हुई है। 'किस्सा तोता-मैना' को हम लोग घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं, पर यदि निष्पक्षतापूर्वक देखा जाय तो मालूम होगा कि बैताल पचीसीसे वह रुचि तथा विषय-वर्णनमें किसी अंशमें भी हीन नहीं है।

सिंहासन-बत्तीसीका भी इतिहास प्रायः उसी प्रकार है, जैसा बैताल-पचीसीका। यह भी एक लौकिक कथानक-ग्रन्थ है। 'सारङ्गा-सदावृ(ब्र)ज' भी लोक-साहित्यका एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। बैजनाथप्रसाद बुकसेलर, बनारस द्वारा प्रकाशित संस्करणमें इसके लेखकका नाम दिया गया है बाबा गोरखनाथ। चार भागोंमें पुस्तक समाप्त है और चारों भागोंमें चार प्रकारकी भाषा भी है—खड़ी, ब्रज, बुन्देलखण्डी और मारवाड़ी। दूसरे भागकी भाषाका एक नमूना यहां दिया जाता है—"सदाबृज बोले कि मालिन! सारङ्गामें कैसे २ गुण हैं और वाको पीहर कहां है और कवनकी बेटी है। तनक हमें वाको देखनेकी अभिलाषा है तो दिखाय दीजो।" सारङ्गा और सदाबृजकी प्रेम-कहानी इसमें वर्णित है। वर्णन गद्य-पद्यमय है और शैली अत्यन्त ललित तथा सुकुमार है। पर कहीं-कहीं अश्लीलता आ गयी है, जो सम्भवतः तात्कालिक समाजमें क्षम्य समझी जाती थी। पद्यका लालित्य भी कमनीय है। उदाहरणके लिए दो-एक पद यहां पर दिये जाते हैं—

कैसे किये सिंगार कि भूषण मालिनी।
आयी परघर नारि कि अभरन नागिनी॥
गले मनोहर हार कि बेला मोतिया।
पायल ठुमके पाय कि बाजत बीछिया॥

उत्तर दिशि है अगम समय नहिं पाइयां ।
जल्दी करके साज बराती लाइयां ॥
नदी बहति अस धार कि बरसा छाइयां ।
चलना केतिक दूर बराती हारियां ॥

बहुतसे पद्य तो विशुद्ध मारवाड़ी भाषामें लिखे गये हैं। कहानी भी मारवाड़ी प्रतीत होती है ।

आल्हा-ऊदलकी कहानीसे तो युक्त प्रान्त तथा बिहारके प्रायः सभी पाठक परिचित होंगे । इनके सम्बन्धमें लौकिक कवियोंने जो रचनायें लिखी हैं, उनका प्रचार लोक-साहित्य क्षेत्रमें बहुत अधिक है । नौटङ्कीकी गिनती भी लोक-साहित्य में की जा सकती है । वर्तमान समयमें भी लौकिक कवि निरुद्यम नहीं हैं । नित्य नाना प्रकारके गीतों तथा गजलोंकी लोक-प्रिय पुस्तकें तथा पुस्तिकायें बाजारमें निकलती रहती हैं।

ग्रामीणोंमें जिन सङ्गीतोंका प्रचलन है, उसकी गिनती भी लोक-साहित्यमें हो सकती है । अनाम, अव्यक्त लौकिक कवियों द्वारा वे रचे गये हैं । जिन्होंने उन्हें रचा है, उनका हृदय किसी सुसंस्कृत कविसे कम वेदनशील नहीं था । बल्कि यह कहना ठीक होगा कि उन्हींकी वेदना अधिक वास्तविक तथा निर्झर-धाराकी तरह स्वतःस्फूर्त थी। लोक-साहित्यमें कितनी ही त्रुटियां, कैसी ही अपूर्णता क्यों न हो, वह बेदाना अङ्गूरकी तरह कविताके अमिश्रित रससे छलकता है । इसके भीतर ज्ञानके दाने नहीं हैं । अथवा यह कहना अधिक उचित होगा कि सभ्य, सुसंस्कृत, विद्वान् कवियोंकी कविता अंगूरकी शराब है, और लौकिक कवियोंकी कविता स्वयं अंगूर है ।

लोक-साहित्यके प्रति जनताका ध्यान आकर्षित करना ही इस क्षुद्र लेखका उद्देश्य है। मैं स्वयं इस साहित्यमें पारङ्गत नहीं हूं । केवल इस सम्बन्धमें एक सामान्य idea मैंने पाठकोंको देनेकी चेष्टा की है ।

लोक-साहित्यकी उन्नति किस प्रकार हो सकती है, यूरोपमें बहुत वर्षोंसे इस सम्बन्धमें वाद-विवाद चल रहा है। टाल्सटायने ही सबसे पहले वहांकी जनताको इस ओर प्रवृत्त किया था । अपनी What is Art शीर्षक पुस्तकमें उन्होंने दिखाया था कि जो कला जन-साधारणके लिए उपयोगी न हो, उनकी बुद्धि तथा ज्ञानके बाहर हो, वह कोई कला ही नहीं है । बाइबिलको उन्होंने संसारका (अर्थात् पाश्चात्य जगत्का, क्योंकि अधिकांश यूरोपियनोंके लिए वास्तविक संसार पाश्चात्य जगत्में ही समाप्त हो जाता है, और टाल्सटायकी भी यही धारणा थी, यद्यपि भारतके प्रति उनके हृदयमें बिलकुल विद्वेष नहीं था) सर्वश्रेष्ठ कला-ग्रन्थ इसीलिए माना है कि साधारण जनता उसमें पूरा आनन्द लेती है । तुलसीदासकी रामायण भी हमारे यहां सर्वश्रेष्ठ साहित्य-ग्रन्थ इसीलिए मानी जाती है कि वह लोक-साहित्यकी दृष्टिसे भी सर्वश्रेष्ठ रचना है । रूसमें टाल्सटायके समय तथा उनके बाद अनेक श्रेष्ठ साहित्यिकोंने साधारण जनताके जीवनको लेकर अपनी कलाका चमत्कार दिखाया है । गोर्कीकी तो कुल रचनायें साधारण जनताके जीवनसे सम्बन्धित हैं ? रोमांरोलांने अपने Theatre du peuple में इस विषयकी चर्चा की है कि लोक-साहित्यको किस प्रकार सुसंस्कृत साहित्यकी श्रेणीमें लाया जाय । हमारे यहां तुलसीदास तथा नजीर, ये दो कवि ऐसे हुए हैं जिन्होंने रोमां रोलांके उद्देश्यको कभी कार्य-रूपमें परिणत करके दिखा दिया था । रोमां रोलांका तो यहां तक कहना है कि शेक्सपीयर भी लौकिक कवि कहा जा सकता है, क्योंकि उसके नाटकोंके अभिनयमें साधारण जनता काफी दिलचस्पी लेती है, और अपनी धारणानुसार उन्हें समझनेमें समर्थ है । कुछ भी हो, हिन्दीके नव-युगके उत्साही लेखकोंसे हमारी प्रार्थना है कि वे भी हमारे लोक-साहित्यके प्रति आकर्षित होकर उसकी उन्नतिके लिए यथेष्ट प्रयत्न करेंगे ।

—इलाचन्द्र

पुस्तक-परिचय

(समालोचनाके लिए प्रत्येक पुस्तककी दो-दो प्रतियां आनी चाहिएं। एक पुस्तक आनेसे केवल प्राप्ति-स्वीकार ही प्रकाशित हो सकेगा।—स०)

हमारा कलङ्क। लेखक—महात्मा गांधी ; अनुवादके प्रकाशक—सस्ता साहित्य मण्डल, अजमेर। मूल्य ॥=)।

इस पुस्तकमें महात्माजीके उन लेखोंका संग्रह है जो उन्होंने समय-समयपर अस्पृश्यतापर लिखे हैं। अछूतोद्धारके लिए वर्षोंसे महात्माजी जिस प्रकार निरन्तर प्रयत्न करते चले आ रहे हैं, उससे सर्वसाधारण भली भांति परिचित हैं। अपने हृदयकी सहज अनुभूति, स्वाभाविक प्रेरणासे वह अछूतोंको अपना ही अङ्ग समझते हैं। इसके लिए उन्हें मस्तिष्ककी किसी चेष्टाकी आवश्यकता नहीं हुई। यही कारण है कि पीड़ित अछूतोंके सम्बन्धमें उनकी वाणी सीधे मर्ममें आकर लगती है। प्रस्तुत पुस्तकमें जो लेख दिये गये हैं उनसे इस विषयपर उनके विचार स्पष्ट रूपमें व्यक्त हो जाते हैं। परिशिष्टमें महात्माजीके वे वक्तव्य भी दिये गये हैं जो उन्होंने इस सम्बन्धमें हालमें घोषित किये हैं। नीचे पुस्तकके भिन्न-भिन्न लेखोंसे लेकर महात्माजीके कुछ विशेष कथनोंको हम पाठकोंके मननार्थ उद्धृत करते हैं।

(१) वकील, डाक्टर अथवा कलक्टर भङ्गीकी अपेक्षा समाजकी जरा भी अधिक सेवा नहीं करते (२) ईश्वर हमें दण्ड दे रहा है। हम उन्हें भङ्गी मानकर दूर करते हैं तो सारा संसार हमें भङ्गी मानकर छूने नहीं देता। अफ्रीकासे आनेवाले किसी भी व्यक्तिसे पूछिये तो आपको पता चलेगा कि वहां कोई भी गोरा शराबी, कबाबी, वेश्यागामी और जुआरी होनेपर भी आपको छूनेसे परहेज करता है या नहीं ? रेलवेमें, ट्राममें, हम गोरोंके साथ चल नहीं सकते। (३) अन्त्यज यदि मुसलमान हो जाय तो मैं उसे छू लेता हूं; ईसाई हो जाने पर उसे सलाम तक करता हूं, उनको छूनेमें पाप नहीं समझता, किन्तु स्वयं उस अन्त्यजको छूनेमें मुझे सङ्कोच हो, इससे बढ़कर आश्चर्यकी बात और क्या होगी।

इंगलैण्डमें महात्माजी। लेखक—श्री महादेव देसाई; अनुवादक—श्री शङ्करलाल वर्मा ; प्रकाशक–सस्ता साहित्य मण्डल, अजमेर। मूल्य एक रुपया।

गांधी-अर्विन समझौतेके बाद जब महात्माजी गोलमेजमें सम्मिलित होनेके लिए विलायत गये थे तो उनकी उस ऐतिहासिक यात्राने संसारमें धूम मचा दी थी। जिस 'नङ्गे फकीर'का नाम यूरोप वाले रात-दिन असंख्य पत्रों तथा सैकड़ों पुस्तकोंमें पढ़ते चले आते थे, जिस अद्वितीय पुरुषके आश्चर्यजनक आदर्शों तथा विस्मयकर उद्योगोंकी चर्चा निरन्तर सुनकर वे लोग चकित तथा स्तम्भित थे, उन्हें सशरीर उसी वेशमें अपने सामने उपस्थित देखकर किस हर्षोल्लाससे उन लोगोंने उसका स्वागत किया, प्रस्तुत पुस्तकमें अत्यन्त रोचक शैलीमें उसका वर्णन है। रोमा रोलां; चार्ली चैपलिन, लायड जार्ज आदिके साथ महात्माजीके कथोपकथनका भी ब्योरा इसमें है। लैङ्काशायरके प्रेमियोंसे लेकर भारत-विरोधी पत्रोंके गुण्डे रिपोर्टरों तकके सभी विषयोंका दिलचस्प किस्सा आप इस पुस्तकमें पायेंगे। इसके अतिरिक्त गोलमेजी चक्करमें महात्माजीने किस प्रकार भाग लिया था उसका भी पूरा वृत्तान्त इसमें दिया गया है। देसाई महाशय महात्माजीके साथ विलायत गये थे और प्रति सप्ताह यङ्ग इण्डियाके लिए उनकी यात्राका हाल लिखकर छपाते रहते थे। उन्हीं लेखोंका यह संग्रह है।

रोटीका सवाल। मूल लेखक—प्रिन्स कुरोपाटकिन; अनुवादक—श्री गोपीकृष्ण विजयवर्गीय; प्रकाशक—सस्ता साहित्य मण्डल, अजमेर। मूल्य एक रुपया।

प्रसिद्ध साम्यवादी लेखक तथा क्रान्तिकारी राजकुमार क्रोपाटकिनके नामसे पाठक अवश्य ही परिचित होंगे। उनकी लिखी The Conquest of Bread नामक अंगरेजी पुस्तक जगत्-विख्यात हो चुकी है। यह पुस्तक रूसी क्रान्ति-

से पहले ही लिखी जा चुकी थी। इसमें क्रोपाटकिनने दिखाया है कि यूरोपके कृषकों तथा श्रमिकोंकी कसी दुरवस्था है, और अराजक साम्यवादके आदर्श तथा उसके व्यावहारिक सिद्धान्तोंके अनुसार सम्मिलित उद्योग करनेसे किस प्रकार सर्वसाधारणके पेटका सवाल अत्यन्त सुन्दर रूपसे हल हो सकता है। विषय रूखा होनेपर भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, और क्रोपाटकिनने अपनी स्वाभाविक रोचक शैलीसे उसे अत्यन्त आकर्षक बना दिया है। क्रोपाटकिन स्वयं क्रान्तिकारी था और जार द्वारा निर्वासित था। इसके अतिरिक्त उसने कठोर अध्यवसायसे अपने विषयका व्यावहारिक अध्ययन किया था। वह एक-साथ राजनीतिक, क्रान्तिकारी, वैज्ञानिक, भूगोलवेत्ता, साहित्यिक तथा दार्शनिक था। भिन्न-भिन्न विषयों पर उसने प्रामाणिक पुस्तकें भी लिखी हैं। पर उसकी मुख्य प्रवृत्ति अराजक साम्यवादके प्रचारकी ओर थी। इस पुस्तकमें उसने अपने विविध अनुभवोंका उपयोग किया है। पुस्तक पठनीय तथा मननीय है। ऐसी पुस्तकका जितना प्रचार हो अच्छा है।

डी वेलरा – विषयक दो पुस्तकें। प्रथम पुस्तकके लेखक—श्री उमादत्त शर्मा; प्रकाशक—श्री हरिहरानन्द, हरिहर पुस्तक-भण्डार, २-३ चित्तरञ्जन एवन्यू (साउथ), कलकत्ता; मूल्य १।)। दूसरी पुस्तकके लेखक तथा प्रकाशक—श्री नारायणप्रसाद अरोड़ा, पटकापूर, कानपूर; मूल्य—१)।

आयर्लैण्डके भाग्य-विधाता वीर डी वालेराके जीवन-चरितके सम्बन्धमें जानकारी रखनेकी इच्छा सभी पाठकोंको होती है। पर हिन्दीके बहुतसे पाठक अंगरेजी न जाननेके कारण इस सम्बन्धमें असमर्थ ही रह जाते हैं। हर्षका विषय है कि इधर डी वालेराकी दो जीवनियां हिन्दीमें प्रकाशित हो गयी हैं। पर दोनोंका विषय एक ही होनेपर भी उनके बाहरी तथा भीतरी रूपमें विशेष विभिन्नता पायी जाती है। पहली पुस्तक (जिसके लेखक श्री उमादत्तजी हैं) में डी वालेराकी जीवनीके साथ ही आयरिश जातिका विस्तृत इतिहास तथा उसकी राजनीतिक प्रगतिका विश्लेषणात्मक विवरण अत्यन्त प्राञ्जल भाषामें सुन्दर रूपसे वर्णित है, जिससे पाठकोंको वर्तमान आयर्लैण्डकी क्रान्तिका इतिहास समझनेमें बड़ी सुविधा प्राप्त होती है। दूसरी पुस्तकमें (जिसके लेखक श्री नारायणप्रसाद अरोड़ा हैं) डी वालेराकी विस्तृत जीवनी दी गयी है। दोनों पुस्तकोंका बाहरी और भीतरी गेट-अप आकर्षक है। अरोड़ाजीकी पुस्तककी पृष्ठ-संख्या १८३ तथा दूसरी पुस्तककी २०६ है। पुस्तकें दोनों ही उपयोगी हैं और आयर्लैण्डका वर्तमान राजनीतिक वातावरण जाननेके लिये आवश्यक हैं।

छात्रहितकारी पुस्तकमालाकी सात पुस्तकें—(१) विद्यासागर, (२) लोकमान्य तिलक, (३) शिवाजी, (४) स्वामी दयानन्द, (५) श्रीकृष्ण, (६) महाराणा प्रताप, (७) महात्मा बुद्ध। प्रकाशक—छात्रहितकारी पुस्तकमाला, दारागञ्ज, प्रयाग। मूल्य—प्रत्येक पुस्तकका चार आना।

इधर कुछ समयसे प्रयागकी छात्रहितकारी पुस्तकमाला अपने बाल-चरित-माला विभागसे देशके प्राचीन तथा अर्वाचीन प्रतिभाशाली पुरुषोंकी बालकोपयोगी जीवनियां प्रकाशित करके हिन्दी-जनताका विशेष हित-साधन कर रही है। सभी जीवनियां सुन्दर, सरल भाषामें लिखी गयी हैं। पुस्तकोंकी छपाई-सफाई भी अच्छी है। प्रत्येक जीवनीके कवर पृष्ठपर चरित नायकका चित्र सजाकर दिया गया है। हमें पूरी आशा है कि बालक इन जीवनियोंको विशेष रुचिसे पढ़ेंगे।

चित्रपट। लेखक—श्री शान्तिप्रसाद वर्मा; प्रकाशक—सस्ता साहित्य-मण्डल, अजमेर। मूल्य—छ आना।

यह एक 'गद्यकाव्य' है। प्रत्येक 'गद्य-कविता' रवीन्द्रनाथकी अंगरेजी गीताञ्जलिकी कविताओंके अनुरूप है, अथवा यह कहना उचित होगा कि इसकी कवितायें अंगरेजी गीताञ्जलि तथा रवीन्द्रनाथकी इसी श्रेणीकी अन्य पुस्तकोंकी कविताओंके अनुकरणमें लिखी गयीं। कहीं-कहीं तो अनुकरण शत-प्रतिशत सफल हुआ है। मौलिकताकी गन्धका लेश भी इन कविताओंमें नहीं पाया जाता।

"दीमक"

हंसका स्वदेशांक।—प्रेमचन्दजी द्वारा सम्पादित होकर "हंस" कुछ वर्षोंसे हिन्दी-जनताकी प्रशंसनीय सेवा करता चला आता था। इधर कुछ महीने पहले जब प्रेमचन्दजीने उसका स्वदेशाङ्क निकालनेका विचार किया तो उससे बीच हीमें जमानत मांग ली गयी। इस कारण कई महीनों तक बीचमें वह निकल न सका। अन्तको किसी प्रकारसे सम्पादक तथा

प्रकाशक महोदयोंने उसे निकाल ही डाला। "हंस"का यह स्वदेशाङ्क बहुत सुन्दर निकला है। लेखोंका चयन भी खासा अच्छा है। हिन्दीके प्रायः सभी विद्वानोंके लेख इसमें छपे हैं। एक बात जो हमें खटकी वह यह है कि प्रूफकी बहुत-सी अशुद्धियां लेखोंमें रह गयी हैं, जिसके कारण कहीं-कहींपर अर्थका अनर्थ हो गया है। वैसे तो हिन्दीमें किसी भी प्रकाशन-संस्थासे यह आशा कभी नहीं की जा सकती कि वह हिन्दीकी कोई भी पुस्तक अथवा सामयिक पत्र विशुद्ध रूपमें छाप सकेगा, तथापि यथाशक्ति कम गलतियां रहें, इसके लिए चेष्टा करना सबका कर्त्तव्य होना चाहिए। विशेष परिश्रमकी आवश्यकता है। कुछ भी हो, समग्रता और उपयोगिताकी दृष्टिसे पत्र बहुत उत्तम निकला है। "हंस"के अधिकारियोंको इसके लिए हम बधाई देते हैं।
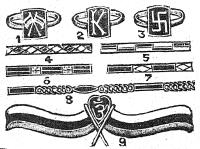
"घटकर्पर"

रवीन्द्रनाथ वास्तवमें क्या हैं ? किस लीलामय रूप द्वारा वह हम भक्तगणोंको किस उद्देश्यसे छका रहे हैं ? छलिया कृष्णकी तरह यह उनकी कैसी मोहन माया है ! कभी वह श्रृङ्गारी कविके रूपमें हमारे सामने व्यक्त होते हैं, कभी 'ऋषि'का रूप धरते हैं (उनके एक ख्यातिप्राप्त शिष्यने हालमें लिखा था कि हमारे प्राचीन ऋषि उनकी जूतियोंकी धूल झाड़नेके योग्य न थे) ; कभी शान्ति-निकेतनमें आंखें मूंदकर परम-पुरुषसे बातें करते हैं, कभी कलकत्तेके रङ्गमञ्चों-पर अपने आश्रमकी लड़कियोंको नाना अङ्ग-भङ्गियोंसे नचाते हैं ; कभी अपनी स्वतन्त्र, निर्लेप प्रवृत्तिका परिचय देते हैं, कभी कलकत्तेकी यूनिवर्सिटीके चक्करमें फंसकर वार्षिक वेतन स्वीकार कर लेते हैं ; कभी महात्मा गांधीके मूलतः विरोधी हो उठते हैं, कभी उन्हें परम सिद्ध मानकर सबको उनका जयनाद सुनाते हैं। 'अनेक रूपरूपाय विष्णवे प्रभ विष्णवे !' कौन जानता था कि शान्तिनिकेतनके पवित्र आश्रममें बैठकर, बात-बातमें उपनिषदोंकी दुहाई देकर "एकोऽहं बहुस्याम्"का कीर्तन करनेवाले हम लोगों (विशेषकर महात्मा गांधी) के माननीय "गुरुदेव" वैज्ञानिक (अर्थात् अप्राकृतिक) उपायों से गर्भ-निरोधका समर्थन करेंगे ! ज्यों-ज्यों अवस्था बढ़ती जाती है त्यों-त्यों हमारे कविवरजी अधिकाधिक रंगीले होते जाते हैं ! हजरत फरमाते हैं—"जिस युगमें वैज्ञानिक उपाय आविष्कृत तथा सहज-प्राप्त न थे, उस युगमें सब प्रकारके कष्टोंको सहकर भी मनुष्यकी प्रवृत्तिने प्रजाजननकी सहायता की है। अब जब उपाय आविष्कृत हो गये हैं तो मनुष्य सहजमें अपनी इच्छा द्वारा ही प्रजाजनन नियन्त्रित करेगा।" केवल इतना ही नहीं; मनुष्यकी "अतृप्त काम-क्षुधा"के निवारणकी चिन्ता गुरुदेवको विकल किये डालती है। क्यों न हो, क्रौञ्च-मिथनका वियोग न सह सकनेवाले बाल्मीकि ऋषिकी तरह वह भी तो परम कारुणिक हैं—"हमारे जैसे देशमें, जहां जीविकाका अन्न नितान्त ही परिमित है, वहां जीवितकी अतृप्त (काम-) क्षुधाके दावाका भी परिमाण न रहेगा, इससे अधिक निष्ठुरता और क्या हो सकती है ! उपदेष्टा-गण संयमका परामर्श देते हैं, पर प्रत्यक्ष दुःख भी जिन्हें शिक्षा नहीं दे सकता, मुखके उपदेशका कोई प्रभाव उनपर नहीं पड़ सकता। अधिक संख्यामें गर्भ धारण करनेसे स्त्रियोंके स्वास्थ्य, शान्ति तथा आत्म-सम्मानके प्रति अनेक समय कैसा असह्य अत्याचार होता है, अनुसन्धान-कर्ताओंके ग्रन्थोंमें इसके यथेष्ट प्रमाण पाये जाते हैं।" इस गड़बड़-झाला उक्तिका निचोड़ यही है कि एक ओर तो गर्भ-नियन्त्रण करो, दूसरी ओर संयमको तलाक दो और यथेच्छ रूपसे काम-वासनाको चरितार्थ करो। अर्थात् शिष्य (महात्मा गांधी) ने इस सम्बन्धमें जिस मतवादका प्रचार किया है, गुरुका मत बिलकुल उसका उलटा है। गुरु-शिष्यका यह द्वन्द्व हम जैसे तमाशबीनोंको बड़ा दिलचस्प मालूम होता है।

बङ्गालमें अबङ्गालियोंकी आर्थिक उन्नति देखकर आचार्य-प्रवर श्रीमन् प्रफुल्लचन्द्र राय किस प्रकार पुलकित हैं, यह बात किसीसे छिपी नहीं है। उन्होंने अबङ्गालियोंको राक्षसवत् निष्ठुर तथा उन्मत्त बताया है। उनका कहना है कि वे बङ्गमाताकी छातीपर चढ़कर उसका रक्त-शोषण कर रहे हैं।

बार-बार इसी एक सदोक्तिके दुहराते रहनेपर भी जब वह देखते हैं कि अबङ्गाली अपना बोरिया-बिस्तर बांधनेका कोई लक्षण प्रकट नहीं कर रहे हैं, तो उनका खीझना स्वाभाविक ही है। फिर भी उनकी प्रकृतिमें एक बड़ी तारीफकी बात पायी जाती है। यदि कोई दुर्बल-स्वभाव, अनध्यवसायी तथा अधीर व्यक्ति होता, तो इस प्रकारके निरन्तर प्रयासका कोई प्रत्यक्ष फल न देखकर कभीका ठण्डा पड़ गया होता। पर आचार्य-जीका स्वभाव वैसा ही कठोर प्रयत्नशील है, जैसा एक वैज्ञानिकका होना चाहिए। जीवन-भर असफलता तथा बाधाओं-का उल्लङ्घन करनेपर ही वास्तविक वैज्ञानिक अन्तको अपने किसी विशेष नवीन सिद्धान्तके सम्बन्धमें सिद्धि प्राप्त करनेमें समर्थ होता है। सतत प्रयत्नके महत्त्वसे राय महाशय भली भांति परिचित हैं। इसलिए जब उन्होंने बङ्गाल-निवासी अबङ्गालियोंके समूल विनाशका दृढ़ सङ्कल्प कर लिया है, तो अन्त तक अपनी असफल चेष्टाको सफल बनानेके लिए "अथक" परिश्रम करते रहेंगे, इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं। इसीलिए हम देखते हैं कि माघ मासके "प्रवासी"में उन्होंने फिर एक बार अबङ्गालियोंका श्राद्ध किया है। हम आशा करते हैं कि यह "एकोद्दिष्ट" श्राद्ध वात्सरिक नियमसे बराबर जारी रहेगा।

बर्नार्ड शाने हालमें विलायतकी धूलिसे भारतीय मिट्टीको पवित्र करते हुए बम्बईके पत्रकारोंसे इण्टरव्यूमें फरमाया है कि विलायतमें भी अछूत-प्रथा जारी है। वहां कोई भी सम्भ्रान्त-वंशीय व्यक्ति श्रमिक-जातीय पुरुषोंके संस्पर्शमें नहीं आना चाहता। यह उक्ति सुनकर अवश्य ही हमारे अछूत भाइयोंने आरामकी एक लम्बी सांस ली होगी। परन्तु "सछूत" भाई भी यह सोचकर कुछ कम सन्तुष्ट न होंगे कि सम्भ्रान्तवंशी विलायती (य) उनके सहजातीय हैं। उनके मनमें अवश्य ही इस बातसे प्रबोध हुआ होगा कि सुधारवादी सम्भ्रान्त भावका कैसा ही विरोध क्यों न करें, भीतर-ही-भीतर उसे विशेष सम्भ्रमकी दृष्टिसे देखते हैं। जिस प्रकार हम लोग विशुद्ध स्वदेशवादी होने पर भी यूरोपियनों तथा अधगोरोंसे वार्तालाप करते समय भक्ति-विह्वल हो जाते हैं, उसी प्रकार विलायतके मजदूर लार्ड लोगोंको गालियां देते हुए भी मन-ही-मन उनके सम्भ्रान्त गौरवसे विभ्रान्त हैं, अनुभवी विशेषज्ञोंसे यह बात छिपी नहीं है। प्रधान मन्त्री मेकडानल्डकी प्रवृत्तिसे हम इसका ज्वलन्त प्रमाण पाते हैं। मजदूर दलके अन्तर्गत होनेपर भी लार्डोंकी खुशामदसे गद्गद होकर उन्होंने स्वपक्षियोंकी छातीपर मूंग दलना प्रारम्भ कर दिया है। इससे स्पष्ट ही लार्ड लोग अपनी विजय देखकर दर्पस्फीत हो उठे हैं। हमारे "सछूत" भाई भी यदि उसी प्रकार यह सोचकर फूल उठें कि "अछूत" मन-ही-मन उनका सम्मान करते हैं, और फलतः इस धारणाके वशीभूत होकर यदि अपना "सछूतपन" कायम रखनेके लिए भीतर-ही-भीतर अधिक प्रयत्नशील हो जायं तो इस बातमें किस परिमाणमें अर्थ होगा और कितना अनर्थ, यह विचारणीय है।

बम्बईकी सरकारने महात्मा गांधी-सम्बन्धी चौदह फिल्मों-पर निषेधाज्ञा जारी कर दी है। सेन्सरकी कड़ी निगाहसे बचने-पर भी सरकारकी श्येन-दृष्टिसे वे न बच सके। सरकारकी दूर-दर्शिता तथा लोक-हितेच्छाकी तारीफ करनी ही पड़ती है। भला एक अधनङ्गे फकीरके सम्बन्धके अश्लील चित्रोंसे जनताका क्या उपकार हो सकता है? बल्कि उनके प्रदर्शनसे लोक-रुचिके समधिक विकृत हो जानेकी सम्भावना ही अधिक है। अमेरिकन नर्तकियोंके नग्न नृत्यसे तो "कल्चर" का प्रचार बढ़ता है। पर लंगोटिया गांधीके चित्र और चरित्रसे केवल लोक-रुचि विकृत होनेके सिवा और कोई लाभ नहीं है। इस-लिए चुम्बन, आलिङ्गन, व्यभिचार, डायवोर्स, मद्यपान, जुआ, चोरी, डकैती, खून आदि विषयोंकी ओर जन-साधारणकी रुचि भड़कानेवाले फिल्मोंका अधिकाधिक प्रचलन सभ्य संस्कृतिकी उन्नतिके लिए सरकार परमावश्यक समझती है, पर सरल मानवताके स्वाभाविक आदर्शके प्रचारक गांधीजीके चित्रोंसे दुर्नीतिका फैलना अनिवार्य है। सरकारको इस शुभ-बुद्धि पर अनेक बधाइयां मिलनी चाहिएं।

इस हाथीके बच्चेके पांव टूट गये थे। उनका इलाज किया गया और उसके दो पांव रबरके बनाये गये। इन नकली पांवोंसे चलना उसके लिए बहुत कठिन है। पर वह धीमे-धीमे नकली पांवोंकी सहायतासे चलना फिरना सीख रहा है।
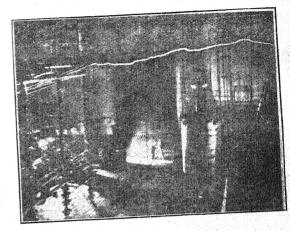
आकाशमें बिजलीकी चकाचौंध देखकर वैज्ञानिकोंने विद्युत् शक्तिका चमत्कार देखा और उसका आविष्कार किया। इस विद्युत्ने आज संसारको उन्नतिकी पराकाष्ठा तक पहुंचा दिया है। अब विज्ञान इतना आगे बढ़ गया है कि वह अपनी लेबोरेटरीमें बिजली कड़काने लगा है। पाठक इस चित्रमें देखेंगे कि प्रयोगशालामें दस हजार वोल्टकी बिजली कड़काई जा रही है।
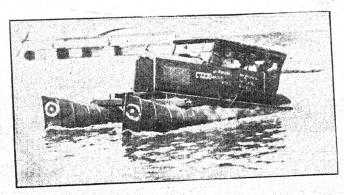
यह मोटरकार समुद्रमें चलता है। इसमें पहियोंकी जगह रबरके दो कुन्दे लगाये गये हैं। इनके आगेकी नोकें तीखी करनेसे वे आसानीसे पानीको चीरते हैं। इसकी चाल प्रति घण्टे दस मील है। कोई भी मोटर ड्राइवर इसे चला सकता है क्योंकि इसके और सब पुर्जे वही हैं।
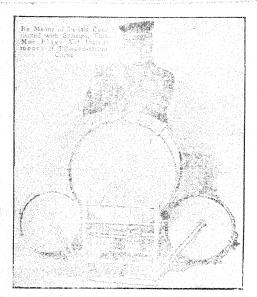
सुदूर देहातमें कभी-कभी दो-तीन ही घर होते हैं और वहां बाजेकी सुविधा नहीं रहती। पर गोरे लोगों-को बिना बाजेके चैन नहीं मिलता। इसलिए यह नया और सस्ता बाजा बना है। इसमें एक आदमी काम करता है और वह चार बाजे एक साथ बजा सकता है। ढोल, झांझ आदिको उसके पैर पीटते हैं और वह स्वयं मुरली, अलगोजा, हारमोनिका आदि मुंहसे बजा सकता है। यह आविष्कार आयोवाके एक किसानका है।

सौर जगत्‌का यह नया नक्शा बना है। बीचमें बड़ा गोला सूर्य है। छोटे गोले ग्रह,उपग्रह हैं। हर एक-की परिधि गोल तारसे बनायी गयी है। वर्षके किस मास और दिनमें कौन ग्रह कहां रहता है और उसके किस ओर और कितनी दूर सूर्य रहता है यह इन ग्रहों और उपग्रहोंको सरकाकर बताया जाता है। पाठक देखें कि छात्र किस तन्मयतासे इसका निरीक्षण कर रहे हैं।

अमेरिकामें हर चार आदमीके पीछे एक मोटरकार है। वहां मामूली मजदूर भी मोटरकार रखते हैं। इस सान लगानेवालेने अपनी मोटरमें सानका पत्थर लग-वाया है और वह इसे एक बेल्टसे चलाता है जिसका सम्बन्ध मोटरकारके इञ्जिनके पङ्खेके बेल्टसे है। जब सान चढ़ानेकी दरकार हुई यह बेल्ट जोड़ दिया जाता है और मोटरकार चलाना हुआ तो सानके पत्थरका बेल्ट उठा लिया और आगे बढ़े।

रूस—
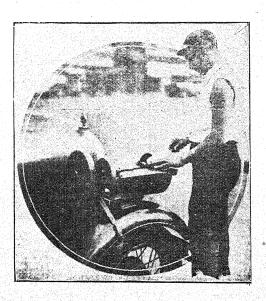
रूस-पोलैण्ड सन्धिकी चर्चा बहुत दिनोंसे चल रही थी। अब वह पक्की हो गयी है। दोनों राष्ट्रोंके सन्धि-पत्रपर हस्ताक्षर हो गये हैं। इस घटनाने यूरोपमें काफी हलचल मचायी है। यह देखकर जर्मनी बहुत छटपटा रहा है, क्योंकि अब तक रूसमें जर्मनीकी तूती बोलती थी, अब उसके शत्रुराष्ट्र पोलैण्ड और फ्रान्स भी रूसके मित्र बन गये हैं। 'हामबुर्गर फ्रेम्डनब्लाट'की सम्मति है—"फ्रान्स रूसमें पूंजी लगायेगा और शीघ्र ही दोनों देशोंमें आर्थिक सन्धि होगी जिसका परिणाम यह होनेवाला है कि परस्परमें कस्टम्स घटा दिये जायेंगे।" 'गरमानिया' पत्रको भय है कि रूस-पोलैण्ड और फ्रान्स मिलकर जर्मनीका गला घोंट देंगे। इस सन्धिसे पोलैण्ड बहुत खुश है। वार्साका पत्र 'कुरियर वार्सावस्की' लिखता है—"अब शीघ्र ही हमारे मित्र रूमानियाको भी रूससे सन्धि कर लेनी चाहिए। वार्सा-पैरिस-मास्को,—इन तीनोंका मेल देखकर हमारे देशके सब पत्र आनन्दित हैं।" कम्यूनिस्ट पार्टीके पत्र 'प्रावदा' का कहना है—"पोलैण्डके साथ सन्धिका हो जाना रूसी राजनीतिकी विजय है।"

रूसमें दिसम्बर मासके अन्तमें वहांकी प्रसिद्ध पुलिस ग्वेपेऊका पन्द्रह सालाना उत्सव मनाया गया था। इस पुलिसने श्रमजीवी राष्ट्रको बहुत सहायता पहुंचायी है और उसपर वहांके मजदूरोंका पूरा भरोसा है। रूसके असाम्य-वादी लेखक गुएब्टने इस विषयपर विचित्र रूपसे प्रकाश डाला है। उसने 'वेचेरनाइया मास्कवा' में लिखा है—"केवल कम्यूनिस्ट ही नहीं, बल्कि मुझ जैसे गैर-कम्यूनिस्ट भी ग्वेपेऊपर पूरा भरोसा रखते हैं। इस विषयपर मुझे एक घटना याद आती है। एक दिन दौस्ताइऐवस्की और राजभक्त सम्पादक सूवोरीन आपसमें बातें कर रहे थे। दौस्तौइऐव-स्कीने कहा—"मान लीजिये कि हम दो ऐसे अराजकोंकी बातें सुन पायें जो किसी आक्रमणकी तैयारी कर रहे हों। हम दोनों जारके भक्त हैं, तब क्या आप उनकी रिपोर्ट पुलिसमें कर देंगे?"

सूवोरीनने उत्तर दिया—"नहीं।"

"मैं भी न करूंगा। पर इसका कारण क्या है?"

बात यह थी कि दौस्तौइऐवस्की राजभक्त होनेपर भी ऐसे समाजमें रहता था जो जारसे घृणा करता था। किन्तु हम ऐसे समाजमें रहते हैं जो ग्वेपेऊको प्रेम करता है। इसलिए मैं तो यदि कोई अनुचित बातकी टोह पाऊंगा तो तुरत ग्वेपेऊको खबर दे दूंगा।"

जर्मनी—

राष्ट्रपति हिण्डनबुर्गके मतपर जर्मनीमें डिक्टेटरशिप ही चल सकती है। फान पापनको वह चैन्सलर बनाते, पर उन्होंने स्वयं इस्तीफा दे दिया। इसपर उन्होंने स्लाइशरको विशेषाधिकार देकर चैन्सलर बना दिया है। अब जर्मनीमें आन्दोलन चला है कि यदि डिक्टेटरशिप ही रखनी है तो अमेरिकाकी भांति राष्ट्रपति ही को सब अधिकार दे दीजिये कि वह जैसा चाहे मन्त्रिमण्डल स्थापित कर दें। इसका परिणाम यह होगा कि तीन-तीन महीनेपर नया निर्वाचन होनेसे रुक जायगा।

स्पेन-पुर्त्तगाल—

स्पेनमें चार माससे कृषि-सुधारका कानून बना है, किन्तु अभी तक उसका प्रयोग न हो सका। अब आण्डालुशिया और एस्ट्रेमाड्यूरके किसान दङ्गे मचाने लगे हैं। कई स्थानों-में भूखे किसानोंने पुलिसपर हमला कर दिया है। इसलिए

गवर्मेण्टने पेना नोवोको गवर्नर नियुक्त कर वहां भेजा है। स्पेनमें बड़े-बड़े जमीन्दारोंकी जमीन छीनी जा रही है और उनमें ये किसान बसाये जा रहे हैं।

स्पेनसे जो कैथलिक पादड़ी निकाले गये थे, वे अब पुर्त्तगालमें बस रहे हैं। पुर्त्तगालमें १९१० में ही इनका निष्कासन हो चुका था; पर अब वे फिर वहां पहुंच गये हैं। स्पेनवाले इसलिए वहांके वर्तमान शिक्षा-सचिवको स्वतन्त्रताका शत्रु बता रहे हैं। उसने नया नियम बना दिया है कि प्राइवेट कालेजोंके छात्रोंकी डिग्री भी सरकार द्वारा मानी जायेगी। इससे धड़ाधड़ कैथलिक कालेज खुलने लगे हैं।

आयलैंण्ड—

डी वालेराने कासग्रेव दलसे पिण्ड छुड़ानेके लिए नया निर्वाचन करवा दिया है। इस निर्वाचनने स्पष्ट कर दिया है कि आयरिश जाति डी वालेराके साथ है। इस विजयसे ब्रिटेनको हानि पहुंचेगी, इसमें सन्देह नहीं। आयलैंण्डकी आर्थिक स्थिति भी खराब हो जायेगी, पर थोड़े समयके लिए। डी वालेराके प्रोग्राममें दैशिक उद्योग-धन्धोंका बढ़ाना बहुत आवश्यक समझा गया है। जब वहां उद्योगधन्धे बढ़ जायंगे तो आयलैंण्डका रुपया बाहर जाना रुक जायेगा और तब तक उसको अपने गल्ले, मक्खन मांस आदिके लिए मार्केट भी मिल जायेगा। अब ब्रिटेनको उससे सन्धि करनी ही पड़ेगी; नहीं तो साम्राज्यकी बाहरी एकताको भी जबर्दस्त धक्का पहुंचनेका डर है।

अमेरिका—

राष्ट्रपति हूवरने अपनी अवधि समाप्त होनेसे कुछ पहले फिलिपाइनकी स्वतन्त्रताको खर्व करनेका विचार प्रकट कर अपनी नीचताका परिचय दे ही डाला। सेनेटने फिलिपाइनकी स्वतन्त्रताका बिल पास करके उसका मुंहतोड़ जवाब दे दिया। अमेरिकाको इस समय जापानका भूत लगा हुआ है। उसने जापानी मालका भी बहिष्कार कर दिया है। जापानी बिजलीके लैम्प, सामन मछली आदिपर अत्यधिक कर बैठाया गया है। वह जापानके भयसे इस द्वीपपुञ्जको भी हाथसे नहीं जाने देना चाहता है।

अमेरिकामें बेकारी दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति कर रही है। कहा जाता है कि प्रायः एक तिहाई आबादी बेकार है। हालमें बेकारोंका एक डेपुटेशन फिर वाशिङ्गटन पहुंचा। किसानोंने अपना डेपुटेशन भेजा और भूखे युवकोंने अपना। पर हूवर किसीका भला न कर सके।

ईरान—

एङ्गलो-पर्शियन आयल कम्पनीका झगड़ा राष्ट्र-सङ्घके पास पहुंच गया है। वहां दोनों फरीक अपनी-अपनी दलीलें पेश कर रहे हैं। ईरानका कहना है—(१) कम्पनीने जोर-जबर्दस्तीसे ठेका लिया था। (२) रायल्टीकी रकममें कम्पनीने कई तरहकी गड़बड़ी कर रखी है। (३) ईरानियोंको बहीखाते चेक नहीं करने दिये जाते। (४) महायुद्धके समय कम्पनीने रायल्टी न दी और ईरान-सरकार रायल्टी मांगती रह गयी, पर उसकी सुनाई न हुई। (५) कम्पनीने इनकम-टैक्स देना अस्वीकार कर दिया। (६) कम्पनी दुनियाके और हिस्सोंमें अन्धाधुन्ध खर्च करती है। इससे ईरानी तेलके व्यवसायको बहुत हानि पहुंच रही है। (७) कहा जाता है कि ईरानी तेल निकालनेमें बहुत खर्च होता है। (८) कम्पनी ईरानी खेतोंसे पूरा तेल तो नहीं निकाल सकती, लेकिन दूसरे देशोंमें इसी काममें रुपया लगा रही है। (९) गत ग्रीष्म-ऋतुमें कम्पनीको निमन्त्रण गया था कि ईरान-सरकारके पास अपना प्रतिनिधि भेजे, पर उसने परवा न की।

नीमसरकारी पत्र 'ईरान' इस विषयपर लिखता है—

"दार्सी ठेका क्यों दिया गया ? क्योंकि (१) उस समय हम लोग मूर्ख थे ; (२) हम स्वार्थी थे और व्यक्तिगत फायदेपर नजर रखते थे (३) राष्ट्रीय और सामाजिक हितकी ओर हमारा ध्यान न था।

इन तीन नींवोंपर दार्सी ठेकेकी इमारत खड़ी हुई। इन ही तीन नींवोंपर कम्पनीके भीमकाय भवन और कारखाने खड़े हैं। इन भीषण भवनोंसे करोड़ों रुपया कमाया गया, जब कि उस देशके निवासी, जिसमें सोनेकी यह बाढ़ आयी थी, इसके लिए तरस रहे थे।

उसे अपने हाथमें करनेका क्या उपाय था ? एक शक्तिशाली राष्ट्रका क्या कर्त्तव्य है ? किन उपायोंसे देशके उन हितोंकी रक्षा की जा सकती है जो कुचले जा रहे हैं ? इन सबका उत्तर था—उसे वापस लेनेकी कोशिश करना। यही किया गया है।"

ईरानी सरकारके इस उद्योगसे तेहरानका पत्र 'इत्तलात' बहुत खुश है। उसने लिखा है—"ईरानकी भूमिसे विदेशियोंका अन्तिम अड्डा तोड़ा गया है।"
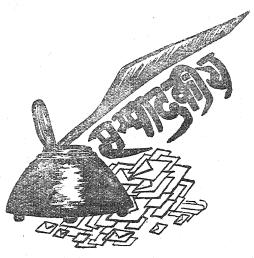
अछूतोद्धार और सरकार

मन्दिर-प्रवेश बिलके सम्बन्धमें सरकारने क्यों इतनी आनाकानी की है, यह बात हम जैसे साधारण बुद्धिके लोगोंकी समझके लिए जरा टेढ़ी खीर है। क्या सरकार यह जानना चाहती थी कि जनमत इसके पक्षमें है या नहीं ? क्या देश-व्यापी अछूतोद्धार आन्दोलनसे इस सम्बन्धमें उसके सन्देहका निराकरण नहीं हुआ है ? क्या इस तथ्यमें किसी प्रकारकी शङ्काके लिए कोई भी गुञ्जाइश है कि देशका अत्यधिक बहुमत "अछूतों"को मन्दिरमें प्रविष्ट करानेके पक्षमें है ? चारों ओरसे मन्दिर-प्रवेश बिलके पेशकी मञ्जूरी यथाशीघ्र करनेके लिए जो उत्कण्ठा प्रदर्शित की गयी, वह क्या अवहेलनाके योग्य है ? वह क्या सरकारको पूर्णतया विश्वसित करानेके लिए यथेष्ट नहीं है ? तब यह टालमटोल क्यों ? इसका स्पष्ट अर्थ यदि जनता यह लगाये कि सरकार अछूतोद्धारके सम्बन्धमें उसकी सहायता नहीं करना चाहती, तो क्या इस धारणाके लिए उसे दोष दिया जाना चाहिए ? दीर्घ प्रतीक्षाके बाद अन्तको वायसरायकी यह घोषणा प्रकाशित हुई है कि सुब्बारायनका मन्दिर-प्रवेश बिल प्रान्तीय कौन्सिलमें पेश होने नहीं दिया जा सकता। पर श्री रङ्ग ऐयरको अपना अस्पृश्यता-निवारण बिल असेम्बलीमें पेश करनेकी अनुमति मिली है। साथ ही यह सूचना पहले ही दे देना सरकारने उचित समझा है कि वह बिलका समर्थन करनेके लिए अपनेको बाध्य नहीं समझती।

देशका यह घोर दुर्भाग्य है कि उसे अपने भीतरी झगड़ोंके निपटारेके लिए सरकारका मुंह ताकना पड़ता है। वास्तविक सुधार तभी हो सकता जब जनता बिना किसी बाधा तथा प्रतिरोधके, स्वेच्छासे "अछूतों"के लिए मन्दिरोंके द्वार उद्घाटित कर देती। यह लज्जाका विषय है, सन्देह नहीं, कि हमें मन्दिर-प्रवेश बिलके पेश करनेकी आवश्यकता मालूम हुई है, और महात्मा गांधी जैसे महापुरुषका महोपदेश तथा महत् आदर्श हमारे कट्टर सनातनी भाइयोंकी जड़ आत्माओंको पूर्णतया सचेत कर देनेमें समर्थ नहीं हुआ। इससे अधिक कलङ्ककी बात और क्या हो सकती है ! इस उन्नतिके युगमें भी, जब कि समस्त संसारमें हेतुवादपर लोगोंका विश्वास अधिक-अधिक बढ़ता जाता है, हमारे कट्टरपन्थियोंकी यह हठधर्मी अत्यन्त निन्दनीय, जाति-विनाशक तथा राष्ट्रीयताके महान् आदर्शका घोर शत्रु है। सुनते हैं कि शङ्कराचार्य महाशयने महात्मा गांधी प्रमुख आदि नेताओंके विरुद्ध अदालतमें इस बातकी नालिश की है कि वे "अछूतों"को मन्दिर-प्रविष्ट करानेका आन्दोलन खड़ा करके उनके शताब्दियोंसे प्रतिष्ठित धार्मिक पदको गहरा धक्का पहुंचा रहे हैं। इधर अहमदाबादके मिलाधिपति सेठ चमनलाल पारखने वायसरायसे तार द्वारा यह प्रार्थना की है कि मन्दिर-प्रवेश बिलके पेश होनेकी आज्ञा न दी जाय, क्योंकि इससे पारस्परिक विद्रोहकी बड़ी आशङ्का है। बनारसमें सनातनी शास्त्रियोंकी एक सभामें जिस नीचतासे "अछूतों" पर आक्रमण किया गया है,

समाचार-पत्रके पाठक उससे परिचित होंगे। यरवदामें महात्माजीके सामने छूताछूतके सम्बन्धमें जो शास्त्रार्थ हुआ था, उससे भी स्पष्ट ही विदित हो जाता है कि अभी तक हमारे अनेक "धर्माचार्यों"की मनोवृत्ति उसी प्रकार अविचल तथा अछूती है, जैसी शताब्दियों पहले थी। ये सब चिन्ह देशकी भीतरी असमर्थताको व्यक्त करते हैं। हमारा प्रमुख कर्तव्य है कि वर्तमान अछूतोद्धार आन्दोलनके प्रयोग द्वारा इस युग-युग सञ्चित जड़ताको समूल बहा दें। ऐसा अच्छा अवसर बार-बार नहीं आता। महात्माजीकी कृपासे इस समय सारे देशका ध्यान इस ओर केन्द्रित हुआ है। इस सुयोगको यदि हम लोगोंने योंही हाथसे जाने दिया तो इससे अधिक मूर्खता तथा दुःखकी बात और कोई न होगी। तारीफकी बात तो तभी होती, जब सुधारवादियों तथा रूढ़िपन्थियोंके पारस्परिक समझौतेसे बिना किसी सरकारी सहायताके ही हम "अछूतों"को उपयुक्त सम्मानके पदपर प्रतिष्ठित करनेमें समर्थ होते। इसमें सन्देह नहीं कि देशकी अधिकांश जनता "अछूतों"को पूर्ण स्वाधीनता तथा अन्य तीन वर्णोंके साथ समान अधिकार देनेके लिए हार्दिक इच्छा प्रकट कर रही है। तथापि विरोधियोंकी शक्ति बलवत्तर है। ऐसी दशामें सरकारकी सहायताकी आवश्यकता अनिवार्य है। सरकारी पक्ष यह बहाना बताकर आनाकानी करना चाहता है कि वह देशमें धार्मिक असन्तोष फैलाना उचित नहीं समझता। अर्थात्, सरकारकी रायमें मन्दिर-प्रवेश बिलके पास हो जानेसे एक विशिष्ट बहुसंख्यक जनताके धार्मिक विश्वास पर आघात होगा। यह दलील बिलकुल लचर है। बहुसंख्यक जनता पूर्णतः "अछूतों"के अपनानेके पक्षमें है, इसके सैकड़ों, हजारों प्रमाण समाचार-पत्रोंके पाठकोंको प्रतिदिन मिल रहे हैं। सरकार इस तथ्यसे अपरिचित हो, यह सम्भव नहीं हो सकता। बहुमतकी अवज्ञा करके अल्पमतकी तुष्टिको ही अपना मुख्य कर्तव्य समझना, यह नीति किसी प्रकार भी युक्तिसङ्गत नहीं कही जा सकती। बिलकी आवश्यकता इसीलिए है कि अल्पसंख्यक कट्टरपन्थियोंकी ज्यादतीके कारण एक महत्त्वपूर्ण, विराट् राष्ट्रीय सुधारमें विघ्न न पहुंचे। यदि इतनी भी सहायता सरकारसे प्राप्त न हो सके तो राष्ट्रकी बड़ी-बड़ी मांगोंके सम्बन्धमें क्या आशा उससे की जा सकती है! आज एक साधारण बिलकी पेशीकी मञ्जूरीके लिए सारे देशको वायसरायका मुंह ताकना पड़ा है। देशकी असहायावस्थाकी कल्पना इस तथ्यसे भली भांति की जा सकती है। कुछ भी हो, यदि सरकार श्री रङ्ग ऐयरके अस्पृश्यता-निवारण बिलका आन्तरिक समर्थन करे तो वह आसानीसे पास हो सकता है, और एक बड़े भारी कलङ्कका बोझ देशवासियोंके सिरपरसे उठ सकता है। पर जैसा रुख दिखायी देता है उससे स्पष्ट ही जान पड़ता है कि सरकार यथाशक्ति इस बिलको पास न होने देगी। कारण वही है, जो हम ऊपर बता चुके हैं। अर्थात् वह ऐसी न्यायपरायण है कि किसीके "धार्मिक विश्वास" पर "आघात" नहीं करना चाहती।

कांग्रेस और नवीन शासन-विधान

क्या सरकार सचमुच कांग्रेसको अवज्ञाके योग्य समझती है? नवीन शासन-विधान तैयार होने चला है, पर कांग्रेससे न तो किसी प्रकारकी सलाह ही सरकार लेना चाहती है, न उसकी ओर बिलकुल ध्यान देना ही उचित समझती है। इधर नेतागण जेलोंमें सड़ रहे हैं। देश-भरसे एकस्वरसे यह आवाज आ रही है कि उन्हें मुक्त करके नये शासन-विधानमें वे भी सम्मिलित किये जाने चाहिए। लिबरल दलके नेता भी बार-बार यह प्रार्थना कर चुके हैं कि कांग्रेसवादियोंको जल्दी छोड़ो और महात्मा गांधी प्रमुख महारथियोंसे समझौता करके उनकी भी सम्मति इस सम्बन्धमें लो। पर सरकार इस बातको सुनी-अनसुनी कर दे रही है। सरकारका यह रुख किसी तरह भी अच्छा नहीं कहा जा सकता। उसे मालूम होना चाहिए कि इस प्रकारकी प्रवृत्ति प्रदर्शित करनेसे उसकी सहृदयतापरसे जनताका रहा-सहा विश्वास भी जाता रहेगा। अब भी पारस्परिक समझौतेके लिए यथेष्ट अवसर है। देशमें पूर्ण शान्ति स्थापित करना ही सरकार अपना प्रमुख कर्तव्य बताती है। पर जब तक कांग्रेसके साथ मित्रभावसे मिलकर वह अपनी भूल न सुधारेगी तब तक किसी भी अंशमें शान्तिकी प्रतिष्ठा नहीं हो सकती। कांग्रेसके साथ सहयोगमें ही उसका मङ्गल है। देशके प्रधान राष्ट्रीय दलकी उपेक्षा करनेपर जो शासन-विधान तैयार होगा वह स्वभावतः देशकी बहुसंख्यक जनताको अमान्य

लिए सुबुद्धिकी बात होगी। इससे फिर एक बार स...
सहयोगका वातावरण उत्पन्न हो जायगा, जो हर तरह वाञ्छनीय है। वर्ना गोलमेजके विकट पहाड़को खोदनेपर जो एक नन्हा-सा चूहा निकला है वह एक कोरे प्रहसनकी अवतारणा करनेके बाद देशके जले दिलपर नोन छिड़कनेके अतिरिक्त और किसी कामका नहीं है। यदि सरकारकी यह धारणा हो कि कांग्रेसकी उपेक्षा करनेसे ही सारी बला टल जायगी तो यह धारणा हमें बिलकुल भ्रान्त प्रतीत होती है। इस नीतिसे केवल आत्म-प्रवञ्चनाका ही प्रमाण मिलता है। देशके सब दलोंकी सम्मिलित सम्मति यही है कि गोलमेजके अन्तिम निर्णयके पूर्व महात्मा गांधी तथा उनके अनुयायी कारामुक्त कर दिये जायं और समझौतेके लिए आमन्त्रित किये जायं। सुना जाता है कि सर होर इस सम्बन्धमें भारत-सरकारसे लिखा-पढ़ी कर रहे हैं। कहा नहीं जा सकता कि यह समाचार कहां तक सत्य है। असल बात यह है कि सरकार कांग्रेसवादियोंके प्रति भविष्यमें क्या नीति बर्तना चाहती है, यह बात वृणाक्षर द्वारा भी वह अभी ठीक-ठीक व्यक्त नहीं करना चाहती। जब तक इस रहस्यका भेद न खुले तब तक कोई टिप्पणी इस सम्बन्धमें नहीं की जा सकती।

इधर कांग्रेसवालोंने महात्मा गांधीसे यह पूछा है कि कांग्रेसका वर्तमान कार्यक्रम क्या रहे?—क्या अछूतोद्धारमें ही इस समय सारी शक्तियां लगा दी जायं, अथवा सत्याग्रह जारी रहे? इस प्रश्नसे इङ्गित द्वारा यह बात झलकती है कि कांग्रेसका रुख भी इस समय समझौतेके प्रतिकूल नहीं है। सरकार यदि इस स्वर्ण सुयोगको पूर्णतः उपयोगमें लानेकी चेष्टा करे, तो हमारी तुच्छ सम्मतिमें उसे लाभ ही होगा, हानि नहीं।

बर्नार्ड शाका भारत आगमन

हालमें संसारके सुप्रसिद्ध लोकप्रिय साहित्यिक बर्नार्ड शा संसार-भ्रमण करते हुए बम्बई भी उतरे थे। वहांके पत्रकारोंने उनसे भेंट की थी। जो कुछ प्रश्न उनसे किये गये, उनके

रिझात है।

ही चुभती हुई हों, उनका महत्त्व कुछ ... स्थायी नहीं होता, इस सम्बन्धमें सभी अनुभवी विद्वान् एकमत हैं। बम्बईके पत्रकारोंने जो प्रश्न उनसे किये, उनमेंसे केवल एकका उत्तर उन्होंने इस ढङ्गसे दिया जो किसी अंशमें महत्त्व रखता था। बाकी सब प्रश्नोंको उन्होंने बड़े मजेसे टाल दिया। यहांके "अछूतों" का प्रश्न उठनेपर उन्होंने कहा कि—"मैं विलायतके अछूतोंकी चिन्तामें इतना व्यस्त हूं कि यहांके अछूतोंके सम्बन्धमें कुछ सोचनेकी फुरसत ही मुझे नहीं है। विलायतके श्रमिकोंको वहांके सम्भ्रान्तवंशीय पुरुष उसी दृष्टिसे देखते हैं, जैसे यहांके उच्च वर्णवाले अन्त्यजोंको। बल्कि यह कहिये कि विलायतके अछूतोंकी हालत और भी खराब है। वहांके मजदूरों और सम्भ्रान्त व्यक्तियोंका आपसमें रोटी-बेटीका सवाल तो उठ ही नहीं सकता, बल्कि मजदूरोंके स्पर्शसे भी सम्भ्रान्तवंशीय अपनेको कलङ्कित तथा अपवित्र समझते हैं।" यह बात भी उन्होंने मनोरञ्जनकी दृष्टिसे ही कही, यद्यपि इसमें बहुत कुछ यथार्थता वर्तमान है। उनकी किसी भी उक्तिसे भारतीयोंको किसी भी आकांक्षा, किसी भी वेदनाके प्रति सहानुभूति नहीं टपकती थी। बल्कि पूर्ण उदासीनताका ही परिचय मिलता था। इस उदासीनताका कारण समझमें आना बहुत कठिन है। शा महाशय एक बड़े पुराने साम्यवादी हैं, अर्थात् साम्राज्यवादके अत्याचारका विरोध ही वह अपना कर्तव्य समझते थे। पर अब वह न तो साम्यवादी ही रह गये हैं और न साम्राज्यवादी। उनका अब कोई भी स्वतन्त्र राजनीतिक विचार नहीं रह गया। केवल कोरी वाह-वाही लूटना ही अब उनका चरम ध्येय बन गया है। इस वृद्धावस्थामें भी वह इसी उद्देश्यसे संसार-भ्रमणको निकले हैं। रवीन्द्रनाथने शायद शिष्टाचारके ख्यालसे उन्हें शान्ति-निकेतन तशरीफ ले जानेके लिए निमन्त्रण भेजा था। पर उनकी दुनिया ही रवीन्द्रनाथसे बिलकुल भिन्न है। इसलिए उन्होंने बहाना बताकर रवीन्द्रनाथका निमन्त्रण टाल दिया।

विश्वमित्र] स्वप्न [श्री किरणराशि दे

वार्षिक मूल्य ६)
विदेशके लिए १२ शिलिंग

डा० हेमचन्द्र जोशी डी० लिट्
इलाचन्द्र जोशी

प्रति संख्या ।।=)
As. /10/- per copy.

भाग १, खण्ड १ | जनवरी १९३३—पौष १९८९ | वर्ष १, पूर्ण-संख्या ४

दिवाकरके प्रति प्रदीप---

दिवाकर ! लो अपना अधिकार,
पाकर प्रभा तुम्हारी मैं था बना महान्, उदार ।
नन्हा-सा दीपक है, बत्ती चार तुनुक-धागों की,
बस, दो बूंद सनेह क्षणिक-जीवनका था आधार ।
हलका-सा झोंका उसांसका मेरे लिए प्रलय था,
फिर भी किया तुम्हारा करना प्रतिनिधित्व स्वीकार ।
जला-जला अपनेको कितनोंका पथ सुगम बनाया,
बना रहा तम-सागरकी नैयाका मैं पतवार ।
हुआ यही अपराध देव ! तुम तो अन्तर्यामी हो,
हाय, जलाना पड़ा मुझे इन शलभोंको लाचार !
दिवाकर ! लो अपना अधिकार !

—श्री मोहनलाल महतो

वर्तमान जापान

हेमचन्द्र जोशी

आवश्यकता है, सुधारकोंकी—
दूसरोंका नहीं, अपना सुधार करनेवालोंकी—
—स्वामी रामतीर्थ

जापान आज संसारकी एक महाशक्ति है। छ करोड़की आबादीके इस राष्ट्रने चालीस करोड़ चीनियोंको अपने आतङ्कसे व्याप्त कर रखा है। रूसको इसने जिस अलौकिक वीरताके साथ महीनोंमें पछाड़ दिया था, वह सारे एशियाके लिए गर्वका विषय है। अंगरेज, फ्रेञ्च, अमेरिकन और रूसी सब इसके प्रतापसे भीत और त्रस्त हैं। मञ्चूरियामें स्वतन्त्र राष्ट्र माञ्चुओकोकी स्थापना कर वहां अपनी शक्ति दृढ़तर करके जापानने अपनी कूटनीतिसे अमेरिका तथा यूरोपियन शक्तियोंको खूब छकाया है। इस घटनाने वर्तमान राजनीतिक आकाशमें विचित्र बिजली कड़का दी है। यह देश जो आज आर्थिक समृद्धि, औद्योगिक उन्नति, व्यापार व्यवसाय, सैनिक शक्ति, राजनीति आदिमें उन्नततम राष्ट्रोंका प्रबल प्रतिद्वन्द्वी है, पचास वर्ष पहले एशियाके अन्य देशोंकी भांति दुर्बल, अशिक्षित, दरिद्र और फूटका घर था। प्रायः चालीस वर्ष पहले बङ्गाली कवि हेमचन्द्र गा गया है—

...असभ्य जापान,

तारा-ओ स्वाधीन तारा ओ प्रधान,
भारत केवलि घुमाये रय।

उस समय जापान असभ्य गिना जाता था। यह सभ्यतासे हीन देश किस तेजीसे उन्नतिकी ओर दौड़ा यह देखकर आश्चर्यचकित होना पड़ता है। अठारहवीं शताब्दीके आरम्भसे जापानपर यूरोपियन राष्ट्रोंके आक्रमण होने लगे। १८०५ में रूसने उत्तरी जापानपर हमला किया और साघालियन द्वीपका मालिक बन बैठा। १८०८ में अंगरेज बेड़ा नागासाकीमें डट गया और १८४४ में फ्रेञ्च सैनिक जहाज लूचू द्वीप पहुंच गये। पर जब १८५३ में अमेरिकन बेड़ा उरगापर अपना अधिकार जमाने लगा तो सामुराई, (जापानी लड़ाकू जाति या क्षत्रिय) उससे लोहा लेनेकी ठानकर मैदानमें आये और अमेरिकन नयी तोपोंके सामने उनकी तलवारकी एक न चली। बस समझ गये कि तोप और तलवारमें फर्क है। जिस अस्त्रको तोपके सामने हार माननी पड़ी वह यद्यपि हजारों वर्षसे हमारे पुरखाओंके काममें आया है तो भी आज निकम्मा होगया है, उसे फेंकना होगा और वह हथियार ग्रहण करना पड़ेगा जो जापानको विदेशी शत्रुके आक्रमणसे बचा सके। उस समय दाइ निप्पोंमें (जापानका असली नाम) अनेक छोटे-मोटे राज्य थे जो आपसमें लड़ते रहते थे। फ्रान्स और इंगलैण्डने जापानका गृहकलह देख वहां अपना-अपना प्रभाव जमानेका विचार किया। १८६७ में पेरिसमें सर्वदेशीय प्रदर्शिनी हुई। अंगरेजोंके कहनेपर सातसुमाजतिने दोहेइ इवाशिताको अपना प्रतिनिधि बना कर वहां भेजा। शोगुन राजाने अपने भाई शिमिदज़ू मिम्बू तायूके अधीन कई राजदूत भेजे। इन दोनों राज्योंके प्रतिनिधियोंने फ्रेञ्च सरकारके सामने अपने-अपने अभियोग रखे। फ्रान्स शोगुनकी सहायता करनेको तैयार हुआ और अंगरेज सातसुमा जातिके रक्षक बने। पर धन्य है इन दोनों दलोंकी देशभक्ति कि इन्होंने विदेशी सहायताको अपने राष्ट्रकी स्वाधीनताका घातक समझा और अस्वीकार किया। जापानके लोगोंमें उग्र राष्ट्रीयताकी बाढ़ आ गयी। सामूराई क्षत्रियोंने निश्चय कर लिया कि अपने देशभाईकी दासता स्वीकार है, किन्तु विदेशियोंका प्रभाव सहन न करेंगे। सबने मिलकर मैजीके हाथमें सारी शक्ति सौंप दी और हजारों वर्ष बाद जापानमें पूर्ण एकता स्थापित हो गयी। इस राष्ट्रीय सङ्कटके समय एशियाके नितान्त अवनत देश जापानको यही चिन्ता सता रही थी कि किस प्रकार भावी आक्रमणोंसे अपनी रक्षा की जा सकती है। चीनमें मदमत्त यूरोपियन राष्ट्रोंका अधिकार दिन-ब-दिन बढ़ते देख उसे भय था कि

जापानके प्रयत्नसे मंचूरियाके स्वतंत्र होनेकी घोषणा की जा रही है

कभी न कभी जापान भी पराधीन हो जायेगा यदि तुरत खरतर उपाय काममें न लाये जायं। जापानने तुरन्त अपनी नीति निर्धारित कर ली। "हमें यूरोप और अमेरिकाका अनुकरण कर नवीनतम ज्ञानमें पारङ्गत बनना पड़ेगा।" 'विषस्य विषमौषम्।' भारत, चीन, ईरान आदि देश गर्वमें फूले रहते थे कि हमारी प्राचीन सभ्यता ऐसी थी और वैसी थी। विदेशियोंके गुलाम बने थे, पर उनसे उनके गुण लेनेकी कभी चेष्टा न की। फल यह हुआ कि पराधीनताके पाशमें अधिकाधिक जकड़ते गये। इन निर्लज्ज और पतित देशोंको कभी यह सत्य न सूझा कि जो थोड़ेसे गोरे हमारे असंख्य सैनिकों-को शाकसब्जीकी तरह ध्वंस विध्वंस कर रहे हैं उनका सामना करनेके लिए हमारे पुराने उपाय निष्फल हैं इसलिए हमें वह भेद प्राप्त करना चाहिए जिसके बलसे ये विजयपर विजय पा रहे हैं। जिस समय उक्त देश अपने घरमें ही लड़-मरकर विदेशियों-की दासताका हार अभिमानके साथ पहन रहे थे, उस वक्त एशियाके सबसे पिछड़े हुए देश जापानने एकमात्र उचित मार्ग पकड़ा। एक जापानी राजनीतिज्ञका कहना है – "विदेशी राष्ट्रोंके भयने जापानको मिला दिया। चीन और प्रशान्त महासागरमें विदेशी राष्ट्र जो नीति बरत रहे थे, उसने हमारी आंखें खोल दीं। इच्छा या अनिच्छासे हमें भारत और चीनकी दशासे बचनेसे लिए अपना भीतरी सुधार करना और नयी नीति निर्धारित करनी पड़ी।" हम लोग विदेशियोंको गालियां देते रहे, पर जापानने अपना सुधार करनेका बीड़ा उठाया; और यही वह रहस्य है जो किसी भी जाति या मनुष्यको उठाता है। जापान सरकारने अधि-कांश धन अपने छात्रोंको विदेश भेजने और वहां शिक्षा दिलानेमें व्यय किया। स्वयं प्रिन्स इवाकुरा, ओ-कुबो, किडो, ईटो आदि राजनीतिका अध्ययन करने यूरोप और अमेरिका पहुंचे। सारे देशमें एक ही आवाज उठती थी—"विदेशसे वह ज्ञान प्राप्त कर लाओ जिसके न होनेसे विदेशी हमें पराजित कर सके।" देरी करनेका समय न था। थोड़ा बिलम्ब हुआ कि विदेशी राष्ट्र जापानको पराधीन कर दें तो क्या आश्चर्य। फल यह हुआ कि कुछ ही दिनोंमें जापानने अपनी सहस्रों वर्षकी पुरानी आदतें छोड़ दीं। वहांका रहन-सहन, वेशभूषा, आचार-विचार सब पलट गये। यह आश्चर्य संसारमें केवल यही देश कर सका है। दो-चार वर्षमें ही जापानी छात्र विदेशोंसे इञ्जिनियर, रासायनिक, डाक्टर, रणनीति-विशारद आदि बनकर देश आये और जापानकी उन्नतिमें सारी शक्तिसे चिपट गये। सर्वत्र स्कूल खुल गये। पर अध्यापकोंका अभाव था। नये ज्ञानके लिए नये ढंगके अध्यापक चाहिए। फौरन इंगलैण्ड, फ्रान्स, जर्मनी और अमेरिकासे योग्यतम विद्वान् निमन्त्रित किये गये जो मास्टर और प्रोफेसर तैयार करें। ज्ञानके प्यासे जापानी छात्रोंने इन गुरुओंके चरणोंमें बैठकर वह शिक्षा प्राप्त की कि उनसे भी बढ़ गये। नये-नये विश्वविद्यालय स्थापित किये गये। ओकूमाने वासेदा, कुछ सामूराइयोंने काइयो और सरकारने टोकियोका विश्वविद्यालय खोला। इस समय जापानमें ४६ विश्वविद्यालय हैं और एक वासेदा विश्वविद्यालयमें तेरह हजार छात्र पढ़ते हैं। साठ वर्षमें जापानने शिक्षामें ऐसी उन्नति की है कि पाठशाला जाने योग्य आयुके ९९.५६ प्रतिशत छात्र

विद्यालयोंमें शिक्षा पाते हैं। पढ़नेके शौकका यह हाल है कि रिकशा चलानेवाला भी खाली समयमें कुछ पढ़ता रहता है।

जापानने अर्थकर विज्ञानकी ओर अधिक ध्यान दिया है। पहली आवश्यकता तो उसे अपनी रक्षा की थी, इसलिए आरम्भमें जापानने अस्त्रशस्त्रोंके कारखाने खोले, अपना

जापानकी बड़ी बड़ी दूकानोंमें लड़कियां लिफ्टमें काम करती हैं।

जङ्गी बेड़ा तैयार किया और नयी रणनीतिका प्रचलन किया। इसके बाद देशभरमें यातायातके साधन बनने लगे। रेलने इन साठ वर्षोंमें अत्यन्त उन्नति की है। ट्राम लाइनें दूर दूरके नगरोंको मिलाती हैं। कोबेसे ओसाका और नारासे कियोटोतक तेज ट्राम गयी हैं, जो घण्टेमें चालीस मीलकी तेजीसे चलती हैं। जापानके विचक्षण सारे संसारमें भ्रमण करते रहते हैं। उन्होंने जिस देशमें जो भलाई पायी उसका अपने देशमें प्रचार किया। इसके सिवाय विदेशोंके बड़े-बड़े वैज्ञानिक अब भी जापानकी उन्नतिका मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं। यूरोपियन कहते हैं कि जापान नकल करनेमें उस्ताद है। इसपर फ्रेञ्च लेखक लजांद्र लिखता है कि "जापान हमसे दस कदम आगे है। साठ बरसके भीतर उसने वह चामत्कारिक उन्नति की है कि हमें उससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।" उसका यह कथन सत्य है। इस समय तो जापान यूरोप और अमेरिकाके कान कतर रहा है। उसकी सैनिक शक्तिके आगे सब नतमस्तक हैं। उसकी औद्योगिक और व्यापारिक नीतिने बड़े-बड़े उन्नत देशोंके छक्के छुड़ा दिये हैं। पाठक जानते होंगे कि भारतसे रुई खरीदकर वह भारतमें सस्ता सूती कपड़ा बेच सक रहा है। जापानी बाइसिकलके टायर छ आने जोड़ा खुदरा बिकते हैं। अंगरेजी सोडा ऐश खुदरेमें प्रायः आठ रुपया प्रति हण्ड्रेडवेट मिलता है, उसी मेलका जापानी माल चार रुपयेको बिकता है। यह है जापानका कृतित्व जो संसारको चकित कर रहा है। ऐसी मनस्वी कार्यार्थी जातिके मालपर आप अधिकसे अधिक आयातकर क्यों न बैठा दें वह अपने श्रम और ज्ञानसे मालको सस्ता करती जायेगी। जापानकी यह अर्थनीति देख अंगरेज दांतों तले उंगली दबा रहे हैं और अमेरिका अपने क्रोधको विषकी तरह पी रहा है। पर इससे क्या ? जापान अपनी शक्ति समझता है और अपने अथक परिश्रम तथा अन्वेषणसे संसारके व्यापारपर विजय प्राप्त करनेकी दम भरता है।

जापानने पश्चिमसे नया विज्ञान और मशीनका कला-कौशल लिया। अध्यापक त्सुरूमी कहते हैं—"विदेशी विचार ग्रहण करनेमें जापानी आगापीछा नहीं करते। जैसे ही वह विदेशियोंके संसर्गमें आया, तो जापानमें ऐसी उथल-पुथल मची कि कुछ कालके लिए तो सब समझने लगे कि अब बौद्ध, शिन्तो तथा कनफ्यशियन मत लोप हो गये।" पर

जापानका एक मन्दिर—सभ्यता और सुघड़ताका आदर्श

जापानियोंपर प्रबल देशभक्तिका प्रताप बहुत पुराने समयसे चला आ रहा था, उसने प्रत्येक जापानीके हृदयमें यह भाव भर दिया कि हमारा देश अन्य राष्ट्रोंके समकक्ष नहीं, उनसे उन्नततर और अधिक शक्तिशाली होना चाहिए। बस ये नाटे जापानी इस धुनमें सर्वस्व अर्पण करनेको तैयार हो गये और विदेशी विचार ग्रहण करनेपर भी जापानी बने रहे। रूस-जापानके युद्धमें किस हर्षसे जापानी सैनिकोंने पोर्ट आर्थरकी खाई अपनी लाशोंसे भर दी थी वह घटना संसारके इतिहासमें अनूठी है। इसी देशभक्तिके मदसे मत्त होकर हालमें तीन हजार जापानियोंने चाङ्ग-काई-शेककी साठ हजारकी सेनाको नष्ट भ्रष्ट कर दिया। बात यह है कि यूरोपीय विज्ञानने जापानी देशप्रेमपर सान चढ़ा दी। इसमें नाममात्र सन्देह नहीं कि जापानकी उन्नतिकी जड़में यह उग्र देशप्रेम है, लेकिन देशभक्ति ही के कारण उसकी यह उन्नति नहीं हुई है। कोई भी जाति बिना आत्मसम्मानके भावके उठ नहीं सकती और यह भाव जापानमें बहुत पुराना है। १९२७ में चीनियोंने बहुतसे यूरोपियन और जापानी मार डाले, पर सब राष्ट्र कुछ न कर सके; वह तमाशा देखते रहे। लेकिन एक जापानीने अपने रणपोतमें, 'हाराकिरी' कर दी। उसे अपनी जातिका अपमान असह्य हो उठा, जापानमें आत्मसम्मान–'गिरी' का भाव दरिद्रों और मजदूरोंमें भी पाया जाता है। वहां बच्चोंका चरित्र भी उनमें स्वाभिमानका भाव जागृत करके सुधारा जाता है। जब देखा कि लड़का बिगड़ रहा है तो मां कहती है—"तेरी ओर सब उंगली उठाते हैं, तुझपर सब हंसते हैं।" उसे सत्पथपर लानेके लिए इतना काफी है। युद्धक्षेत्रमें सैनिकोंको उत्तेजित करनेके लिए 'बान-जाई' अर्थात् अपने सम्मानकी रक्षा करो कहा जाता है। अपनी आबरू बचानेके लिए जापानी अपने प्राणोंकी आहुति सोल्लास कर देता है। यह गुण जापानमें प्राचीन कालसे चला आ रहा है। बस इसने उसे उन्नतिकी वर्तमान अवस्थातक पहुंचा दिया है। इस स्वाभिमानके कारण जापानी दूसरे देशोंकी उन्नति देखकर जलते नहीं हैं, वे अपनी सारी शक्ति इस उद्देश्यकी प्राप्तिमें लगाते हैं कि वे सबसे आगे रहें। जापानके कुछ शिक्षा-विचक्षण यूरोप और अमेरिका गये। उन्होंने वहांके स्कूलोंका निरीक्षण किया। जापान वापस आकर उन्होंने स्कूलोंमें जो परिवर्तन किये हैं उन्हें देख पाश्चात्य देशवासी विस्मयविमुग्ध रह जाते हैं। इन स्कूलोंकी बड़ी-बड़ी इमारतें हवादार, साफ-सुथरी और सब तरह सुसज्जित हैं। इनमें पढ़नेवाले नन्हे छात्र भी सफाईमें यूरोपियनोंको मात करते हैं। सफाई तो मानो जापानियोंके ही हिस्से आयी है। वहांका भिखमङ्गा भी नित्य गरम जलसे स्नान करता है। यूरोप और अमेरिकाकी यह दशा है कि निर्धन मनुष्य बरसोंमें एक बार नहा ले तो अपना परम सौभाग्य समझता है। पाठक यह सुनकर आश्चर्य करेंगे कि जापानके छोटेसे छोटे गांवमें बिजलीकी रोशनी है। अपने जल-प्रपातोंका जो उपयोग इस द्वीपने किया है वह अभूतपूर्व है।

इस जातिकी सतत परिश्रम करनेकी प्रवृत्ति भी संसारमें अपना जोड़ नहीं रखती। जापानी चीटियोंकी तरह सदा काममें लगे रहते हैं। इसीलिए सफलता इनके द्वारपर हाथ बांधे खड़ी रहती है। इस द्वीपपुञ्जपर प्रकृति बार-बार प्रहार करती है। भूकम्प इसका सर्वनाश करनेपर तुले हैं। १९२३ में भूचालने सारे राष्ट्रपर आपत्तिका पहाड़ गिरा दिया था। नगरके नगर बरबाद हो गये थे। हजारों मनुष्य इस सर्वनाशकी आहुति हुए थे। अङ्गहीनोंकी तो गणना नहीं

की जा सकती। अरबोंकी सम्पत्ति खाकमें मिल गयी। पर जापानने हिम्मत न हारी। विदेशियोंने सहायता भेजी जो उन्होंने पहले सधन्यवाद अस्वीकार कर दी। इस घोर विपत्तिमें राष्ट्रने अपनी बुद्धि विचलित होने न दी; अपना आत्माभिमान अक्षुण्ण रखा और मिलजुलकर उजड़े नगर बसाये। जहांतक हो सका क्षतिकी पूर्ति की और फिरसे समृद्धि लानेका उद्योग किया। १९२८ में ऐसा मालूम पड़ता था कि जापान पहलेसे बहुत अधिक समृद्ध हो गया है। यह है वह जाति जो भारतके एक प्रदेशके बराबर होनेपर भी यूरोपियन राष्ट्रोंको लोहेके चने चबवा रही है।

(२)

उन्नीसवीं सदीके अन्त तक जापानने अपना आन्तरिक सुधार किया। प्रत्येक क्षेत्रमें उसने अपनेको यूरोपियन राष्ट्रोंकी बराबरीका बनाया। जहां गुण देखा उसे अपनाया। विदेशी साहित्यका अनुवाद किया। नये कल-कारखाने खोले। देशको सुसङ्गठित किया और शिक्षाका देशव्यापी प्रचार किया। १९११ तक यह सुधार-युग चला। इसे जापानी 'मेजी युग' कहते हैं। उसके बाद महायुद्ध आया और जापानकी समृद्धि आश्चर्यजनक रूपसे बढ़ी। तबसे वहां दो नयी श्रेणियां पैदा हो गयी हैं। मजदूर और मध्यवित्त धनाढ्य श्रेणी। इससे पहले भी श्रमजीवी थे, पर उनमें मजदूर चेतना नहीं थी। महायुद्धके बादसे उनकी आय बढ़ी और रूसी विप्लवके कारण उन्हें अपनी शक्तिका ज्ञान हुआ। तबसे वहांके राजनीतिक जीवनमें बहुत परिवर्तन हो गया है। पहले वहांकी सरकार नामको ही प्रजासत्तात्मक थी। युद्धके बादसे उसे अपने अनेक अधिकार प्रजाको अर्पण करने पड़े। १९२५ तक जापानमें वोटरोंकी संख्या कुल तीस लाख थी। उस वर्ष मार्च महीनेमें नया कानून बना और निर्वाचकोंकी संख्या एक करोड़ तीस लाख कर दी गयी। जापानमें १९१० में साम्यवाद दबा दिया गया था। १९१७ से उसने फिर सर उठाना आरम्भ किया और जनतामें साम्यवादने जड़ पकड़ ली। १९२२ तक यह साम्यवाद उग्र न था। अब लेबर यूनियनों-पर कम्यूनिस्टोंकी धाक जम गयी। देशभरमें हड़तालोंका दौरदौरा होने लगा। १९२३ में जापानी सरकारने कम्यूनि-स्टोंको गिरफ्तार किया, उनके दफ्तरों और घरोंकी तलाशी ली और इस दलको कुचल डाला। पर पूर्ण सफलता न मिली। साम्यवादके भावोंने सर्वसाधारणपर अपनी छाप लगा दी है। मजदूर स्त्रियां भी इस दलके प्रति प्रेम रखती हैं। जिस जापानमें नारी सदासे आदर्श गृहिणी और पतिव्रता थी, वहां आज औद्योगिक विप्लवने उसे रणचण्डी बना दिया है। वह हड़तालमें शामिल होती है, मारपीटमें भाग लेती है और अपने अधिकारोंकी दुहाई देकर सरकारसे पार्लमेण्टका सदस्य बननेके लिए आकाश-पाताल एक कर रही है। जापानमें आजकल सेयूकाई अर्थात् पुराणपन्थी दलका शासन है, लेकिन साम्यवादको दबानेकी उसकी सारी चेष्टा व्यर्थ हो रही है। हालमें टोकियोमें ट्राम कम्पनीके कर्मचारियोंने जो जबर्दस्त हड़ताल की और दङ्गा मचाया, उसे देख मालूम पड़ता है कि मजदूर आन्दोलन बढ़ते ही जा रहा है। कहा जाता है कि इस आन्दोलनके नेता कई विद्वान् जापानी हैं जो उदार विचार रखते हैं। वासेदा विश्वविद्यालय ऐसे उग्र विचारोंके लिए मशहूर है; वहांके कई अध्यापक और छात्र इस सम्बन्धमें गिरफ्तार भी हो चुके हैं। जापानमें कम्यूनिस्टोंकी संख्या प्रायः आठ लाख है। पार्लमेण्टमें इस दलके ९ निर्वाचित सदस्य भी हैं। वास्तवमें यह देख ताज्जुब होता है कि आज्ञाकारी और स्वामिभक्त जापानी मजदूर आज विद्रोही कम्यूनिस्ट बन गया है। इस दलके रणगीतके निम्नलिखित अनुवादसे इसका परिचय मिलेगा—"लोभी पूंजीपतियोंके दानवी हाथोंने हमारे श्रमकी कमाई छीन ली है। हां, पूंजी-वाद हमारे देशमें जड़ पक्की कर रहा है। ऐ जापानके दरिद्र श्रमजीवी! तू केवलमात्र दास है! ऐसी स्थितिको न तो कोई स्वर्गमें और न इस संसारमें सहन कर सकता है। उसे देख मनुष्य अनन्त कालके लिए क्रोधोन्मत्त हो जाता है। उठो! श्रमजीवियो, उठो! ऐ कैदियो, उठो! पूंजीवादके दुर्गको ढानेका अवसर आ गया है। मजदूरो! उठो और न्यायका दावा करो! श्रमकी महत्ताकी नींवपर नये समाजका सङ्गठन करो!" इस गीतके गानेवाले केवल कारखानोंके मजदूर ही नहीं हैं; किसान भी वर्तमान आर्थिक सङ्कटमें साम्यवादकी ओर झुक रहे हैं। यह देख जापान सरकार बहुत चिन्तित है क्योंकि वहां ९१ प्रतिशत कृषक हैं। हाल ही तक सब किसान अपने सम्राट्को ईश्वरका अवतार मानते थे। वह उनके लिए 'आमातेरसू' अर्थात् सूर्यका वंशज था,

पर अब यह भाव हट रहे हैं। कुछ जापानी राजनीतिज्ञोंका मत है कि इन कृषकोंकी आर्थिक दशा सुधारनेपर वे फिर राजभक्त बन जायेंगे, क्योंकि जापानी स्वभावसे उग्र नहीं हैं। वे पेटभर भोजन पाते ही राजभक्त और देशभक्त बन जायेंगे। पर यदि उनकी दशा बिगड़ती गयी तो साम्यवाद स्पष्टरूपमें आगे आ जायगा।

वर्तमान समयमें जापानी समाजमें नवीनताने प्रबल आक्रमण किया है। टोकियोकी सड़कोंपर युवतियां पुरुषोंकी तरह बाल बनाये यूरोपियन फैशनमें निकलती हैं। अकेले

हवाई-जहाज चलानेवाली जापानी स्त्रियां

बाहर निकलना कुछ समय पूर्व इनके लिए असम्भव था, अब यह साधारण बात हो गयी है। जापानी युवक युवतियां यूरोपकी भांति काफे या बियरखानोंमें डटी रहती हैं। जापानी स्त्रियोंमें स्वाधीनताके भाव जोर पकड़ रहे हैं। वह गृहस्थीके लिए आदर्श गिनी जाती थी, पर अब उसके सुकुमार भाव जल्दीसे लोप होते जा रहे हैं। स्त्रियां अपनी जीविका स्वयं उपार्जन करने लगी हैं, सो यह उसीका परिणाम है। दूकानों, आफिसों, लिफ्टों, ट्राम आदिमें सर्वत्र युवतियां काम करती हैं। उनमें स्वतन्त्र प्रवृत्तिका उत्पन्न होना स्वाभाविक है। जहां नारी स्वच्छन्द बनी कि वह पुरुषोंसे भी अधिक उच्छृङ्खल हो जाती है। जापानमें यही दशा हो रही है। नाच-घरमें जाना, शराब पीना, मर्दोंसे खुले खजाने हंसी-दिल्लगी आदिका जोर है। समाजके भीतर व्यभिचार बढ़ रहा है और वेश्यायें अपनी वृत्ति छोड़ रही हैं, क्योंकि उनकी आय दिन-प्रतिदिन घट रही है। टोकियोका योशी-वारा मुहल्ला गैशाओं (जापानी वेश्याओं) का अड्डा था। वह सरासर खाली हो रहा है। यही दशा जापानके अन्य नगरों-की भी है। इससे एक विकट समस्या यह सामने आयी है कि इन गैशाओंका क्या प्रबन्ध किया जायगा? ये अभागिनियां अपने माता-पिताओं द्वारा बेची गयी हैं। इनकी संख्या कई लाख है। इनका रोजगार बन्द होनेपर क्या हाल होगा? इतनी युवतियोंको काम कैसे मिलेगा? इस चिन्ताने जापानके अर्थनीतिज्ञों और समाज-शास्त्र-विशारदोंको अत्यन्त व्याकुल कर रखा है। गैशाकी सौत पैदा हो गयी हैं कहवा-घरोंकी नौकरानियां और नर्तकियां। समाजसे बुराई तो दूर नहीं हुई, पर लाखों स्त्रियोंका व्यवसाय बन्द हो गया।

इस नवीनताके कारण प्राचीन पद्धतिके रङ्गमञ्च बन्द हो रहे हैं। जापानका नया रङ्गमञ्च यूरोपके अनुकरणपर वास्त-विकताकी भीतपर स्थित है। जापानमें तीन सदियोंसे 'काबुकी' नाटकका प्रचार था। जनता इनपर टूट पड़ती थी, पर अब ये बन्द होते जा रहे हैं। इनके स्थानपर आधुनिक नाटक खेले जाते हैं और जनता इन्हें पसन्द करती है।

जापानके साहित्य और पत्र-पत्रिकाओंने वहां आधुनिकता लानेमें बहुत सहायता दी है। यद्यपि जापानका नया साहित्य केवल चालीस वर्षका पुराना है, किन्तु जापानी लेखक विश्व-साहित्यकी गतिसे परिचित रहनेके कारण उन्होंने अपनी रचनाओंमें नवीनता और स्वतन्त्रताको प्रश्रय दिया है। महायुद्धके बाद तो वहांके साहित्यकोंमें वर्तमान समाज, राष्ट्र और धर्मके प्रति प्रचण्ड विद्रोहका भाव भड़क उठा है। इसका मुख्य कारण यह है कि वहांके लेखक अब रुपया कमाने लगे हैं और अपने विद्रोहके वे भाव प्रकट कर रहे हैं जो उनमें उस समय पैदा हुए थे जब वे पूंजीपतियों और आभिजात्यके दर्पसे पूर्ण कुलीनोंके अत्याचारसे पीड़ित होकर रूखे-सूखे भोजनको तरसते थे। आप जापानका कोई पत्र उठाइये, उसमें जनताकी रुचिके अनुकूल लेख मिलेंगे। धनियों और

कुलीनोंकी रुचिका नाममात्र भी ध्यान नहीं रखा जाता। वहांकी जनताकी रुचिमें महान् परिवर्तन हो गया है। जापानके विषयमें यह कहना अत्युक्ति नहीं है कि वहांके समाजमें युगान्तर उपस्थित हो गया है। एक दृष्टान्तसे पाठक यह बात भलीभांति समझ जायेंगे। अबतक जापानी भले ही खून कर दे, पर चुम्बन न कर सकता था। इससे बड़ा अनर्थ उसके लिए कुछ न हो सकता था। जापानमें यूरोप और अमेरिकासे जो फिल्म आते थे, उनमेंसे चुम्बनके दृश्य निकाल दिये जाते थे। अब वहांकी सरकारने नियम किया है कि ऐसे दृश्य रहने दिये जायें पर चुम्बनकी अवधि आध मिनटसे अधिक न हो।

(३)

जापानके साहित्यसे पता लगता है कि उसने किस व्यग्रतासे विदेशका ज्ञान अपनाया है। १८६८ से लेकर उन्नीसवीं सदीके अन्ततक वहां केवल विदेशी ग्रन्थोंके अनुवाद निकलते थे। इस बीच कुछ स्वतन्त्र उपन्यास और काव्य निकले, लेकिन ज्ञान, विज्ञान, दर्शन, गणित आदि विषयोंपर शायद ही कोई मौलिक रचना प्रकाशित हुई हो। इन विषयोंपर अनुवादोंकी भरमार थी। पर इधर पचीस सालसे जापानमें सब विषयोंपर मौलिक पुस्तकें निकल रही हैं। इससे यह न समझना चाहिए कि वहां अब अनुवाद होना बन्द हो गया है। अब भी संसारके उत्तम ग्रन्थ जापानी भाषामें तत्काल अनुवादित होते हैं। संसारके विख्यात उपन्यासों, नाटकों और काव्योंके जापानी भाषान्तर कबके निकल चुके हैं।

नवीन जापानी साहित्यका जन्म १८८५ में हुआ। उस वर्ष शोयोने 'उपन्यासका सारतत्त्व' नामक ग्रन्थ लिखा। इसमें उसने बताया कि उपन्यासका उद्देश्य मनुष्य चरित्रको हूबहू चित्रित करना है। प्राचीन जापानी लेखकोंकी भांति 'नीतिपूर्ण उपन्यास' लिखना समाजका असत्य चित्र खींचना है। शोयो शेक्सपियरका भक्त था। इसलिए उसने नीति अनीतिको साहित्यसे दूर रखनेपर जोर दिया है। उसने स्वयं अपने सिद्धान्तोंके अनुसार एक उपन्यास लिखा। उसका नाम है—'आजकलके विद्यार्थी।' इस ग्रन्थने जापानी साहित्यिकोंको नया मार्ग दिखाया और समाजमें तहलका मचा दिया। इसी साल कोयो नामक लेखकने 'केन-यू-शा' अर्थात् 'साहित्यिक मित्र-गोष्ठी' स्थापित की। इस मण्डलीने पुराने साहित्यकी जड़ उखाड़ दी। इस गोष्ठीके सदस्योंने दस वर्षतक वे ग्रन्थ प्रकाशित किये कि जापानी साहित्यका रुख पलट गया। कोयोने 'दो प्रेमियोंकी आत्मकथा—याने दो जोगनोंकी' लिखी। यह पुस्तक इसलिए प्रसिद्ध है कि इसमें लेखकने कपोलकल्पित कथाके भीतर सदाचारका उपदेश न देकर मनुष्यकी वास्तविक मानसिक दशाका उत्तम वर्णन किया है। कोयोने जापानी भाषाको भी खूब संवारा। उसमें

जापानी गैशा

उसने नया प्राण भर दिया। पर जापानी साहित्यमें नवीनता, वास्तविकता और वैचित्र्य लानेका श्रेय शेक्सपियरके भक्त शोयो तथा गेटेके भक्त ओगाइको है। इन दो साहित्यारत्नोंने चालीस वर्षतक अपनी आलोचनाओं द्वारा अपने देशके साहित्यको हृष्टपुष्ट किया। शोयो वासेदा विश्वविद्यालयमें अध्यापक हो गया और उसके शिष्य आज जापानके साहित्य-क्षेत्रमें अपना चमत्कार दिखा रहे हैं। वह नामको भी आध्यात्मिक नहीं था। वह वस्तुवादका

पक्षपाती था। १८९३ में उसने 'ऐतिहासिक नाटकोंपर' प्रबन्ध लिखा। इसमें भी उसने पुराने नाटकोंकी धज्जियां उड़ायीं और बताया कि वर्तमान समयमें सच्चे छात्रों और सत्यमूलक नाटकोंकी ही आवश्यकता है। लेखकोंके सामने आदर्श उपस्थित करनेके लिए शोयोने एक ऐतिहासिक नाटक लिख डाला। शोयोके इस 'पाउलोनियाका एक पत्र' नामक नाटकका स्थान जापानी साहित्यमें बहुत ऊंचा है। पर उसकी अक्षय कीर्ति इसलिए है कि उसने साहित्यका नया रूप जापानके सामने रखा। ओगाइने भी यही काम किया। वह जर्मनीसे पढ़कर आया था। उसने १८८९ में तीन

जापानका सामुरायी—प्राचीन पोशाकमें

उपन्यास लिखे। इनमें उसने अपने जर्मन छात्रजीवनकी स्मृतियां भरीं। यह लेखक जर्मन संस्कृतिका परम भक्त था। गेटेकी कला उसके रोम-रोममें भीग गयी थी। उसने अनेक निबन्ध लिखे जिनमें उसने साहित्यमें 'गेटे-धर्म'का प्रतिपादन किया। इस विषयपर इसने शोयोका खण्डन किया और इन दो साहित्य-मर्मज्ञोंमें बहुत दिनोंतक साहित्यके रूपपर वाद-विवाद चलता रहा। इससे साहित्यमें नयी जान पड़ गयी और साहित्यके अनेक ऐसे भेद खुले जो जापानी साहित्यिकों-

के ध्यानमें कभी न आये थे। उक्त दो साहित्यिकोंने अपने देशके सामने विदेशी साहित्यके जौहर दिखाये। इसका फल यह हुआ कि यूरोपियन भाषाओंके उत्तम ग्रन्थ जापानीमें निकलने लगे। प्रसिद्ध साहित्यिक फुटाबाताइ शिमाइने बीसियों रूसी ग्रन्थोंका अनुवाद कर डाला। इस लेखकके मौलिक ग्रन्थ भी अपूर्व प्रतिभाका परिचय देते हैं। इसका उपन्यास 'परपति' अंगरेजी भाषामें भी छपा है। इस बीच टाका यामा प्रखर प्रतापी नीत्शेका 'लोकोत्तर पुरुषवाद' लेकर साहित्यके अखाड़ेमें कूदा। उसने इस विषयपर उग्र लेख लिखे और सारा जापान उन्हें पढ़कर फड़क उठा। टाका-

आधुनिक जापानी युवती

यामाके इन प्रबन्धोंने जापानके साहित्यको सङ्कीर्ण आचार-विचारोंसे मुक्ति दे दी। जर्मन दार्शनिक नीत्शेका मत है कि समाजका सदाचार और दुराचार दुर्बल मनुष्योंके लिए बनाया गया है। प्रबल पराक्रमी लोकोत्तर पुरुष दुराचार करनेपर भी निस्सङ्क रहता है; उसे पाप नहीं छूता। तब कहांका सदाचार और कैसा दुराचार। इस मतका जापानने आदर किया। जिस समय टाका यामाने अपने देशवासियोंके सामने ये विचार रखे, उस वक्त छोटा जापान चीनको हरा चुका था। बस उसने समझा कि यह 'लोकोत्तर पुरुषवाद'

हमारे लिए ही है। नीत्शेके दर्शनने जापानके गर्वको आधार दिया और साहित्यिकोंमें नयी प्रेरणाका आविर्भाव हुआ। इसके बाद वे उपन्यास और नाटक लिखे जाने लगे जिनमें तत्कालीन दबे हुए विचार ओजस्वी भाषामें प्रकट होने लगे। इस ओर इचि-यो नामक एक निर्धन कुमारीने कमाल कर दिया। उसे अपनी माता और बहनका पालन-पोषण करना पड़ा। पढ़ी-लिखी थी, सोचा कि लिखकर पैसा कमाया जाय। उसने पहला उपन्यास बीस वर्षकी आयुमें लिखा। इसने जापानमें तूफान मचा दिया। अपने इस ग्रन्थमें इस सुकुमार ललनाने समाजके घोर अत्याचारोंके विरुद्ध नारी जातिका आर्तनाद मर्मच्छेदी स्वरमें सुनाया। नीच जातियों-की स्त्रियोंके प्रति जो दुर्व्यवहार होता है उसके विरुद्ध इस उपन्यासमें विद्रोह किया गया है। उपन्यास पढ़नेपर मालूम पड़ता है कि विद्रोहकी यह सत्यानाशी आग समाजको भस्म कर देगी। इस बीरबालाका प्राण नीच जातिकी स्त्रियोंके पतित और दलित जीवनकी नारकीय यन्त्रणाओंसे जल-भुन रहा था। इसने अपने मर्मका सारा विष इस ग्रन्थमें ढाल दिया। इसकी प्रत्येक पंक्तिमें उसके हृदयका अबाधगति प्रभञ्जन मानो प्रलयका दृश्य उपस्थित करनेके लिए समाजसे जूझ रहा हो। इचि-योका अर्थ है 'अकेला पत्ता' वास्तवमें यह लेखिका अपने अत्यन्त कटु अनुभवोंके कारण समाजसे भागती फिरती थी। वह जीवनभर अकेली रही। दुर्भाग्यसे वह केवल चार वर्ष साहित्य-सेवा कर सकी। इसने कई उपन्यास और छोटी कहानियां लिखीं। सबमें नारी हृदयका हाहाकार समाजको झुलसनेको जाता है। यह अपूर्व प्रतिभाशाली लेखिका १८९६ में चौबीस वर्षकी उम्रमें—मर गयी। इसकी कृति अमर है और आज भी उसका नाम कर रही है। जब-तक जापानी साहित्य रहेगा वह भी रहेगी। इसका सर्वोत्तम उपन्यास 'टाके कुराबे' है। इसका अर्थ है 'ऊंच-नीचकी तुलना'। इसमें एक लड़के और लड़कीकी कथा है जिन्हें भाग्य एक दूसरेसे दूर भगा देता है। लड़का एक बौद्ध भिक्षुका दत्तक पुत्र है और टोकियोके एक मन्दिरमें रहता है जो वेश्याओंके मुहल्ले योशीवाराके पास है। लड़की गैशाके घरमें पल रही है। दोनों साथ-साथ खेलते-कूदते, हंसते-बोलते हैं। दोनोंमें प्रेम होने लगता है। इसी समय भिक्षु अपने पुत्रका यह महान् अपराध मालूम करता है और उसे दूर भेज देता है। लड़की भी 'गैशा' बन गयी है। उसे पता नहीं है कि उसे किसने बेचा और कब बेचा। पर अपने भाग्यको कोसती है और 'गैशाधर्म' निभाती है। दोनोंके हंसी-खुशीके दिन बीत गये, अब कठोर कर्तव्यका सामना है। लड़का पिताकी आज्ञापर एक रोज टोकियोसे चला जाता है, पर वह अपनी सङ्गिनीको नहीं भूलता। उसके मकानके दरवाजेपर वह अंधेरी रातमें लुकछिपकर एक पुष्पपात्र रख आता है। बस यहीं कहानी समाप्त हो जाती है।

एक मध्यवित्त जापानी गृहस्थी

जापानमें साहित्यिक सत्यका प्रचार करनेमें होगेत्सूका बहुत बड़ा भाग है। इसने यूरोपमें शिक्षा पायी और १९०९ में यह स्वदेश वापस आया। इसने साहित्यिक आलोचना की और ग्रन्थ भी लिखे। इसने वस्तुवादका वह स्रोत बहाया कि इसकी बाढ़में सारा जापान बह गया। बात यह थी कि इस समय जापान काफी उन्नत हो चुका था। वहांकी जनतामें ज्ञानका खूब प्रचार हो गया था। पुराने ग्रन्थोंमें कितना ही साहित्य-रस क्यों न भरा हो, तो भी उनमें नयी पीढ़ीको तृप्त करनेका पूरा मसाला न था। विज्ञानके प्रचारने बुद्धिको आलोचनात्मक बना दिया था और साथ ही इस

टोकियोकी ट्राम कम्पनीके कर्मचारी जिन्होंने हालमें हड़ताल की थी।

समय जापानमें यूरोपीय साहित्यका प्रवेश हो गया था। अब तक वहां अंगरेजी साहित्यका ही अधिक प्रचार था। होगेत्सू १९१९ में अकाल मृत्युका ग्रास बना, पर वह अपना काम कर गया। उसकी आलोचना पढ़कर जापानने अपने एक ऐसे लेखकको पहचाना जिसकी प्रतिभा प्रतिकूल परिस्थितिमें समादृत न हो सक रही थी। डोपो अर्थात् 'अकेला बटोही' अपने ढङ्गका एक ही लेखक है। उसने निर्भय होकर इस क्रूर जीवनके कटु तथ्योंपर प्रकाश डाला, पर लोक-रुचिने उसके ग्रन्थोंकी प्रतिष्ठा न की। उसके उपन्यास 'वचा गेन' 'मुसाशीका खेत' और 'एक इतिहास जो झूठ नहीं बोलता' उसकी सहृदयता और मार्मिक अन्तर्दृष्टिका परिचय देते हैं। लेकिन बहुत दिनोंतक किसीने उसे पूछा नहीं। वह भी इससे लेशमात्र विचलित न हुआ। अपनी आध्यात्मिक शक्तिके भरोसे वह अपने विजन पथमें बढ़ता गया। पर होगेत्सूने देश तैयार किया तो उसने अपनी छोटी कहानियोंका संग्रह निकाला। इसके प्रकाशित होते ही वह जापानका सर्वश्रेष्ठ लेखक बन गया। उसका अभूतपूर्व स्वागत हुआ। यह साहित्यिक जनताके जीवनकी निस्सारता और व्यर्थता देखकर विरक्त बन गया था। एक स्थानपर यह लिखता है—"बड़े आदमियों और दार्शनिकोंको समझना कठिन नहीं है।...... उनके आदर्शोंसे तुम उन्हें जान सकते हो। पर साधारण मनुष्योंके झुण्डोंके विषयमें क्या कहा जा सकता है। उनके

प्रोफेसर ओकाकुरा—जो जापानमें पाश्चात्य सभ्यताका प्रचार करनेके कट्टर पक्षपाती हैं।

निस्सार और सादे जीवनका क्या अर्थ है? इस मर्मच्छेदी दुःखद दृश्यके आगे हम चकित और स्तम्भित हैं।" यह लेखक रोग और शोकसे सन्तप्त होकर छत्तीस वर्षकी उम्रमें ही कालके कवलमें चला गया।

टोसन कवि था। उसने कवितामें नये भाव और नये छन्दोंका व्यवहार किया था। इसलिए उसे प्रकाशक मिलना कठिन हो गया। बरसों बाद एक प्रकाशकने साठ रुपये देकर उसकी कवितायें छापीं। इनकी ऐसी धूम हुई कि सैकड़ों संस्करण निकले और आजतक निकलते जाते हैं। यह कवि रोसेटी और स्विनबर्नका भक्त था और उनकी शैलीका इसने अनुकरण किया। उसका काव्य १८९७ में छपा था। १९०६में उसने हाकाइ अर्थात् 'वचन-भङ्ग' नामक उपन्यास लिखा।

इसके छपतेही जापानमें नयी हलचल मच गयी। यह समस्या-उपन्यास था। इसमें यह दिखानेकी चेष्टा तो नहीं की गयी थी कि सामाजिक समस्या किस प्रकार हल की जा सकती है, किन्तु देशके सामने एक समस्या रख दी गयी थी। उपन्यासका नायक एक देहाती अध्यापक था। यह नीच जातिका था। उसने अपने पिताको वचन दिया कि वह कदापि अपने वंशका पता किसीको न लगने देगा। क्योंकि लोगोंको उसकी वास्तविक जातिका पता लगनेसे उसकी तरक्की रुक जाती और वह कहींका न रहता। इससे भी बड़ी हानि यह होती कि वह अपनी प्रेयसीसे ठुकराया जाता जो उसे प्राणसे प्यारी थी। कुछ समय बाद वह एक अछूत महात्माके संसर्गमें आता है। इस सन्तने अपनी जाति छिपानेके स्थानपर उसे गर्वके साथ घोषित किया था। इससे उसे बहुत हानि हुई। समाजने उसपर भीषण अत्याचार किया, पर इस सत्यभक्तने वीरतापूर्वक सब कुछ सहा और अपना गौरव अपनी जात न छिपानेमें ही समझा। यह देख देहाती अध्यापकके हृदयमें अपनी दुर्बलताके प्रति असहनीय घृणा उत्पन्न हुई। उसकी घोर मानसिक यन्त्रणा और साथ ही अपना पद न खोनेकी अभिलाषा—इन दोनोंके बीच जो खींचातानी चली उसका इस लेखकने ऐसा उत्तम और सच्चा वर्णन किया है कि उसकी प्रतिभाका कायल होना पड़ता है।

एक उच्च कुलकी जापानी रमणी

अन्तमें अध्यापकका हृदय अपनी दुर्बलताके विरुद्ध उठ खड़ा होता है और वह भी अपनी जात सबको बता देता है। बस उसका पद, मर्यादा, समृद्धि सब-कुछ मिट्टीमें मिल जाती है और प्रेयसी भी उसे छोड़ देती है। अध्यापक स्वदेशमें अपमानित और लाञ्छित होकर देश छोड़ देता है। इस उपन्यासमें साहित्यिक सत्यकी पूर्ण रक्षा की गयी है। इसका मानसिक विश्लेषण देख बड़े-बड़े मनस्तत्त्व विशारद दांतों तले उंगली देते हैं। होगेत्सूने इसकी आलोचनामें लिखा था—"इस उपन्याससे मालूम होता है कि हमारा साहित्य पलटा खा चुका है। यूरोपके आधुनिक वस्तुवादी लेखकोंकी आत्माने जापानी साहित्यमें अपना जोड़ पाया है।" टोसनको जापानका तुर्गेनिएफ कहा जाता है। कई उसे जापानका आनातोल फ्रांस बताते हैं, क्योंकि उसकी भाषा बहुत धुली-मंजी और कटी-छंटी होती है। युद्धके समय वह फ्रान्स गया और वापस आनेपर उसने एक उपन्यास 'नया जीवन' नामसे लिखा। इसमें उसने अपने जीवनकी निर्भय होकर आलोचना की। अपना पाप संसारको बताया। तबसे इस लेखकने कलम छोड़ दी है। होगेत्सूके समयके लेखकोंका मूलमन्त्र था 'प्रकृत जीवनका ओजस्वी और सरल भाषामें वर्णन।' इन साहित्यिकोंने नीति और सदाचारकी धज्जियां उड़ा दीं। ये सत्य—निरे सत्यके पीछे पागल थे। ये कहते थे—'सत्य साहित्यका प्राण है। सुन्दरताका ध्यान उसके बाद रखा जा सकता है।……संसारमें आनन्द और सुन्दर कम, दुःख और असुन्दर पग-पगपर मिलता है, इसलिए जिस कहानीमें वीभत्स रस जितना अधिक होगा उसमें सत्यकी मात्रा भी उतनी ही ज्यादा रहेगी।' यह वस्तुवाद १९१२ तक रहा, पर इतने

जापानी युवतियां बन्दूक चलाना सीख रही हैं।

समयमें इसने समाज और साहित्यसे पाखण्ड, धर्मध्वजता, सङ्कीर्ण सदाचार आदिका निर्वासन कर दिया। यौन-सम्बन्ध-पर भी इन वस्तुवादियोंने अत्यन्त उग्र विचार प्रकट किये। असल बात यह थी कि वे बेलगाम थे। कुछ लेखकोंने तो अति भी कर दी।

सोसेकी नात्सूमे वस्तुवादका जानी दुश्मन था। लाफ-कादियो हर्नकी मृत्युके बाद यह टोकियो विश्वविद्यालयमें अंगरेजी साहित्यका अध्यापक नियुक्त किया गया। १९०५ में इसे अपनी भाषामें लिखनेकी सूझी। यह एक पत्रमें 'मैं बिल्ली हूं' नामसे धारावाहिक उपन्यास छपाने लगा। इसमें उसने अपने समसामयिक समाजका चित्र खींचा और हास्यरसकी खासी पुट दी। इस सारे ग्रन्थमें बिल्ली जापानी समाजपर अपने अनुभव बता रही है। इस उपन्यासको पढ़कर सारा जापान खिलखिला उठा। इस ग्रन्थका न सिर है न पैर। प्रत्येक परिच्छेद स्वतन्त्र है। पर सर्वत्र गूढ़ विचार हैं और हंसीका फव्वारा सारी पुस्तकसे छूट रहा है। इस उपन्यासके एक-एक अध्यायके लिए पाठक तरसते रहते थे। पत्रकी धूम हो गयी। और नात्सूमेको अपनी इच्छाके विरुद्ध उपन्यास लम्बा करना पड़ा। प्रकाशकको भय था कि इस कथाके बन्द होनेसे कहीं पत्र ही बन्द न हो जाये। पर नात्सूमेको इस बिल्लीसे घृणा हो गयी। जब छात्र इस पुस्तकका प्रसङ्ग छेड़ते थे तो वह कहा करता था—'बस अब उसका नाम मेरे सामने मत लो। ठहरो, मैं अब शीघ्र उसकी हत्या कर डालूंगा।' हुआ भी ऐसा ही। उसने एक अङ्कमें अकारण ही इस दार्शनिक बिल्लीको स्वामीके गिलासका बाकी छूटा हुआ बियर पिला दिया। बिल्लीको नशा चढ़ा तो पानीकी बाल्टीमें गिर गयी और गीत गा-गाकर अपने विचित्र अनुभवोंका वर्णन करने लगी और डूबकर मर गयी। इस बिल्लीकी मौतसे पाठक बहुत हताश हुए, पर यह देख सब वाह-वाह करने लगे कि यह हंसोड़ बिल्ली मरते मरते भी सबको हंसा गयी। इस पुस्तककी तुलना कुछ अंशमें पं० रतननाथ 'सरशार' के 'फिसाने-आजाद' से की जा सकती है। नात्सूमेने कई ग्रन्थ लिखे। यद्यपि नात्सूमे तीन मास इंगलैण्ड रहा, पर यह सदा धार्मिक और आध्यात्मिक रहा। अपने प्रबन्ध 'सैलानी रुचि' में इसने अपना साहित्यदर्शन समझा रखा है। वह कहता है—"सैलानी रुचि प्रत्येक मनोहर और आनन्ददायक घटनाका देरीतक निरीक्षण करेगी।······इसका स्वाद वही ले सकते हैं जिन्हें मानसिक हड़बड़ी नहीं है। ऐसा आदमी जब बाजार करने जायेगा तो खूब चक्कर काटते हुए जायेगा। वह उस लड़केको देखकर रस लेगा जो अपने घरसे चूहा पकड़ लाया है और कान्सटेबलके हवाले कर रहा है। यह सैलानी रस साहित्यमें आनन्दका उत्स है।" नात्सूमेके ग्रन्थ बहुत उच्च कोटिके माने जाते हैं। उसकी प्राञ्जल भाषा और हास्य रस उसके अपने हैं। इसके 'सैलानी रस' ने इसके ग्रन्थोंमें अमरता ला दी है।

जापानका एक विचित्र लेखक ताकेरी आरी शीमा हुआ है। यह टाल्स्टायका चेला था और वाल्ट ह्विटमैनका भक्त। टाल्सटायकी भांति इसका हृदय भी दरिद्रोंके दुःखसे व्यथित था। यह बहुत धनी घरानेका था, पर हाथमें जायदाद पड़ते ही इसने उसे पाप-पुञ्जके रूपमें देखा। इसलिए १९२२ में उसने अपनी सम्पत्ति दरिद्रोंमें बांट दी। होकाइडोमें इसकी बहुत बड़ी जमींदारी थी। वह किसानोंमें बांट दी गयी। टोकियो-का महल और निप्पों यूसन कैशा नामक जहाजी कम्पनीके शेयर इसने श्रमजीवियोंकी शिक्षाके लिए दे दिये। स्वयं सन्यासियोंकी भांति रहने लगा। इसके ग्रन्थ 'विज्ञानशाला' 'अरुणोदय' 'भूल-भुलैया' तथा अनेक छोटी कहानियां जापानी साहित्यका गौरव बढ़ा रही हैं। इसने 'श्रमजीवियोंका नया साहित्य' प्रबन्ध लिखकर जापानमें मजदूर-साहित्यका सूत्रपात किया। इस समय जापानमें इस प्रकारका साहित्य ही पैदा हो रहा है।

जापानी साहित्यमें 'सौन्दर्यवाद' ने भी अपना प्रभाव डाला है। तानीजाकी जापानका ऑस्कार वाइल्ड गिना जाता है। इसके 'शैतान' 'टोटू' 'एक बालक' आदि ग्रन्थोंमें उपमाकी अपूर्व छटा देखनेको मिलती है।

(४)

जापानमें प्रति वर्ष प्रायः बीस हजार पुस्तकें निकलती हैं और पत्रोंकी संख्या प्रायः सात हजार है। पत्रोंकी अवस्था बहुत उन्नत है। टोकियोका 'आसाही' अथवा 'सविता' प्रायः दस लाख प्रतिदिन बिकता है। 'होची' के दिनमें ग्यारह संस्करण निकलते हैं। 'ओसाका माइनिचि'की दैनिक बिक्री साढ़े बारह लाख प्रतियां है। टोकियोके 'निचिनिचि' के प्रायः आठ लाख ग्राहक

जापानके कहवा घरोंकी नौकरानियां

हैं और ओसाकाके 'आसाही' के इससे भी अधिक। पत्रोंका यह प्रचार जापानकी महान् उन्नतिका परिचायक है। पत्र भी सब प्रकारसे सुसज्जित रहते हैं। पचासों सम्पादक एक-एक पत्रमें काम करते हैं। उन्हें अच्छा बनानेमें व्ययकी कोताही नहीं की जाती। इसका अनुमान इस एक बातसे लग जाता है कि टोकियोका 'आसाही' पत्र विदेशी समाचार प्राप्त करनेके लिए उतने ही रुपये खर्च करता है जितने लण्डनका 'टाइम्स।' इन पत्रोंमें ताजे-टटके समाचार तो रहते ही हैं; पर लेख वगैरह अंगरेजी पत्रोंसे गम्भीर और विद्वत्तापूर्ण रहते हैं। प्रत्येक पत्र तीन तीन उपन्यास धारा-वाहिक रूपमें छापता है। साहित्य, विज्ञान, अर्थशास्त्र आदिपर विद्वानोंके लेख रहते हैं। इस विषयमें जापानी पत्र जर्मन पत्रोंका मुकाबला करते हैं।

वहांके साप्ताहिक और सचित्र मासिक पत्र किसी भी उन्नत देशके पत्रोंसे टक्कर ले सकते हैं। जापानी भलीभांति जानते हैं कि संसारकी कोई भी जाति बिना विश्वकी गतिसे परिचित हुए जीवन-युद्धमें विजयी नहीं हो सकती। इसलिए वहां कई मासिक पत्र ऐसे निकलते हैं जो 'लिविङ्ग एज' 'लिटररी डाइजेस्ट' तथा 'रिव्यू आव रिव्यूज' की तरह संसारके पत्रोंसे महत्त्वपूर्ण लेखोंका चयन करते हैं। इनका वहां बहुत प्रचार है। जापानी सामयिक पत्रोंकी विशेषता यह भी है कि उनमें विदेशी विद्वानोंके लेख अवश्य रहते हैं। बरट्राण्ड रसेल, वेलस, बारव्यूस, आदिके लेख छपते रहते हैं। इनके लेख सौ सौ पेजके होते हैं। गम्भीर लेख जापानी सामयिक पत्रोंमें ही पाये जाते हैं। वहांके पाठकोंकी रुचि इतने लम्बे लेख मांगती है।

(५)

उक्त वर्णनसे पाठक जानेंगे कि जापानने ५०,६० वर्षके भीतर क्या आश्चर्य किया है। इतने थोड़े समयमें उसने सर्वाङ्गीण उन्नति की है। उसने उन प्रश्नोंको बड़ी बुद्धिमत्तासे हल किया है जो यदि उचित रूपमें हल न होते तो आज जापान श्याम, अनाम आदिकी तरह परवश होता। एशियामें एकमात्र इस देशने अपने उद्धारका भेद समझा और अपना सुधारकर संसारको दिखा दिया है कि उन्नतिका मूलमन्त्र समयकी गतिके साथ चलना है। अशिक्षित और दरिद्र अवस्थामें जापानने अपनी मुक्तिका पथ निकाला था। आज भी उसके सामने अनेक विकट समस्यायें हैं। उसकी जनसंख्या प्रतिवर्ष दस लाखके हिसाबसे बढ़ रही है, पर जापानमें जितने निवासी हैं उनके ही लिए रहनेका पूरा स्थान नहीं है। बेलजियममें एक वर्गमीलमें ३९४ मनुष्य बसते हैं, पर जापानमें ९६९ बसते हैं। लेकिन जापान इस प्रश्नको कई उपायोंसे हल करनेमें लगा है। उसने उत्तरमें होकाइडो बसाना आरम्भ किया है। इधर मञ्चूरियामें अपना प्रभाव बहुत बढ़ा दिया है और फार्मोसामें खेती-बारी जारी की है।

जापानकी यह समस्या सबसे बड़ी है। जनसंख्याकी वृद्धि रोकनेके लिए सन्तति-निरोधका अवलम्बन भी किया जा रहा है। दूसरी समस्या व्यापार-व्यवसायकी है। इसपर एक विद्वान् जापानी अर्थशास्त्रज्ञका मत है कि जापानकी व्यावसायिक बुद्धि और युक्त व्ययका ध्यान जापानको सस्तेसे सस्ता माल तैयार करनेमें सहायता दे रहा है। इस विषयपर उसका सामना कोई देश न कर सकेगा। एशियाई देशोंके लिए जापान आदर्श है।

न्यूयार्कके पापाचारका केन्द्र टैमनी हाल

श्री जी० डी० अग्निहोत्री एम० ए०—पैरिस

टैमनी हालको संसार जानता है। अमेरिकाके घोर नैतिक पतनका इससे बड़ा प्रमाण नहीं मिल सकता। आल कापोने डाकू है। वह शराब बेचता है, जुआ करवाता है और लूट तथा मारपीटके लिए तैयार रहता है। इन अपराधोंके लिए वह जेल भुगत रहा है। टैमनी हाल और उसके नेता जो लूटपाट और दिनदहाड़े सबके सामने जुआ, चोरी, जाल, फरेब और अन्धेर कर रहे हैं उसकी कोई सजा नहीं है। सभ्य धूर्तोंके इस अड्डे का एक नेता जिमी वाकर इस समय संसार-भ्रमण कर रहा है। यह कुछ समयतक न्यूयार्कका मेयर था और अपने चौपट राजमें इसने लाखों डालर लूटे। अन्तमें जब पोल खुली तो गवर्नर रूजवेल्टने इसे अलग हो जानेको कहा। कहा जाता है कि यह धूर्तराज मैसूरके युवराजका अतिथि बनेगा।

टैमनी हाल न्यूयार्कके डेमाक्रैट दलका केन्द्र है। टैमनी असलमें एक रेड इण्डियन नेताका नाम था। प्रायः तीन सौ वर्ष पहले इस तपस्वी वीरने दूर-दूरतक अपनी विजयका डङ्का बजाया और अपने राज्यके जङ्गली जानवरोंको मारकर प्रजाको सुखी किया। सबको सुख और समृद्धिका भोग करते देख इस नरपुङ्गवने समझा कि मेरे जीवनका उद्देश्य पूरा हो गया। वह चुपचाप अपनी झोपड़ीमें बैठ गया और उसमें आग लगा दी। इस प्रकार वह सानन्द और स्वेच्छापूर्वक स्वाहा हो गया।

जब अमेरिकाने अंगरेजोंके विरुद्ध बगावत की तो 'स्वतन्त्रताके पूत' नामक संस्थाने टैमनीको अपना रक्षक सन्त निर्वाचित किया। इस सभाके उद्देश्य इन शब्दोंमें निश्चित किये गये थे—"यह सभा देशभक्त, जनतन्त्रवादी और दयाभाव, समता तथा बन्धुत्वका प्रचार करती है। इसका मुख्य लक्ष्य उन कुलीनोंका नाश करना है जिन्होंने अपने नेता हैमिल्टन और उसके मित्रोंके द्वारा अमेरिकाका शासन अपने अधीन कर रखा है।" आरम्भमें इस सभाने अमेरिकामें बसनेको आनेवाले विदेशियोंकी बहुत सेवा की। अस्पताल खोले, धर्मशालायें बनायीं, बेकारोंको काम-धन्धा दिलानेमें सहायता की। यूरोपके धार्मिक, राजनीतिक तथा सामाजिक अत्याचारोंसे पीड़ित स्वाधीन आत्मायें भाग-भागकर अमेरिका आती थीं कि वहांके मुक्त वातावरणमें उन्हें अपने विचारोंके अनुकूल रहनेका अवसर मिले। इन नवागन्तुकोंकी उक्त सभाने जी खोलकर सेवा की। पर समयने पलटा खाया और नाममात्रका बन्दरगाह न्यूयार्क दिन दूनी और रात चौगुनी उन्नति करने लगा। अब 'स्वतन्त्रताके पूतों' को राजनीतिमें भाग लेनेकी सूझी। स्वभावतः इनके हाथमें अधिकार आ गया और डेमाक्रैट दल न्यूयार्कका सर्वेसर्वा बन गया।

अमेरिका इस बातका दृष्टान्त है कि प्रजासत्तात्मक राज्य-प्रणाली भीषण अनर्थकी जड़ बन सकती है। प्रशस्त भूमि, प्रकृतिदत्त प्रचुर सम्पत्ति और यूरोपसे प्रति वर्ष परिश्रमी मजदूर आनेके कारण यह देश संसारमें सबसे अधिक धनाढ्य बन गया है। पर जो गुण्डाराज इस सभ्य समाजमें चलता है, उसकी तुलना असभ्य बर्बरोंसे भी नहीं की जा सकती। वास्तवमें समृद्धिशाली अमेरिकाका पतन करुणाजनक है। वहां गवर्नर, जजसे लेकर मामूली कान्सटेबलतक सबको रुपयेके हाथ बिकनेमें देर नहीं लगती। यही कारण है डाकू, गुण्डे, बूटलेगरों तथा धूर्तोंकी वहां खूब चलती है। अमेरिकाके पतनका करुणाजनक दृश्य देखकर वहांकी शासन-

प्रणालीके प्रति श्रद्धा नहीं होती। टैमनी हालकी गुण्डाशाही देख तो उनसे घृणा होने लगती है। न्यूयार्कके डेमाक्रेट दल-की जुआचोरी, जाल और लम्पटता देख जानसनके शब्दोंमें यही कहना पड़ता है कि 'राजनीति बदमाशोंका पेशा है।'

न्यूयार्ककी यह हालत है कि जिसका टैमनी हालसे कुछ भी सम्बन्ध हुआ वह मालामाल हो जाता है। इस बार राष्ट्रपतिके निर्वाचनके समय टैमनी हालने करोड़ों रुपये रूज-वेल्टका प्रचार करनेमें पिला दिये। रिपब्लिकन दलके हाथमें भी शक्ति है और वह अबोध प्रजासे हर तरह लूट-खसोटकर अपने पिट्ठुओंको मालदार बनानेमें नाममात्र नहीं हिचकता, लेकिन

टैमनीहालके नेता आल स्मिथ

धनी राष्ट्र और संसारका समृद्धतम बन्दरगाह न्यूयार्क डेमा-क्रेटोंके हाथमें है। वहां इन्होंने जो अन्धेरखाता खोल रखा है उसका वर्णन पढ़कर रोमाञ्च हो आता है। जनताकी आंखोंमें धूल डाल, अदालतोंमें मनमानी करा, पुलिसको अपने साथ मिला, जुएके अड्डे खुलवाकर, शराबखानोंकी रियासतभरमें भरमार करके और न्यूयार्कके कारपोरेशनको ठगकर इस संस्थाने अपनी आय इतनी बढ़ा ली है कि—"यदि टैमनी हाल लिमिटेड कम्पनीमें परिणत हो जावे तो इसकी आय न्यूयार्क सेण्ट्रल रेलवे और स्टैंडर्ड आयल कम्पनी-की मिली हुई आयसे अधिक हो और टैमनीके डायरेक्टरोंकी शक्ति स्टील कारपोरेशनके अध्यक्ष और बैङ्कर मौर्गनसे अधिक हो।" टैमनी हाल न्यूयार्कमें निरंकुश शासन करता है। इसके स्वेच्छाचारका सामना संसारका बड़े-से-बड़ा स्वेच्छाचारी राजा नहीं कर सकता। इसका नेता रूजवेल्ट अमेरिकाका राष्ट्रपति बन गया। आल स्मिथ राष्ट्रपति बनते-बनते रह गया और जिमी वाकर चालीस हजार डालर प्रति वर्षके वेतनसे करोड़पति हो गया। इसके नामसे सुप्रीम कोर्टके जज त्राहि-त्राहि करते हैं। छोटे मजिस्ट्रेट टैमनी हालका नाम सुनकर न्यायको अन्याय घोषित करनेमें नाममात्र नहीं हिचकते और पुलिस इस शक्तिशाली हालकी सिफारिशपर घोर पापको परम पुण्य समझती है।

हालमें इसकी जांच हुई है। उसमें इसकी जिस दुर्दशा-का पता लगा है उसे पढ़कर यही कहना पड़ता है कि अमे-रिकाकी 'सुसंस्कृति और सभ्यता' से जो जितनी दूर रहे वह उतना भाग्यशाली है। जिमी वाकरसे ही आरम्भ करें। न्यूयार्ककी एकिटेबल कोच कम्पनीका चलना दुष्कर हो रहा था। हालत यह थी कि अब दिवाला पिटा और अब इसका श्राद्ध हुआ। इस कम्पनीके मालिकोंको बहुत अच्छा उपाय सूझा। न्यूयार्क स्टेटके सेनेटर जे० एम० हेस्टिङ्गसको उसने घूस देकर मिला लिया। यह सेनेटर जिमीका मित्र था। इसने अपना जोर लगाया। 'मृदङ्गो मुखलेपेन करोति मधुरध्वनिम्।' वाकर फिसल पड़े। कम्पनीको सब सुविधायें दी गयीं, पर ऐन मौकेपर इस जाली कम्पनीके पास काम चलानेको पूंजी न निकली। लेकिन वाकर चालीस हजार रुपया पहले ही एंठ चुके थे। सीबरी जांच कमेटीने जब उनसे पूछा तो न्यूयार्कके अधिपति मेयर वाकर बोले कि मैंने यूरोप सफरका व्यय लिया था। इसी प्रकार मेयर जिमीने रिलायन्स ब्राञ्ज एण्ड स्टील कारपोरेशनमें भी अपना दखल कर लिया। उनके विषयमें उक्त कमिटी लिखती है—"यद्यपि कानूनन मेयर वाकरके विरुद्ध कारवाई नहीं की जा सकती, किन्तु उसके चरित्रका पतन स्पष्ट है। उसने अपने यार-दोस्तोंको खास रियायतें दीं। अपने लिए घोर अनुचित उपायोंसे माल मारा। रुपयेके ढेर लगा दिये और अपनी तिजोरी ठसाठस भर दी। उसने अपने भाई डा० विलियम० एच० वाकरको तीन और

डाक्टरोंके साथ नगरसे आठ लाख रुपये दिला दिये। नगरके अन्य कर्मचारियोंपर इसका घातक परिणाम हुआ। उन्होंने देखा कि जिमी वाकर धनकुबेर बन गये हैं और सबके लिए यह रहस्य ही रहा कि इतनी जल्दी कैसे वे धन्नासेठ हो गये। इतना तो सब ताड़ गये होंगे कि नगरनिवासियोंके टैक्सका यह चमत्कार है। बस वे भी अपनी-अपनी फिक्र करने लगे।"

टैमनीहालके सरदार न्यूयार्कके भूतपूर्व मेयर जिमी वाकर

जिमी वाकर तथा उसके जाति-भाइयोंका गुरु न्यूयार्क स्टेटका एक भूतपूर्व सेनेटर जार्ज वाशिङ्गटन प्लुङ्किट था। यह टैमनी हालके पापाचार और घूसखोरीका मन्त्रद्रष्टा ऋषि माना जाता है। तीस वर्ष पहले इसने ईमानदारी और बेई-मानीका भेद बताया था। बकौल इसके, ईमानदारीकी आय वह है जो एक नागरिक कर्मचारीको अपने विशेष ज्ञान और पद प्रतिष्ठाके कारण होती है, और न्याय विरुद्ध आय वह है जो जुआचोरी तथा जालसाजीसे होती है। इसका मतलब यह था कि नागरिकोंको खूब लूटो, पर उन्हें इस बातका पता न चलने दो। लेकिन उसके चेले उसका भी कान कतरने लगे। उन्होंने न्यूयार्कके कारपोरेशनको तो लूटा ही, लेकिन बूटलेगरों, जुएके अड्डों और पापालयोंसे भी अपना पेट भरना आरम्भ कर दिया। सी० एच० पैंकहर्स्टने एक बार कहा था—"न्यूयार्कमें वेश्यालय और धूर्तागार हर कोनेमें मिलते हैं।" अब इसकी पोल खुली है और हालत यहांतक गिर गयी है कि वहांके न्यायालयोंमें केवल अन्यायको आश्रय मिल रहा है। जज सीबरीकी कमिटीने पहले इन्हीं अदालतोंकी खबर ली। वहां न्यायाधीशोंमें भगदड़ पड़ गयी। न्यूयार्कके न्यायकर्ता टैमनी हालके द्वारा ही चुने जाते हैं। जिस मनुष्यने अधिक घूस दी वह जज चुना गया। इसकी अदालतमें जो मामले आये उनमें चाहें तो टैमनीहालके विधाता और उनके मुसाहिब चितको पट कर दें। ये अदालतें रुपया बनानेकी मशीनें बन गयीं इनके विषयमें उक्त कमिटीने लिखा है कि "किसी राजनीतिक क्लबकी एक बात न्याय और वकीलोंको चौपट करनेमें समर्थ है।" यह बात जब टैमनी हालके एक नेतासे कही गयी तो वह बोला कि—"हां, हम इस तरह डेमाक्रेट पैदा करते हैं।" न्याय तो संसारकी कितनी अदालतोंमें होता है, भगवान् जाने; किन्तु उसका जो उपहास न्यूयार्कमें होता है वह अन्यत्र मिलना प्रायः अस-म्भव है। अदालतके क्लर्कने जिस वकीलका नाम सुझाया, अगर आपने वह न रखा और मुंहमांगी फीस न दी तो हार निश्चित है, उसे रखनेपर विजयमें भी कोई सन्देह न रहा। इस फीसमें मजिस्ट्रेट, क्लर्क, वकील और टैमनी हाल सब हिस्सेदार हैं। इन मनुष्यरूपी गिद्धोंने पापाचारसे पैसा बनाने-के लिए पुलिसको भी अपनी तरफ मिलाया। निरपराध लोग अपराधी बनाकर पकड़े गये। ऐसी बालिकायें गिरफ्तार की गयीं जिन्होंने कभी कोई बुराई न की थी। उनके विरुद्ध एक गवाह न मिला, लेकिन टैमनीके अनुयायियोंको पाप-पुण्यसे क्या, उन्हें तो अधिकांश धनियों, सेठों और साहूकारोंकी तरह इसी पिशाचवृत्तिसे धन मिल रहा था। एकबार पांच अफ-सरोंने थोड़े समयमें इस उपायसे बीस लाख रुपये पैदा किये।

जिसका थोड़ा भी टैमनी हालसे सम्बन्ध हुआ उसने अपने-अपने ढङ्गसे लूट मचायी। डा० विलियम एफ० डायल बोर्ड आफ स्टैण्डर्डस एण्ड अपीलसमें नियुक्त थे। आय साधा-

रण थी पर १९२३ से १९३१ तक उन्होंने बैङ्कमें चालीस लाख रुपये जमा कर दिये। यह रुपया कहांसे आ गया, किसीको पता नहीं है। उन्हें जेलकी सजा हो गयी, पर टैमनी हालके वर्तमान विधाता जे० एफ० करीने जजको टेलीफोन किया और सजा रुक गयी। चार्ल्स काल्किनका यह हाल है कि उसने १९१९ से १९३१ तक बैङ्कमें अस्सी लाख रुपये जमा कर दिये। इसने टैमनी हालको चांदी कटायी और स्वयं सोना बनाया। जिमी वाकरका दोस्त शेरीडन साधारण क्लर्क था। वार्षिक आय केवल बारह हजार रुपये थी। उसने बैङ्कमें प्रायः पचास लाख रुपया अपने हिसाबमें जमा कर दिया और अब गिरफ्तारीके भयसे मैक्सिको चला गया है। मामूली पेट्रोल-मैन मारिसने लाखों रुपये पैदा कर लिये। जब उससे पूछा गया कि तुम्हारी आमदनी तो बहुत कम है, इतना रुपया कहांसे लाये? तो बोला—"कुछ रुपये जुएमें जीता हूं और शेष रुपया मेरे चचा जार्जने मुझे दिये हैं।" चचा जार्ज मर गया है अब उससे कौन पूछे। कहा जाता है कि टैमनी हालने अस्सी करोड़ रुपये केवल जमीनके लीस देनेमें कमाये हैं। प्रसिद्ध जर्मन जहाजी कम्पनी नार्थ जर्मन लायड स्टीमशिप कम्पनीको १९२२ में न्यूयार्कमें डाककी आवश्यकता पड़ी। उन्होंने दरख्वास्त दी, पर कुछ सुनायी नहीं हुई। कुछ दिन बाद जिमी वाकर यूरोप पहुंचे और उनके एक साथी डेविड मायरने उक्त कम्पनीके मालिकोंसे कहा कि इस मामलेमें तुम्हें अढ़ाईसे दस हजार डालरतक खर्च करना पड़ेगा। कुछ समय बाद उसने कहा कि न्यूयार्कके वकील एच० हिकिनको रखो, वह तुम्हें डाककी भूमि दिला देगा क्योंकि वह नैशनल डेमाक्रैटिक क्लबका अध्यक्ष है; पर उसकी फीस २५,००० डालर है। नार्थ जर्मन लायड कम्पनी यह सुनकर घबरायी और उसके ब्रेमेन और न्यूयार्कके आफिसोंके बीच तार चलने लगे। इस बीच हिकिन साहबकी फीस बढ़ गयी और उन्हें पचास हजार डालर देकर कम्पनीने अपना पीछा छुड़ाया। इस घटनापर सीबरी कमिटीकी सम्मति है—"इससे साफ विदित हो जाता है कि टैमनी हाल अपनी आय किस प्रकार बढ़ाता है। इस वकीलकी फीसके रूपमें इस हालने रुपया लूटा।"

इसकी गुण्डेबाजीका बहुत अच्छा दृष्टान्त फलटन फिश मार्केट है। यह न्यूयार्कको मछली खिलाता है। इसके मजदूरों का वहांके थोक और खुदरा दूकानदारोंसे कामके विषयमें पक्की लिखा-पढ़ी है। पर गुण्डोंका एक दल वहां जाके बोला कि यह सब कुछ नहीं है। हमसे लिखा-पढ़ी करो। बहुत झगड़ा-फिसादके बाद थोक व्यापारियोंने इन्हें प्रतिवर्ष, प्रति व्यापारी कई हजार डालर देना स्वीकार किया। खुदरा बेचनेवालोंने भी इन्हें इसी प्रकार मनाया। इस आयका एक भाग टैमनी हालको मिलता है। इस प्रकार सभ्य अमेरिका स्वायत्त-शासन चला रहा है। और उस देशकी मिस मेयो और केण्डल भारतको उन्नतिका सबक देनेका दम भर रही हैं। धनकी महिमा धन्य है जो क्या अमेरिका, यूरोप और क्या भारत सर्वत्र असत्य, पापाचार, जाल, फरेब और लूट-खसोट करने-वालोंको देवतोंकी तरह पुजा रही है। सच है—

"धनैर्निष्कुलीना कुलीना भवन्ति,
धनान्यर्जयध्वम् धनान्यर्जयध्वम्।"

नरक निवासी

इलाचन्द्र जोशी

सड़ता हूं मैं उग्रगन्धमय घृणित, गलित रौरवमें,
स्वेद-क्लेदसे नित प्रप्लुत हूं । निशिदिन हाहारवमें
बजती है मेरे कानोंमें आतङ्कित ध्वनि भीषण
किन प्रमत्त प्रेतोंकी ! प्रतिपल होता है संघर्षण
कुष्ठ रोगसे भ्रष्ट, शीर्ण, कङ्काल-शेष स्त्रीगणसे,
क्लीब, क्लिष्ट पुरुषोंसे । अहरह काम-प्रणोदित रणसे
जीव कौन ये मरण-मत्त हैं ?--ज्वर-जर्जर, उच्छृङ्खल !
हिंस्र-नेत्र हैं गह्वर-गत, है रक्तहीन मुख पिङ्गल;—
चण्ड क्षुधासे लम्बित जिह्वा है उनकी आलोलित,
रक्त-तृषासे ज्वलित, शुष्क इन्धन-सम । तीव्र प्रदोलित
रूक्ष, विसर्पित जटा हाय, फुफकार रही नागन-सी
किस ज्वालामय पवन-वेगसे ? नितप्रति प्रलय-मगन-सी
रक्तनदी बहती है यह उत्तप्त वसादि-समाकुल ।
तृप्त स्नान करते हैं उसमें कौन प्रेत-दानव-कुल ?
स्तूपीकृत हैं पुञ्ज-अस्थि-पञ्जर प्रस्तर-पर्वत-सम;
उनके प्रति कोटरमें विषधर जीव घृणित कीटोपम
सर्पित, लोलित, पुञ्जीकृत हैं । वक्षस्थलमें मेरे
रक्तबीज-सम चिमटे हैं ये क्या कीटाणु घनेरे !—
चूस रहे हैं सत्त्व जुगुप्सित तृष्णासे । मैं थर-थर
लोमहर्षसे कांप रहा हूं, विकट घृणासे जर्जर ।
निखिल वायु-मण्डलमें कैसी पूतिगन्ध है बहती !
उसकी ज्वाला अहरह रहरह मेरा हिय है दहती
गन्धक-विगलित अग्नि-बाण-सी । कैसा सुकठिन शृङ्खल
जकड़े है मेरे पांवोंको ! मलिन भूमि अति पङ्किल
बनी हुई है शय्या मेरी । किन भौतिक स्वप्नोंका
भीषणतर पाषाण-भार यह कैसा सुदृढ़, अनोखा
पड़ा हुआ है मेरे क्लान्त हृदयपर !

हाय, दुलारा
लुप्त हुआ मम स्वर्ग कहां वह निखिल जगत्से न्यारा ?
कहां गया चिर-शान्ति-मगन वह नगन गगनका अञ्जन—
सूर्यालोकित, चन्द्र-तारका-रञ्जित ? प्रिय आलिङ्गन
प्यारी शरत्-कुमारीका क्यों हुआ स्वप्न-सम झूठा ?
हिमगिरि-पुञ्जित सांध्य स्वर्ण वह किस पिशाचने लूटा
मेरी मानस-खनिसे ? अरुणोदयकी रक्तिम माया
रुधिर-रञ्जमें लीन हुई । गिरिवनकी श्यामल छाया
अन्ध मोह-गह्वरमें मग्न हुई । खर-धारा तीखी
तरल, तीव्र निर्झरकी सुकठिन, निर्मम खड्ग सरीखी
निज स्मृतिसे करती है प्रतिदिन मेरा मर्मच्छेदन ।
सांय-सांय रवसे बजता है प्रतिपल कैसा वेदन
शिरा-शिरामें !

विपुल वासना-विकसित मेरा यौवन
भ्रष्ट योग-सम कहां हुआ क्षय ? महत् चिरन्तन जीवन
चिर जड़तासे स्तब्ध हुआ क्यों ? हे मेरे प्रिय भाई !
निखिल रूप-रस-गन्ध लुप्त कर क्या कुहेलिका छाई
अन्ध मनोमण्डलमें मम ?

हे प्यारे मर्त्य निवासी
मानवगण ! प्रतिदिन तुमको कल-कोमल, करुण उदासी
करती है पुलकित, हिल्लोलित । प्रतिदिन नव-नव आशा
रञ्जित कर देती है विगलित हियकी तरल पिपासा
किन विचित्र रङ्गोंसे ! नित-नित नूतन सुख-दुख-लीला
इन्द्र-धनुष-सम रंग देती है गगन तुम्हारा नीला ।
मृदु कलरवसे करते हैं शिशु घर-घरमें कल-क्रीड़ा;
नव-मुकुलित लतिका-सम व्याकुल नवल-वधूकी व्रीड़ा

देख-देखकर होते हो तुम हर्षित। प्यारी तरुणी,
अलबेली करती है पागल तुमको,—जग-मन-हरणी
नव-नव रागमयी मायासे। मातृ-स्तन्य-रस-धारा
उमड़-उमड़ गद्गद करती है शिशुका हृदय दुलारा।
अक्षय जीवन देती तुमको माताकी मृदु ममता।
किन्तु हाय, छाई मम हियमें यह क्या कुटिल विषमता!
प्यारो! जब हेमन्त अन्तकर नव-वसन्त इतराता,
विकल कण्ठसे कल-कोकिल तव पुलक-विधुर हो गाता
अरुणोदयमें तुम लोगोंके अङ्गनमें; अलि-गुञ्जन
आकुल तान-सहित करता है मानवती-मन-भञ्जन;
मृदुल-मञ्जरी माधविका तव दिन-प्रति-दिन है बढ़ती
नव-रसालको प्रेम-पाशमें वह सोल्लास जकड़ती
सरस स्नेह-रससे सरसाकर। ऐसे ही नव-वर्षा
सिञ्चन करती है करुणा-जल, निखिल जगत्-मन-हर्षा;—
फैला तुम लोगोंके तप्त गृहोंमें शीतल छाया—
विस्तारित करता है घन आषाढ़-मेघ क्या माया
हाय, तुम्हारे विस्मित, उत्सुक नयनोंमें! शरदाभा
धरणीके कण-कणमें ला देती है कैसी शोभा!
अणु-अणुमें सञ्चारित करती है क्या पुण्य सुशीतल!
स्वर्ण-वर्णसे रंग जाता है पावनतम जगतीतल।
हाय, किन्तु अच्छेद्य वज्रकी दारुण अविचल जड़ता
जकड़े है मम हृदय; भीम पाषाण-भारकी दृढ़ता
प्रबल भूत-सी दबा रही है मुझको। विकल पड़ा हूं
स्रोतहीन इस पङ्क-कुण्डमें; होकर बद्ध सड़ा हूं।
स्तर-स्तरमें दुस्तर प्रस्तर हैं इस गह्वरके ऊपर;
कैसे इनको लङ्घन करके आ सकता हूं भूपर—
मुक्तालोकित पवन-राज्यमें?

मुझे बता दो भाई!
कबतक यह स्थिति अटल रहेगी अति निर्मम, दुखदायी?
कौन उबारेगा मुझको इस वज्र-कठिन बन्धनसे?
अचल शक्ति क्या विचलित होगी मम विदीर्ण क्रन्दनसे?
चिर-अनन्ततक क्या मैं इस रौरवमें सड़ा रहूंगा?
कबतक, कितने युगतक दुस्सह ज्वाला नित्य सहूंगा?
किन पुञ्जित पापोंसे करके भार-ग्रस्त यह कांधा
कौन शक्ति है जिसने मुझको इस दृढ़तासे बांधा
महाकाल तक?

हृदय! उठो अब, आज मचेगा ताण्डव;
रोम-रोमसे हुंकृत होवे महा-गान अति भैरव।
हे उन्माद! करो निज मदसे निखिल नियम परिवर्तन।
विश्व-प्रकृतिको विचकित करके निपट नग्नतम नर्तन
आज दिखा दो। फिरसे खोजो स्वप्न-स्वर्ग वह प्यारा—
वर्षा, शरत्, वसन्त-आकुलित अभिनव भुवन दुलारा।
बद्ध वेदना उमड़ उठे अब, सुप्त स्फूर्ति हो स्पन्दित
नव-चेतनसे; क्रन्दित होवे तन्द्रित आशा स्तम्भित।
विफल वासना व्याकुल होकर पुलकित होवे पलमें
नवोल्लाससे; सचल प्रकृति हो वाहित अखिल अचलमें।
दिनपर दिन बीता जाता है, कबतक धैर्य रहेगा?
इस असीम स्तम्भनकी जड़ता कैसे हृदय सहेगा
जन्म-जन्मतक? निठुर दैवसे अब संग्राम छिड़ेगा;
बद्ध हृदय मम अन्ध शक्तिसे हो निर्द्वन्द्व भिड़ेगा

एक सर्वराष्ट्रीय राजनीतिक गुप्त समिति

फ्री मेसन संस्था

डा० धुरन्धर शर्मा, एम० ए०, पी-एच० डी०

फ्रीमेसनोंका बिल्ला

वाइकौण्ट लेओं द पोंसांने सिद्ध किया है कि फ्री मेसन संस्था भयङ्कर राजनीतिक और धार्मिक गुप्त समिति है। और भी कई ऐतिहासिकोंका यही मत है। इस धारणाके मूलमें यह तथ्य है कि वालटेयर, डैण्टन, गैरिबाल्डी, हङ्गरीका स्वतन्त्रताभक्त कौस्सुथ, जेकोस्लोवाकियाका देशभक्त मासारिक, लेनिन, ट्रास्की, अमेरिकाको स्वतन्त्र करनेवाला वाशिङ्गटन आदि फ्री मेसन थे। उधर मृत सम्राट् सप्तम एडवर्ड, लार्ड किचनर, लार्ड ऐसक्विथ, रूजवेल्ट आदि भी फ्री मेसन थे। ये राजनीतिक क्रान्तिकारी नहीं हो सकते। सत्य यह है कि इंगलैण्डके फ्री मेसन धार्मिक तथा सामाजिक स्वतन्त्रताके पक्षपाती हैं और फ्रान्स, स्पेन आदि देशोंके फ्री मेसन राजनीतिक विद्रोही हैं।

वालटेयर फ्री मेसन था और धर्म तथा राष्ट्रनीतिमें कायापलट करना चाहता था। उसके ग्रन्थ इस बातके प्रमाण हैं। उसकी नीति भी कूट थी। उसने अपने एक पत्रमें लिखा था—"मनुष्यको शैतानकी भांति झूठ बोलना चाहिए—अगर-मगरके साथ अथवा केवल एक बार नहीं। बल्कि वीरतापूर्वक और सदा। दूसरा फ्री मेसन कोलो दरब्वा लिखता है—'विप्लवकी सिद्धिके लिए सब उपाय न्यायसङ्गत हैं।" पाठकोंको यह सुनकर आश्चर्य होगा कि फ्रेञ्च विप्लवका सूत्र—'स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृभाव' फ्री मेसनोंने निकाला था। फ्रान्सकी ग्रैण्ड ओरियण्ट समितिमें मेसन बोनेने १९०४ में अभिमानके साथ कहा था—"अठारहवीं सदीमें विश्वज्ञान-प्रेमियों (एनसाइक्लोपेडिस्टों) ने हमारे मन्दिरोंमें उत्सुक श्रोता पाये। हमने ही 'स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृभाव' के सिद्धान्तको जन्म दिया। हमारे प्रसिद्ध मेसन भाई दालाम्बेर, डिडरो, हेलवेशियस, दोलबाख, वालटेयर और कण्डोरसेटने जनताकी बुद्धिको नवीन युगका स्वागत करनेके लिए तैयार किया। और जब बास्तीयका कैदखाना मिट्टीमें मिला दिया गया तो फ्री मेसन संस्थाका ही यह परम सौभाग्य था कि उसने अपनी तैयार की हुई 'मनुष्यके अधिकारोंकी घोषणा' संसारके सामने रखी।...पचीसवीं अगस्त १७८९ को फ्रेञ्च राष्ट्र-परिषद्ने मेसनों द्वारा प्रस्तुत यह घोषणा शब्द-प्रति-शब्द स्वीकृत की। इस परिषद्के तीन सौ सदस्य फ्री मेसन थे।" सभ्यताके उस सङ्कटके समय फ्रेञ्च मेसनोंका विश्वव्यापी प्रभाव था। जी० मार्त्याने अपने 'फ्रेञ्च फ्री मेसन और विप्लवकी तैयारी' नामक ग्रन्थमें लिखा है—"१७७३ में 'ग्रैण्ड ओरियण्ट लाज' खुला और 'नव भगिनी लाज'में (वालटेयर इसका सदस्य था) सुधार हुए। तबसे फ्री मेसनोंने अपने मन्दिरोंके बाहर भी प्रचार करना आरम्भ किया। १७८९ का निर्वाचन फ्री मेसनोंकी कृति है। उन्होंने पार्लमेण्टको अपने अधीन कर लिया। अपनी अतुल सम्पत्तिसे उन्होंने क्रान्तिवादी पुस्तक-पुस्तिकायें निकालीं और विप्लवके 'शहीदों' की सहायता की। उन्होंने समाचारपत्र भी अपने हाथमें कर लिये।...अठारहवीं सदीके अन्तमें सेनाने भी फ्री मेसनोंकी बड़ी सहायता की। प्राचीन राजप्रणाली इसलिए नष्ट हो गयी कि फ्रेञ्च सेना और छोटे अफसर उसकी सहायता करने आगे न बढ़े। यह फ्री मेसनोंके प्रचार-कार्यका प्रभाव था।" (पृ० २७४) मेसन मारमोंतेलने विप्लवके समय 'लेजामी रेयूनी लाज' में कहा था—"प्राचीन शासन, पुराना धर्म, बासी नीति और जर्जर हठधर्मिताकी रक्षाकी आवश्यकता ही नहीं है। वर्तमान युगमें उक्त बातें लज्जा और निन्दाका विषय हैं। नवीन मार्ग निकालनेके लिए हमें एकदम नयी

प्राचीनकालका एक यूरोपियन राजनीतिक बंदी
(—प्रसिद्ध चित्रकार गोया द्वारा अङ्कित)

लिए किये गये षड्यन्त्रोंका ओजस्वी वर्णन कर जनताको भड़का रहे हैं। समाजकी क्रान्तिके लिए इसकी आवश्यकता है। जनताको सदाचार और न्यायनिष्ठाका पाठ पढ़ाकर हम क्या कर सकते हैं? भलेमानस दुर्बल और भीरु होते, तथा निकम्मे लोग प्राणको हथेलीपर रखे रहते हैं। क्रान्तिके समय दुराचारी होनेसे जनताको लाभ होता है। अन्यथा वे उनका कैसे मुकाबला कर सकेंगे जो अपनी विजयके लिए सब साधनोंको न्यायसङ्गत मानते हैं। हमारा कोई भी पुराना गुण हमारी सहायता नहीं कर सकता। जनता को ऐसे गुणोंकी दरकार भी नहीं है, नहीं तो उसका ढङ्ग दूसरा ही होता। क्रान्तिके लिए जिन साधनोंकी जरूरत हो, जिससे इसे लाभ पहुंचे, वही उत्तम नीति है।" (यह अवतरण मोंसिन्योर जुआंके ग्रन्थ 'ल पेरील जूडो-मासोनीक' में है।) इस अवतरणसे स्पष्ट हो जाता है कि फ्रान्समें फ्री मेसनोंका अस्तित्व राजनीतिक गुप्त समितिके रूपमें था। तत्कालीन शासन-प्रणालीको उलटना उसका उद्देश्य था और उसने पतित उपायोंसे भी फ्रेञ्च विप्लवको सफल बनाया। १८३० में फ्रान्समें दूसरा विप्लव हुआ। उस समय 'त्रिनोसोफ लाज' के एल्डर मो० डूपांने कहा था—"ऐसा न समझो कि तीन दिनमें यह सब हो गया। क्रान्ति अकस्मात् हुई और उसे तत्क्षण विजय मिली। क्योंकि हमने इसकी नींव बहुत दिनोंसे डाल रखी थी। इसीलिए हम प्राचीन विध्वस्त व्यवस्थाके स्थानपर नयी व्यवस्था स्थापित कर सके हैं।" १८४८ के फ्रेञ्च विप्लवका भी यही हाल था। फ्री मेसनोंने उसको हर तरहसे सहायता दी। कहा जाता है कि फ्री मेसन भीतर ही भीतर अपरोक्ष रूपमें काम करते थे। इनके साक्षात् नेता दूसरे लोग थे। किन्तु यह बात निर्विवाद है कि स्वयं फ्री मेसनोंने क्रान्तिके लिए अपनी पूर्ण सहानुभूति प्रकट की है। १९०१में मो० विवियानीने कहा था—"फ्रेञ्च विप्लवके वसीयतनामेकी सब आक्रमणोंसे रक्षा करना हमारा धर्म है।" ईसाई—विशेषतः रोमन कैथलिक धर्मके विरुद्ध फ्री मेसन लाज स्थापित हुए थे। १९०२ में मेसोनिक सम्मेलनमें कहा गया था—"हमारे जनतन्त्रमूलक और धर्म-रहित समाजके विरुद्ध ईसाई-धर्म और उसके सम्मेलन अपनी आखिरी लड़ाई लड़ रहे

दिशाको जाना पड़ेगा। भीरु मध्यवित्त समाजको भयभीत करनेके लिए यदि जरूरत पड़ी तो—हम उस श्रेणीकी सहायता प्राप्त करेंगे जो प्राणपणसे लड़नेको तैयार है और जो जानती है कि परिवर्तनसे उसे लाभके सिवा हानि नहीं हो सकती। इस समाजको विद्रोहके लिए उत्तेजित करनेके कई उपाय हैं; अकाल, भूखकी ताड़ना, रुपया, त्राहि-त्राहि मचा देनेवाली अफवाहें और त्रास तथा प्रचण्ड रोषकी मदमत्तता। ये भीरु मध्यवित्त श्रेणीके नेता दो-चार व्याख्यान देकर अपने कर्तव्यकी इतिश्री समझते हैं; पर हमारे उन गरजनेवाले भड़ैत नेताओंके सामने ये क्या हैं जो शराबघरों, पार्कों और नदीके तीरमें, देशभरमें भगदड़, अग्निकाण्ड, गांवोंकी लूटपाट, और कत्लेआम, पैरिसपर आक्रमण और उसे भूखा मारनेके

हैं। यह उनका अन्तिम युद्ध होगा।" आश्चर्य तो यह देखकर होता है कि फ्रान्सके राजनीतिक क्षेत्रमें अबतक इन फ्री मेसनों का जोर बदस्तूर चला जाता है। जो कानून सेनेट या चेम्बर आफ डेपुटीजमें पास होता है, उसका सूत्रपात फ्री मेसनोंके लाजोंसे होता है। बकौल गुस्टाव हर्वेके फ्रान्सकी रेडिकल सोशलिस्ट पार्टी, जिसके नेता मो० एरियो हैं, फ्री मेसनोंकी सृष्टि है।

जर्मन फ्री मेसन भी भीषण क्रान्तिवादी थे और हैं। १७८४ में फ्राङ्कफुर्टमें 'ग्राण्ड लाज एक्लेकटीक' के एक सदस्यने प्रस्ताव किया कि फ्रान्सके सोलहवें लूई और

बवेरियाका प्रसिद्ध पड्यन्त्रकारी वाइजहाउप्ट

स्वेडनके राजा गुस्टावुस तृतीयकी हत्या की जाये। इस सदस्यका नाम आबल था। १८९८में बवेरियाके बड़े पादड़ी रेवरेण्ड फादर आबलने अपने भाषणमें कहा कि वह आबल मेरा दादा था। किन्तु जर्मनीमें फ्री मेसन और इल्यूमिनाट दलका संस्थापक वाइजहाउप्ट इसलिए विख्यात है कि उसने बवेरिया भरमें गुप्त समितियां स्थापित कीं। पहले-पहल इसी फ्रीमेसन और इल्यूमिनाट संस्थाके नेताके कागजातसे उस षड़यन्त्रका पता चला जो राजसत्ताके विरुद्ध छिपे-छिपे चल रहा था। वाइजहाउप्ट इङ्गोलस्टादतके विश्वविद्यालयमें कानूनका प्रोफेसर था। उसने जैसविटोंसे शिक्षा पायी थी,

किन्तु वह उनका परम शत्रु था। १७७४ में उसका एक मित्र हानोवर नामक नगरसे आया और उसने वाइजहाउप्टको फ्री मेसन संस्थाका परिचय दिया। बस इस कुचक्रीके दिमागमें ऐसी गुप्त समिति स्थापित करनेकी सूझी। आरम्भमें उसकी गुप्त समितिका उद्देश्य उत्साही नवयुवकोंको एकत्र करना और उन्हें धर्मविरुद्ध वैज्ञानिक तथ्योंसे परिचित कराना था। पर कुछ समय बाद इसमें काउण्ट रिक्नगे शामिल हुआ। तबसे इसमें राजनीतिक पड़यन्त्र रचे जाने लगे। इस संस्थाके अड्डे जङ्गलोंमें भी बनाये जाने लगे। सब प्रकारकी तैयारियां हो रही थीं कि १७८५ में इस 'इल्यूमिनाटी'
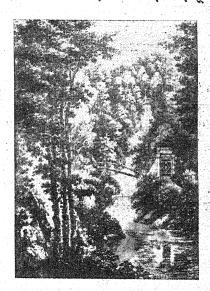
बवेरियाके जङ्गलोंमें इल्यूमिनाट नामक गुप्त समितिका एक अड्डा।

संस्थाका एक सदस्य लान्त्से कुछ गुप्त कागजात ले जा रहा था। उसपर बिजली गिरी और वह फौरन मर गया। पुलिसने उसकी लाश देखी और वह उसे उठा ले गयी। उसे कागजात मिले तो वह आश्चर्य-चकित रह गयी कि यह क्या माजरा है। इसपर संस्थाके अड्डोंकी तलाशियां ली गयीं और षड़यन्त्रका पता चला। वाइजहाउप्ट भाग निकला, पर उसके अनेक चेले गिरफ्तार किये गये और उन्हें सजा मिली। वे कागजपत्र अब भी म्यूनिचकी लाइब्रेरीमें रखे हैं। 'इल्यूमिनाटी' संस्था फ्री मेसनसे स्वतन्त्र है। पर इसके प्रायः सब सदस्य फ्री मेसन होते थे। जर्मनीके फ्री मेसनोंने उसे

प्रजातन्त्र बनानेमें भाग लिया है। फ्री मेसन कोटनरने १९१२ में संसारके सब लाजोंमें जर्मनीके विरुद्ध बातें सुनीं। वह ग्रैण्डमास्टर डोना नूलोडियनके पास भागा हुआ गया। उसकी भेंट १२ आइजन-आखर स्ट्रासेमें उक्त ग्रैण्ड मास्टरसे हुई। उसने अपनी बातें कहीं तो उसे यही उत्तर मिला कि "फ्री-मेसन संस्था संसारभरमें एक है।" यूरोपकी मध्यशक्तियों (जर्मनी, आस्ट्रिया आदि) को प्रजातन्त्रमें परिणत करनेके लिए ही महायुद्धका सर्वसंहारी ताण्डवनृत्य हुआ। आर्कड्यूक फ्रान्सिस जोजफकी हत्या भी फ्री मेसनों द्वारा करायी गयी है, क्योंकि मा० सिन्योर जूआंने १९१२ में अपने पत्र 'रव्यू आंतर्नात्सियोनाल द सोसिएटे सक्रैट'में छापा था—"किसी दिन एक बड़े स्विस फ्रीमेसनके इन शब्दोंपर ठीक-ठीक प्रकाश पड़ जायगा कि वह बहुत अच्छा आदमी है। यह परम सन्तापका विषय है कि वह एक दिन अपने राजसिंहासनकी सीढ़ीपर मरेगा।" आर्कड्यूककी हत्या करनेके अभियोगमें काब्रिनोविच पकड़ा गया। उसने फौजी अदालतके जजसे लापरवाहीके साथ कहा—"फ्री मेसनोंमें हत्या करना जायज है।" इसका क्या अर्थ है सो भगवान् जाने। पर अंगरेज लेखक विवियनका कहना है कि फ्री मेसनीके उम्मीदवारको वचन देना पड़ता है कि "यदि मैं कृतघ्नता करूंगा तो मेरा सर काट लिया जाये, मेरा हृदय और आंतें निकाल ली जायें और मेरी राख हवामें उड़ा दी जाये।" काब्रिनोविचने इसी शपथके आधारपर उक्त कथन किया होगा। इसी हत्यारेने अदालतमें यह भी कहा था कि—"फ्री मेसनोंने उसे (आर्क ड्यूकको) दो साल पहले प्राणदण्ड दिया था।" इस दृष्टिसे यूरोपकी फ्रीमेसन संस्थायें राजनीतिक गुप्त समितियां हैं।

पुर्तगालमें स्वाधीन विचार, प्रजातन्त्र और फ्री मेसनोंका बड़ा मेल है। १९०७ के दिसम्बर मासमें पोर्चुगीज मेसनोंका ग्रैण्ड मास्टर मागालड्डाएस लीमा पैरिस आया और उसने वहांके फ्री मेसन मन्दिरोंमें 'पुर्तगालमें राजसत्ता उलटने और प्रजातन्त्र स्थापित करनेकी आवश्यकता' पर भाषण दिये। उसके कुछ ही हफ्तों बाद राजा कार्लोस और उसका सबसे बड़ा लड़का मार डाला गया। मानुएल राजा हुआ और उसे सीधा समझ वह देशसे निर्वासित कर दिया गया। इस विषयपर बेलजियमके फ्री मेसन नेता फूर्नमोंने एक बार कहा था—'तुम्हें वे गर्वके भाव स्मरण होंगे जो पोर्तुगीज विप्लवके समय हमारी छाती फुला रहे थे। कुछ घण्टोंमें ही राजसिंहासन उखड़ गया, जनताकी विजय हुई और प्रजातन्त्रकी नींव पड़ी।" स्पेनमें भी फ्री मेसनोंका षड़यन्त्र सफल हुआ है। इटलीके उद्धारमें फ्री मेसनोंका हाथ था। फ्री मेसनोंमें स्वतन्त्रताका भाव देखकर मुसोलिनीने उनकी समितियां गैरकानूनी ठहरा दी हैं। यही हाल हङ्गरीका है। १९२० में वहां फ्री मेसनोंके मन्दिर बन्द कर दिये गये थे, क्योंकि उनके राजनीतिक विचार उग्र समझे गये और उनके मन्दिर गुप्त-समितियोंके अड्डे बताये गये। टर्कीके स्वाधीनता संग्राममें फ्रान्स और इटलीके फ्री मेसनोंने बड़ा भाग लिया है। युवक टर्कोंके अड्डे फ्री मेसन मन्दिर थे, जहां वे राजसत्ताके विरुद्ध षड़यन्त्र रचते थे। यहांतक कहा जाता है कि इटलीकी फ्री मेसन संस्था 'ग्रैण्ड ओरियण्ट आफ इटली' ने अपनी सरकारपर जोर डालकर इन नवयुवकोंको यह सुविधा दिला दी थी कि वे पुलिससे बचनेके लिए सङ्कटके समय इटालियन राजदूतावासमें शरण ले सकते हैं। इंगलैण्डकी फ्री मेसन संस्था राजनीति और धर्मके विषयमें निष्पक्ष रही है। किन्तु कई लेखकोंका कहना है कि उनमें भी यूरोपीय प्रभाव बढ़नेका भय है।

—

मृतात्मावाद

डाक्टर धनीराम प्रेम (लन्दन)

अबतक मृतात्मावाद (Spiritualism) के विषयमें इतना लिखा जा चुका है कि प्रत्येक समाचारपत्रके पाठक इससे जानकारी प्राप्त कर चुके होंगे। मेरा ध्यान इस ओर लगभग सात वर्ष पूर्व आकर्षित हुआ था, जब मुझे एक अत्यन्त प्रिय व्यक्तिका वियोग सहन करना पड़ा था। पहले-पहल एक मित्रके यहां मैंने इस विद्याका एक प्रयोग देखा था। आर्य-समाजी होनेके कारण मुझे ऐसी बातोंमें विश्वास नहीं था। परन्तु उस प्रयोगमें जो कुछ मैंने देखा था, उससे स्तम्भित रह गया। धार्मिक हठधर्मीसे अलग होनेके कारण मैं उस प्रयोगको हंसीमें न टाल सका। बल्कि उसके विषयमें अधिक जानकारी प्राप्त करनेका उद्योग करने लगा।

बम्बईमें उन दिनों श्री० बी० डी० ऋषि परलोकविद्या-समितिकी स्थापना कर चुके थे। इधर मैंने कुछ मित्रोंकी सहायतासे अपने कालेज-होस्टलमें ही इसके प्रयोग प्रारम्भ कर दिये। सबसे पहले हमने प्रयोग तीन पायेकी मेजपर किये। उनमें इतनी सफलता हुई और ऐसे आश्चर्यजनक करतब देखे कि हमें कालेजमें भी एक परलोकविद्या-समितिकी स्थापना करनी पड़ी। जब मैं विदेश गया, तब अपनी पढ़ाईके साथ-साथ वहांकी परलोकविद्या-समितियोंकी दशा देखनेकी भी इच्छा हुई। एडिनबरा, लन्दन आदि स्थानोंमें बहुत कुछ देखा-सुना, बहुत कुछ पढ़ा। ये पंक्तियां उन्हीं सबकी फलस्वरूप हैं।

मृतात्मावाद जिस रूपमें आजकल फैल रहा है, वह रूप इसे सन् १८३९ से प्राप्त हुआ है, यद्यपि भारतवर्षमें अनेक रूपोंमें इसका प्रचार सैकड़ों वर्षोंसे हो रहा है। सन् १८३९में स्मर्नामें दो लड़कियां रहती थीं। एक दिन वे एक मेजपर हाथ रखकर बैठी थीं कि मेज हिलने लगी। ऐसा जब कई बार हुआ, तो उन्हें बड़ा आश्चर्य और कौतूहल हुआ। यह बात जब पड़ोसियोंको विदित हुई, तो वे 'जादूगरनी' कहकर उनकी हंसी उड़ाने लगे। वह बात इस प्रकार योंही समाप्त हो गयी। पीछेसे सन् १८४६ में इसी प्रकारकी एक घटना अमेरिकाके हाइडविल्ले नामक नगरमें हुई। वहांके निवासी मि० फॉक्सके घरमें कुछ लकड़ीका सामान भरा था। कई बार उसमें 'खटखट' का शब्द सुनायी दिया। जांच करनेपर भी वह शब्द न रुका। एक बार मि० फाक्स एक मेजपर हाथ रखकर कुछ सोच रहे थे कि मेजका पाया उठने लगा। दूसरे दिन फिर वही बात हुई। धीरे-धीरे उन्हें पता लगा कि प्रार्थना करनेपर वह मेज जितनी बार चाहो, उठ सकती थी। इसी प्रकार उन्होंने अन्य कई बातोंका भी पता लगाया। नगरनिवासियोंने भी उनके इन प्रयोगोंको देखा और इस प्रकार आधुनिक 'मृतात्मावाद' की जड़ जमी। परन्तु सन् १८५५ तक यह बात सिद्ध न हुई कि मेजपर मृतात्मायें ही आती थीं। एलेन कार्डेककी खोजोंने इसे और भी महत्त्व दे दिया।

इन घटनाओंका ऐतिहासिक महत्त्व कुछ भी हो, परन्तु इसमें कोई भी सन्देह नहीं कि इन घटनाओंका घटना असम्भव नहीं है। मुझे अपने एक मित्रके यहांका बहुत दिनोंका हाल अच्छी तरह याद है। उनके घरके बर्तन तथा अन्य वस्तुयें एक स्थानसे दूसरेको चली जाती थीं। पुलिसके पहरेमें भी ऊपरसे ईंटें फिकती थीं, व्यक्तियोंको आघात लगते थे, आदि। इसी प्रकारके अन्य समाचार नित्य समाचारपत्रोंमें प्रकाशित होते रहते हैं।

इंगलैण्डमें इस विद्याके प्रचारमें प्रारम्भमें बड़ी कठिनाइयां आयीं। वहांका चर्च इसके विरुद्ध था। बड़े-बड़े वैज्ञानिक भी इसका विरोध करते थे। परन्तु कुछ समय बाद वायुका प्रवाह बदला। अधिकाधिक संख्यामें लोग इस ओर आने लगे। बड़े-बड़े वैज्ञानिक अब इस विषयमें खोज करने लगे। उन्हींमेंसे थे स्वर्गीय सर विलियम क्रुक्स, सर आर्थर कानेन-डायल, सर आलीवर लाज, आदि। सर क्रुक्सने तो अन्वेषणकी हद कर दी थी। मीडियमोंकी भांति-भांतिकी परीक्षा वैज्ञानिक रीतिसे करनेके बाद उन्होंने कई वर्षोंकी खोजके फलस्वरूप एक पुस्तक लिखी थी, जो पढ़ने योग्य है। सर लाजकी 'रेमण्ड' नामक पुस्तक भी बड़े परिश्रमके साथ लिखी गयी है। फ्रान्समें ज्योतिषी फ्लैमैरिऔन, प्रो० रिशे, प्रो० रोशा,

प्रो० दारजे तथा डा० गेले आदिने भी इस दिशामें अपूर्व खोज की है।

इन खोजोंका परिणाम यह हुआ कि इस विद्याको स्थायी रूप मिल गया। ईसाई धर्मावलम्बियोंके विचारोंमें इससे महान् परिवर्तन हुआ—यहांतक कि उनमेंसे अनेकने गिर्जोंमें जाना ही छोड़ दिया। अब तो मृतात्मावादियोंके अपने गिर्जे हैं, जहां वे रविवारको मिलकर प्रार्थना करते हैं। इस प्रकारकी अनेक समितियोंकी स्थापना हुई है, जिनके प्रयोग सदस्योंतक ही सीमित हैं। बाहरी व्यक्तियोंको दस-पन्द्रह रुपयेतक फीस देकर प्रयोग देखनेको मिलता है। यदि कोई किसी मीडियमसे निजी रूपसे प्रयोग कराना चाहता है, तो उसे और भी अधिक देना पड़ता है, यद्यपि कुछ गैर-पेशेवर (amateur) मीडियम थोड़ा पैसा लेकर ही प्रयोग दिखा देते हैं। लन्दनमें इस विषयके अन्वेषणके लिए Society for Psychic Research नामक समितिकी स्थापना बहुत दिनों पूर्व हुई थी। यह एक निष्पक्ष संस्था है, जिसका कार्य प्रचार नहीं, केवल अन्वेषण और खोज है।

मुझे कई प्रयोग देखनेके उपरान्त यह पता चला कि यूरोपके मृतात्मावादियोंमें भी धार्मिक ढोंग तथा पाखण्ड चल गया है। एक तो संसारमें योंही अगणित मतमतान्तर हैं, इसके ऊपर और नये मत-मतान्तरोंको जन्म दिया जाय यह कभी भी वाञ्छनीय नहीं है। यह तो कहा ही जा चुका है कि इनके गिर्जे अलग हैं। प्रयोगके समयके लिए इनकी प्रार्थना भी अलग है। साथ ही एक बात यह है कि ईसा मसीहको इस मतमें इन्होंने व्यर्थ ही खींच लिया है। मृतात्मावाद द्वारा तो हमें संसारको एक धर्म देना है—प्रेम धर्म, साम्य-धर्म। परन्तु ये व्यक्ति इसमें ईसाइयतकी पुट देकर उसे एक सङ्कीर्ण मत बना रहे हैं।

मृतात्मावादके सिद्धान्त

इसके सिद्धान्त उन समाचारोंपर अवलम्बित हैं, जो मृतात्माओंने प्रयोगमें दिये हैं। इसी कारण इन सिद्धान्तोंके विषयमें कोई निश्चित मत नहीं है। भारतवर्षमें आत्मायें कुछ और बताती हैं, जर्मनीमें कुछ और। कोई कहती हैं, परलोकमें मन्दिर हैं। कोई कहती है, वहां होटल हैं, सोडा-वाटरकी फेक्टरियां हैं, आदि। सिद्धान्तोंमें सबसे बड़ी बात तो यह है कि हमारे दो संसार हैं—एक कर्म-संसार और दूसरा विचार-संसार। हमारा संसार कर्म-संसार है, और आत्मिक संसार विचार-संसार। इस संसारमें व्यक्ति स्थूल शरीर (Material body) में रहते हैं। आत्मिक संसारमें सूक्ष्म शरीर (Ethereal body) में रहते हैं। हमें इस संसारमें भी तथा उस संसारमें भी विकास-वादके सिद्धान्तोंके अनुसार नीचेसे ऊपरको चलना पड़ता है। मनुष्य अपनी मृत्युके पश्चात् अपने कर्मोंके अनुसार भिन्न-भिन्न दशाओंको प्राप्त होता है। जो इस संसारमें वासनाओंमें अधिक लिप्त रहते हैं, अथवा जिनका जीवन यहां बहुत कलुषित रहा है, वे पृथ्वीके निकट ही निवास करते हैं और भूत, प्रेत, चुड़ैल, डाकिनी (Evil spirits) आदिके प्रकोपोंके कारण यही होते हैं। शेष आत्मायें आत्मिक संसारके ७ भागोंमेंसे किसी एकमें कर्मानुसार भेज दी जाती हैं। ऊंचे भागोंकी आत्मा नीचे भागोंमें आ सकती है, परन्तु नीचे भागोंकी आत्मा ऊपर नहीं जा सकती।

आत्मायें परलोकमें किस प्रकार रहती हैं, इसमें जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, मतभेद है। वी० डी० ऋषिने तो इस विषयमें लिखा है—वे वस्त्र पहनती हैं, खाना खाती हैं, आराम करती हैं, मन्दिरोंमें जाती हैं, एक गुरुकी आज्ञामें रहती हैं, पुस्तकें पढ़ती हैं, ध्यान करती हैं, आदि। परन्तु इनके विषयमें विश्वासपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। क्योंकि यह पता नहीं कि इस प्रकारकी सूचनायें ठीक होती हैं या नहीं, या जिन आत्माओंसे हम वार्तालाप कर रहे हैं, वे वही हैं या कोई और—सम्भवतः भूत-प्रेत। फिर हिन्दू, ईसाई, मुसलमान आदि आत्मायें वहांका भिन्न-भिन्न विवरण देती हैं— जिससे सिद्ध होता है कि ये आत्मायें वहांपर धर्मके अनुसार भिन्न-भिन्न स्थानोंपर रखी जाती हैं। मैं नहीं समझता कि परलोकमें इस प्रकारका भेदभाव रहता है। अगर वहां भी पृथ्वीकी भांति मत-मतान्तरोंके झगड़े रहे, तो वह परलोक ही कैसा!

मृतात्माओंसे भेंट

मृतात्माओंसे भेंट तथा वार्तालाप करनेके लिए किसी माध्यम तथा साधनकी उसी प्रकार आवश्यकता रहती है, जिस प्रकार दूर रहनेवाले सम्बन्धीके साथ बातचीत करनेके लिए टेलीफोन, रेडियो आदिकी। मृतात्माओंसे साक्षात्कार करनेके कई साधन हैं, उनमेंसे निम्नलिखित विशेष प्रयोगमें लाये जाते हैं—

१ मेज (Tripod)—सबसे सरल, विश्वसनीय तथा दूसरोंको दिखानेके योग्य उपाय है—तीन पायेकी मेज द्वारा आत्मायें बुलाना। मेज यदि ऊंची है, तो उसके चारों ओर कुर्सियां डालकर बैठना चाहिए, नहीं तो पृथ्वीपर ही बैठना ठीक है। तीन पायेकी मेजपर ही आत्मायें क्यों आती हैं, इसका समझना अभीतक सम्भव नहीं हुआ है, परन्तु मालूम होता है कि इसके प्रयोगका कारण यह है कि इसके पाये आसानीसे उठ सकते हैं, चार पायेवाली मेजके नहीं। कई पुस्तकोंमें प्रयोग (Seance) करनेके पूर्व कई प्रकारके खट-राग करनेको लिखा है—जैसे अगर-बत्ती जलाना, प्रार्थना या सङ्गीत करना, कमरेका काला होना आदि। परन्तु मैंने अपने प्रयोगोंमें इनका बिलकुल ही ध्यान नहीं रखा। साधारण कमरेमें, बिजलीके प्रकाशमें, साधारण रूपसे ही मैंने अपने सब प्रयोग किये थे। उपयुक्त समय, अवश्य ही, रात्रिका होता है।

मेजके चारों ओर बैठनेवालोंको 'सर्कल' कहते हैं। कमरेमें उनके अतिरिक्त जो व्यक्ति होते हैं, वे दर्शक कहलाते हैं। सर्कलमें कम-से-कम तीन व्यक्तियोंका रहना अच्छा है। एक-को प्रश्न करने आदिका भार सौंपना चाहिए। पारिवारिक सर्कल, जिनमें स्त्री, पुरुष तथा बच्चे सभी होते हैं, अधिक सफलता प्राप्त करते हैं। मेजके पास बैठनेवालोंको दोनों हाथ मेजपर धीरेसे इस प्रकार रखने चाहिएं कि न तो उनकी शक्तिसे मेज हिलने लगे, न हिलती हुई मेज रुक जाय। इसके पश्चात् जिनकी आत्माको बुलाना हो, उनका स्मरण करना चाहिए। इसमें धैर्यकी बड़ी आवश्यकता है। कभी-कभी तो मेज शीघ्र ही हिलने लगती है, कभी-कभी काफी समय लग जाता है। कभी-कभी प्रयोग बिलकुल ही असफल रहता है।

जिस समय आत्मायें आती हैं, मेजमें गति होने लगती है। या तो मेजका एक पाया उठने लगता है, या मेज इधर-उधर डगमगाने लगती है। जब ऐसा होने लगे, तो यह जानने के लिए कि आत्मा है या नहीं, बातचीत करनेवाला यह प्रश्न करे—यदि कोई आत्मा है, तो इसे तीन बार (या कितनी ही बार) हिलाये। यदि मेजपर आत्मा होती है, तो वह उतनी ही बार उठती है। इसके बाद जो कुछ प्रश्न करने हों, इसी प्रकार मेजके पायेको दो बार, तीन बार, चार बार, आदि उठवा कर करने चाहिए। इस प्रकार, इसमें सन्देह नहीं, उत्तर केवल 'हां' या 'ना' में या संख्याओंमें ही मिल सकते हैं। आत्माओंसे कहकर मेजके किसी पायेको उठवाया जा सकता है। एक आत्मासे कहकर कोई दूसरी आत्मा भी बुलायी जा सकती है।

जब इस प्रकार अभ्यास हो जाय, तो अन्य उपायों द्वारा मेजपर भांति-भांतिके प्रश्न किये जा सकते हैं। एक उपाय यह है। एक कागजपर वर्णमालाके सारे अक्षर लिखकर उन-पर नम्बर लगा दिये जायं। आत्मासे कहा जाय कि उसके उत्तरमें जो अक्षर हों, उनके नम्बरोंको पाया उठाकर बताती जाय। इस प्रकार पूछते-पूछते पूरा नाम या अन्य बातें विदित हो जाती हैं। इस विधिसे प्रश्नोत्तर करनेमें समय अधिक लगता है।

कभी-कभी मेजपर कोई दूषित आत्मा (Evil spirit) आ जाती है और बहुत तङ्ग करती है। प्रश्नोंके उत्तर ठीक नहीं देती, मेजको उठा-उठाकर पटकती है, आदि। ऐसा होनेपर प्रयोग बन्द कर देना चाहिए।

२ प्लांशेट (Planchette)—यह तीन कोनेका छोटा-सा तख्ता होता है, जिसके एक कोनेपर पेंसिल लगी होती है और दूसरे दो कोनोंपर पहिये। इसपर भी मेजकी ही भांति हाथ रखकर प्रयोग किया जाता है। इसके इधर-उधर सरकने-से उत्तर आप ही एक कागजपर लिख जाता है।

३ मीडियम (Medium)-द्वारा—मीडियम वह व्यक्ति होता है, जिसके द्वारा आत्मायें इस संसारके पुरुषोंसे वार्ता-लाप करती हैं। कुछ व्यक्ति तो जन्मसे ही मीडियम होते हैं, कुछ अभ्यास करनेपर इस कलाको प्राप्त करते हैं। इन मनुष्यों-को अभ्याससे पूर्व आत्मासे पूछना होता है कि वे मीडियम बन सकते हैं या नहीं। मीडियम कई प्रकारके होते हैं—

(अ) जो लिखते हैं (Automatic writing mediums)

(आ) जो बेहोश होकर आत्माको अपने भीतर प्रवेश करा लेते हैं और फिर आत्मा उनके शरीर द्वारा वार्तालाप करती है (Trance mediums)

(इ) वे मीडियम जो आत्माओंके रूपको देखते हैं, या तो केवल नेत्रोंसे (Clairvoyance), या क्रिस्टलसे (Crystal gazer)

(ई) वे मीडियम जो आत्माओंकी बोली सुनते हैं।

(उ) वे मीडियम जो आत्माओंके चित्र ले सकते हैं।

मीडियमसे सम्बन्ध रखनेवाली आत्माओंकी चार श्रेणियां होती हैं—

(क) साधारण आत्मायें (Simple spirits), जिन्हें इस संसारको छोड़े अल्पकाल हुआ है।

(ख) चतुर आत्मायें (Intelligence) जिन्हें इस संसारको छोड़े अधिक काल हुआ है, और जो साधारण आत्माओंकी सहायता करती हैं।

(ग) पथ-प्रदर्शक आत्मायें (Guides), ये मेजपर कभी नहीं आतीं। आनेवाली आत्माओं और मीडियमको सहायता करती हैं।

(घ) माध्यमिक आत्मायें (Control of Intermediary)—यह सदा किसी-न-किसी मीडियमके साथ रहती हैं। बिना इनकी सहायताके मीडियम अन्य आत्माओंके विषयमें अधिक नहीं जान सकता।

कभी-कभी मीडियम बड़े आश्चर्यजनक कार्य करते हैं। वे अग्निमें हाथ दे देते हैं, जो जलता नहीं। कभी वह मुखसे गाता है, दोनों हाथोंसे लिखता है। कभी शरीरसे चिनगारियां निकालता है। कभी भारी-भारी चीजोंको ऊपर उठा लेता है। कभी एक वस्तुको एक स्थानसे दूसरे स्थानपर पहुंचा देता है, बिना दर्शकोंकी जानकारीके। कोई-कोई मीडियम इशारेसे मेजको पृथ्वीसे ऊंचा अधरपर कर देते हैं (Table Levitation)। यह कार्य बहुत कठिन तथा आश्चर्यकारक है। इसपर खोज हो रही है। इस विषयमें अबतक वैज्ञानिकोंने बहुत कुछ ज्ञात कर लिया है। उनका कथन है कि आत्माओंके सूक्ष्म शरीर (Ethereal body) में एक पदार्थ होता है, जिसका नाम उन्होंने एक्टोप्लाज्म (Ectoplasm) रखा है। यह पदार्थ ही मीडियमके मुखसे निकलकर मेजको ऊंचा उठाता है, तथा वस्तुओंको एक ओरसे दूसरी ओर ले जाता है। इस पदार्थमें बढ़ने तथा सिकुड़नेकी अद्भुत शक्ति होती है। यह पदार्थ चक्षुओं द्वारा साधारण रूपमें दिखायी नहीं देता। आजकल कुछ फ्रेञ्च तथा अंगरेज वैज्ञानिक इस विषयमें खोज कर रहे हैं और रसायनशालामें भी इसकी जांच की जा रही है।

मृतात्मावादकी स्थिति

मृतात्मावाद आजकल एक विज्ञान, एक विद्या और साथ ही, जैसा ऊपर कहा गया है, एक धर्म बन गया है। इसका प्रचार नित्य-प्रति बढ़ता ही जा रहा है। साथ ही इसपर आपत्ति करनेवालोंकी भी कमी नहीं है। इसमें तो कोई भी सन्देह नहीं कि मेज हिलती है, प्रश्नोंके उत्तर मिलते हैं। मैंने अपने प्रयोगोंमें ही, जो केवल जांचके लिए किये गये थे, कई कट्टर विरोधियोंको यह सत्य मानते हुए देखा है। प्रश्न यह है कि इन सब बातोंका कारण क्या है। क्या यह हाथोंके रखनेसे पैदा हुई विद्युत् है? क्या यह सर्कलमें बैठनेवालोंकी इच्छा-शक्ति है? क्या यह उनके अर्द्ध-जागृत मन (Sub-conscious mind) का प्रभाव है? या यह मृतात्माओंका प्रभाव है? वाद-विवादका सारा रहस्य इन्हीं प्रश्नोंमें भरा हुआ है। अपने अनुभवसे, दूसरोंके प्रयोग देखने तथा वैज्ञानिकोंकी सम्मतियां पढ़नेके बाद मेरी यह धारणा है कि इच्छाशक्ति या अर्द्धजागृत मनके काबूकी यह बात नहीं है। प्रयोगोंमें जो कुछ होता है, वह इनके द्वारा हो सकता है, परन्तु उस रूपमें नहीं। इच्छाशक्ति और अर्द्धजागृत मन सभीके ऐसे प्रबल नहीं होते। परन्तु मेजपर ये कौतुक कुछ दिनोंके अभ्यासके बाद प्रायः सभी कर दिखा सकते हैं। मैं समझता हूं कि अबतककी खोजोंके अनुसार इन बातोंका सबसे बड़ा कारण मृतात्मायें हैं। ये बातें अभी अपूर्ण इसलिए हैं कि मृतात्माओंके सम्बन्धको सभी बातें अभी विदित नहीं हुई हैं। हो सकता है कि आगेकी खोजोंके फलस्वरूप मृतात्मावादका सिद्धान्त गलत सिद्ध हो जाय तथा कोई और सिद्धान्त इसका स्थान ले ले। चाहे इस विद्यासे कोई लाभ न हो, परन्तु इसकी खोज जारी रखनी चाहिए, उसी भांति जिस भांति अन्य वैज्ञानिक पहेलियोंकी। इस सिद्धान्तके माननेसे धार्मिक विचारोंमें बाधा आती है, यह कोई अच्छी दलील नहीं है। कुछ मीडियमोंने बेईमानी करके इसे बदनाम किया है, कुछने इसे अपने खाने-कमानेका साधन बना लिया है, परन्तु इन बातोंका सत्यपर कोई प्रभाव न पड़ना चाहिए। प्रत्येक नयी बातके प्रारम्भमें ऐसा ही होता है। साथ ही इस विद्याके माननेवालोंको इसे एक नया पन्थ न बना लेना चाहिए। यदि यह विद्या सत्य सिद्ध हो जाय, यदि हमें यह विश्वास हो जाय कि मृत्यु केवल स्थूल शरीर छोड़नेका नाम है; यदि हमें यह पता लग जाय कि मृत्युके बाद सभी प्राणी ऐसे साम्राज्यमें निवास करते हैं, जहां धर्मका, जातिका, रंगका, देशका अथवा अन्य किसी प्रकारका

भेदभाव नहीं है, तो इससे तो इस संसारके भेदभाव भी नष्ट हो जाने चाहिएं और हमें ऐसे धर्मकी सृष्टि करनी चाहिए जिसका आधार प्रेमपर, सत्यपर, समतापर तथा विश्वमात्रके कल्याणपर हो ।

जात-पांत और अछूत-प्रथा

श्री सन्तराम बी० ए०

[यह आवश्यक नहीं कि जिस लेखको हम छापें उसकी प्रत्येक बातसे हम सहमत हों । प्रस्तुत लेखमें अछूतोंकी उन्नतिके मार्गमें पड़नेवाली बाधाओंका अच्छा प्रतिपादन किया गया है । इसकी अधिकांश बातोंसे एकमत होनेपर भी कुछ बातें इसमें ऐसी हैं, जो विशेष विवादास्पद हैं—स० वि०]

जिस प्रकार पत्तों और टहनियोंको काटनेसे वृक्षकी जड़ नहीं कट सकती, जिस प्रकार ज्वराक्रान्त रोगीका हाथ बर्फमें रख देनेसे उसका ज्वर शान्त नहीं हो सकता, और जिस प्रकार बिल्लीको देखकर कबूतरके आंखें बन्द कर लेनेसे वह मृत्युके चङ्गुलसे बच नहीं सकता, उसी प्रकार अछूतोंके लिए मन्दिर और कुएं खोल देनेसे अस्पृश्यता की जड़ नहीं कट सकती, हिन्दू-समाजका राजरोग शान्त नहीं हो सकता, और भारत एक स्वतंत्र राष्ट्र नहीं हो सकता । अस्पृश्यता स्वयं कोई रोग नहीं । यह एक भयङ्कर महारोगका बाह्य लक्षण मात्र है । यह महारोग हिन्दू-समाजके सारे शरीरमें, चोटीसे एड़ीतक, असर किये हुए है । इसीलिए उच्चतम ब्राह्मणसे लेकर नीचतम भङ्गीतक सारा समाज अछूत है । अन्तर केवल अंशका है । कोई एक डिग्रीतक अछूत है, तो कोई दूसरीतक । जिनको आजकल प्रायः अछूत कहा जाता है वे तो अस्पृश्यताकी अन्तिम सीमायें हैं । गौड़ ब्राह्मण सारस्वत ब्राह्मणके यहां खान-पान और ब्याह-शादी नहीं कर सकता । इसलिए सारस्वत ब्राह्मण इस अंशमें गौड़के लिए अस्पृश्य है । फिर क्षत्रिय वैश्यके, वैश्य कहारके, कहार चमारके, और चमार भङ्गीके यहां खान-पान और शादी-ब्याह नहीं कर सकता, इसलिए वे क्रमशः अस्पृश्य, अस्पृश्यतर और अस्पृश्यतम हैं । इस क्रममें कोई व्यक्ति ब्राह्मणसे जितना अधिक दूर है उतना ही वह अधिक अछूत है । ब्राह्मण क्षत्रियके हाथका अन्न-जल तो ग्रहण कर सकता है, पर उसके यहां बेटीका सम्बन्ध नहीं कर सकता । वह वैश्यका पानी पी सकता है, पर, अन्न नहीं खा सकता । शूद्रका वह पानी भी नहीं पी सकता । चमारके साथ तो छू जानेसे ही वह अपवित्र हो जाता है । मद्रासके परिया और पञ्चमकी दृष्टि या छाया पड़नेसे भी उसे स्नान करना पड़ता है । सारांश यह कि ब्राह्मण और परिया दोनों अछूत हैं । अन्तर केवल दरजेका है । इस प्रकार सारा हिन्दू-समाज सिरसे पैरतक अछूत है । इससे इस परिणामपर पहुंचना कुछ भी कठिन नहीं कि इस अछूतपनका मूल कारण हिन्दुओं की वर्ण-व्यवस्था या जात-पांत है । जबतक इस राजरोगकी जड़ नहीं कटती, अस्पृश्यता कदापि दूर नहीं हो सकती । जो लोग वर्ण-व्यवस्थाको कायम रखते हुए अछूतपनको दूर करनेका यत्न करते हैं वे ज्वरके रोगीका हाथ बर्फमें रखकर उसका ज्वर शान्त करनेका उपाय करते हैं ।

वर्ण-व्यवस्थाका आरम्भ कब हुआ, यह बताना कठिन है । वेदमें चार वर्णोंका उल्लेख नहीं । वेद तो मनुष्य-समाजको केवल दो वर्णोंमें बांटता है । ऋग्वेदके पहले मण्डलके १७९ वें सूक्तके ६ ठे मंत्रमें साफ कहा है—उभौवर्णौ वृषिरुग्रः पुपोष ।

अर्थात् उग्रऋषि (अगस्त्य) ने दोनों वर्णोंकी वृद्धि की ।

वे दो वर्ण कौन-कौन हैं, इसका उत्तर भी वेद खुद ही दे देता है । ऋग्वेदके दूसरे मण्डलके बारहवें सूक्तका चौथा मंत्र कहता है—

यो दासं वर्णमधरं गुहाकः ।

अर्थात् जिस (इन्द्र) ने दास वर्ण को नीचे दबा दिया ।

फिर उसी वेदके तीसरे मण्डलके ३४ वें सूक्तका ९ वां मंत्र कहता है—हत्वी दस्यून् प्रार्यं वर्णमावत् ।

अर्थात—(इन्द्रने) दस्युओंको मारकर आर्य वर्णकी खूब रक्षा की ।

सारे वेदमें न तो कहीं चातुर्वर्ण्य शब्द मिलता है और न ब्राह्मण वर्ण, क्षत्रिय वर्ण या वैश्य वर्ण। यदि वेद चार वर्ण मानता या ब्राह्मण और क्षत्रिय आदिको भी वर्ण मानता, तो कहीं न कहीं इनका उल्लेख जरूर मिलता। इतना ही नहीं, महाभारत और श्रीमद्भागवत पुराणतक भी आरम्भमें एक ही वर्ण मानते हैं। महाभारत कहता है—

एक वर्णमिदं पूर्व विश्वमासीद युधिष्ठिर।

इसी प्रकार श्रीमद्भागवतमें लिखा है—

एक एव पुरा वेदः प्रणवः सर्व वाङ्मयः।
देवो नारायणो नान्य एकोऽग्निर्वर्ण एवच॥

अर्थात् पहले-पहल सब वाङ्मयका व्यापनेवाला प्रणव (ओंकार) एक ही अद्वितीय नारायण देवता, एक अग्नि, और एक ही वर्ण था।

इससे स्पष्ट है कि चातुर्वर्णका विभाग पुराना नहीं। यह स्मृतिकारोंकी कल्पना है। इस वर्ण-विभागका कभी कोई मीठा फल निकला हो, यह तो इतिहाससे पता नहीं चलता। हां, इसके विषैले फल तो आर्य जातिको प्रत्येक युगमें चखने पड़े हैं। परशुराम ब्राह्मण थे। उनके पिताको एक क्षत्रियने मार डाला। इससे उनमें जातिगत विद्वेष इतना भभक उठा कि उन्होंने सारी-की-सारी निरपराध क्षत्रिय जातिका इक्कीस बार बध किया! इस विद्वेषके सामने मुसलमानोंका साम्प्रदायिक विद्वेष भी किसी तुलनामें नहीं। यह तो हुई उस युग की बात, जिसे सत्य या कृत युग कहा जाता है। अब उसके बाद त्रेता युगकी बात सुनिये। हमारे मर्यादा पुरुषोत्तम, नहीं नहीं स्वयं जगदीश्वरका अवतार माने जानेवाले, श्रीरामचन्द्रने एक पुण्य-आत्मा तपस्वी शम्बुककी गर्दन इसलिए काट डाली कि वह शूद्र होकर परमात्माका भजन कर रहा था! अब आइये द्वापरमें। द्रौपदीका स्वयंवर हो रहा था। महावीर कर्ण मछलीका लक्ष्यवेध करनेके लिए उठा। इसपर द्रौपदी चिल्ला उठी—मैं सूत-पुत्रके साथ विवाह न करूंगी। यह बात कर्णके हृदयको तीरकी तरह चीर गयी। वह सदाके लिए वैराग्यके सागरमें डूब गया। जो लोग कहा करते हैं कि जन्ममूलक वर्ण-व्यवस्था पहले न थी, उन्हें इस घटनापर विचार करना चाहिए। मेरी रायमें तो गुण-कर्मानुसार कभी वर्णव्यवस्था थी ही नहीं। जब कभी भी यह थी, जन्ममूलक ही थी। आगे आइये, कलियुगमें। गौतम-स्मृति कहती है और श्रीशङ्कराचार्य जैसे विद्वान् उसका समर्थन करते हैं कि यदि शूद्र वेदका मन्त्र उच्चारण करे, तो उसकी जिह्वा काट दी जाय, और यदि वह वेद-मन्त्र सुन ले, तो उसके कानमें पिघला हुआ सीसा भर दिया जाय! इतना ही नहीं, इसी वर्ण-व्यवस्थाकी भांग पीकर राजपूतोंने हेमूं (हेमचन्द्र) के अधीन होकर देशके शत्रुओंके साथ युद्ध करनेसे इन्कार कर दिया, क्योंकि हेमूं छोटी जातिका बनिया था। पर उन्हें विधर्मी मुसलमानोंका दास बननेमें कोई लज्जा न हुई। आज भी क्या अवस्था है? एक बनिया एक मुसलमानको तो कुएंसे पानी लेने देगा, उससे घी-दूध लेकर खा लेगा, उसके साथ हाथ मिलायेगा, परन्तु हिन्दू चमारसे छू जानेपर वह जलके छींटे लेगा, उसे कुएंपर नहीं चढ़ने देगा, और उसके घरका दूध-घी भी ग्रहण नहीं करेगा। परन्तु जब वही चमार हिन्दू-धर्मका परित्याग करके मुसलमान हो जाता है, तो उसके लिए वर्णधर्मकी सभी रुकावटें दूर हो जाती हैं। वह कुएंपर चढ़ सकता है, हिन्दूसे हाथ मिला सकता है, और हिन्दू उसके घरसे दूध-घी और गुड़-शक्कर सब ले सकता है। इस प्रकार हिन्दू लोग अपने ही धर्म-बन्धुओंपर, उनके हिन्दू होनेके अपराधमें, अत्याचार करते हैं। जब कोई व्यक्ति हिन्दू-धर्मको तिलाञ्जलि दे देता है तो फिर ये उससे प्रेम करने लगते हैं। इसके विपरीत, मुसलमान लोग गैर-मुसलमानोंको मुसलमान बनानेके लिए अत्याचार करते हैं। उनके मुसलमान धर्मको ग्रहण करते ही मुसलमानोंका अत्याचार बन्द हो जाता है। श्रीमान् मदनमोहन मालवीयजी मुसलमानोंके दौरात्म्यको भूलकर उनके साथ प्रेम करनेको तो हर वक्त तैयार रहेंगे; परन्तु अपने ही समधी श्रीयुत लक्ष्मीकान्त भट्टकी मृत पत्नीकी अर्थीके साथ नहीं जायंगे, क्योंकि लक्ष्मीकान्तजीने अपनी एक कन्याका विवाह मालवीयोंके बाहर किसी दूसरे ब्राह्मणके साथ कर दिया था। जिस जातिके नेताओंकी यह अवस्था है, उसके परस्पर प्रेम और बन्धु-भावका अनुमान सहजमें ही किया जा सकता है।

महात्मा गांधीने पिछले दिनों अछूतपनको दूर करनेके लिए घोर अनशन व्रत किया था। उन्होंने ब्रिटिश राजनीतिविशारदोंसे भी कहा था कि मैं अछूतोंको हिन्दुओंसे अलग प्रतिनिधित्व नहीं लेने दूंगा, क्योंकि उनका अलग निर्वाचन होनेसे हिन्दू-समाजका अङ्ग-भङ्ग हो जायगा। दूसरे शब्दोंमें

महात्माजी अछूतपनको इसलिए दूर करना चाहते हैं ताकि अछूत लोग हिन्दुओंके साथ मिले रहें। अछूतोंको अलग होनेसे रोकनेके लिए ही हिन्दू नेताओंने कौंसिलोंमें उन्हें अपनी जगहोंमेंसे जगहें देना स्वीकार किया है। हिन्दुओंने राजनीतिक आवश्यकतासे विवश होकर ही यह सब किया है, अन्यथा उनकी मनोवृत्तिमें किसी प्रकारका सुधार नहीं हुआ। इसका परिणाम क्या होगा? हिन्दू बाजी जीतकर भी हार जायेंगे। जिस उद्देश्यसे इन्होंने यह त्याग किया है, वह पूर्ण न होगा। मालवीयजीने गत अक्टोबरमें बम्बईमें कहा था कि मैं अछूतपनको नहीं मानता, क्योंकि शास्त्रोंमें इसकी आज्ञा नहीं; पर मैं अछूतोंके साथ खान-पान तथा ब्याह-शादीके पक्षमें नहीं। उन्होंने यह भी कहा कि समाज-सुधारक लोग चाहे जितना भी यत्न कर लें, जात-पांत कभी मिट नहीं सकती। मालवीयजीके कथनको मान लेनेका फल यह होगा कि जब कौंसिलों या असेम्बलीमें कोई टी-पार्टी या सहभोज होगा, तो अछूत मेम्बर हिन्दू मेम्बरोंके साथ न बैठ सकेंगे। तब वे स्वभावतः मुसलमानोंके साथ बैठेंगे और उनकी सहानुभूति भी मुसलमानोंके ही साथ हो जायगी। उस समय हिन्दू लोग रुष्ट होकर उनसे वे जगहें न छीन सकेंगे, जो समझौतेमें वे उन्हें दे चुके हैं। इस प्रकार हिन्दू अपने पैरपर आप ही कुल्हाड़ा चलायेंगे।

इसके अतिरिक्त एक बात और भी है। अछूतोंको कौंसिलों या असेम्बलीमें थोड़ी-सी जगहें मिल जानेसे ही उनका अछूतपन दूर न हो जायगा। आजकल जो बाजीगर, जो संपेरे, जो चमार और जो भङ्गी मुसलमान होते हैं, वे इस-लिए नहीं होते कि उन्हें कौंसिलोंमें जगहें नहीं मिलतीं। वे तो सामाजिक अधिकार न मिलनेके कारण ही हिन्दू-धर्मको तिलाञ्जलि देते हैं। और रोटी-बेटीके सम्बन्धके सिवा सामाजिक अधिकार और है ही क्या? जिसके यहां आप खा नहीं सकते, जिसके यहां आप पी नहीं सकते, जिसको आप अपवित्र, नीच या इतर समझकर उसके साथ केवल उसके जन्मके कारण ब्याह-शादी करनेको तैयार नहीं, उसे आप अपने समाज-रूपी शरीरका अङ्ग कहनेका साहस कैसे करते हैं? क्या यह उसे और खुद अपनेको धोखा देना नहीं?

कहा जाता है कि ब्राह्मण और क्षत्रियका आपसमें रोटी-बेटीका सम्बन्ध नहीं, फिर भी वे दोनों हिन्दू हैं और अछूत नहीं। इसका उत्तर यह है कि सजीव जातियोंके व्यक्तियोंका जैसा संलग्न आपसमें हुआ करता है, वैसा ब्राह्मण और क्षत्रियमें नहीं। जिस प्रकार एक अंगरेज पादरी एक अंगरेज 'सोलजर'को अपना हाड़-मांस समझता है—जिस प्रकार वह उसके मानापमान और दुःख-सुखको अपना मानापमान और दुःख-सुख समझता है—वैसे एक ब्राह्मण एक क्षत्रियको नहीं समझ सकता है। एक मालवीय ब्राह्मणको, दूसरे मालवीय ब्राह्मणको देखकर जो प्रसन्नता होती है, वह जाट या कहारको देखकर नहीं होती। कारण यह कि कार्यतः मालवीयके लिए मालवीय ही हिन्दू हैं, शेष सब अहिन्दू हैं, क्योंकि मालवीयके ही यहां वह रोटी-बेटीका सम्बन्ध कर सकता है।

वास्तवमें देखा जाय तो हिन्दू कोई जाति नहीं। यह बहुत-सी छोटी-छोटी बिरादरियोंके समूहका नाम है। इन बिरादरियोंका आपसमें खान-पान और रोटी-बेटीका कुछ भी सम्बन्ध नहीं। इनके लिए अपनी छोटी-सी बिरादरी ही संसार है। ब्राह्मण क्षत्रियका पानी पी लेता है, पर कहारका नहीं। इसलिए अछूतपन जितना कहारको दुःख देता है, उतना क्षत्रियको नहीं। इसी प्रकार चमार और भङ्गीको कहार और नाईसे भी अधिक दुःख है। जात-पांतकी उपज, अस्पृश्यताका दुःख जब चमारों और दूसरे अछूतोंके लिए असह्य हो गया और उन्होंने मालवीयजीके धर्मको छोड़कर शौकतअलीके मजहबकी शरण लेनी शुरू की, और उधर सरकारने जन-संख्याके अनुपातसे राजनीतिक अधिकार देनेकी घोषणा की, तब हिन्दुओंको भय हुआ और उन्होंने सङ्कटको टालनेके लिए अनिच्छा-पूर्वक अछूतोंको जगहें देना स्वीकार कर लिया। परन्तु उनके मनोभावमें परिवर्तन कुछ भी नहीं हुआ। लाहौरका मुझे पता है। महात्माजीके व्रतके पूर्व जिन होटलोंमें अछूत रोटी नहीं खा सकते थे, अब भी वे वहां नहीं खा सकते हैं। कुओंका भी यह हाल है कि सौ-पचास मनुष्योंने मिलकर जहां किसी अछूतको एक बार कुएंपर चढ़ा दिया, उनके चले जानेके बाद वह अकेला उसपर नहीं चढ़ सका। वह कुआं हिन्दुओंने गङ्गाजल डालकर 'शुद्ध' कर लिया और वह अछूतोंके लिए फिर बन्द हो गया। हां, समाचार-पत्रोंमें अवश्य शोर मच गया कि कुएं खुल गये! स्व० मौलवी मुहम्मदअलीने भाई परमा-नन्दजीसे ठीक ही कहा था कि आपका 'शुद्धि' और 'अछूतो-द्धार' आन्दोलन इस्लामके प्रबल प्रवाहके सामने नहीं ठहर

सकता। मैं एक भङ्गनको कलमा पढ़ाकर अपनी बेगम बना सकता हूं। मैं किसी भी मुसलमान बननेवाले हिन्दूको अपनी लड़की दे सकता हूं। क्या आपमें या मालवीयजीमें यह साहस है? यदि नहीं, तो फिर इस्लामके रास्तेमें रुकावटें डालनेसे क्या फायदा? अपनेको ऊंचा समझनेवाले हिन्दुओंको चमारों और भङ्गियोंका हाहाकार तो सुन पड़ा है, पर उनसे कहार, कुम्हार, तेली, नाई, माली, धोबी, लोहार इत्यादि शूद्र माने जानेवाले शिल्पी और श्रमजीवी भी कुछ कम दुखी नहीं। पिछले दिनों गोरखपुरके कहारोंने लोथियन फ्रेंचाइज कमेटीके सामने आवेदन-पत्र पेश करते हुए कहा था कि हम ऊंची जातिके हिन्दुओंके साथ अपना सम्मिलित प्रतिनिधित्व नहीं रखना चाहते। इन लोगोंने हमारा आत्म-सम्मान ही नष्ट कर डाला है। स्कूलोंमें हमारे बच्चोंका अप-मान किया जाता है। हमें बर्तन मलने और पानी भरने आदिका काम करनेपर मजबूर करके उठने नहीं दिया जाता। हमारा कोई भी मनुष्य कौंसिल और असेम्बलीमें नहीं जा सकता, इत्यादि। अछूतोंके बाद अब इन शूद्रोंके अलग होनेकी बारी आयेगी। मद्रासमें ब्राह्मण और ब्राह्मणेतरमें जूता-पैजार पहलेसे ही जारी है। वहां स्वात्माभिमान आन्दोलन (Self-respect Movement) बड़े जोरसे फैल रहा है। उसके कई पत्र निकलते हैं। उसके नेता श्रीयुत रमास्वामी नायकरके लेख मुझे उनके अंगरेजी पत्र "रीवोल्ट" (Revolt) में पढ़नेका मौका मिला है। लेख क्या थे, ब्राह्मणशाहीके विरुद्ध जबर-दस्त बम-वर्षा थी। रमास्वामीने तो चिढ़कर कई अछूतोंको मुसलमान भी बना दिया है। वे कहते हैं कि हिन्दू कहलाकर क्या फायदा है? मुसलमान बनकर वे कम-से-कम मनुष्य तो रहेंगे। स्वाभिमान-आन्दोलनवाले वेद-शास्त्र और ईश्वरको भी सौ-सौ गाली सुनाते हैं। वे कहते हैं कि ईश्वर और वेद ब्राह्मणोंके दो शस्त्र हैं। जब हम कहते हैं कि हम वर्ण-व्यवस्थाको नहीं मानते, तो ब्राह्मण झट कहता है, वर्ण-व्यवस्था तो शास्त्रकी आज्ञा है। जब हम शास्त्रको माननेसे इनकार करते हैं, तो वह शास्त्रको वेद-मूलक बताता है। जब हम ऐसे वेदको भी नहीं मानते, तो वह उसे भगवद्वाणी बताकर ईश्वरका डर दिख-लाता है। इसलिए, हमें ईश्वरको भी तिलाञ्जलि देनी पड़ती है।

सारांश यह कि बकरेकी मां कबतक खैर मनायेगी। जन्ममूलक जात-पांतके कारण सारा हिन्दू-समाज तङ्ग है। इसका तहस-नहस हो जाना अनिवार्य है। प्रश्न केवल समयका है। असन्तोष, अविश्वास, घृणा, और अभक्तिका जो मवाद भीतर-ही-भीतर पक रहा है, वह जल्दी या देरसे फूटकर रहेगा। अछूतोंको कुएं पर चढ़ाने या मन्दिरोंमें ले जानेसे हिन्दू-समाज छिन्न-भिन्न होनेसे नहीं बच सकता। यह तो एक प्रकारसे ऊपर-ऊपरसे लीपा-पोती है, ताकि भीतरकी भयानक अवस्था दिखायी न दे।

जो लोग हर बातमें शास्त्रका सहारा ढूंढ़ते हैं उन्हें मालूम रहना चाहिए कि शास्त्र किसी खास चीजका नाम नहीं। किसी जगह संस्कृतकी एक पुस्तकको शास्त्र माना जाता है और किसी जगह दूसरीको। कुछ वर्ष हुए श्रीमान् मालवीयजी मद्रास गये थे। वहां आपने कहा था कि अस्पृश्यताका विधान शास्त्रमें नहीं। इसपर वहांके कुछ पण्डितोंने ऐसे श्लोक दिखा दिये, जिनमें छूत-छातकी स्पष्ट आज्ञा थी। तब आपको चुप रह जाना पड़ा। इसलिए शास्तर-वास्तरके ढकोसलेको छोड़कर मनुष्यताकी दृष्टिसे अछूतोंको समता और भ्रातृभावके अधिकार देने चाहिएं। अथवा शास्त्र तो मदारीका थैला है, चाहे जो बात उनमेंसे निकाल लो। फिर सोचनेकी बात यह भी है कि ये शास्त्र अछूतोंकी सलाहसे नहीं बनाये गये। ये तो द्विजोंकी मन-मानी व्यवस्थायें हैं। शूद्र और अछूत इनको माननेपर विवश कैसे किये जा सकते हैं?

मैं ऊपर कह चुका हूं कि हिन्दू नामकी वास्तवमें कोई जाति नहीं। यह अगणित छोटी-छोटी बिरादरियोंके लिए एक सामूहिक नाम है! इन बिरादरियोंने अपनेको एक जातिके रूपमें कभी अनुभव नहीं किया। वे केवल ब्राह्मण, क्षत्रिय, अहीर, गूजर या अग्रवालके रूपमें अनुभव करती हैं। किसी मुसलमानसे पूछिये, तुम कौन हो? वह झट कहेगा—मुसलमान। परन्तु हिन्दूसे यही प्रश्न करनेपर वह अपनेको हिन्दू न कहकर ब्राह्मण, बनिया, या राजपूत बतायेगा। आजकलका कोई नवयुवक यदि अपनेको हिन्दू कह भी दे, तो प्रश्नकर्त्ताको उसके उत्तरसे सन्तोष नहीं होता। वह झट पूछता है—ब्राह्मण हो या क्षत्रिय? फिर ब्राह्मण हो तो कौन ब्राह्मण? इन लोगोंको अपनेको एक जाति समझनेका अभ्यास नहीं। जिस प्रकार हिन्दू, मुसलमान और सिख, सब भारत-वासियोंको अंगरेजोंने एक सामूहिक नाम

'इण्डियन' दिया है, अंगरेजोंसे पूर्व ये लोग अपनेको सिक्ख, मुसलमान और हिन्दू ही कहते और समझते थे, उसी प्रकार मुसलमान आक्रमणकारियोंने भारतमें बसनेवाली इन बहुसंख्यक बिरादरियोंको 'हिन्दू' नाम दिया था। हिन्दुओंकी भिन्न-भिन्न जातियोंमें कोई संलग्न न होनेसे ही इन्होंने कभी इकट्ठे होकर विदेशी शत्रुओंका सामना नहीं किया।

अछूतोंके साथ रोटी-बेटी सम्बन्धका निषेध करके न मालूम हमारे नेता हिन्दुओंको एक जाति कैसे बना सकेंगे? जापानके लोगोंमें जब एक जाति बननेकी भावना जाग्रत हुई थी, तो उन्होंने एक ही दिनमें जाति-भेदका विध्वंस कर डाला था। पर हमारे नेता जात-पांतको छोड़नेसे घबराते हैं!

कुछ लोग कहते हैं कि अछूतोंमें विद्या-प्रचारसे अछूतपन अपने आप दूर हो जायगा। पर उनकी यह धारणा ठीक नहीं। डाक्टर अम्बेडकर कहा करते हैं कि मैं बैरिस्टर हूं, एम० ए० हूं, पी-एच० डी० हूं, कौंसिलका मेम्बर हूं, मेरी बनायी हुई पुस्तकें बम्बई-विश्वविद्यालयमें पढ़ायी जाती हैं, फिर भी मैं अछूतका अछूत हूं। मेरे साथ जो सुलूक ऊंची जातिके हिन्दू करते हैं, वह वैसा नहीं जो वे आपसमें करते हैं। मद्रासमें जस्टिस कृष्णन् एक अछूत जातिमेंसे थे। वह हाईकोर्टके जज थे। पर अछूत होनेके कारण वे ब्राह्मणोंके मुहल्लेमें नहीं जा सकते थे।

पञ्जाबमें आर्यसमाजने बहुतसे मेहतरों और डोमोंको 'शुद्ध' किया। शुद्धिके समय उनके साथ एक पंक्तिमें बैठकर खा-पी भी लिया। पर आज अवस्था क्या है? जम्मू और गुरुदासपुरके इलाकोंमें चले जाइये। इन 'शुद्ध हुए अछूतों' के गलेमें जनेऊ हैं। वे अपने आपको आर्य या भक्त या महाशय कहते हैं। परन्तु हिन्दू उनसे उसी प्रकार छूत करते हैं, जैसे वे न शुद्ध हुए अछूतोंसे करते हैं। कहनेका तात्पर्य यह कि समूहमें बैठकर दो-एक बार अछूतोंके हाथका खा लेने या सौ-पचासका जत्था ले जाकर अछूतोंको कुओंपर चढ़ा देनेसे काम नहीं चल सकता। तमाशा हो चुकनेके बाद हिन्दू फिर उन्हें अछूतके अछूत बने रहनेपर विवश कर देते हैं।

एक बात और भी है। मान लीजिये, डाक्टर अम्बेडकरके साथ आपने खान-पान शुरू कर दिया, क्योंकि वह एम० ए० हैं और अमीर हैं। पर यह जरूरी नहीं कि उनके सब लड़के और पोते एम० ए० हो सकें और अमीर बन जायं। उनके बच्चोंकी ब्याह-शादी क्योंकि उन्हीं अछूत महारोंमें होगी, इसलिए वे डाक्टर साहबके बाद फिर उसी अछूतपनमें गिर पड़ेंगे जिससे विद्या-द्वारा डाक्टर साहब बाहर निकले हैं। इसके विपरीत एक विद्वान् ब्राह्मणका लड़का चाहे निरक्षर भट्टाचार्य ही क्यों न रह जाय, चाहे चरस और गांजा ही क्यों न पीने लगे, पर कोई उसे ब्राह्मणपनसे गिराकर अछूत नहीं बना सकता। इसका कारण यह है कि ब्राह्मणका दूसरे ब्राह्मणोंके साथ बेटी-सम्बन्ध है। जिसके साथ आप ब्याह-शादी करते हैं, उसको आप कभी अछूत नहीं बना सकते। जिन लोगोंका आपसमें रोटी-बेटी-सम्बन्ध है, उनकी विद्या और दौलत भी उनमें चक्कर काटती रहती है। इस प्रकार एक दूसरेसे आदान-प्रदान होते रहनेसे उनमें सभ्यता, ज्ञान और रहन-सहनका स्टैण्डर्ड गिरने नहीं पाता। चूंकि अछूतोंके साथ हिन्दुओंका रोटी-बेटी-सम्बन्ध नहीं, इसलिए उनकी आर्थिक और बौद्धिक अवस्था भी उन्नत नहीं हो सकी। चमार या भङ्गीके घरका घी या दूध हिन्दू नहीं लेते। इसलिए उसे ये चीजें अपेक्षाकृत एक बहुत संकुचित क्षेत्रमें ही बेचनी पड़ती हैं, जिससे वह उनकी पूरी कीमत प्राप्त नहीं कर सकता। चमारके घर जन्म लेनेवाले लड़केको या तो जूते बनाने पड़ते हैं या घास खोदनी पड़ती है। वह हलवाईकी दूकान खोलकर ज्यादा पैसे नहीं कमा सकता; क्योंकि कोई हिन्दू उसके हाथका लेकर नहीं खाता। मेरे भङ्गीका लड़का केवल इसीलिए मुसलमान होना चाहता है कि इस समय कोई हिन्दू उसके तांगेमें नहीं बैठता। अतएव जब अछूतोंका हिन्दुओंके साथ रोटी-बेटीका सम्बन्ध होगा, तभी उनकी आर्थिक अवस्था सुधर सकेगी, और उनके पुनः-पुनः अछूत बनते रहनेका डर न रहेगा। इस समय एक मुसलमान या हिन्दू मजदूर तो बारह आने दैनिक मजदूरी लेता है, परन्तु चमारको आठ ही आने लेने पड़ते हैं, क्योंकि हिन्दू तो कुएंसे पानी निकालकर इमारतके लिए गारा बना सकता है, परन्तु चमार केवल गारा ही बना सकता है, कुएंसे पानी निकालनेकी उसे आज्ञा नहीं, और मालिकको पानी निकालनेके लिए एक दूसरा मनुष्य रखना पड़ता है।

एक द्विज जब चमार या भङ्गीका नाम सुनता है तो उसके मानसिक नेत्रोंके सामने एक ऐसे व्यक्तिका चित्र आ जाता

है जो चमड़ेके जूते बना रहा है या जो झाड़ू और बाल्टी लिए पाखाना साफ कर रहा है। बस, वह उसके साथ रोटी-बेटी-सम्बन्धका नाम सुनते ही घृणासे नाक सिकोड़ने लगता है। वह यह नहीं सोचता कि डा० अम्बेडकर, रावबहादुर एम० सी० राजा, श्रीयुत डावई, श्रीयुत ईश्वरदास बी० ए० इत्यादि सुपठित और साफ-सुथरे सज्जन भी अछूत ही हैं। वास्तवमें अछूतपनके लिए कोई मैला काम उतना जिम्मेदार नहीं, जितना कि उसकी जात-पांत। एक पढ़ा-लिखा और साफ-सुथरा अछूत, हैट और पतलून पहने, जब किसी ब्राह्मणके पास जाता है तो वह उसे बड़े सम्मानसे कुरसी देता है; परन्तु ज्योंही वह कहता है कि मैं चमार हूं, ब्राह्मण देवता झट डरकर पीछे हट जाते हैं, और वह अछूत उनकी नजरमें गिर जाता है। यदि वही अछूत अपनेको गौड़ ब्राह्मण कह दे, तो ब्राह्मण देवताको उसके साथ खानपानमें भी कोई झिझक नहीं रहती। तात्पर्य यह कि उसकी जाति ही उसके अछूतपनका कारण है, न कि उसका काम या आचार। महात्मा गांधीजी सद्भावसे अछूतोंको 'हरिजन' कहते हैं। परन्तु उनका भाव शुद्ध होते हुए भी अछूतोंके लिए हानिकर है। कालान्तरमें 'हरिजन' का अर्थ ही अछूत हो जायगा, जैसे आर्य-समाज और सिक्खोंके अछूतोंको दिये हुए—महाशय, भक्त, ऋषि-सन्तान, रामदासिया, मजहबी इत्यादि नाम अछूतके ही पर्याय हो गये हैं। आवश्यकता इस बातकी है कि अछूतोंको हिन्दुओंमें इस प्रकार मिला दिया जाय कि उनको पहचाननेवाली कोई अलग चीज ही न रह जाय।

कुछ लोग कहा करते हैं कि भिन्न-भिन्न जातियोंके रहन-सहन, बौद्धिक विकास और सभ्यतामें इतना अन्तर है कि उनका आपसमें बेटी-सम्बन्ध होना ठीक नहीं। उनके उत्तरमें मुझे इतना ही कहना है कि एक ही प्रकारकी शिक्षा पाने, एक ही प्रकारका व्यवसाय करने, एक ही राजाके अधीन और एक ही जल-वायुमें रहनेका मनुष्यपर बड़ा समताकारी प्रभाव होता है। जो भारतीय अंगरेजी ढङ्गसे रहते हैं वे चाहे बम्बईमें हों, चाहे बङ्गालमें, उनका खाना और लिबास एकसा है। वैसे तो ब्राह्मणोंमें भी कई मांसाहारी हैं और कई शाकाहारी; कई जज हैं और कई निरक्षर भट्टाचार्य; कई देवता हैं और कई अउर। श्रीयुत मोतीलाल नेहरू ब्राह्मण थे और श्रीयुत चित्तरञ्जनदास (शायद) कायस्थ। दोनों चोटीके वकील थे। यदि इन दोनोंके परिवारोंका रोटी-बेटी-सम्बन्ध होता, तो इसमें क्या कठिनाई आ सकती थी। बङ्गालके ब्राह्मणोंमें यदि ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय और रवीन्द्रनाथ ठाकुर * पैदा हुए हैं, तो कायस्थोंने भी रमेशचन्द्र दत्त, द्विजेन्द्रलाल राय, मधुसूदन दत्त और सर पी० सी० राय जैसे मनुष्य उत्पन्न किये हैं। तब कैसे कहा जाय कि ब्राह्मणोंकी बौद्धिक अवस्था कायस्थोंसे ऊंची है, और इन दोनों जातियोंका परस्पर विवाह-सम्बन्ध होनेसे समाजकी हानि होगी ?

जो लोग भारतको एक महान् राष्ट्र बनाना चाहते हैं, उन्हें याद रखना चाहिए कि इस राष्ट्ररूपी भवनकी रचनाके लिए ईंट, पत्थर, चूना, लोहा, लकड़ी और रेत सबको मिलाना पड़ेगा, तब कहीं यह भवन तैयार हो सकेगा। यदि यह समझोगे कि चूनेमें रेत मिल जानेसे चूना अपवित्र हो जायगा, या लोहे और लकड़ीके मिलापसे वर्ण-सङ्करता आ जायगी, तो राष्ट्रीयताका विशाल भवन बन चुका। जबतक हिन्दुओंकी असंख्य भिन्न-भिन्न बिरादरियोंमें रोटी-बेटी-सम्बन्धका सीमेंट न लगेगा, ये छिन्न-भिन्न होनेसे न बच सकेंगी।

मुसलमानोंके रोजके दंगे-फिसादोंका भी मूल कारण जात-पांत ही है। भारतके मुसलमान सब अरब और तुरकिस्तानके नहीं। वे हमारे ही बिछुड़े हुए भाई हैं। जब इनको लालच, डर या धोखेसे मुसलमान बनाया गया था, तब इन्होंने अपने हिन्दू-भाइयोंसे अपनेको फिर मिला लेनेकी प्रार्थना की थी। परन्तु हिन्दुओंने न तो उनको मिलाया और न उनसे घृणा छोड़ी। महाराणा प्रताप जैसे देशभक्तने भी मानसिंहको तानेसे कह दिया कि साथ बहनोई (अकबर) को भी लेते आना, जैसे मानसिंहने स्वेच्छापूर्वक अपनी बहन, जोधाबाई, अकबरको दी हो। बस, इस अपमानके कारण मानसिंहने प्रतापको ऐसा तङ्ग किया कि वह अपने प्रयत्नमें सफलता न प्राप्त कर सका। जिस मनुष्यको न तो आप किसी प्रकार अपने साथ मिलानेको तैयार हैं और न उससे घृणा ही छोड़ते हैं, उसके हृदयमें आपको मुसलमान बना लेने और आपके

* रवीन्द्रनाथ ठाकुरके सम्बन्धमें लेखक महाशय भ्रममें हैं। वह ब्राह्मण नहीं हैं। उनका जन्म जात-पांत-तोड़क कुलमें हुआ है।—स० वि०।

मुसलमान बननेसे इनकार करनेपर आपका नाश कर डालनेकी इच्छा उत्पन्न होनी स्वाभाविक है, क्योंकि आपकी प्रभुताकी अथवा मौजूदगीमें वह सम्मानपूर्वक जीवन नहीं बिता सकता। बस,मुसलमानोंका वही भाव दंगे-फिसादके रूपमें प्रकट हुआ करता है। जबतक वे कमजोर थे, वे दबे रहे। अब जरा अनुकूल अवसर पाकर उन्होंने अपनी इच्छा-पूर्तिका यत्न शुरू कर दिया। आजकल जो 'शुद्धि' भी की जाती है उसमें भी शुद्ध होनेवालोंका सिर ही मूंड़ दिया जाता है। उनको रोटी-बेटीके सम्बन्धसे अपने समाजका अङ्ग नहीं बनाया जाता। इसीलिए हमारे शुद्धि, अछूतोद्धार और सङ्गठन-आन्दोलन विफल हो गये हैं। यदि आज भी हिन्दू जात-पांतके झगड़ेको छोड़कर, दूसरे धर्मोंसे शुद्ध होकर आनेवाले लोगोंके साथ रोटी-बेटीका सम्बन्ध करनेको तैयार हों, तो मुसलमान, पारसी, यहूदी और ईसाई एक बहुत बड़ी संख्यामें हिन्दू बन सकते हैं। जिस समय हिन्दुओंमें जात-पांतका झगड़ा न था, उस समय इन्होंने शक, यूची, हूण इत्यादि अनेक विदेशी अनार्य जातियोंको हजम कर लिया था। उस समय हम शक्तिशाली थे। जबसे जात-पांतकी बन्द कोठरी बनी है तभीसे हमारा ह्रास आरम्भ हुआ है और अभीतक बराबर जारी है।

अमरीकाके राष्ट्रपति विल्सनने "न्यू फ्रीडम" नामकी एक पुस्तक लिखी है। उसमें वह कहते हैं कि अमरीकाके संयुक्त राज्योंकी बड़ाई इस बातमें है कि समाजके किसी भी स्तरका कोई भी व्यक्ति अपने व्यक्तिगत प्रयत्नसे समाजमें उच्चतम स्थान प्राप्त कर सकता है। यूरोपमें समाजकी किसी भी श्रेणीके लोग मोची और चमारका काम कर सकते हैं। यूनाइटेड स्टेट्सके एक राज्यका गवर्नर जूते गांठनेका काम करता था। अब भी उसकी मोचीकी दूकान है। उसमें सैकड़ों कारीगर काम करते हैं। इंगलैण्डके ड्यूक विलियम आव नारमण्डीने एक खटीककी लड़कीसे विवाह किया था, और उसी खटीक स्त्रीके गर्भसे विलियम दि कङ्करर जैसा महापुरुष पैदा हुआ। सीरामपुर (बङ्गाल) का प्रसिद्ध पादरी केरी, अपने लड़कपनमें मोचीका काम किया करता था। इंगलैण्डके प्रसिद्ध राजनीति-विशारद श्रीयुत लायड जार्जका मामा चमार था। उसीने लायड जार्जको अपना दत्तक बनाकर पाला था। रूसका वर्तमान शासक स्टेलिन जूते गांठकर रोटी कमाया करता था। परन्तु हिन्दू-समाजमें जो एक बार चमार बन गया, वह सदाके लिए चमार बना रहेगा। चीन और जापानमें कोई भङ्गी नहीं। लोग टट्टी उठानेके लिए पैसे लेनेके बजाय पैसे देते हैं, क्योंकि पाखाना एक कीमती खाद है।

बङ्गालके प्रसिद्ध समाज-सुधारक और देशभक्त डाक्टर सर प्रफुल्लचन्द्र रायकी हालमें एक घोषणा प्रकाशित हुई है। उसमें वह कहते हैं—Interdining and intermarriage are the indispensable necessaries for the removal of untouchability. अर्थात् अस्पृश्यता-निवारणके लिए रोटी-बेटीका सम्बन्ध होना परम आवश्यक है।

श्रीमान् मालवीयजीकी यह धारणा ठीक नहीं कि समाज-सुधारकोंके यत्न करनेपर भी जात-पांत न टूट सकेगी। अति प्राचीनकालमें भी यह न थी और भविष्यमें भी यह न रहेगी। पुराने इतिहासोंसे पता लगता है कि राजा लोग ऋषि-कन्याओंसे और ऋषि लोग राज-कन्याओंसे विवाह कर लिया करते थे। वेद-व्यास, पराशर, वशिष्ठ, परशुराम आदि महर्षि सब जात-पांत-तोड़क विवाहोंकी सन्तान थे। इस समय जो जात-पांत नहीं टूट सकी, इसका भी एक विशेष कारण है। बुद्ध, नानक, गोविन्दसिंह, राममोहन और दयानन्द इत्यादि जिन भी महात्माओंने जात-पांतको मिटानेका यत्न किया है, वे सब ऊंची जातिके हिन्दू थे। वे स्वयं जात-पांतके दुःखसे दुःखी न थे। इसलिए वे इसके अत्याचारको यथोचित रीतिसे अनुभव न कर सकते थे। यही कारण है कि उन्होंने इसे मिटानेके कामको अपने कार्यक्रममें एक गौण-सा स्थान दिया था। जिन अछूतों और शूद्रोंपर जात-पांतका भयङ्कर प्रहार होता था, उनके पास इसके विरुद्ध शिकायत करनेके लिए न जबान थी और न मुकाबला करनेके लिए शक्ति। वे बेचारे हिन्दू-समाजको छोड़कर अन्यत्र भी न जा सकते थे। पर अब वह अवस्था नहीं रही। अब ईसाई और मुसलमान उनके स्वागतके लिए तैयार हैं। अब उनके पास विद्या-बल और धन-बल भी है। और सबसे बढ़कर अब वे स्वयं इस वर्ण-व्यवस्थाका जुआ उतार फेंकनेको उतारू हो गये हैं। अब जात-पांतका जीते रहना कठिन है। सैकड़ों विवाह जात-पांत तोड़कर हो चुके हैं। बड़े-बड़े उच्च ब्राह्मण कुलोंकी कन्यायें वैश्यों और शूद्रोंसे विवाह कर रही हैं। हमारे जात-पांत-तोड़क मण्डलने ही कई अछूत

लड़कोंको द्विज कहलानेवाले हिन्दुओंकी लड़कियां दिलायी हैं। वह दिन जल्दी ही आनेवाला है जब महात्मा गांधी और दूसरे हिन्दू नेता इस बातका अनुभव करेंगे कि यदि जात-पांतका विध्वंस नहीं कर दिया जायगा, तो हिन्दू-समाजका विध्वंस हो जायगा। दोनोंका एक साथ जीना असम्भव है।

मैं

मैं कोमल-विकच-कुसुम हूं,
शोभामय नन्दन-वन का।
मैं हूं उन्माद अनोखा,
पागल प्रेमीके मनका।

मृदु हास चन्द्रमाका हूं,
कम्पन हूं मलय-पवनका।
हूं निर्मल-संध्या-तारा
छविमय आनन्द-गगनका।

सम्राट् चक्रवर्ती हूं,
सौन्दर्य विश्वका सुन्दर।
हूं मदन-वीर अभिमानी—
यौवन-मद-मत्त मनोहर।

हूं उषा-हृदयका स्वामी,
सुख-पथका तरुण पथिकवर।
हूं रसिक-राज वंशीधर,
वृन्दावनका नटनागर।

मैं छिपी व्यथा हूं कोमल—
कामिनियोंके चितवन की।

मैं चिर-चंचल आशा हूं—
राधिका-प्रियाके मन की।

हूं मधुर तान मुरलीकी,
नूपुर-ध्वनि किसी चरणकी।
मैं मधुकी चिर माया हूं,
मदिरा हूं आकर्षण की।

मैं चित्रकार हूं, कवि हूं,
कल्पना-लोकका स्वामी।
हूं मधुवनका मधुवासी,
हूं नीरव-नभ-पथ-गामी।

किल्लोल सिन्धुका मंजुल,
सावनका श्यामल जलधर।
मैं हूं वसन्त सदमाता,
हूं इन्द्रधनुष छवि-सागर।

हूं कली-अलीका चुम्बन,—
आलिंगन, मधुर-स्पन्दन।
हूं चतुर चितेरा चंचल,
मैं छैला विश्वविमोहन।

—कामेश्वर शर्मा "कमल" सा० भूषण

श्री लक्ष्मीकान्त भट्टकी पत्नीके सम्बन्धमें लेखकने जो कुछ लिखा है, वह निराधार है। भट्टजीकी पत्नी श्रीमती सरस्वती देवी अभी हालमें जेलसे छूटकर आयी हैं। खेद है कि जिस लेखके फार्ममें उनका उल्लेख है, उसके छप जानेके बादमें पता लगा। भगवान्से हमारी प्रार्थना है कि सौ० श्रीमती सरस्वतीजी चिरायु हों।—स० वि०

हृद्गति

श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी

(१)

मुझे देखते ही वह, भीता हरिणीकी भांति, चौंक पड़ी। मैं भी उसकी चकित भाव-भङ्गी देखकर कुछ सशङ्कित हो उठा। उसके बायें कपोलपर वैसा ही तिल था, वही मुक्त दन्तावली थी, पीठपर भी वैसी ही कुन्तलराशि लहराती थी। मुझे इकटक एक बार देखकर उसने अपनी दृष्टि नत कर ली।

मैं बहुत कुछ समझ रहा था। ज्ञानका आलोक मेरी अन्तर्दृष्टिसे परे नहीं था। जीवनके अतीत कालकी स्मृतियां एक-एक करके आ-जा रही थीं। पहले तो जीमें आया कि छज्जेपरसे कूद ही पड़ूं। पर अभी प्राणका मोह बना था। फिर मैंने यह भी अपने आप ही विचार किया कि यदि मुझमें इतना आवेग ही होता तो आज इसकी यह गति ही क्यों होती। मैं तो सदासे विवेकशील बननेका दम्भ रखता आया हूं। मुझसे क्या यह हो भी सकेगा! न-न, मुझसे यह भला कैसे होगा? लोग चारों ओरसे मुझे घेर लेंगे। कोई कहेगा—पापात्मा था और उसकी यह गति स्वाभाविक थी। कोई कहेगा—पतित था और ऐसे पतितोंको भी यदि यह दण्ड न मिले, तो भला यह पृथ्वी कैसे स्थिर रहे, प्रलय न हो जाय! और यह सब तमाशा इन्हीं आंखोंके सामने होगा! सम्भव है, मैं उस समय चेतन अवस्थामें होऊं। यह भी सम्भव है कि अचेतन अवस्थामें ही रहूं। कुछ देर बाद मेरे मुहल्लेके लोग भी मुझे देखेंगे, कहेंगे—कैसा ज्ञानी बनता था! एक दिन कलई खुल ही गयी!

हां, भाई यही सब बातें मानों एक ही क्षणमें मेरे मनके भीतर कोलाहल मचाती हुई आयीं और चली गयीं। और फलतः मैं छज्जेपरसे गिरना दूर रहा, उस ओर झांक भी न सका। मैंने बहुत चाहा कि वह मुझसे कुछ बातें करे, मुझसे कुछ पूछे और अपनी कुछ कहे; पर वह तो उस समय वहां बैठ भी न सकी। झटसे उठकर एक दूसरे कमरेमें चली गयी। मैं जैसा बैठा था, वैसा ही बैठा रहा। पर उस तरह बैठा रहना न उचित जान पड़ा, न मुझसे बैठा ही जा सका। अन्तमें जब उठकर मैं चलने लगा तो भीतर हीसे किसीको यह कहते सुना—अचानक बीबीकी तबियत नासाज हो गयी। आप कल फिर तशरीफ लायें। बड़ी इनायत होगी।

इन कानोंने ऊपर लिखे वाक्य किस तरह सुने, इस सम्बन्धमें क्या बताऊं, कुछ समझमें नहीं आता। एक बार फिर जीमें आया—आत्महत्या करना ठीक हो चाहे न हो, पर इस दशामें तो वही मेरे लिए अमरत्वदायिनी है। किसी तरह जीनेसे उतर आया। उस समय सड़कपर वैसा जनरव न था जैसा दिनमें रहा करता है। रातके, ज्यादा नहीं, केवल साढ़े नौ बजे थे। अनेक पुरुष इधर-उधर आ जा रहे थे। यद्यपि मैं शीघ्र चलनेका उपक्रम कर रहा था, तथापि पैर तो जैसे सड़कपर जमे जा रहे थे। किसी तरह मकानतक आया।

अन्दर पहुंचते ही गृहिणीने कहा—आज धन-तेरस है, कुछ बर्तन नहीं खरीदोगे?

मैंने जैसे कुछ सुना ही न हो।

उसने फिर दोहराया। कहा—सुना नहीं, अरे आज धन-तेरस है। कुछ बर्तन खरीद लाओ। दो तश्तरी और एक कटोरदान फिलहाल ले लो। और तो किसी बर्तनकी जरूरत है नहीं।

मैंने टालते हुए कह दिया—मुनुआं कहां गया? उसीको भेज दो। मेरे कौन जाय? अरे हां, रोज तो जुता रहता हूं। अब दो-एक दिनकी जो फुरसत मिली है, उसमें कुछ आराम भी तो कर लूं।

वह बोली—जाने कैसा तुम्हारा स्वभाव हो गया है! सड़ेसे कामको भी टाल देते हो! मुनुआं इस समय भला घरमें कभी रहता है कि आज ही रहेगा। फूलबागमें होगा, या सिनेमा देख रहा होगा।

मैं—तो इस समय तो मैं जाऊंगा नहीं। जब वह आये तभी उससे मंगवा लेना।

इस तरह मैंने किसी प्रकार गृह-जञ्जालसे तो क्षणिक छुट्टी ले ली। अब फिर जीवनकी धुंधली स्मृतियोंके साथ डूबने-उतराने लगा।

कभी मैं इस जीवनका वह प्रभात-काल था, जिसे मैं कच्चे दूधके फेनके समान पवित्र और कोमल समझता हूं। जीवनके प्रभात-कालका प्रारम्भ मैं अष्टादश वर्षसे मानता हूं। उससे पूर्वके जीवनको मैं मानव-जीवन न समझकर उससे और भी उत्तर जीवन समझता हूं। पके सन्तरेके कोयोंमें जब खूब रस भरा हो, तब उनको छीलकर उनमेंसे बीज निकालकर एक-एक करके खानेमें जिन्हें मजा आता है, मैं उनमें मनुष्यत्वकी अपेक्षा देवत्वकी मात्रा अधिक पाता हूं। अष्टादश वर्षसे पूर्वकी अवस्था भी उसी कोटिकी है। नहीं तो, मैं तो भई, अनेक रसमयी कलियोंका रस एकदमसे एक साथ ही चूसनेमें मनुष्यत्वको पूर्ण यथार्थ रूपमें देखनेका अभ्यासी हूं। शीतल समीरके मन्द-मन्द झोंके जब बहुत ही प्रिय लगें, जब अनन्त नील अम्बरकी शोभा हम इकटक देखते रह जायं, अथाह जल-धाराके साथ-साथ इतराते हुए तैरनेकी मस्ती जब हमें एक बार लहरा दे, तभी तो हमें अपने इस संसारका ज्ञान होता है। हां भाई, कभी मेरा ऐसा ही जीवन था।

उस समय मैं बङ्गाल बैङ्कमें एकाउण्टेण्ट महोदयका चीफ असिस्टैण्ट था। कानपुरके माल रोडपर मेरा मकान था। उस मकानके ऊपरी भागमें मैं रहता था, नीचे एक किरायेदार। उनका नाम था राजीवलोचन। लोग उन्हें 'राजीव बाबू' कहते थे। राजीव बाबू थे तो डेढ़ पसलीके, पर तेजस्विता और प्रतिभा उनमें खूब थी। पान खानेके बड़े शौकीन थे। पानकी लालिमासे उनके ओंठ सदा रञ्जित रहते थे। सफाई उन्हें इतनी पसन्द थी कि कपड़ोंपर एक भी शिकन या धब्बा उन्हें सहन न था। बड़े हंसमुख थे, उठते-बैठते, चलते-फिरते सदा मस्त रहा करते थे।

राजीव बाबू मेरा बड़ा आदर करते थे। पर मैं ? मुझे इतनी फुरसत ही न रहती थी कि उनसे दो घड़ी बातें करता। यही चलते-फिरते जब कभी बातचीत हो जाती थी। कुशल-मङ्गलके सिवा अधिक पूछ-ताछकी नौबत ही न आती थी।

राजीव बाबूकी एक साली थी। उसका नाम तो था फूलमती, पर वह पुकारी जाती थी केवल 'फूल' नामसे। फूल सचमुच फूल ही थी। उसके कुन्दन वर्ण और सुगठित शरीरकी शोभा सदा झलमलाती रहती थी। उसका कण्ठस्वर तो ऐसा मधुर था, ऐसा मधुर था कि कुछ न पूछो। कभी वह स्वर कानमें पड़ जाता, तो मेरे मुंहका कौर मुंहमें ही रह जाता था। एक दिन जब सचमुच यही हाल हुआ तो गृहिणीने टोक दिया। पूछा—क्या बात हुई ?

मैं पहले तो न बोला। एक प्रश्न योंही टाल गया; पर फिर दुबारा पूछनेपर मैंने कह दिया—योंही। कोई खास बात न थी।

पर मेरी गृहिणी भी एक ठहरी। वह मेरे पीछे पड़ गयी। बोली—क्या समूची मिर्च दांतके नीचे आ गयी ? नहीं तो बताओ क्या हुआ, तुम्हें मेरी सौंह।

अब मैं भला क्या करता ! पहले तो जीमें आया, कह दूं—ऐसा जान पड़ा, जैसे सड़कपरसे एकाउण्टेण्ट साहब बातें करते हुए जा रहे हों। पर जब उसने सौगन्द खिला दी तो कैसे झूठ बोलता ! विवश होकर मुझे कहना ही पड़ा—फूलका बोल सुनकर रुक गया था। इसका स्वर कैसा मधुर है, कैसा प्रिय !

वह मुसकराते हुए बोली—तुम्हारी यह आदत न गयी। मेरे मुंहसे भी निकल पड़ा—ले, यह तो न जायगी।

(२)

फूल राजीव बाबूके साथ ही रहती थी।

आप पूछें, भला ऐसा क्यों था ?—तो मुझे एक ऐसा शब्द कह देना पड़ेगा, जिसे सुनकर आपको दुःख होगा। क्या आप सुनेंगे ? अच्छा सुनिये, वह बाल-विधवा थी !

फूल थी तो विधवा, पर अपनी आत्मासे वह विधवा न थी। विधवाका तो कोई खो जाता है। फूलका कुछ खोया न था। विधवा प्राण रखते हुए निष्प्राण रहती है। फूलमें तो प्राण खूब ही उज्ज्वल था, खूब ही चेतन, इसीलिए फूल हंसती खूब थी। उसका खिल-खिलाना सदा मेरे कानोंमें गुञ्जित रहता था। फूल गाती भी खूब थी। उसका गान मेरी आत्मामें निर्झरकी भांति अहर्निश मुखरित होता था। फूल रोना और मुंह लटकाना तो जानती ही न थी। और इस अर्थमें फूल अपराधिनी थी।

कुछ दिनोंमें राजीव बाबूकी गृहिणी, उनकी साली, उनके खिलौने-जैसे प्यारे बच्चे मेरे यहां खूब आने-जाने लगे। अब फूलने मेरे कमरेमें भी प्रवेश पा लिया।

जब मैं बैङ्कसे लौटता, तो प्रायः फूलको अपने ही घरमें पाता। देखता, वह मेरी गृहिणीसे खूब ही निकटतम प्यारके साथ बातें कर रही है। पर मुझे आया हुआ देखकर वह एकदमसे सिमटकर चुप हो जाती। कभी कटाक्षसे मुझे आद्यन्त निरखकर वह अपना मुंह नीचे कर लेती। कभी उसके आगे पुस्तक रखी होती, तो वह उसके अध्ययनका आलोक फेंकती। कभी उसके आगे पेंसिल रखी रहती, तो वह फर्शपर उसी पेंसिलसे कुछ लिखने लगती। कुछ दिनोंतक यही क्रम जारी रहा।

एक दिन जब मैं बैङ्कसे लौटा तो अपनी गृहिणीको मैंने बहुत ही उदास पाया। एकाएक उसे उदास देखकर मेरा हृदय डोल गया। मैंने उससे पूछा---कहो रानी, आज इस तरह उदास क्यों हो? क्या हुआ, तबियत तो ठीक है?

उसने कहा—या तो इस मकानको ही बदल दो, या नीचेके किरायेदारसे कह दो, मकान खाली कर दें। मैं ऐसे किरायेदारके साथ नहीं रह सकती।

मैं—आखिर बात क्या हुई, कुछ बताओगी भी या...।

वह—क्या बताऊं मैं तुम्हें...एक हंसी, एक दुःख। मैं तो इनको बहुत अच्छा आदमी समझती थी। पर ये निकले निरे पशु। आज उन्होंने फूलको इतना अधिक पीटा है कि वह बेचारी बेहोश पड़ी है। एक जरा-सी बात थी। कोई बड़ी बात भी होती तो भी उनका यह व्यवहार कुछ उचित कहा जा सकता। जानते तो हो, वह स्वभावकी बड़ी चञ्चल है। मेरे सामने ही तुम्हारे लिए कहने लगी—जीजाजी मुझे बड़े अच्छे लगते हैं। ऐसी सुन्दरता मैंने अबतक किसीमें नहीं पायी। सच जानो जीजी, अगर इनके साथ मेरा ब्याह हुआ होता तो मैं तो इनका नित्य चरणामृत लेती।...उसकी बड़ी बहन भी उस समय बैठी थी। यह बात उसने राजीव बाबूसे कह दी। और बस इसी बातपर आज राजीवबाबूने फूलकी यह गति की है। मारनेके सिवा गालियां भी उन्होंने उसे इतनी फूहड़ दीं कि मुझसे तो सुनी नहीं गयीं। तुम होते तो तुम भी उनसे उलझे बिना न रहते। ऐसा निर्दय आदमी कहीं देखा नहीं था। वैसे, आदमी सज्जन मालूम होते थे। पर कौन जानता था, ये ऐसे पशु निकलेंगे!...फूल बेचारी विधवा है। जीवनका सुख उसे यों ही नसीब नहीं है। बेचारी अभागिनी तो है ही। फिर अभी उसकी उमर ही क्या है! अबोध ठहरी। जब उसे ज्ञान होता तो सब समझ जाती। आखिर उसके भी तो हृदय है! हाय इस दुष्टने नारी-हृदयका कुछ भी विचार नहीं किया!

इसके बाद मुझे मेरी गृहिणीने बताया—राजीवने फूलको इतना मारा है कि उसकी देहपर दर्जनों निशान पड़े हैं। मुझसे तो उसकी वे नीलिमा रेखायें देखी नहीं गयीं। उसकी बहनने बचानेकी चेष्टा की, तो उसपर भी दो बेत पड़ गये।

यह संवाद पाकर मैं एकाएक अस्थिर हो गया। मुझे उस दिन इस घटनापर बहुत ही अधिक दुःख था। मुझसे खानातक नहीं खाया गया। घटनासे मेरा भी अप्रत्यक्ष सम्बन्ध था। इस कारण और उपाय न देख मैंने राजीवबाबूको बुलाकर उन्हें अड़तालिस घण्टेके अन्दर मकान खाली कर देनेका नोटिस दे देना उचित समझा! यद्यपि उनके साथ मेरा यह अनधिकार-पूर्वक व्यवहार था। फिर भी मैं तो राजीव बाबूकी सूरततक नहीं देखना चाहता था। इसीलिए उस समय मैंने अपनी समझसे अच्छा ही किया था। संवाद पाकर मैंने राजीवसे कहा—मैंने आज जो कुछ सुना है, उसके सम्बन्धमें आप मुझसे कुछ कहना तो न चाहेंगे?

राजीवकी आंखोंमें जैसे खून-सा छाया हुआ था। उसने कहा—वे सब मेरे घरकी प्राइवेट बातें हैं। आपको उनकी चर्चा भी मुझसे न करनी चाहिए थी।

मैंने कहा—बहुत अच्छी बात है। अपने घरकी शान्ति-रक्षाके विचारसे, मैंने भी, अब आपको, इस घरमें रखकर, अधिक कष्ट देनेकी आवश्यकता नहीं समझी है। जितनी जल्दी आप मकान खाली कर दें, उतना ही अच्छा। वैसे आप महीने-भरमें छोड़ सकते थे। पर अब तो मैं आपको दो दिन भी यहां नहीं रखना चाहता।

राजीव—आप मेरा अपमान कर रहे हैं।

मैं—अपमान ही यदि मैं आपका कर सकता, तब तो मैं अपने आपको धन्य समझता। अपमान ही तो मैं आपका नहीं कर सकता। एक आपका ही नहीं, किसीका भी। यही तो मेरे मानव-जीवनकी एक त्रुटि है।

उसी दिन राजीवने मकान खाली कर दिया।

(३)

अब फूल मुझसे कोसों दूर थी ।

सोते-जागते कभी-कभी फूलकी याद आ जाती थी। उसका खिल-खिलाकर हंसना और उसका गृहस्थीके काम करते हुए गुनगुनाना तो मुझे भूलता ही न था। संसार अपनी गतिसे चल रहा था। दो-चार महीनेमें जब कभी राजीव बाबू राह चलते मिल जाते थे, कभी दुआ सलामके सिवा उनसे कुछ बातचीत करनेकी इच्छा न होती थी। इस तरह धीरे-धीरे फूलकी स्मृति भी धुंधली पड़ती गयी।

एकबार एक मित्रके यहां प्रीति-भोजमें मुझे भी सम्मिलित होना पड़ा। संयोगवश राजीवबाबू भी उसमें सम्मिलित थे। बाद नमस्कारके उन्होंने ही अपनी ओरसे बातचीत प्रारम्भ की। वह धीरेसे बोले—अपराध क्षमा हो तो आपका कुछ समय नष्ट करूं। मुझसे यह न हो सका कि मैं मुंह फेर लेता। आखिर राजीवबाबू एक सुशिक्षित व्यक्ति थे। मैंने कहा—सहर्ष। कहिये, क्या आज्ञा है?

रा०—आज्ञा भला मैं आपको क्या दूंगा। आप बड़े आदमी हैं। आपको आज्ञा देनेकी ही अगर मेरी पद-मर्य्यादा होती तो मुझे आपके मकानसे ही क्यों निकलना पड़ता। लेकिन खैर, उन बातोंकी चर्चा न की जाय, यही अच्छा है।

मैं—मैं आपको बहुत सहृदय समझता था। मेरे हृदयमें आपके लिए बड़ा आदरका स्थान था। लेकिन मैं नहीं जानता था, जो ऐसा सहृदय हो सकता है, वह ऐसा कठोर, ऐसा पाषाण-हृदय भी हो सकता है। मानव-स्वभावकी परख मुझे न थी। मैं जानता हूं, मुझे आपके प्राइवेट मामलोंमें हस्तक्षेप करनेका अधिकार नहीं था। फिर भी आप जानते ही हैं, घटनाओंका प्रभाव मानवात्मापर पड़ता ही है। इसलिए मुझे आपके साथ जो व्यवहार करना पड़ा, वह अनुचित था, यह मैं मानता हूं। पर मेरे अनौचित्यमें एक निरीह अबोध प्राणीके प्रति किये गये अत्याचारपर अपना रोष था। आप कहते हैं उस विषयकी चर्चा न की जाय। मैं कहता हूं, मैं आपसे मिलूं और उस विषयकी चर्चा तक न करूं। क्या यह सम्भव है? आप यदि उस विषयकी चर्चा तक नहीं करना चाहते, तो यदि मैं आपसे कह दूं कि मैं भी आपसे बात नहीं करना चाहता, तो आपको बुरा तो न लगेगा?

रा०—आपका अभिप्राय यह है कि यदि मैं गलती करूं तो यह आवश्यक है कि उसके उत्तरमें आप भी गलती करें। यदि मैंने गलती की, या मैं गलती कर रहा हूं तो उचित तो यह था कि धैर्य्यके साथ आप उसका समाधान-संशोधन करते। पर आप तो चिकोटीका जवाब बकोटेसे देते हैं।

मैं—तो फिर चिकोटी काटी ही क्यों जाय?

रा०—हां, क्यों काटी जाय! किसने काटी चिकोटी, जरा बतलाइये तो।

मैं—आपने।

रा०—कदापि नहीं। आप भ्रममें हैं। जो लोग समझते हैं कि नारीका वैधव्य सामाजिक अत्याचार है, वे भी भ्रममें हैं। मैं तो इसे ईश्वरी व्यवस्था मानता हूं।

मैं—आपने उसे जो मारते-मारते बेदम कर दिया था, वह भी ईश्वरी व्यवस्था थी?

रा०—निस्सन्देह।

मैं—भ्रममें हैं आप। आपका दिमाग खराब हो गया है, उसकी दवा कीजिये।

कुछ देरतक फिर वार्तालाप बन्द रहा फिर दावत उड़ायी गयी। अन्तमें जब सब लोग बिदा होने लगे तो मैंने राजीव बाबूसे पूछा—और कहो, सब लोग मजेमें हैं न? फूल आजकल कहां है?

राजीव—और तो सब लोग मजेमें हैं। हां, फूल अपने पिताके यहां चली गयी थी। वहीं उसका स्वर्गवास हो गया!

मैंने कह दिया—यह तो होना ही था।

मैं आंखें पोंछता हुआ घर चला आया

(४)

मुझे अब राजीवके कथनपर सन्देह नहीं रह गया था। मैं समझता था, सचमुच फूलकी मृत्यु ही हो गयी होगी। पर उस दिन जब मैंने उसकी बिलकुल वैसी ही आकृति देखी, तो मुझे भी आश्चर्य्य हुआ। सोचा, वह फूल तो भला क्या होगी, वह तो मर चुकी है। उसी आकार प्रकार की कोई और होगी। यह भी सोचा, सम्भव है, फूल ही हो। उसकी चर्चाको सदाके लिए बन्द कर देनेके विचारसे ही राजीवने मुझसे वैसा कह दिया हो। इसी प्रकारके अनेक विचार मेरे मन-मानसमें लहराये और उसीमें अन्तर्हित हो गये

दूसरे दिन चतुर्दशी थी। यह दिन छोटी दीपावली माना जाता है। चौबीस घण्टेके बाद मैं फिर उसी ओर जा रहा था। ये चौबीस घण्टे बड़ी व्याकुलतामें व्यतीत हुए थे। खैर साहब, मैं उसके कमरेमें पहुंच गया। फर्शपर शीतल-पाटीकी एक नई चटाईपर साधारण रीतिसे वह बैठी हुई थी। कलकी सारी सजावट आज जाने कहां चली गयी थी। न गद्दा बिछा था, न उसपर वह सफेद चद्दर थी। मसनद भी नदारद थे। एक नौकरानीके सिवा दूसरा कोई भी न था। झाड़-फानूस सबके सब पृथककर लिये गये थे। कल तो एक आश्चर्य्य अपने साथ ले ही गया था। आज यह एक और महान आश्चर्य्य सामने था।

मैंने पहुंचते ही पूछ दिया—आज यह परिवर्तन क्यों?

उसने इसका उत्तर न देकर कहा—आओ बैठो।

मैंने अब उसे अच्छी तरह देखा। सचमुच वह फूल ही थी। मेरे आश्चर्य्यकी सीमा न रही। कुछ क्षणोंतक मैं चकित स्तम्भित बैठा रहा। मैंने एक बार फिर उसकी ओर आंख उठाकर देखा—छोटे-छोटे मोती सिलसिलेवार उसकी आंखोंसे निकल-निकलकर टप-टप गिर रहे थे! वैसे भी उसकी आंखें लाल थीं। जान पड़ता था, वह सोयी नहीं है, पहले भी रोती रही है।

नौकरानी पासही बैठी थी। बोली—कल जबसे आपको देखा है, इनका यही हाल है। अबतक कुछ भी नहीं खाया है। मैंने खाना बनानेको कहा। इन्होंने मुझे खाना नहीं बनाने दिया फिर जब मैं मिठाई ले आई, तो उसे भी नहीं छुआ। वह ताकपर रखी है।

इसी समय फूलने कहा----चल दे तू भी यहांसे कलमुंही! मैं तेरा भी मुख नहीं देखना चाहती।

नौकरानी बोली----मुझे सरग-नरक कहीं ठिकाना भी है जहां मैं चली जाऊं। चली तो सब कुछ जाऊं।

नौकरानी मकानके भीतरी भागकी ओर चली गयी।

फूलने उसी तरह रोते हुए कहा---अब आखिर वही तुम मिले जब...। इसके बाद वह कुछ कह न सकी।

मैंने उसकी इस बातका कोई उत्तर न दिया। मेरे मुंहसे निकल पड़ा---मुझसे तो राजीवबाबूने कहा था कि तुम्हारी मृत्यु हो गयी।

वह बोली--ठीक ही कहा था उन्होंने। तुम्हारी उस फूलकी सचमुच मृत्यु हो गयी। उसमें कितनी पवित्रता थी, वह कैसी निर्मल थी! मैं पापिन हूं, पतित हूं, ज्वालामुखी हूं। लेकिन मैं तो खैर जो कुछ हो गयी, अपने दुर्भाग्यसे हो गयी, तुम इस कूचेमें कैसे आये! क्या जीजी भी मर गयी हैं!

मैं इसका क्या उत्तर देता!---चुप ही रहा।

फूलने आंसू पोंछते हुए कहा----बोलो, तुमको तो मैं मांके दूधकी तरह बहुत ही पवित्र मानती थी। तुम्हारा यह पतन कैसे हुआ?

मैंने कहा----ईश्वरने भलेके साथ बुरेकी भी सृष्टि की है। भलेका तबतक स्वरूप ही स्थिर नहीं होता, जबतक बुरा न हो। जैसे पवित्रता एक वस्तु है, वैसे ही अपवित्रता भी है। है तो दोनों ही वस्तुओंसे एक दूसरेका अस्तित्व। वैसे ही हम भी मनुष्य हैं। हममें अनेक अच्छी बातें हैं, तो यह एक बुरी भी हमारी सहचरी है। अच्छी-ही-अच्छी भी क्या संसारमें कोई वस्तु है? अच्छा, मैं अगर इस कूचेका पथिक न होता तो आज भला तुमसे भेंट कैसे होती?

फूल बोली—तुम मेरे साथ भी ठठोली कर रहे हो।

मैंने कहा—ठठोली नहीं करता हूं। मेरा जीवन भी कम दुखी नहीं है। फूल, माता-पिता तथा भाई कोई भी तो मेरे नहीं हैं। यहांतक कि कोई सन्तान भी नहीं है। संसारके लिए जो कुछ भी सुख माना गया है, उसमें मेरे लिए कहीं भी, कुछ भी, विधाताने नहीं छोड़ा। तुम्हारी वह जीजी भी सदा रुग्ण रहती है। ऐसी दशामें तुम्हीं सोच देखो फूल, मैं कहां शरण लूं। इधर इन गलियोंमें आते हुए मुझे आज दो वर्ष हो गये हैं। जब जी नहीं मानता है, रोकर भी सन्तोष नहीं होता, तब अपने आपको भुलानेके लिए इधर आ जाता हूं। लेकिन ईश्वर जानता है, अभीतक अपने आपको भुलानेका कभी संयोग न आया। योंही घण्टे-आध-घण्टे हंसी-मसखरीकी बातें कर लेना और बात है।

अब फूलने कहा तो अभी तुम पतित हुए नहीं हो, क्यों? लेकिन पतनके मार्गपर तो हो ही। क्यों, हो न?

मैं—कैसे कहूं कि नहीं हूं!

अब फूलने मेरी ओर देखकर जरा-सा मुसकरा दिया। फिर बोली—कल तुम्हारे चले जानेके बाद सोचा था, तुमको

अब उस दशामें मुंह न दिखलाऊंगी। लेकिन वैसा सोचकर ही रह गयी, कर न सकी। यदि कष्ट झेलना ही निश्चित है तो कष्टोंकी चरमसीमा ही देखना चाहती हूं, कष्टोंसे भागूं क्यों ?

मैंने कहा—अब तुम्हें कष्ट न होगा। उस अवस्थाको तुम पार कर चुकी हो। अभीतक हिन्दू-समाज तुम्हें अग्राह्य समझता था, पर एक दिन आयेगा, जब तुमको देखकर, तुमसे बातें करके, उसी हिन्दू-समाजका शिक्षित समुदाय अपना गौरव अनुभव करेगा।

फूल—किस प्रकार ?

मैं—मेरे एक मित्र एक फिल्म कम्पनीके मैनेजिंग डायरेक्टर हैं। उसमें ऐक्ट्रेसके पदपर तुम्हें नियुक्त करा दूंगा। कुछ कालतक अभ्यास करना पड़ेगा। फिर तो तुम आस-मानसे बातें करोगी। लेकिन तुमको बम्बई जाना होगा।

फूल—तुम न चलोगे ?

मैं—मैं वहां जाकर क्या छपारी फोडूंगा !

फूल—तब तो मैं वहां न जाऊंगी।

मैं—जाओगी कैसे नहीं, मैं तुम्हें वहां भेजकर ही मानूंगा।

—तुम्हें पाकर अब मैं कहां जाऊंगी। वैसे तो तुम कभी मुझे मिल न सकते, ऐसे ही मिल गये। अपने इस सौभाग्यको मैं नहीं खोना चाहती।—कहते-कहते फूलकी आंखोंमें आनन्दाश्रु छलक आये।

(९)

बहुत दिनोंतक तो अपनी गृहिणीसे मैं फूलकी बात छिपाये रहा। पर एक दिन मैंने सारी बातें उसे बता ही देना उचित समझा। मैंने इस तरह कहना शुरू किया—

—आज अचानक फूलसे मुलाकात हो गयी।

—तुम तो कहते थे, वह मर गयी !

—हां, मुझे राजीवबाबूने यही बतलाया था। आज मालूम हुआ, उन्होंने यह बात झूठ कही थी।

—अच्छा, तो फूल किसके यहां आयी है ?

—किसीके यहां नहीं, अपने यहां।

—अपने यहां कैसे ? क्या अपने जीजाके यहां आयी है ?

—नहीं। वह अब वेश्या हो गयी है।

—ऐं ! वेश्या हो गयी है !!

—चौंकती क्यों हो ? एक दिन यह तो होना ही था। राजीव जैसे नर-पशुओंके व्यवहारोंका और दूसरा परिणाम ही क्या होता !

—कुछ मालूम हुआ, किस तरह उसका इतना पतन हुआ ?

—हां, एक युवक उसे उड़ा ले गया। कुछ समय बाद उसने उसे छोड़ दिया। जब फूल पथकी भिखारिणी बन गयी तो विवश होकर उसे यह वृत्ति स्वीकार करनी पड़ी।

—नारीका इतना पतन भी हो सकता है, यह मैं न जानती थी। हाय, फूल कितनी अच्छी लड़की थी ! भगवानकी लीला विचित्र है। अच्छा तो उससे कैसे भेंट हुई ?

—संयोगसे। कभी-कभी जी बहलानेके लिए मैं उधर चला जाता हूं।

इस बातचीतके बाद कई दिनतक मेरी गृहिणी मुझसे रूठी भी रही। पर मैं कर ही क्या सकता था ! एक दिन मैंने अपने मनकी बात उससे कह दी। मैंने कहा—मैं तुम्हारा ही हूं, तुम्हारा ही सदा रहूंगा। यदि तुम मुझपर अविश्वास करोगी, तो तुमको उल्टा दुःख ही होगा। और सो भी भ्रममूलक। मैं तुमसे कोई छल तो नहीं रखता। जो कुछ मैं करता हूं, तुम्हें सभी कुछ तो बता देता हूं।

एक दिन वह बोली—मैं फूलसे मिलना चाहती हूं।

मैंने फूलसे उसकी भेंट करा दी।

फूल उससे भेंटकर खूब रोयी। अपनी व्यथा बतलाते हुए उसने कहा—जीजी, मैं करती भी क्या ! महीनों अधपेट रहकर मैंने चेष्टा की कि दुर्बल होकर बीमार पड़ जाऊं, एक बार विष भी खाया; पर फिर भी बचा ली गयी। अन्तमें जब मुझे विश्वास हो गया कि दुख मुझे झेलने ही होंगे तो यह जीवन स्वीकार किया।...जीजी, संसार मुझसे घृणा कर ले, लेकिन मेरा विश्वास है, पूरा विश्वास है, ईश्वर मुझसे घृणा नहीं करेगा। उसकी दया-ममता अथाह है। अभी इस पतित जीवनका प्रारम्भ भी तो नहीं हो पाया था कि जीजाजी मुझे मिल गये। तुम उन्हें कुछ और न समझना। वह जरा भी नहीं बदले हैं। वह सचमुच देवता हैं। मैं तो उनकी बातें, उनके विचार सुनकर हैरान रह जाती हूं। जीजी वह भी मुझसे घृणा नहीं रखते।

गृहिणीने बड़े प्रेमके साथ उसे खिलाया-पिलाया, बातें कीं और विदा किया। धीरे-धीरे दोनोंमें पहले जैसा स्नेह हो गया।

जब मैंने बहुत जिद की, हफ्तों समझाया तब फूल बम्बई जानेपर राजी हुई। बम्बई पहुंचनेपर, थोड़े ही दिनोंमें उसकी गणना सुप्रसिद्ध अभिनेत्रियोंमें हो गयी।

मेरा संसार फिर पूर्ववत् चलने लगा। फूल हर हफ्ते चिट्ठी भेजती। जब कभी उत्तर देरसे मिलता, तो बहुत दुःख प्रकट करती। हर महीने वह कानपुर आती, होटलमें ठहरती और मुझसे मिल-भेंटकर चली जाती।

धीरे-धीरे मेरी परिस्थितियोंमें भी बड़ा परिवर्तन हो गया था। नौकरी छूट गयी। मकान बिक गया। एक कन्या सयानी हो गयी थी। पर फूलपर मैंने कुछ प्रकट नहीं किया था।

एक दिन वह आयी और मुझे और मेरे परिवारको भी बम्बई उड़ा ले गयी। वहां पहुंचकर मेरा जीवन फिर सन्तोषकी धारामें प्रवाहित होने लगा। कुछ दिनोंतक तो यही हाल रहा। पर धीरे-धीरे मुझे उस तरह आश्रित रहनेमें कुछ ग्लानि-सी हो उठी।

बम्बईमें फूलके साथ घण्टों बातचीत करनेका अवसर मिलता था। एक दिन मैंने कहा—फूल, तुम्हारा यह वैभव उपभोग करके भी जैसे हृदयको पूरा सुख-सन्तोष नहीं होता। इससे तो हमलोगोंका वह कानपुरका दरिद्र-जीवन कहीं अधिक सुखकर था।

फूल बोली—तो तुम्हें यहां मेरे साथ रहना पसन्द नहीं है!

मैंने कहा—तुम्हारे साथ रहने न रहनेकी बात नहीं है। बात है साधारण जीवन बितानेकी।

फूल बोली—मैं भी यही चाहती हूं। चलो, कहां चलोगे?

मैं—मैं अपनी बात कहता हूं, तुम्हारी नहीं।

फूलने उत्तर नहीं दिया। कुछ सोचकर बोली—जैसी आपकी इच्छा हो, वैसा कीजिये।

दूसरे दिन मैंने बम्बई छोड़ दिया। फूल स्टेशनतक आयी। मैंने उसका उदास मुख देखकर उसे बहुत धैर्य्य बंधाने की चेष्टा की, पर उसने मेरी किसी बातका कोई उत्तर नहीं दिया। मैंने अपने आपको समझा-बुझाकर बहुत चेष्टा की कि मैं इस तरह बम्बई न छोड़ूं, पर अन्तमें मैं अपने निश्चयसे डिग न सका।

ट्रेन स्टार्ट होनेसे पहले फूल मेरी गृहिणीको दस हजार रुपयेका एक चेक देती गयी। चलते समय मैंने फूलको देखना चाहा। पर वह खुद ही मेरी आंखोंके सामनेसे हट गयी। इधर ट्रेन स्टार्ट हुई। बहुतसे लोग उधर पीछेकी ओर दौड़ पड़े। मेरे हृदयका पेण्डुलम भी डोल उठा। मैंने जंजीर खींचकर ट्रेन खड़ी करा दी। दौड़कर भीड़को चीरते हुए मैं जो घटनास्थलपर पहुंचा तो देखता क्या हूं, फूलका निष्प्रभ, निष्प्राण शरीर ही शेष है। जिस फूलको मैं देखना चाहता था, वही नहीं है।

अब मुझे याद आया, फूलने एक दिन कहा था—"अब मैं तुम्हें छोड़कर कहां जाऊं! वैसे तो तुम कभी मुझे मिल न सकते। ऐसे ही मिल गये हो!"

आज मैंने जो उसे छोड़ने की चेष्टा की, तो उसीने मुझे छोड़ दिया! विधिकी यह लीला तो देखो!

भारतके फिल्म-व्यवसायपर एक दृष्टि

श्री नरोत्तम व्यास

पाश्चात्य वैज्ञानिकोंका ज्ञानागार मस्तिष्क, धनलिप्साकी 'हा-हुताश' से सदैव जला करता है। वैसे तो जीवमात्रके जीवनका उद्देश्य है सुख प्राप्त करना; परन्तु पाश्चात्य लोग 'दुनयवी आरामों' के लिए ही मानो जन्मते और जीते हैं। इसके लिए क्या व्यापार और क्या कला—उनकी दृष्टिमें दोनोंका एकही-सा महत्त्व है। यही कारण तो हुआ कि संसारके सबसे बड़े यंत्र-आविष्कारक 'ऐडीसन' ने 'आत्मा-की कला' कहे जानेवाले 'रङ्गमञ्च' को भी व्यावसायिक वस्तुओंका-सा रूप देकर 'ऐक्सपोर्ट' के मार्गमें ढकेल दिया।

'फिल्म' का मूल उद्गम स्थान रङ्गमञ्च ही है। स्टेजके खेल देखकर ही ऐडीसनके दिमागमें चलचित्रोंकी सृष्टि करनेकी बात पैदा हुई थी।

निःसन्देह संसारके अन्यान्य समस्त बड़े आविष्कारोंकी अपेक्षा 'फिल्मों' का बड़ा प्रसार और वृद्धि हुई। इटली, रूस और जर्मनीमें इसके द्वारा 'शासन-समितियों' तकका संगठन किया गया। पुराने संस्कारोंको मानव-मस्तिष्कमेंसे दूर निकाल फेंककर नये संस्कारोंको स्थायी और कार्यशील बनानेमें सहायता ली गयी। बड़े-बड़े विद्रोहोंकी आग फिल्मोंसे ही भड़कायी गयी। उन्हें शान्त भी किया गया तो फिल्मोंकी सहायतासे ही। समाज-नीतिके वे सुधार, जिन्हें क्रमशः करनेमें सदियां लगतीं, फिल्मोंने उन्हें दिनोंमें पूरा कर दिया। रूसके गत पञ्चवर्षीय कार्यक्रमको सार्थक करनेमें फिल्मोंकी बहुत बड़ी मदद थी।

इंगलण्ड, फ्रांस और अमेरिकामें स्वास्थ्य-सम्बन्धी सिद्धान्त और शिल्पकी विविध शिक्षायें भी फिल्मों द्वारा सम्पन्न की जाती हैं। अमेरिकाने न केवल लाभकी दृष्टिसे फिल्मको उन्नत किया, बल्कि उसमें कलाको भी यथेष्ट प्रस्फुटित किया है। वैसे तो कलाकी दृष्टिसे रूस और रूसके बाद जर्मनी, बादको फ्रांसके फिल्मोंकी, कलाविद् लोग, बहुत जियादः तारीफ करते हैं, किन्तु वे सब इस परतन्त्र देशके निवासियोंको देखने नसीब नहीं होते। हां, सिनेमा-सम्बन्धी विदेशीय अंगरेजी पत्रोंमें कभी-कभी बड़ी प्रशंसाके साथ उनका जिक्र निकला करता है। इस देशके निवासियोंको बहुतकर अमेरिकन चित्र ही देखनेको मिला करते हैं; इंगलैण्डकी कम्पनियां अभी इस क्षेत्रमें उतनी अग्रसर ही नहीं हुई और कलाकी दृष्टिसे उतनी उनकी प्रशंसा भी नहीं है। हां, जापानका इस व्यवसायमें भी बहुत बढ़ा-चढ़ा हाथ है। पिछले साल अमेरिकाके बाद संसारमें सबसे जियादः चित्र जापानने ही बनाये थे। लेकिन जापानी चित्र भी शायद भाषाकी विभिन्नताके कारण इस देशमें नहीं आते। चीनके बने हुए चित्र तो हमने कलकत्तेमें कई बार देखे हैं। वे इंगलैण्डके चित्रोंकी ही नकल हैं, उनमें कलाका प्रस्फुटन अभी आरम्भिक ही समझना चाहिए।

जर्मनीके चित्र भी कभी-कभी यहांवालोंको देखनेके लिए मिल जाते हैं और निःसन्देह उनमें कलाका यथेष्ट ध्यान रखा जाता है। बल्कि किन्हीं अंशोंमें तो उनकी बराबरी अमेरिकाका बना एक भी चित्र नहीं कर सकता।

अमेरिकन चित्रोंके निर्माणमें वहांके वर्तमान जीवनका प्रधान भाग विलासितापूर्ण 'प्रणय' सर्वाधिक रखा जाता है; परन्तु जर्मन चित्र प्रेमसे अधिक वीरताके आदर्शकी प्रधानता रखते हैं। इसलिए वहांके चित्रोंकी, अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रमें जितनी प्रशंसा होती है, अमेरिकाके बने बहुत कम चित्र उतनी प्रशंसा पा सके हैं। फिर भी अमेरिकन चित्र साधारण गार्हस्थ्य-कथामें जिस आदर्श रूपसे वास्तविकताका चित्रण कर जाते हैं, उसकी प्रशंसा करनी ही पड़ती है। वहांके नटोंका अभिनय कभी-कभी अपने दर्शकोंपर ऐसा असर डालता है, कि वर्षोंपर वर्ष बीत जानेके बाद भी, उनकी अमिट स्मृति कल्पनाको 'ताजगी' देती रहती है। यही तो सबब है कि जो दर्शक कला-ज्ञानके उस स्तरतक पहुंच गये हैं, जहां विदेशीय कलाकारोंका अभ्यासात्मक ज्ञान स्थायी रूपमें निवास करता है, वे आज दिनतक भी भारतीय चित्रोंके तनिक भी अनुरक्त नहीं हो सके हैं।

इस देशमें ऐसे दर्शकोंका बहुत बड़ा भाग है, जो निरन्तर विदेशीय फिल्म देखा करते हैं। मूक चित्र-प्रदर्शनके युगमें तो उनकी संख्या बहुत ही जियादः थी, किन्तु 'बोलते बायस्कोप' का आविष्कार हो जाने और भारतमें भी हिन्दीके बोलते फिल्म बनने लगनेके कारण, वह अंश छंट गया। अब देशीय दर्शकोंमें बोलते विदेशीय चित्रोंको वे ही लोग देखते हैं, जिन्हें विशुद्ध कला-दर्शनकी तृष्णा सताती रहती है। उनका अभिनयके सम्बन्धमें जो ज्ञान है, उसमें अनुभवकी बहु-मूल्यता विद्यमान है। और वे आज देशी चित्रोंपर जो राय देते हैं, उसमें सत्यताका 'ठोसपन' रहता है। इस देशके विदेशीय चित्रोंके दर्शकोंके दिलोंमें बहुत दिनों पहले, यह लालसा जाग्रत हो उठी थी कि क्या ही अच्छा होता, यदि भारतीय कथाओंपर भी फिल्म तैयार होते!—और भला हो 'फड़के' दादाका कि उन्होंने, चाहे जिस तरहसे भी सही, जर्मनीसे फिल्म-निर्माणका कुछ ज्ञान उड़ा लाकर इस देशमें भी 'भारतीय चित्रों' की सृष्टि कर दी। और आज यह हालत है कि समूचे भारतमें जहां ६९० प्रदर्शन घर हैं, वहां लगभग उतनी हो फिल्म बनानेवाली कम्पनियां भी खुल चुकी हैं। किन्तु लगभग बीस वर्षका लम्बा जमाना गुजर जानेके बाद भी, भारतीय फिल्म-निर्माताओं, यहांके कथाकारों और कलाकारोंने अपने चित्रोंमें 'आत्माकी कला' जिसे कहते हैं, इस 'आर्ट' को पैदा नहीं होने दिया। यह बड़ा कड़वा सत्य है और उसी आदतको दुहराता है, जिसके लिए भारतीय बदनाम हैं कि "वे विदेशियोंके आगे अपना कुछ भी पसन्द नहीं करते!" परन्तु किया क्या जाये, अगर हृदयकी पुकार और सत्यके अनुरोधको सुना जाता है, तो 'देशी-विदेशी' और 'अपने-पराये' का खयाल भुलाकर केवल सचाई ही स्वीकार करनी पड़ती है।

जो हमारी तरह अठारह सालसे लगातार देशी और विदेशी चित्र देखते आते हैं, वे बिना किसीका लिहाज किये चट यह कह उठेंगे कि साहित्य और कलाके क्षेत्रोंमें, भारतमें केवल 'आपापन्थी' चल रही है। जिसकी तबियत मचल उठती है, वही नाटककार, नाव्यकार, प्रयोजनाकार और न मालूम कौन-कौनसा 'कार' बन बैठता है। कलतक जो बजाजेकी दूकान करते थे, आज वे २५-२५ नाटकोंकी कापियां लिये हुए स्टूडिओके चारों ओर चक्कर लगा रहे हैं! यही हाल डाइरेक्टरों और ऐक्टरोंका है। मतलब क्या? यहां कोई भी हुनर आत्मोन्नतिके लिए तो सीखा नहीं जाता। जरूरत है पैसेकी, और पैसेकी कलाके क्षेत्रमें भला क्या कमी? इसलिए सारे 'रमलालुव' चाहे वे 'भ्रमर' हों या 'मक्खी,' 'अबला-कला' पर अनाचार करनेके लिए बड़ी बेरहमीसे टूट पड़ते हैं। यूरोप-अमेरिकामें अन्यान्य कलाओंकी भांति "फिल्म-शिक्षण" की अनेक संस्थायें हैं। जो कलाकार हैं, वे साहित्यज्ञ भी हैं। वे ही निश्चित समयतक फिल्म-विषयक कोर्स पूरा कर फिल्म क्षत्रमें पदार्पण करते हैं और क्रमशः उन्नति करते हुए 'डाइरेक्टरी' का पद पा जाते हैं। यहां एक सज्जन हैं, जिनकी उम्र १९-२० वर्षकी होगी। स्कूलसे रस्सा तुड़ाकर एकदम फिल्म-डाइरेक्टर बन गये हैं! भला, वे क्या समझेंगे साहित्यको और कैसे लावेंगे कलाको अपने फिल्मोंमें!

इस देशकी राष्ट्रभाषा हिन्दी है। उसीके फिल्मोंकी सर्वत्र खपत है। मूक चित्रोंके जमानेमें तो कहींके भी बने फिल्मोंमें केवल टाइटिल-संयोगसे ही काम चल जाता था। अब ऐक्टिंगके साथ भाषा-व्यवहारने बड़ी कठिनता पैदा कर दी है। यह युग बोलते बायस्कोपका शिशुपन है। इसका पोषण 'सविधि' होना चाहिए। "बिलायती पींजरा और जंगली मैना" से काम नहीं चलेगा। मूक चित्रोंमें 'स्टण्ट' या मारकाटकी खूब खपत थी। बम्बईके फिल्म-निर्माताओंने इस लिहाजसे पैसा भी कमा लिया और नाम भी पैदा कर लिया; किन्तु जबसे 'टाकी' का युग आरम्भ हुआ है, तबसे मैडन, इम्पीरियल, सागर, शारदा, सरोज, न्यू थियेटर्स और श्रीकृष्ण या भारत मूवीटोन—एक सिरेसे सारी ही कम्पनियां हिन्दी फिल्म बना बनाकर असफल हो गयीं। आज उनकी, न साहित्यके लिहाजसे और न कलाके लिहाजसे, समझदार दर्शकोंमें कुछ भी क्रेडिट नहीं रही है। हां कथाकी असफलताको छोड़कर, महाराष्ट्रकी प्रभात और सरस्वती सीनेटोन कम्पनियोंके तीन हिन्दी चित्र 'अयोध्याका राजा' 'अग्नि-कङ्कण' और 'श्यामसुन्दर', तथा एकमात्र गौहरके कारण रणजीतकी 'देवी देवयानी' 'राधारानी' भी अर्द्ध-सफल हिन्दी फिल्में कही जा सकती हैं, किन्तु जर्मनीके अत्यन्त सामान्य 'व्हाइट डेविल' फिल्मकी सर्वाङ्ग सफलताके सम्मुख इस देशका बना कोई फिल्म नहीं ठहर सकता।

इसके सिवा कोमेडी फिल्म—जैसे 'सिटीलाइट', 'वेलकम डेञ्जर' की भांति मूकमुखर फिल्मोंकी प्रतिद्वन्द्विता तो एकदम शून्य पड़ी है और 'कारटून' फिल्म-निर्माणकी ओर तो इस देशकी फिल्म कम्पनियोंका साहस ही नहीं होता। बहुतोंको तो उसकी 'प्रोसेस' या निर्माणविधि भी नहीं मालूम।

कैसे आश्चर्य्यकी बात है कि दूसरे देशोंमें जहां यह इण्डस्ट्री या शिल्प दिन-रात तरक्कीपर चढ़ रहा है, वहां इस देशमें बारूदके अनारकी भांति कुछ ही समयमें इसका अन्तस्तल पोला हो गया। पचासों फिल्म कम्पनियां शैशवकालमें ही मृत्युका ग्रास बन गयीं। जो हैं, उनमेंसे अधिकांश आकण्ठ कर्जके दलदलमें फंसी हुई हैं; कुछकी तली अभी मजबूत है। लेकिन अगर इनके संगठनकी यही दशा रही, तो कमसे कम वर्त्तमान सिनेमा व्यवसाय अवश्य नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगा।

'फिल्म' व्यवसाय होनेपर भी, 'कला' इसका जीवन-दण्ड है। जिस प्रकार बिना मेरुदण्डके शरीरका टिकना असम्भव है, उसी प्रकार बिना कला-विकासके भारतीय सिनेमा व्यवसायका पनप उठना भी असम्भव है। एक तो इस देशकी चिरसङ्गिनी दरिद्रता प्रत्येक प्रगतिशील 'आर्ट' की उन्नतिमें बाधक है। उसपर हरएकका 'पदारोपण', अवधिकारियोंकी 'मनोपली' इसकी अकाल मृत्युका निश्चय कारण बन रहा है।

इस देशमें न फिल्म शिक्षणालय हैं और न अच्छे कलाकार एक दूसरेसे सहयोगका व्यवहार रखकर परस्परकी जानकारीसे लाभ उठाना चाहते हैं। उसपर प्रान्तीयताने और भी रेढ़ लगा रखी है। सबसे बड़ी और सबसे पहली त्रुटि इस देशमें यह है कि राजनीति, समाज-नीति और शुद्ध साहित्यसे सम्पर्क रखनेवाले लोग इस ओरसे एकदम उदासीन बने हुए हैं। मानो वे इसे केवल विलासिता, मन-बहलाव और व्यवसायकी वस्तु-विशेष ही समझे हुए हैं। देशोन्नति और समाजोन्नतिके कार्यों में इसका कितना बड़ा उपयोग और लाभ है, इसकी उन्हें कल्पना भी नहीं है। यही कारण है कि आजसे दो वर्ष पूर्व किसी हिन्दी पत्रमें कभी भूले-भटके ही सिनेमा-विषयपर लेख निकल गया हो। इधर साल-भरसे तो एकाध साप्ताहिक पत्र, और दो-एक मासिक पत्रिकाओंमें इसका लगातार जिक्र रहने लगा है। इस विषयकी चर्चा करनेवाले दो-तीन पत्र भी दिखायी देने लगे हैं। हां तो, हम सबको इस क्षेत्रमें करना क्या चाहिए? प्रश्न यह है। इस देशमें, इस दरिद्रताके युगमें भी, धनकी कमी नहीं है। राजा और महाराज तथा धनी-महाजन, जिनके यहां द्रव्य आज भी कांटोंमें तोला जाता है, वे अगर पर्य्याप्त धन लगाकर, हिन्दीके कथाकार, हिन्दीके कलाकार और सुविज्ञ प्रयोजनाकारोंकी मददसे ऐतिहासिक तथा सामाजिक फिल्मोंके अलावा शिल्प और शिक्षण-विषयक फिल्म भी बनायें, और उनमें द्रव्य-लाभकी अपेक्षा कला-विकासका सर्वाधिक ध्यान रखें, तो इस देशके बने फिल्म दूसरे देशोंकी उत्तमताके सम्मुख अपनी विशेषता कायम रख सकेंगे। और उनका प्रचार देहातों तथा शिक्षा-संस्थाओंमें भी होगा। उस दशामें इस देशकी उन्नति अत्यन्त सुलभ होगी और बहुतसे सुधार आसानीसे हो जायेंगे।

——

रामायणमें राजनीति

श्री मावलीप्रसाद श्रीवास्तव

गुसाईंजीकी रामायण केवल महाकाव्य नहीं है। वह "सन्तनकी सर्वस", "चारउ वेद पुराणं अष्टदस, छहों शास्त्र सब ग्रन्थनको रस" और "कलिमल-हरनि" भी है। अर्थात् वह निगमागम-सम्मत, दिव्य और अलौकिक महाकाव्य है। उसमें प्रसङ्गानुसार राजनीतिके सिद्धान्त और व्यवहारका वर्णन अनेक स्थलोंपर आया है। आजकलके राजनैतिक युगमें राजनीतिकी बड़ी-बड़ी बातें सुनी जाती हैं, नये-नये आदर्श बतलाये जाते हैं और प्रायः अनेक शिक्षित व्यक्ति अपनेको राजनीतिज्ञ ही नहीं समझते, बल्कि भारतकी प्राचीन बातोंपर कुछ ऊलजलूल सम्मति भी दे डालते हैं। कोई समझता है कि प्राचीनकालमें प्रजासत्ताक राज्यपद्धति थी ही नहीं, कोई कहता है कि प्राचीन राजनीतिका कूटनीति-रहित आदर्श मूर्खोंका स्वर्ग और कल्पनागम्य स्वप्न था, कोई कुछ कहता है, कोई कुछ। ऐसे युगमें यदि हम तुलसीकृत रामायणकी शरण जायं तो निस्सन्देह हमारा सारा भ्रम दूर हो सकता है और हमारे अज्ञान तथा वृथाभिमानजनित शङ्काओंका उन्मूलन हो सकता है। हम यहां अन्य बातोंका तो नहीं, रामायणके कुछ महत्त्वपूर्ण राजनैतिक सिद्धान्तोंका ही वर्णन करेंगे।

रामायणमें दो प्रतापी राजाओंका वर्णन है, एक अयोध्या*के राम और दूसरा लङ्काके रावणका। अतएव यदि उसमें राजनीतिके दो प्रकारके सिद्धान्त दिखलायी पड़ते हैं, तो आश्चर्यकी बात नहीं। दिग्विजयी रावण आसुरी राजनीतिका आचार्य है और आत्मविजयी राम दैवी राजनीतिके पुरस्कर्ता। रामायणके नायक राम हैं। अतएव रामकी राजनीति ही रामायणकी प्रतिपाद्य राजनीति समझी जा सकती है। रावणकी राजनीतिका अधोपतन दिखलाकर गुसाईंजीने अपना आदर्श स्पष्ट कर दिया है। इस ग्रन्थरत्नमें एक तीसरी प्रकारकी राजनीतिका भी आनुषङ्गिक वर्णन मिलता है, जिसका उल्लेख आगे किया जायगा। अस्तु।

राजा किसे कहते हैं, राजा कैसा होना चाहिए, उसके कर्तव्य क्या हैं, उसके अधिकारकी सीमा क्या है, इत्यादि बातोंका कई जगह वर्णन किया गया है। रामके पूछनेपर "परम चतुर" अङ्गदने उत्तर दिया था—

"सुनु सर्वज्ञ प्रणत हितकारी। मुकुट न होइं भूप गुण चारी।
साम दाम अरु दण्ड विभेदा। नृप उर बसहिं नाथ कह वेदा।
नीति धर्मके चरण सुहाये। अस जिय जानि नाथ पहं आये।"
(लङ्काकाण्ड)

साम, दाम, दण्ड और भेद राजनीतिके चतुष्पाद हैं; इनका उचित प्रयोग करनेवाला राजा अपने जीवन-भर पराजयका मुंह नहीं देख सकता; परन्तु शर्त यह है कि वह अनीति और अधर्मका स्वीकार कदापि न करे। भक्तशिरोमणि भरतजी अयोध्याकाण्डमें अपनी सम्मति यों देते हैं—

"कहौं सांच सब सुनि पतियाहू। चाहिय धर्मशील नरनाहू।"

इस कथनमें कितना आग्रह, कितनी शपथ और कितना विनय भरा पड़ा है! अब हमें यह पता लगाना है कि गुसाईंजीकी सम्मतिमें राम कैसे राजा थे। एक जगहका वर्णन है—

नव गयन्द रघुवंशमणि, राज अलान समान।
छूटि जान वन-गमन सुनि उर-अनन्द अधिकान॥

क्या वह राज्यके लोभी थे? नहीं, उनके लिये तो वह बन्धनस्वरूप (अलान समान) था। दूसरी जगह गुसाईंजीने रामको पहचानते हुए कहा है—"प्रसन्नतां या न गताऽभिषेकतस्तथा न मम्लौ वनवास दुःखतः"—राजा रामको राज्याभिषेकसे न तो प्रसन्नता हुई, न वनवाससे दुःख। कैसा समत्व-भाव है! वे राजा थे अथवा एकरस योगी? उनकी रायमें तो सूर्यवंशमें भी एक दाग था, एक अनुचित प्रथा जारी थी—

---

* अयोध्यामें कोई भी शत्रु युद्धके लिए नहीं जा सकता था, इसलिए उसकी अजेय रचनाके कारण ऐसा नाम पड़ा था। गढ़ लङ्का वह नगरी थी, जो अपने समयमें तीनों लोकका लय कर सकती थी। इस नामकरणसे उस युगकी किलेबन्दी और अन्तरङ्ग शक्तिका कुछ अनुमान हो सकता है। —लेखक

"विमल वंश यह अनुचित एकू ।
अनुज बिहाइ बड़ेहिं अभिषेकू ।"

तब प्रश्न होता है कि वह राज्य क्यों करते थे, उन्होंने स्वीकार ही क्यों किया, राज्य करनेमें उनका कौनसा स्वार्थ था, राजधर्मका कौनसा आदर्श उनके सम्मुख था ? अस्तु, जरा देखें, रामायणके नायक इस विषयपर स्वयं क्या कहते हैं—

"जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी । सो नृप अवसि नरक अधिकारी ।"

अयोध्याकाण्डमें लक्ष्मणजीसे रामने यही तो कहा है । उसी काण्डमें रामजी भरतसे आगे चलकर कहते हैं—

"तुम मुनि मातु सचिव सिख मानी ।
पालहु पुहुमि प्रजा रजधानी ॥
मुखिया मुख सो चाहिए, खान पान कहं एक ।
पालै पोषै सकल अंग, तुलसी सहित विवेक ॥
राजधर्म सर्बस इतनोई ।
जिमि मन मांहि मनोरथ गोई ॥"

देखा, कैसी उदात्त है रामकी राजनीति ? जो भरतजी स्वयं जानते हैं कि "चाहिय धर्मशील नरनाहू," उन्हें ही रामजी "पुहुमि, प्रजा और रजधानी" के विवेकपूर्ण पालन-पोषणकी शिक्षा देते हैं । यहां न छूत-अछूतको लड़ानेकी शिक्षा है, न पृथक् निर्वाचनकी आवश्यकता; न एकको प्यारी बीबी बनानेकी सलाह है, न दूसरेको छोटी बीबी समझनेकी नीति । इस राजधर्ममें तो पालन पोषणकी आज्ञा है और वह भी विवेकसहित; यही नहीं, "सकल अंग" (all interest) की बला भी साथ है । मध्यम और कनिष्ठ दर्जेको राजनीति मर्यादा-पुरुष "राजा राम" के पास कैसे फटक सकती थी ? परन्तु राम-प्रतिपादित राजधर्मका अन्त यहीं नहीं होता । जिस रामका उद्देश्य यथार्थ लोकसग्रह, सच्चा विश्व-कल्याण और आदर्श मर्यादा-स्थापन हो, वह सर्वगुणसम्पन्न और सर्वशक्तिमान् होकर भी "निपट निरंकुश" (Absolute Monarch) और एकमात्र सर्वाधिकारी (Dictator) बनाना कदापि पसन्द नहीं करेगा । उत्तरकाण्डमें राज्याभिषेकके बाद देखिये —

"एक बार रघुनाथ बुलाये । गुरु द्विज पुरवासी सब आये ।
बैठे गुरु द्विजवर मुनि सज्जन । बोले बचन भक्त भय-भञ्जन ।
सुनहु सकल पुरजन मम बानी । कहौं न कछु ममता उर आनी ।
नहिं अनीति नहिं कछु प्रभुताई । सुनहु करो जो तुमहिं सुहाई ।
सो सेवक प्रीतम मम सोई । मम अनुशासन मानै जोई ।
जो अनीति कछु भाषौं भाई । तौ मोहिं बरजेहु भय बिसराई ।"

पुरजनोंकी कैसी अनुपम लेजिस्लेटिव कौंसिल है ! वहां गुरु, द्विजवर, मुनि, सज्जन और सभी प्रकारके पुरजन उपस्थित हैं, सभी कौंसिलर रामका परवाना पाकर उन्हींके "बुलाये" आये हैं । सबको सम्मुख देख सभापति रामका भाषण होने लगा; कैसा भाषण ? जिसमें "ममता" "अनीति" और "प्रभुताई" की दुर्गन्ध बिलकुल न थी । न तो वह शेखी थी कि मैंने रावण-सरीखे महापराक्रमी राक्षसराजका वध किया अथवा ऋषिमुनियों और साधुसन्तोंकी रक्षा की है, न इसमें यह नादिरशाही थी कि अब तुम्हें मेरे राज्यमें रहना है—मैं जैसा कहूंगा, वैसा करना ही होगा । वहां तो "भाई" शब्दके साथ सम्बोधन किया गया था । समानताके शब्दकोषमें इससे बढ़कर और कौनसा शब्द है ? अनुशासन (Discipline) की चर्चा छिड़ी थी । छत्रधारी राम पुरवासी भाइयोंसे कह रहे थे—यदि मैं कुछ अनुचित कह जाऊं (भला रामके मुखसे कभी अनुचित निकल भी सकता था ?) "तो मोहिं बरजेहु भय बिसराई ।" राज्यतिलकके उपलक्ष्यमें कैसा शाही फर्मान था—इसमें विशुद्ध प्रजासत्ताका सारा मर्म भरा पड़ा है । प्रजाके अधिकारोंकी कैसी उत्तम घोषणा है—"सुनहु करो जो तुमहिं सुहाई" और "भय बिसराई" के साथ "मम अनुशासन" पर भी ध्यान आकर्षित किया गया है । वह "मम अनुशासन" अथवा रामराज्यका कानून रामकी इच्छानुसार नहीं बनाया गया, उपर्युक्त पुरजनोंकी कौन्सिलमें तैयार किया गया था । अयोध्याके एक संशयग्रस्त नागरिक—एक धोबी—के द्वारा सीतापर अभियोग लगाये जानेपर सीता-परित्याग भी समर्थ रामकी प्रजा-रञ्जन क्रीड़ा है । इससे भी सिद्ध होता है कि लोकमत-का आदर करना और प्रजाको पूर्ण मतस्वातन्त्र्य तथा भाषण-स्वातन्त्र्य देना राजा राम अपना कर्त्तव्य समझते थे । तात्पर्य यह है कि यदि वह राजा ही थे, तो निरंकुश और स्वेच्छाचारी न होकर प्रजासत्ता-प्रेमी थे ।

पाठक, तुलना कीजिये रावणकी राजनीतिसे । मारीचको जब कपट मृग बननेके लिए कहा गया, तो उसने रावणको बहुतेरा समझाया । रावण भला किसीकी रायपर क्यों ध्यान देने लगा ? वह तो आग-बबूला हो गया । विवश होकर

मारीचने सोचा—"उतर देत मोहि बधिहि अभागे। कस न मरौं रघुपति शर लागे।" अशोक-वाटिकामें सीतासे कहने लगा—"एक बार विलोकु मम ओरा," "काटौं तव शिर कठिन कृपाना" इत्यादि। राम-विरह-व्याकुल सीताने वीरतापूर्ण उत्तर दिये, उस "अधम निर्लज्ज" पर कोई असर न हुआ। हनुमानजीके "रामचरण-पंकज उर धरहू। लङ्का अचल राज्य तुम करहू।" इत्यादि कहनेपर रावण कहने लगा—"मृत्यु निकट आई खल तोहीं। लागेसि अधम सिखावन मोहीं।" मन्दोदरी कहती है—"समुझत जासु दूतकी करनी। स्रवहिं गर्भ रजनीचर घरनी। सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हें। हित न तुम्हार शंभु अज कीन्हे।" तब "बिहंसा जगत विदित अभिमानी।" वह कहने लगा, यह शुभ समय है, बन्दर-भालू आ रहे हैं, बेचारे निशाचर भोजन करेंगे। रामदलने जब लङ्कापर आक्रमण कर हाहाकार मचा दिया और राक्षसदल विचलित हो उठा, तब रावण कहने लगा—"जो रण विमुख फिरा मैं जाना। तेहि मारिहौं कराल कृपाना। सर्बस खाइ भोग करि नाना। समरभूमि भा दुर्लभ प्राना।" युद्ध अत्यन्त निकट देख मन्दोदरीने फिर बहुतेरा समझाया तो उसकी बातें रावणको "विशिख-समाना" मालूम हुईं। जब युद्धारम्भ हो गया और मन्त्री माल्यवन्तने फिर पवित्र परामर्श दिया, तब "ताके बचन बाण सम लागे। करिया मुख करि जाहु अभागे। बूढ़ भयसि न तु मरतेउं तोहीं। अब जनि बदन देखावसि मोहीं।" मदान्ध रावण लोकमतका आदर करना जानता ही न था। जगाये जानेपर कुम्भकर्णने भी खूब फटकारा। पराक्रमी मेघनादके मारे जानेपर रावण स्वयं मूर्च्छित होकर जमीनपर गिर पड़ा, परन्तु जब मन्दोदरी रोने लगी तब संसारको नश्वर बतलाकर "तिनहिं ज्ञान उपदेशत रावण। आपन मन्द कथा अति पावन।" रावण कुम्भकर्ण और मेघनादकी वीरतापर बड़ा भरोसा रखता था। जब ये मारे गये और सुलोचना दुःखिनी हो गयी तब उन्हीं वीरोंको लक्ष्य कर वह कहने लगा—"गिनती कवन वीरमें तिनकी। अति दुर्दशा कीन कपि जिनकी।" सारांश यह कि अतुलित पराक्रमी रावणकी राजनीतिमें अत्याचार, जड़वाद, दमन, छलकपट, लोकमतका घोर अनादर, दुर्भेद्य अभिमान और कठिन मदान्धता पायी जाती थी।

जिस तेजस्वी, धर्मप्राण तथा त्रिलोकमान्य रामके राजनैतिक आदर्शोंकी चर्चा ऊपर की गयी है वह यदि साधु-सन्तोंकी हड्डियोंका ढेर देखकर रो पड़े (सुनि रघुवीर नयन जल छाये), वह एक नागरिक धोबीके मत-स्वातन्त्र्यका अति सम्मान भी करके सीता-परित्याग कर दे, वनवास दिलानेवाली माता कैकेयीसे चित्रकूटमें बारबार और प्रेमपूर्वक भेंट करे, भुजा ठोंककर, बारबार, डङ्केकी चोटसे अनेक भीषण प्रण ही कर डाले, विमल सूर्यवंशमें भी एक दोष बतला दे, मर्यादा-भङ्ग करनेवाले शूद्रको तो प्राणदण्ड दे दे, परन्तु सीताका घोर अपमान करनेवाले जयन्तको प्राणदण्ड न दे तो हर्ज ही क्या है? जिस राज्यमें समर्थ राम स्वयं राजा रहा हो वहां "सु-राज्य" और "स्व-राज्य" का अनुपम योग दिखलायी पड़ता है—वही तो राम-राज्य है। पूर्ण सुख, पूर्ण स्वतन्त्रता, पूर्ण समानताको देखकर जनता कह उठती है कि यह तो राम-राज्य है। पाठकोंने इतिहास-ग्रन्थोंमें सैकड़ों महाराजाओंके राज्यका वर्णन पढ़ा होगा, परन्तु रामराज्यके आगे सब फीके पड़ जाते हैं। "दैहिक, दैविक, भौतिक तापा। रामराज्य नहिं काहुहि व्यापा।"

दण्ड यतिन कर भेद जहं नृत्यक नृत्य समाज।
जीतहिं मनहिं सुनिय अस रामचन्द्रके राज॥

साम और दानसे ही शासन-प्रबन्ध ठीक-ठीक चल जाता था, बेचारी राजनीतिकी दो टांगें—दण्ड और भेद—बेकार-सी हो रही थीं। क्या यह कविकी अतिशयोक्ति है अथवा भ्रान्ति? जिस समय निषादराज भरतको दूरसे रामकी पर्णकुटीका दर्शन कराता है उस समय (अयोध्याकाण्ड दोहा २३३ से २३९ तक) "सुराज और सुदेश" का जैसा मनोहर वर्णन गुसाईंजीने किया है। उससे विदित होता है कि सुखी प्रजा और उत्तम राज्यके सम्बन्धमें उनकी कल्पना कैसी आदर्श-रूप थी। वह वर्णन देखने और मनन करने योग्य है। प्रेमी पाठक अवश्य देखनेकी कृपा करें।

संसारके किसी देश, किसी समय और किसी भी सम्राट्का इतिहास देखिये, केवल तीन प्रकारकी राजनीति दिखलायी पड़ेगी—चौथे प्रकारकी सम्भव नहीं। एक तो विशुद्ध दैवी अथवा आध्यात्मिक राजनीति (जिसका व्यावहारिक रूप रामके राज्यमें दिखलायी पड़ता है), दूसरी विशुद्ध दानवी अथवा जड़वादी राजनीति (जिसका स्वरूप

रावणके राज्यमें दिखलायी पड़ता है) और तीसरी मिश्रित अथवा मानवी राजनीति (जिसमें आध्यात्मिक और आसुरी दोनों प्रकारकी नीतियोंका न्यूनाधिक मिश्रण रहता है और जिसके पौराणिक आदर्श सुरपति इन्द्र हैं।) दानवताकी अधिकता होनेपर मानवी राजनीति दानवी बन जाती है और धर्मशीलताकी यथेष्टता होनेपर वह दैवी राजनीतिका रूप धारण कर लेती है। विषयान्तरके लिए पाठकोंसे क्षमा-याचना कर हम यहां इन्द्रकी मिश्रित राजनीतिका थोड़ा दिग्दर्शन कराना चाहते हैं। समय-समयपर कभी तो सुरराजने विशुद्ध दैवी राजनीतिका आश्रय लिया है और कभी विशुद्ध दानवी राजनीतिका। पहले तो उसने निर्मल बुद्धिकी देवी सरस्वतीको भरतकी मति फेर देनेके लिए फुसलाना चाहा, परन्तु उसे सफलता न मिली। बौद्धिक व्यभिचारके दोषसे सदा मुक्त शारदाने जब मदान्ध सहस्राक्षको डांटा, तब उसने कुटिल नीतिका आश्रय लिया—

सुर स्वारथी मलीन मन, कीन्ह कुमन्त्र कुठाट।
रचि प्रपञ्च माया प्रबल, भय भ्रम आर्त उचाट।

(अयोध्याकाण्ड)

यह दोहा क्या है, गागरमें सागर है। इसमें कूटनीति अपने मूर्तिमान रूपमें दिखलायी पड़ती है। मानवी राजनीति जब दानवताकी ओर अधिकाधिक झुकने लगती है तब कूटनीतिका आश्रय लिया जाता है। इन्द्र सुरराज होकर भी स्वार्थी था। "ऊंच निवास नीच करतूती। देखि न सकहिं पराइ विभूती।" पद, प्रतिष्ठा, प्रभुताको वह सदैव अपने अधीन रखना चाहता था। वह सहस्रलोचन होकर भी स्वार्थ और राजमदसे अन्ध था। "मघवा महा मलीन, मुये मारि मङ्गल चहत" और

"कपट कुचालि सींव सुरराजू। पर अकाज प्रिय आपन काजू॥
काक समान पाकरिपु रीती। छली मलीन न कतहुं प्रतीती॥
प्रथम कुमति करि कपट सकेला। सो उचाट सबके शिर मेला॥
सुर माया सबलोग विमोहे। रामप्रेम अतिशय न विछोहे॥
भय उचाट वश मन थिर नाहीं। क्षण वन रुचि क्षण सदन सुहाहीं॥"

(अयोध्याकाण्ड)

उपरके दोहे और चौपाइयोंसे मालूम होता है कि कूटनीतिज्ञता जड़वादी स्वार्थियोंकी नीचतापूर्ण राजनीतिका अङ्ग है और उसमें "भय, भ्रम, आर्त, उचाट" से तथा "कुमन्त्र, प्रपञ्चरचना और प्रबल माया" से काम लिया जाता है। भय उत्पन्न करनेका इच्छुक राजनीतिज्ञ दमन और अत्याचार करता है। भ्रम उत्पन्न करनेवाला मिथ्या-प्रचार करता, अफवाहें उड़ाता और गलतफहमी फैलाकर सत्यको असत्य और असत्यको सत्य सिद्ध करता है। आर्त और उचाटका प्रयोग करनेवाला मोह, सन्देह तथा अस्थिरता उत्पन्न कर परस्पर विरोध और अविश्वास पैदा कराता है। अस्तु, अन्य पौराणिक प्रसङ्गोंपर कभी-कभी इन्द्रने दैवी राजनीतिका आश्रय भी लिया है, जिसके यहांपर उल्लेख करनेकी आवश्यकता नहीं।

ऊपर राम, रावण और इन्द्रकी त्रिविध राजनीतिका संक्षिप्त विवेचन किया गया है। इन नीतियोंका सार क्या है? राम जो कुछ करना चाहते हैं, खुल्लमखुल्ला करना चाहते हैं, उसके लिए शपथ लेते हैं और संसारको अपने इरादेकी सूचना पहले ही दे देते हैं। उदाहरण देनेसे लेख बहुत बढ़ जायगा, इसलिए उदाहरण देनेका लोभ-संवरण कर देना ही उचित है। राजा राम सदैव लोकमतका आदर करते हैं। उनके पूर्व-निश्चयमें प्रतिकूल परिस्थितिका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वह परिस्थितिसे दब जाना या डर जाना जानते ही नहीं। परन्तु यह जानते हैं कि उनके किसी निश्चय, शपथ अथवा प्रणमें अधर्म न हो। वह जैसा कहते हैं वैसा करते हैं परन्तु कहते हैं धर्मकी मर्यादासे बद्ध होकर। उनका बर्ताव मित्रों और शत्रुओंके साथ उदारताका होता है। आततायी बालिको मरणोन्मुख देखकर प्राणदान देनेकी इच्छा, शत्रुके शरणागत बन्धु विभीषणको अभयदान, मृतक रावणका वीरोचित अन्तिम संस्कार, दुस्साहसी जयन्तको अल्प दण्ड उनकी सहज उदारताके उदाहरण हैं।

रावणकी राजनीतिमें आसुरी विशेषतायें हैं। वह अपने निश्चयपर उसी तरह अटल रहता है जैसे राम, परन्तु उसे इस बातकी चिन्ता नहीं कि मेरा निश्चय नीतिधर्मानुमोदित है अथवा अन्यायपूर्ण। सीताका हरण कर लिया सो कर लिया, चाहे स्वयं राम भी रूठ जाय तो यहां किसको परवा है! त्रिलोकविजयी होकर भी वह गुप्तचारण, चोरी और छिपेछिपे काम करनेसे नहीं चूकता—सीताका हरण छद्म वेषमें करता है। साधुसन्तोंपर अत्याचार करना, दूसरेकी

स्त्रियोंको पकड़कर ले जाना, आसपासके राज्योंको हड़प जाना उसके बायें हाथके खेल हैं। यही नहीं कि वह परायोंपर अत्याचार करता हो। अपनोंपर भी वह वैसे ही अत्याचार करता था। अपने भाई कुबेरका राज्य छीन लिया, मारीच समझाने लगा तो प्राणदण्डका भय दिखलाने लगा, विभीषणकी नेक सलाहपर पादप्रहारका इनाम! घरमें और बाहर एक समान अत्याचार! वह तो था राक्षसराज, फिर उसमें इतनी मनुष्यता कहां कि कमसे कम अपनोंके साथ तो अच्छा व्यवहार करता! लोकमतका आदर करनेकी आवश्यकता उसे कभी नहीं मालूम हुई। वह सदैव लोकमतको ठुकराता था। उसे मारीच, प्रहस्त, विभीषण, कुम्भकर्ण, हनुमान, अङ्गद, मन्दोदरी आदि सभीने समय रहते समझाया, परन्तु वह क्यों मानने लगा? वह तो निस्सीम स्वमताभिमानी था,—लोकमत, विश्वकल्याण, धर्ममर्यादा, समष्टिवादसे उसे कोई सरोकार न था। वह व्यक्तिवादी, निरीश्वरवादी और अहंवादी था। जैसे बिना पानीकी सूखी नदी होती है, पतिहीन विधवा स्त्री होती है, धर्मरहित धन होता है, वैसे ही उसकी राजनीति आत्मारहित दिव्य मृतक-शरीरके समान थी। अच्छा, अब आगे बढ़ें।

हमारे सभी धर्मग्रन्थ प्रभुता और राजमदकी बड़ी निन्दा करते हैं। दो नेत्रवाले मानवी सम्राटोंकी बात तो दूर रही, हजार नेत्रवाले देवराज इन्द्रको भी बारबार मदान्ध मलिनमन और स्वार्थी कहा है। सच है—"प्रभुता पाइ काहि मद नाहीं।" अयोध्याकाण्डमें लक्ष्मण रामसे कहते हैं :—

> भरत नीतिरत साधु सुजाना।
> प्रभु पद प्रेम सकल जग जाना॥
> तेऊ आज राजपद पाई।
> चले धर्म मरजाद मिटाई॥
> भरतहिं दोष देइ को जाये।
> जग बौराइ राजपद पाये॥
> सहसबाहु सुरराज त्रिशंकू।
> केहि न राजमद दीन्ह कलंकू॥

राजपद बड़ा कण्टकाकीर्ण और राजमद बड़ा बुरा होता है। भरतके लिए ऊपर जिन विशेषणोंका प्रयोग किया गया है उसके बाद "तेऊ" की मारसे बेचारा राजमद कहींका न रहा! जब भरत ऐसे विश्वके भरणपोषण करनेवालेपर राजपद सन्देह उत्पन्न करा सकता है, तब दूसरोंकी क्या गिनती? यह नहीं कि केवल लक्ष्मणने ही उनपर सन्देह किया हो, स्वयं जनकने भी एक बार उनकी हलचलकी निगरानी करनेके लिए खुफिया भेजे थे। यौवन, धन, अधिकार और अविवेक अकेले-अकेले बड़े-बड़े अनर्थ करा सकते हैं, जहां चारों एकत्रित हों वहांका क्या ठिकाना? चाणक्य तो ऐसा ही आश्चर्यपूर्ण प्रश्न करते हैं। राजाके पास यौवन, धन और अधिकार तो रहता ही है। यह न रहे तो वह छत्रपति कैसे बन सकता है? यदि वह राजमदके कलङ्कसे बचना चाहे तो क्या करे? उत्तर हमारे प्राचीन ग्रन्थोंमें ही मिल जाता है। यौवन, धन और प्रभुताका उपयोग विवेकके साथ करे—अविवेक छोड़ दे, नीति (सुनीति) के साथ राज्य करे, धर्मकी मर्यादाका स्मरण रखे, प्रजाकी बातें सुने। प्रभुता और राज्याधिकारकी निन्दाका क्या अर्थ है? क्या स्वयं ये ही बुरी चीजें हैं या केवल इनका दुरुपयोग निन्दनीय है?

किसी राज्यका उत्थान और पतन राजाके बाद मन्त्रीपर अधिकांशमें अवलम्बित रहता है। कोई महाराजा मूर्ख होते हैं तो कोई कठपुतली होते हैं, कोई मन्त्रियोंकी दयापर अपनी रोटीके टुकड़े पाते हैं। ऐसे नामधारी राजाओंके राज्यका मन्त्री तो स्वयं राजा होता है। मालामें जो स्थान सुमेरुका, शरीरमें मस्तकका, तपस्यामें संयमका और देवमन्दिरमें कलशका है वही स्थान राज्यमें मन्त्रीका है—

> सचिव, वैद्य, गुरु तीन जो प्रिय बोलहिं भय आस।
> राज्य, धर्म, तन तीन कर होत वेगही नास॥

राज्यसचिव यदि डरकर या चापलूसीसे हांमें हां मिलाने लगे, अपनी आत्माकी शुद्ध सम्मतिको छिपाये और ठकुर-सुहाती कहने लगे तो राज्यके चौपट होनेमें देर नहीं लगती। दशरथके मन्त्री सुमन्त थे और रावणके मन्त्री माल्यवन्त। बनवासके आरम्भमें राम सुमन्तसे कहते हैं—"तात धर्म मगु तुम सब शोधा।"

और आगे चलकर—"तुम पुनि पितु समान हित मोरे। विनती करौं तात कर जोरे।" और लौटनेके लिए श्वसुरका सन्देश पाकर सीता कहती हैं—

> तुम पितु श्वसुर सरिस हितकारी।
> उतर देउं फिर अनुचित भारी॥

सुमन्तने धर्ममार्गका पूरा अनुसन्धान कर लिया था---वह परमार्थके ज्ञाता थे। ऐसे राजमन्त्रीको यदि राम और सीता "पितु समान" मानें, तो आश्चर्यकी बात नहीं। राजकुलसे सुमन्तका कैसा आत्मीय भाव था यह उनकी उस समयकी भयङ्कर ग्लानि, शोक, पश्चात्ताप और भविष्यचिन्तासे प्रकट होता है जब वह राम और सीताको दशरथकी इच्छानुसार वापस न ला सके। प्रजाके हितको अपना परम हित और धर्मशील राजवंशके स्वार्थोंको अपना स्वार्थ समझनेवाले कितने मन्त्री होते हैं? प्रहस्तने एक बार रावणसे विनयपूर्वक कहा था---"कहहिं सचिव सब ठकुरसुहाती। नाथ! न भल होइहि यहि भांती।" और "वचन परमहित सुनत कठोरे। कहहिं सुनहिं ते नर जग थोरे।" परम हितकारी कठोर वचन कहनेवाले मन्त्री और उसे सुनकर उसका आदर करनेवाले राजा संसारमें दुर्लभ हैं। एक मन्त्री माल्यवन्त था। वह नीति और धर्मको जानता था, मुंहसे बतला भी सकता था, परन्तु तदनुसार कोई प्रत्यक्ष कार्य अथवा आग्रह नहीं करता था। सुन्दरकाण्डके अन्तमें जब विभीषणने रावणको समझाया * तब "मालवन्त अति सचिव सयाना। तासु वचन सुनि अति सुखमाना।" और उसने विभीषणकी ताईद करते हुए कहा—"तात! अनुज तव नीति विभूषण। सोइ उर धरहु जो कहत विभीषण।" जब रावणने डांटा, तब वह चुपचाप घर चला गया। "राजा साहब जैसा करना चाहते हैं करने दो, मरना चाहते हैं तो मरने दो, प्रजाका नाश होगा तो होने दो, हमारी तनख्वाह और मिनिस्टरी न जाय, बस।" रावणकी सदा यही नीति रही।

सैन्य, राजकोष, किलेबन्दी, दूत-व्यवस्था आदि राज्य-शासनके प्रधान स्तम्भ और मन्त्रीके हाथ-पैर हैं। इन विषयोंकी रामायणमें खासी चर्चा है। हम यहांपर विस्तार-भयसे केवल दूत-व्यवस्थापर ही थोड़ा दिग्दर्शन कर सन्तोष करेंगे। दूतके लक्षण क्या हैं?

*तात राम नहिं नर भूपाला। भुवनेश्वर कालहुके काला। देहु नाथ प्रभु कहं वैदेही। भजहु राम बिनु काम सनेही। शरण गये प्रभु ताहु न त्यागा। विश्वद्रोह कृत अघ जेहि लागा। इत्यादि

बालितनय बुधि बल गुण धामा।
लङ्का जाहु तात मम कामा॥
बहुत बुझाइ तुमहिं का कहऊं।
परम चतुर मैं जानत अहऊं॥
काज हमार तासु हित होई।
रिपु सन करेहु बतकही सोई॥

उत्तम दूत वही हो सकता है जो केवल बुद्धिका धाम न हो, गुणका भी धाम हो और बलका भी। उसे परम चतुर होना चाहिए। जो पूर्ण अनुभवी, स्वाभिमानी, सभा-चतुर, निर्भीक और पौरुषवान न हो, वह परम चतुर कैसे हो सकता है? युद्धकालमें दूत कर्म करना हंसी-खेल नहीं है।

गयउ सभा मन नेकु न मुरा।
बालितनय अति बल बांकुरा॥

शत्रुके ऐश्वर्यको देखकर जो दूत झेप जाय या प्रलोभनमें पड़ जाय वह दूत कर्मके लिए नालायक है। दूतके अधिकार महान हैं। शत्रुपक्षसे वह अवध्य है। हनुमानजीपर क्रुद्ध होकर रावणने आज्ञा दी, तब निशाचर लोग उन्हें मारने दौड़े। मन्त्रियोंने कहा—"नीति विरोध न मारिय दूता" और "आन दण्ड कछु करिय गुसांई।" विभीषण जब राम-दलमें मिलने गया, तब रावणने उसके पीछे जासूस लगा दिये। उस कपटवेशधारी दूतको बांधकर बन्दरोंने सुग्रीवके पास पेश किया। सुग्रीवकी आज्ञासे खूब पीटे जानेपर वह चिल्लाने लगा। लक्ष्मणजी हंस पड़े और उसे छुड़ा दिया। स्व-पक्षके लिए तो दूत आम मुख्तार है। वह जिस शर्तपर समझौता करा दे उस शर्तपर उसके स्वामीको राजी हो जाना पड़ेगा। पहले तो अङ्गद कहते हैं:—

सादर जनकसुता करि आगे।
यहि विधि चलहु सकल भय त्यागे॥
प्रणतपाल रघुवंशमणि, त्राहि त्राहि अब मोहिं।
सुनतहिं आरत वचन प्रभु, अभय करहिंगे तोहिं॥

फिर रावणसे घोर विवाद और उत्तर-प्रत्युत्तर होनेपर वही अङ्गद प्रणपर्वक, पूर्ण अभिमानसे और गारण्टीके साथ यह भी कहते हैं:—

जो मम चरण सकहि शठ टारी।
फिरहिं राम सीता मैं हारी।

युद्धकालकी तरह शान्तिकालमें भी दूतकी आवश्यकता रहती ही है। भरत जब ननिहालसे अयोध्या लौटे थे, उस समय राजा जनकने "पठये अवध चतुर चर चारी।" और आज्ञा दी कि "बूझि भरत गति भाउ कुभाऊ। आयहु बेगि न होइ लखाऊ।" ये गुप्तचर भरतकी गतिविधि देखकर मिथिला लौटे—

दूतन आइ भरतको करणी।
जनक समाज यथामति बरणी॥

जिस तरह कूटनीति राजनीतिका एक अङ्ग है उसी तरह युद्धनीति भी राजनीतिके अन्तर्गत है। चुनौती देना, समझौता अथवा सन्धिका प्रयत्न, युद्धकी प्रारम्भिक तैयारी, सैन्य-सञ्चालन, विजय प्राप्त करनेके अस्त्र-शस्त्र, पराजित शत्रुसे व्यवहार, विजयश्रीका बंटवारा इत्यादि बातें समझनेके लिए भी रामायणसे हमें यथेष्ट सहायता मिलती है। महान् प्रतापी और विश्व-विजयी रावण सीताका हरण चोरीसे करता है। उधर आरण्यकाण्डमें खुल्लमखुल्ला शूर्पणखाका अङ्ग-भङ्ग कर शत्रुको वीरोचित नोटिस दिया जाता है—

लक्ष्मण अति लाघव तिहि, नाक कान बिनु कीन्ह।
ताके कर रावण कहं, मनहु चुनौती दीन्ह॥

धर्मसंस्थापक, नीतिरक्षक, प्रजावत्सल, साधुसेवक राम और रामानुज इस साहस-कर्मके द्वारा रावणको मानो ललकारते हैं कि खबरदार, संभल जा, अपने अत्याचारोंसे बाज आ। मन्दोदरी, विभीषण, माल्यवन्त, अकम्पन इत्यादिने रामसे सन्धि करा देनेके अनेक प्रयत्न किये, किन्तु निष्फल हुए। रावण-पुत्र प्रहस्तने भी सुलहका प्रयत्न करते हुए कहा—

कहहिं सचिव सब ठकुर-सुहाती।
नाथ न भल होइहि यहि भांती॥
प्रथम बसीठ पठव सुनु नीती।
सीतहि देइ करिय पुनि प्रीती॥

प्राणदान देकर रावण-दूतको छोड़ते समय उसके हाथ एक चिट्ठी देकर लक्ष्मणजीने भी युद्धारम्भके पूर्व समझौतेका प्रयत्न किया था। उस 'पाती' में रावणको सम्बोधित कर लिखा था:—

बात न मनहिं रिझाय शठ, जनि घालसि कुलखीश।
राम विरोध न उबरिहहु, शरण विष्णु अज ईश॥
होउ मान तजि अनुज इव, प्रभु पद पङ्कज भृङ्ग।
होहि राम शर अनल खल, जनि कुल सहित पतङ्ग॥

और युद्धमन्त्री जामवन्तकी सलाहसे अङ्गदको भेजकर स्वयं रामने भी समझौतेका प्रयत्न किया था।

युद्धकी प्रारम्भिक तैयारी, सैन्य-सञ्चालन, शस्त्रास्त्र वर्णनको छोड़कर हम पाठकोंसे प्रार्थना करते हैं कि वे रामके अजेय-रथका वर्णन रामायणमें अवश्य पढ़ें। "सखा धर्ममय अस रथ जाके। जीतन कहं न कतहुं रिपु ताके।" इस चौपाईके साथ गुसाईंजीने रामके विजय-रथका वर्णन किया है पराजित शत्रु रावणके अन्तकालमें उसके साथ कैसा वीरोचित व्यवहार किया गया, लङ्काकी शेष त्रस्त प्रजा और अन्तः-पुरकी रानियोंको किस तरह अभयदान दिया गया, यह रामायणकी युद्धनीतिका अलौकिक आदर्श है। रावणबध हुआ। विजयश्री रामको मिली। इस श्री और श्रेयका बटवारा राम किस तरह करते हैं, यह देखना चाहिए। कुल-गुरु वसिष्ठको सन्मुख देखकर विजयी राम वानरोंसे "गुरु वसिष्ठ कुल पूज्य हमारे। इनकी कृपा दनुज रण मारे।" कहकर "मुनिपद लागहु सकल सिखाये।" उधर बन्दरोंसे ऐसा कहा और इधर वसिष्ठसे कहते हैं—

ये सब सखा सुनहु मुनि मेरे।
भये समर सागर कहं बेरे॥
मम हित लागि जनम इन हारे।
भरतहुं ते मोहि अधिक पियारे।

कितना निरभिमान भाव है? अहङ्कारी रावणके शत्रुमें इसी तरहकी अभिमान-हीनता होनी चाहिए थी। फतह की किसने? गुरु वसिष्ठकी कृपाने और सखा ऋक्ष-वानरोंने! मानों राम लङ्काकी रणभूमिमें किसी सतमञ्जिल किलेके भीतर छिपलुके बैठे थे! राम! त्रैलोक्यमें तू एक ही है—तू सचमुच निराला है।

पराजित तथा श्रीहत शत्रुसे राम किस नीतिके साथ व्यवहार करते थे? जब बालिने अभिमानवश कुतर्क और विवाद किया तब रामने उग्र नीतिके वचन सुनाये, जब वह कोमल होकर "चल न चातुरी मोरि" कहने लगा तब उसके सिरपर हाथ फेरकर राम कहने लगे—"अचल करौं तनु राखहु प्राना।" बालिने शरीर त्याग कर दिया तब रामने ताराको "दीन्ह ज्ञान हरि लीन्ही माया।" और सुग्रीवको आज्ञा देकर विधिवत् मृतक-कर्म करा दिया। मेघनाद-बधके बाद सुलोचना सती होना चाहती थी, परन्तु मेघनादका मस्तक

रामदलमें रह गया था। रावणसे जब उस सतीने सिर मंगा देनेकी प्रार्थना की तो वह व्यर्थ प्रलाप करने लगा। तब मन्दोदरीने प्रियवधूसे कहा—बेटी, जाओ स्वयं सिर मांग लाओ; 'एक नारि व्रत रघुवर केरा। लषन सुयश तुम सुनेउ घनेरा। जानहु ब्रह्मचर्य हनुमन्ता। शिव स्वरूप भव हर भगवन्ता। सदा नीतिरत राम नरेशा। तहां जात कह कवन कलेशा।'' सुलोचना रामदरबारमें पहुंचकर दण्डवत करने लगी। विभीषणने परिचय दिया। रामका शरीर करुणासे शिथिल हो गया; कहने लगे—''देहुं जियाय तोर पति आजू। करहु लङ्क कल्प शत राजू।'' कई कारण बतलाकर उस सतीने इस प्रस्तावको नामंजूर कर दिया। पतिका सिर पाकर घर लौटी और उसके साथ चितामें जलकर सती हो गयी। रावण-बध हो जानेपर जब ''रहा न कुल कोउ रोवनिहारा।'' तब रामने विभीषणको आज्ञा देकर उसकी अन्त्येष्टि-क्रिया करा दी। लङ्काके शेष निशाचरोंको मारने-सताने और राजकोषको लूटने-खसोटनेकी तो यहां जरूरत ही न थी।

सभाचातुरी राजनीतिका महत्त्वपूर्ण अङ्ग है। महत्त्वपूर्ण अवसरों और सङ्कट तथा आतङ्कके प्रसङ्गोंपर सभाचातुरी वह काम करती है, जो बड़े-बड़े अन्य उपायोंसे नहीं होता। अङ्गदकी सभाचातुरी देखिये। लङ्कादहन करनेवाले हनुमानकी तारीफ रावण अपने भरे दरबारमें करने लगा। चट अङ्गदने उसे आड़े हाथ लिया—''जो अति सुभट सराहेहु रावन। सो सुग्रीव केरि लघु धावन।'' और

अब जाना पुर दहेउ कपि, बिनु प्रभु आयसु पाइ।
गयउ न फिरि निज नाथ पहं, तेहि भय रहेउ लुकाइ॥

अभीतक मानों इन्हें लङ्कादहनका हाल मालूम ही न था! और जिस हनुमानके कृत्योंसे निशाचरी वीराङ्गनाओंका गर्भपात हो जाता था उसे ''सुग्रीव केरि लघु धावन'' सुनकर अन्य मामूली राक्षसोंपर कैसा वज्राघातकारी प्रभाव पड़ा होगा! रावणकी चतुरता भी देखने योग्य है। जब रामने मन्दोदरीके कर्णफूल और रावणके छत्र तथा मुकुटको एक ही बाणसे जमीनमें गिरा दिया और भरी सभामें अचानक रस-भङ्ग हो गया, तब बड़े-बड़े राक्षस अपशकुन समझकर श्रीहत और उदास हो गये। उस समय न आंधी थी, न भूकम्प। कारण किसीको मालूम न था। तब—

रावण दीख सभा भय पायी।
विहंसि वचन कह युक्ति बनायी॥
शिरौ गिरे सन्तत शुभ जाही।
मुकुट गिरे कस अशकुन ताही॥

कहिये, रावण कैसा चालाक था?

यह लेख कुछ लम्बा हो गया है, परन्तु विषय बड़ा महत्त्व-पूर्ण है। अतएव एक ही प्रश्नपर और थोड़ा विवेचन कर इसे समाप्त कर देंगे। राज्य लोभ और उत्तराधिकारके झगड़ोंमें बड़े बड़े प्रतापी साम्राज्य नष्ट हो गये हैं। राजनीति-विशारद दशरथ इसे बखूबी समझते थे। रामचन्द्रको देखकर सारी प्रजा सुखी-सन्तुष्ट थी—चाहती थी कि 'आप अछत युवराज-पद, रामहिं देहि नरेश।'' दशरथ भी ऐसा ही चाहते थे, परन्तु प्रजाकी सम्मतिके बिना ये कुछ न करना चाहते थे। अयोध्यावासियोंकी सभा की गयी और सबकी सम्मतिसे प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। दैवी प्रेरणासे केवल एक कैकेयीका ''वोट'' विरुद्ध था। जो लोग समझते हों कि एक वोटकी कोई कीमत नहीं, उन्हें सावधान हो जाना चाहिए। विभीषणको सुपात्र समझकर लङ्काका और सुग्रीवको किष्किन्धाका उत्तराधिकारी रामने ही बना दिया था।

रामायणमें राजनीति-विज्ञानके अनेक सिद्धान्त भरे पड़े हैं। बजरङ्गबलीकी नीति देखिये---''जो मोंहि मारि ताहि मैं मारा।'' सीधेसादे ढङ्गसे राह मांगनेपर जड़ समुद्र रामको रास्ता ही न देता था; तीन दिन यों ही बीत गये। तब, तब हुआ क्या?

''बोले राम सकोप तब, भय बिनु होय न प्रीति।'' रामको भी कहना पड़ा कि 'शठ सन विनय, कुटिल सन प्रीती। सहज कृपण सन सुन्दर नीती।'' बिलकुल व्यर्थ है। सच है—''कतहुं सुधाइहिं ते बड़ दोषू।'' इस कुटिल संसारमें ''टेढ़ जानि शङ्का सब काहू। वक्र चन्द्रमा ग्रसै न राहू।'' सर्वत्र देखा जाता है। इस तरहके सिद्धान्तोंकी कमी रामायणमें नहीं है। यदि उसका अनुशीलन किया जाय, तो उसमें समाजनीति और सामान्य नीतिके अनेक अनमोल रत्न बिखरे हुए मिलेंगे। यदि यह लेख पाठकोंको रुचिकर मालूम हुआ, तो अवकाशके अनुसार हम किसी दूसरे लेखमें रामायणकी समाज-नीतिका दिग्दर्शन करेंगे।

———

यशोधरा

(अप्रकाशित 'यशोधरा' का एक अंश)

अब कठोर हो वज्रादपि ओ कुसुमादपि सुकुमारी !
आर्यपुत्र दे चुके परीक्षा, अब है मेरी बारी ।

मेरे लिए पिताने सबसे धीर-वीर वर चाहा,
आर्य-पुत्रको देख उन्होंने सभी प्रकार सराहा ।
फिर भी हठकर हाय ! वृथा ही उन्हें उन्होंने थाहा,
किस योद्धाने बढ़कर उनका शौर्य-सिन्धु अवगाहा ?

क्योंकर सिद्ध करूं अपनेको मैं उन नरकी नारी ?
आर्यपुत्र दे चुके परीक्षा, अब है मेरी बारी ।

देख कराल-काल-सा जिसको, कांप उठे सब भयसे,
गिरे प्रतिद्वन्द्वी नन्दार्जुन, नागदत्त जिस हयसे,
वह तुरंग पालित कुरंग-सा नत हो गया विनयसे,
क्यों न गूंजती रङ्गभूमि फिर उनके जय-जय-जयसे ?

निकला वहां कौन उन जैसा अद्भुत आयुधधारी ?
आर्यपुत्र दे चुके परीक्षा, अब है मेरी बारी ।

सभी सुन्दरी बालाओंमें मुझे उन्होंने माना,
सबने मेरा भाग्य सराहा, सबने रूप बखाना ।
खेद ! किसीने उन्हें न फिर भी ठीक ठीक पहचाना,
भेद चुने जानेका अपने मैंने भी अब जाना ।

इस दिनके उपयुक्त पात्रकी उन्हें खोज थी सारी !
आर्यपुत्र दे चुके परीक्षा, अब है मेरी बारी ।

मेरे रूप-रङ्ग, यदि तुझको अपना गर्व रहा है,
तो उसके झूठे गौरवका तूने भार सहा है ।
तू परिवर्त्तनशील ! उन्होंने कितनी बार कहा है—
'फूला दिन किस अन्धकारमें डूबा और बहा है !'

किन्तु अन्तरात्मा भी मेरा था क्या विकृत विकारी ?
आर्यपुत्र दे चुके परीक्षा, अब है मेरी बारी ।

मैं अबला ! पर वे तो विश्रुत वीर-बली थे मेरे ;
मैं इन्द्रियासक्ति ! पर वे कब थे विषयोंके चेरे ?
अयि मेरे अर्द्धाङ्गिभाव, क्या विषयमात्र थे तेरे ?
हां ! अपने अञ्चलमें किसने ये अङ्गार बिखेरे ?

हे नारीत्व मुक्तिमें भी तो ओ वैराग्य-विहारी !
आर्यपुत्र दे चुके परीक्षा, अब है मेरी बारी ।

सिद्धि-मार्गकी बाधा नारी ! फिर उसकी क्या गति है ?
पर उनसे पूछूं क्या, जिनको मुझसे आज विरति है ?
अर्द्ध विश्वमें व्याप्त शुभाशुभ मेरी भी कुछ मति है ;
मैं भी नहीं अनाथ जगतमें, मेरा भी प्रभु-पति है ।

यदि मैं पतिव्रता तो मुझको कौन भार-भय भारी ?
आर्यपुत्र दे चुके परीक्षा, अब है मेरी बारी ।

यशोधराके भूरि-भाग्यपर ईर्ष्या करनेवाली,
तरस न खाओ कोई उसपर, आओ, भोली-भाली !
तुम्हें न सहना पड़ा दुःख यह, मुझे यही सुख आली !
वधू-वंशकी लाज दैवने आज मुझीपर डाली ।

बस, जातीय सहानुभूति ही मुझपर रहे तुम्हारी ।
आर्यपुत्र दे चुके परीक्षा, अब है मेरी बारी ।

जाओ नाथ, अमृत लाओ तुम, मुझमें मेरा पानी ;
चेरी ही मैं बहुत तुम्हारी, मुक्ति तुम्हारी रानी ।
प्रिय, तुम तपो, सहूं मैं भरसक, देखूं बस हे दानी,
कहां तुम्हारी गुण-गाथामें मेरी करुण-कहानी ?

तुम्हें अप्सरा-विघ्न न व्यापे यशोधरा-करधारी !
आर्यपुत्र दे चुके परीक्षा, अब है मेरी बारी ।

—मैथिलीशरण गुप्त ।

मिर्ज़ा जङ्गी

[नाटक]

मुन्शी कन्हैयालाल एम० ए०, एल-एल० बी०, ऐडवोकेट

※ पात्र ※

१—हजरत जानेआलम बादशाह वाजिदअली शाह ताजदार, लखनऊ।
२—वज़ीरे आजम (प्रधान मन्त्री)
३—वज़ीरे हरब (सेनापति)
४—मिर्ज़ा जङ्गी
५—बन्नन साहब
६—पत्तन साहब
७—आगा साहब
८—अम्दू नाई
९—फत्तू पड़ोसी
१०—बेगम मिर्ज़ा जङ्गी
११—दरबारी, नौकर, इत्यादि।

पहला ऐक्ट

प्रथम दृश्य

[समय—अंगरेजी दूतसे कह दिया गया है कि बादशाह सलामतको इस शर्तपर बादशाही छोड़ना स्वीकार नहीं है कि भारी पेन्शन मिलेगी और हिज़ मैजेस्टीकी उपाधि मिलेगी। इस अल्टिमेटमके उत्तरमें कानपुरसे अंगरेजी सेनाके हमलेका डर है]

बादशाह—गोरोंकी फौजें अब कानपुरसे यह फिरङ्गी जरूर लायेंगे।

एक दरबारी—ऐ मैं सदके हुज़ूरकी जूतियोंके। जहांपनाहका इकबाल सलामत रहे, कसम है हजरत अलमदारकी, एक नहीं अगर कम्पनी हजार पलटनें भेजे तो क्या हो सकता है! हुज़ूरकी जूतीकी किरन तो मैली न होगी!

वज़ीरे आजम—जहांपनाहके इकबालका सूरज आधी दुनियांपर है। जनाब अमीरकी कसम कि यह 'अनवरी' और 'हैदरी' वह फौजें हैं जिन्होंने अगर दोजौड़ापर रुहेलोंके जोड़-जोड़ अलग कर दिये तो पानीपतके मैदानपर मरट्ठोंको पानी-का घूंट कर लिया।

वज़ीरे हरब—ऐ मैं हुज़ूरपर सदके। 'अनवरी' और 'हैदरी' तो पानीपतकी-सी लड़ाइयोंके लिए हैं, फिर हुज़ूरकी फौजें भी हुज़ूरके इकबालके सदकेमें आराम कर रही हैं। हुज़ूरके इकबाल और दबदबेका यह हाल है कि कानपुरसे यहांतक आना तो बड़ी चीज है, कसम है हजरत अलमदारकी रेकाबकी कि हुज़ूरके इकबाल और दबदबेका यह हाल है कि (दरबारियोंकी ओर मुंह करके) वल्लाह अगर लखनऊकी तरफ मुंह करके कोई गोरा खड़ा भी हो जाय तो इमामोंके तुफैल और सदकेसे और जहांपनाहके रोबसे औंधे मुंह गिरेगा।

दरबारी—(एक साथ) माशे अल्लाह! माशे अल्लाह! सुभान अल्लाह! क्या हुज़ूर आलमका इकबाल है! क्या हुज़ूर जहांपनाहीका दबदबा है!"

बादशाह—(मुसकुराकर) मगर सुना है, गोरे रोजाना फौजी कर्तब करते हैं, रोजाना फौजी मश्क करते हैं।

वज़ीरे हरब—ऐ हुज़ूर, सच इर्शाद है। मैंने भी सुना है। जनानी सूरतें, न दाढ़ी न मोंछ। सुबह तड़के वहां दस्तूर ही निराला है। एक आदमी खड़ा हो गया और हुक्म दे रहा है कि चले आओ। फिज़ूल थका मारता है। भला ऐसी थकी-हारी फौज क्या लड़ेगी? और फिर हुज़ूरके गुलामोंसे!

दरबारी—अजी हजरत ये गोरे क्या लड़ सकते हैं...... वल्लाह इनको तमीज क्या है.........वल्लाह एक डांटके भी तो नहीं!

[ड्राप]

दूसरा दृश्य

[स्थान—मिर्ज़ा जङ्गीकी बैठक। (नोट—मिर्ज़ा जङ्गी नकनका कर शब्दोंका उच्चारण करते हैं!) मिर्ज़ा जङ्गी खिज़ाबका ढाटा बांधे बटेरकी टांगें मुंहमें लिए बैठे देख
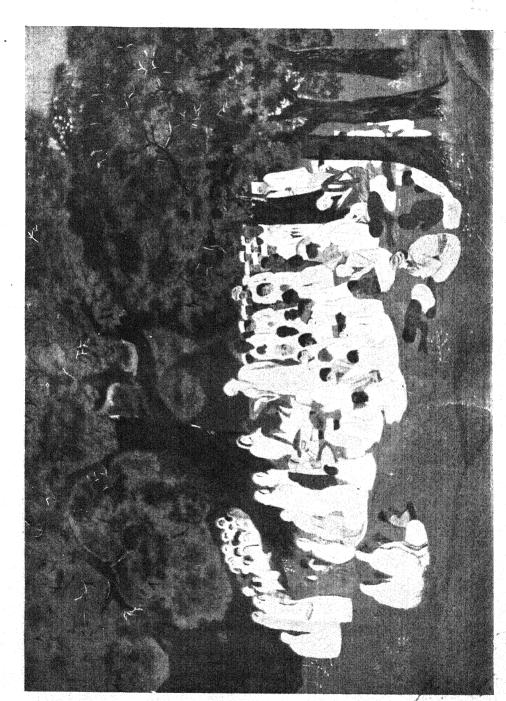
विश्वमित्र]   महात्मा गांधीका उपवास-भंग   [श्री व्रतीन्द्रनाथ ठाकुर

राम
देने
मन
ला
घने
भग
कव
करं
कह
पति
कर
सिर
गयं
हार
क्रि
राज

अव
का
अङ्
तार
उसे
सो

था
गभ
अन
होन
मन
बा
भङ्
औ
का

हैं और बन्नन साहब और पत्तन साहब पञ्जा लड़ा रहे हैं कि बब्बनखां गोलन्दाज एकदमसे आते हैं]

बब्बनखां—वल्लाह !......तुम्हें वल्लाह । बन्नन साहब क्या कम्ची मारी है ! लोहेका पञ्जा भी होता तो टूट जाता-मगर शाबाश है पत्तन साहबकी उंगलियोंको...(दोनों पञ्जा लड़ाना छोड़कर 'आदाब अर्ज...आदाब अर्ज' करने लगते हैं और फिर एक दूसरेकी प्रशंसा करते हैं)

बन्नन साहब—पत्तन साहबसे हाथ मिलाना कोई मामूली बात है ! वह लोच है कि वल्लाह यह मालूम होता है कि फौलाद है मगर लचक रहा है ।

पत्तन साहब (झुककर) —आदाब अर्ज ! आदाब अर्ज ! अजी हजरत बस कभी हाथ मिला लेता हूं, नहीं तो छोड़ ही चुका हूं । मगर किब्ला आपका हाथ है ! मालूम होता है शेरकी कलाईमें पञ्जा पड़ा है । वल्लाह वह कम्ची दी है कि क्या कहना !

मिर्जा जङ्गी—अजी हजरत ! वह शेर-अफगान मर गया ।

बब्बनखां—अना अल्लाह व इनाअलिया राजऊन । वल्लाह !......कब ?..... गजब हो गया......अभी तो चार कुश्तियां मारी थीं ! खैर अल्लाहकी मर्जी ! तो फिर आगा साहबके यहां उन्हें पुर्सा देने भी जाना है......! अजी हजरत वल्लाह मैं भी अजीब आदमी हूं । भई, हमारे सरकी कसम, देखो तो कि आये थे घरसे कुछ गोरोंकी बातें और......अमां कुछ और भी सुना ? कमीदान साहबने कहला भेजा था कि नसीब आदा......गोरोंसे लड़ाइयां होंगी, तोपें ठीक रखनी चाहिएं......जरा गौर करो एक तोप वह 'हंसराज', उसमें तो बिल्लीने बच्चे दिये हैं; दूसरी तोप 'मोहनी' में बटेरोंका दाना रखा है और तीसरी 'जनकिया' है, इसमें पिछले दिनोंकी बात है काबुक टूट गयी मेरे गिरहबाज रहते हैं, और चौथीमें घरवाली कोयले बुझाकर रखती है । अब पत्तन साहब तुम्हीं बताओ कि कौनसी तोप खाली है मेरे पास, जो मैं गोरोंके लिए निकलवाता फिरूं ! न मालूम किस तरह तो बाहर बैठकसे अन्दर ढकेलके करीनेसे पहुंचवायी थीं ।

मिर्जा जङ्गी—लाहौल-विला-कूवत ! न गोरे न काले । खुदा जाने कहां-कहांकी बातें इन लोगोंको सूझती हैं ! कहो भला गोरोंकी शामत आयी है जो लखनऊका रुख करेंगे ! महीनोंसे सुन रहे हैं कि अब आते हैं, और अब आयेंगे, मगर न नाम न निशान ! अजी हजरत ! हम तो खुद कहते हैं कि आयें तो जरा हमारे दिलकी भी निकले । जरा हम भी तो अपनी तलवार म्यानसे खींचें !"

बन्नन साहब—मेरी समझमें नहीं आता, यह गोरे क्या खाक लड़ते होंगे । वल्लाह अगर कहीं आ जायें तो जरा मजा ही रहे ।

पत्तन साहब—सुना है कि ज्यादातर बन्दूकोंसे लड़ते हैं ।

मिर्जा जङ्गी—लाहौल-विला-कूवत ! जनाने कहींके । जभी तो कमबख्त दाढ़ी-मूंछें नहीं रखते । लाहौल-विला-कूवत ! अजी हजरत ! वह हमें भी हुक्म हुआ था कि बन्दूकें चलाओ। पहली दफामें दाढ़ीमें चिनगारी पड़ गयी । लाहौल-विला-कूवत ! वह भी हथियार क्या जिसके लिए दाढ़ी-मूछें साफ करके जनाना बन जाय । देखो बन्दूकचियोंको,मालूम होता है जनानोंकी फौज चली आ रही है । लाहौल-विला-कूवत, मैं तो तीर-तलवारका कायल हूं !

बब्बनखां—तो फिर चलिये, हजरत आगा साहबके यहां पुर्सा दे आयें !

मिर्जा जङ्गी—अभी आया, बस अंगरखा पहन आऊं । (बाहर प्रतीक्षा हो रही है और जब देर हो जाती है और मिर्जा जङ्गी बाहर नहीं आते तो बब्बनखां पुकारते हैं)

बब्बनखां—अजी हजरत मिर्जा साहब ! क्या घरके ही, हो गये ? (मिर्जा जङ्गी अंगरखा हाथमें लिए नाक-भौं चढ़ाये निकलते हैं और उसकी जेब दिखाकर कहते हैं)

मिर्जा जङ्गी—तुम्हें वल्लाह, जरी देखो तो सही, घर-वालीसे भी नाकमें दम है ।

पत्तन साहब—जेब कौन कतर गया ?

मिर्जा जङ्गी—अमां वही चूहे, वल्लाह फिर घरमेंसे तो नाकमें दम है । कलकी बात है, शामको पुत्तू साहबके यहां-से आये । जेबमें एक पसौंका कोफ्ता पड़ा हुआ था, कठिया-पर अंगरखा डाल दिया, चूहे काट गये और घरमेंसे किसीको इतना ख्याल न हुआ कि उठाकर रखतीं भी ।

बन्नन साहब—तो फिर क्या इस वक्त नहीं चलना है ?

मिर्जा जङ्गी—चलना क्यों नहीं है ! अमां दूसरा अंगरखा निकाला है, जरा आस्तीनें चुनी जा रही हैं । बस अब चलते हैं ।

(थोड़ी देर बाद मिर्जा जङ्गी अंगरखा पहनकर सबके साथ आगा साहबके यहां पुर्सा देनेको चले जाते हैं ।)

ड्राप

तीसरा दृश्य

(स्थान—आगा साहबकी बैठक । आगा साहब मसनद-पर लेटे हैं और रञ्जीदा चुप बैठे हैं । पांच-छः आदमी पुर्सा देने आये हैं । इतनेमें मिर्जा जङ्गी, बन्नन साहब, पत्तन साहब, व बब्बनखां पुर्सेके लिए पहुंचते हैं 'आदाब अर्ज,' 'आदाब-अर्ज' करके बैठ जाते हैं । सब चुप हैं ।)

मिर्जा जङ्गी—आज मुझसे बब्बन ने कहा तो मुझे यकीन न हुआ ।

बन्नन साहब—हजरत यह बात ही ऐसी थी, कौन कह सकता था कि एकदमसे......

पत्तन साहब—अमां यह तो खुदाकी मर्जी है, सिवाय सब्रके क्या चारा है । उसके कारखाने ही निराले हैं । क्या-क्या जवान पल-भरमें वित हो जाते हैं । हजरत ! दस दिन हुए होंगे, ज्यादा-से-ज्यादा...जिन लोगोंने देखा है उन्हींसे पूछिये कि शैदी बहराम-सा कड़ियल और देव ऐसा जवान चुटकियोंमें खतम हो जायगा !

मिर्जा जङ्गी—सुनते हैं कि पन्द्रह मिनट भी तो नहीं लगे और शैदी बहराम खतम हो गया ।

आगा साहब—(दर्द-भरी आवाजमें) शैदी बहरामको मरनेसे आध घण्टे पहले खुद मैंने देखा था ।

बन्नन साहब—अजी हजरत मलकुल मौत (धर्मराज)पर किसका बस है ।

मिर्जा जङ्गी—आपने 'शेर अफगन' को तो देखा ही होगा (कोहनियां उठाकर) यह सीना था ।

पत्तन साहब—शेरका-सा कल्ला था (अपने दोनों हाथोंको फुट-फुट भर मुंहसे अलग करके)

एक साहब—हजरत जबड़ा और कल्ला तो देखने ही-का था ।

दूसरे कोई और—फिर ताकत और कुव्वत (बल)

मिर्जा जङ्गी—बस दुश्मनसे पूछिये । वल्लाह !

दूसरे कोई और—अजी किब्ला बात असिल यह है कि असल चीज रियाज (अभ्यास) और रातिब (दाना, खाना) है । क्या मुंह है किसीका जो आगा साहबके बराबर खर्च कर सके ? एक-एक कुश्तीकी तैयारीपर २,५००),३,०००) खर्च होता था । चौदह-चौदह उस्ताद ! एक-से-एक हुनरमन्द और फिर डेढ़-डेढ़ सौका दोनों वक्त रातिब, जिसकी यह खातिर और खिद-मत हो उसकी ताकतका हजरत पूछना ही क्या है !

आगा साहब—अजी किब्ला मैंने 'शेर अफगन' पर इस दो सालके अर्सेमें अट्ठाईस हजार रुपया खर्च कर दिया ।

मिर्जा जङ्गी—मगर हजरत यह दिल चूर करनेवाला सदमा किस तरह पहुंचा ? यानी यह उलटी चाल चलनेवाले आसमानने आखिर किस तरह आप पर सितम ढा दिया और किस तरह यह जवान मरनेका हादसा हुआ ?

आगा साहब—(रोनेके लहजेमें) हजरत बस न पूछिये ...बात असिलमें यह हुई । शेरके दिलकी यखनी (शोरबा) मैंने परसों तैयार करायी थी । रातको सेद आत्शा (तीन दफाकी उतारी हुई) यखनी आयी । मैंने खुद अपने हाथसे दो घूंट पिलाये । इससे ज्यादा न मैं पिलाना चाहता था और न जगह ही थी । मैं तो हजरत यखनी अल्मारीपर रखने लगा कि एकदमसे बिल्ली सामनेसे झपट ले गयी !

पत्तन साहब—(रञ्जसे उछलकर)—ऐ है ! गजब हो गया......फिर हजरतने छुड़ानेकी कोशिश नहीं की ?

आगा साहब (आंसू पोंछते हुए)—अजी हजरत मैं दौड़ा, बाहर दरवाजेतक गया, मगर कुछ पता न चला सिवाय इसके कि एक राहगीरने अलबत्ता कहा कि एक बिल्ली बटेर लिए हुए उस तरफ गयी है । बहुत ढूंढ़ा, पर सिवाय दो तीन परोंके मर्हूम (स्वर्गीय) ने कुछ निशानी...तक नहीं छोड़ी ...ई...ई (रोते हुए)

[आगा साहब फूट-फूटकर रोते हैं और सब लोग ढारस दिलानेका प्रयत्न करते हैं]

मिर्जा जङ्गी—अजी हजरत वल्लाह !

पत्तन साहब—किब्ला...सब्र कीजिये !

बन्नन साहब—खुदाके कारखानेमें क्या चारा है हजरत ! ......वल्लाह !

मिर्जा जङ्गी—जरा दिलको थामिये !......किब्ला !... सब्र कीजिये !

आगा साहब (रोती आवाजमें मिर्जा जङ्गीके गलेमें हाथ डालकर)—मिर्जा, सब्र नहीं होता...किस तरह दिल चीरकर

दिखलाऊं ! कलेजा फटा जाता है ! वल्लाह...आह...आह...ह (रोते हुए)

पत्तन साहब—सदमा ही ऐसा है हजरत ! खुदा आपको सब्र दे !

मिर्जा जङ्गी—दुनियां अंधेरी है (रोते हुए) दुनियां अंधेर है...प...वल्लाह...की यही है...(छतपरसे एक बिल्ली गिरती है। मिर्जा जङ्गीकी पुकारपर वहां एक तहलका मच जाता है। और सब-के-सब खड़े हो जाते हैं और वह लोग तरह-तरहकी डरावनी आवाजमें शोर मचाते हैं। वल्लाह...डख...चररर......कीं...वल्लाह ... लेना...तलवार......लकड़ी...दौड़ना...पकड़ना, जाने न पाये...इत्यादि। सब-के-सब, जो जिसके हाथमें आता है लेकर बिल्लीके पीछे दौड़ते हैं)

ड्राप

——

दूसरा ऐक्ट

प्रथम दृश्य

(एक कमरेके भीतर बिल्ली घिरी हुई है। बाहर यह सब लोग सलाह कर रहे हैं)

मिर्जा जङ्गी—अजी हजरत तलवार मंगा लीजिये। वल्लाह यह खाकसार (दीन) अन्दर जाकर इसे दो कर देगा।

पत्तन साहब—अजी हजरत यह बिल्ली है ! मजाक नहीं है ! टेंटुआ दबा लेती है।

आगा साहब—वल्लाह मजाक न समझियेगा। बिल्ली-को मारनेमें आंख और गलेका खतरा होता है।

बन्नन साहब—अजी हजरत सुना तो हमने भी यही है कि जब तङ्ग आकर बिल्ली टेंटुआ पकड़ती है तो फिर नहीं छोड़ती......वल्लाह !

बब्बनखां—अमां हम बतायें तुम्हें वल्लाह !......यह करो कि बहुतसे कपड़े हम सब लोग अपनी-अपनी गर्दनोंमें लपेट लें और फिर इसे मार डालें......(आगासाहब अपने नौकरको पुकारते हैं और वह बहुतसे कपड़े और गूदड़ लाता है और सब लोग अपनी-अपनी गर्दनोंमें लपेटकर कमरेमें घुस जाते हैं और बिल्लीको ढूंढ़ते हैं तो एक छोटी-सी अलमारीमें उसे छिपा हुआ पाते हैं। सब लोग जाकर घेर लेते हैं)

आगासाहब—मारिये किब्ला इसे !

मिर्जा जङ्गी—अजी हजरत आप ही लीजिये न ! तकल्लुफ काहेका !

आगासाहब (मिर्जा जङ्गीसे)—अजी हजरत आप...आप !

मिर्जा जङ्गी (बब्बनसाहबसे) लीजिये हजरत (तलवार देते हुए) वल्लाह आप !

बन्नन साहब—अजी हजरत आप...आप !

आगा साहब (मिर्जा जङ्गीसे) वल्लाह मिर्जा साहब ! आप तो तकल्लुफ करते हैं। हजरत, लीजिये भी...(जब अच्छी तरह 'अजी हजरत आप' 'अजी हजरत आप' हो चुकती है और सब मिर्जा जङ्गीसे कहते हैं, कि आप ही लीजिये तो मिर्जा जङ्गी इस तरहसे स्वीकार कर लेते हैं)

मिर्जा जङ्गी—आदाब अर्ज, आदाब अर्ज (सबको सलाम करके तलवार लेते हैं और कहते हैं) खर, आप सब लोग तो तकल्लुफ करते हैं !

(यह कहकर मिर्जाजी 'या अली' कहकर तलवार सौंत-कर पैंतरे बदलते हैं और बिल्लीके ऊपर आखिरमें एक वार करते हैं जो बजाय बिल्लीके अलमारीकी कगरपर लगता है। उसके लगते ही सब प्रशंसा करने लगते हैं और एक ही साथ सब कहते हैं)

सब लोग---ऐ सुभान अल्लाह !

पत्तन साहब (उछलकर) वल्लाह मिर्जा साहब ! क्या बाल-बाल बची है !

बन्नन साहब----कमाल कर दिया है वल्लाह !

मिर्जा जङ्गी—(दाहिने हाथसे तलवार बायें हाथमें लेकर) आदाब अर्ज है, आदाब अर्ज है ! (चारोंओर प्रशंसा के उत्तरमें सलाम करते हैं)

पत्तन साहब—अब मिर्जा साहब जल्दी करें !

मिर्जा जङ्गी---मैं बिल्लीको बैठे-बैठे क्या मारूं, उसको जगहसे निकालता हूं और अलमारीसे कूदतेमें चौरङ्ग कर दूंगा !

(मिर्जा साहब पैंतरा बदल रहे हैं। उधर पैंतरा बदल-कर मिर्जा साहबने तलवारकी नोक बिल्लीके मुंहके सामने की और उसे थपकी देकर मारा और इधर वह 'मू फिस' करके भीड़पर फांदकर निकली और उधर मिर्जा जङ्गीने

'वल्लाह' कहकर वार जो किया वह खाली गया। बिल्ली भाग गयी)

बन्नन साहब—क्या हाथ दिया है!

पत्तन साहब—बाल-बाल बची वल्लाह!

आगा साहब—वल्लाह क्या कमाल दिखाया है! रुस्तम और अस्फन्दियारके किस्से गर्द हो गए!"

बब्बनखां—भाई मिर्जा तुम्हें वल्लाह...सुभान अल्लाह! (मिर्जा साहब तलवार बायें हाथमें लिए चारों ओर झुक-झुक कर 'आदाब अर्ज' 'आदाब अर्ज' कर रहे हैं और सब तरफसे 'वल्लाह' 'सुभान अल्लाह' 'क्या हाथ था' इत्यादि की आवाजें आ रही हैं)　ड्राप

दूसरा दृश्य

(शाही दरबार। तीन गद्दी [अहीर] शहरसे पकड़कर आये हैं, जिन्होंने यह खबर उड़ा दी है कि गोरोंकी फौजें इलाकेपर कब्जा करती चली आती हैं। शहरमें हुल्लड़ होनेपर यह पकड़े गये और शाही दरबारमें लाये गये। वहां उन्होंने यह कहा कि उनके गांवसे तीन मीलकी दूरीपरसे अंगरेजी फौजें लखनऊकी ओर आती हुई निकली हैं। उन्होंने यह कहा ही था कि वजीरे आजम डपटकर बोले...)

वजीरे आजम—हुजूर, इनकी जबानें कटवा लेनी चाहिए!

वजीरे हरब—इन बदमाशोंको इस गुस्ताखीकी सजामें जिन्दा चुनवानेका हुक्म देना चाहिए!

एक दरबारी—जहांपनाहका इकबाल सलामत रहे, कसम है जनाब अमीरकी यह तीनों बिलकुल झूठे हैं। इकबाल शाही है मजाक है?

दूसरा दरबारी—हुजूरकी जूतियोंपरसे यह निमकखार सदके, मुझे ताज्जुब तो यह होता है (दूसरोंकी ओर देखकर) वल्लाह यह लोग ऐसी बातोंको मान क्यों लेते हैं?

वजीरे आजम—वल्लाह! हुजूर-वाला गौर फरमायें कि मेरी तो अक्ल नहीं काम करती कि लोग सोच ही कैसे सकते हैं कि गोरे इधर देखनेकी भी हिम्मत करेंगे!

वजीरे हरब—जहांपनाह, इन तीनों गुस्ताखोंको इस अजीबोगरीब गुस्ताखी की सजामें जिन्दा चुनवानेका हुक्म दे दिया जाय।

बादशाह सलामत—बेशक। ये इसी सजाके लायक हैं। (तीनों गद्दी हाथ जोड़कर क्षमायाचना करते हैं और बादशाहको आशीर्वाद देकर फिर कहते हैं—'हम झूठ नाहीं बोलित सरकार')

वजीरे आजम—(डांटकर) गुस्ताखो! चुप रहो! चोबदार......!

(चोबदार बढ़ते हैं और उन्हे पकड़कर ले जाते हैं)

वजीरे आजम—अभी-अभी इन तीनोंको ले जाकर, राज मजदूरोंको बुलवाकर जिन्दा चुनवा दो!

(चोबदार तीनोंको लेकर बाहर निकलते हैं और आठ-आठ आना लेकर उन्हें छोड़ देते हैं)

ड्राप

तीसरा दृश्य

(शाही महलके द्वारपर तीन चौधरी और चार ताल्लुकदार थोड़ेसे सिपाहियोंके साथ आकर दुहाई देते हैं—'दुहाई है हुजूर बादशाह सलामतकी! गोरोंने उत्तरी इलाका लूट लिया, गांवपर कब्जा कर लिया और भागाभाग लखनऊ की ओर डबल मार्च करते आ रहे हैं!' वजीरे आजम और वजीरे हरबको सूचना दी जाती है। वह दौड़कर आते हैं। उनको चुप कराके भगा देते हैं और दूसरे दरबारियोंसे सलाह करते हैं और तय करते हैं कि बादशाह सलामतको सूचना दे देनी चाहिए।)

[दरबार लगा है। दरबारमें बादशाह और दरबारी बैठे हैं। बादशाहके साथ दो परियां भी हैं और बादशाह खुद राजा इन्द्रके भेसमें हैं। अखाड़ा जमा हुआ छोड़कर बस थोड़ी देरके लिए आये हैं]

वजीरआजम—(एक दरबारीकी ओर घूमकर मानों बादशाह सलामतको सुनानेके लिए)—अजी हजरत? वह कुछ फिरङ्गियों और गोरोंवाला मजाक भी सुना? वल्लाह रहेगा जरा लुत्फ?

एक दरबारी—(हंसी करते हुए लापरवाहीसे)—अजी हजरत! क्या हुआ?

वजीरे आजम—हुआ क्या? फिरङ्गियोंकी शामत आगयी! मौतके मुंहमें कूद रहे हैं! वल्लाह!

दूसरा दरबारी ---यह गोरे भी अक्लके पीछे लट्ठ लिये फिरते हैं !

वजीरे आजम-- -वल्लाह ! अजी हजरत वही मजमून है कि चींटीके पर निकल आये !

तीसरा दरबारी----अजी हजरत ! जहांपनाहकी जूतियोंकी किरनकी कसम । जरा उनकी अक्ल तो देखिये, सुनते थे कि फिरङ्गी जात बड़ी अक्लमन्द होती है, मगर देखनेसे कुछ और ही पता चलता है !

वजीरे हरब----किसीने सच कहा है कि गीदड़की मौत आती है तो शहरकी तरफ भागता है, और फिरङ्गीकी मौत आती है तो.........

सब दरबारी (एक साथ)—लखनऊ की तरफ !

(बादशाह सलामत मुसकुराते हैं)

बादशाह सलामत—फिर क्या इन्तेजाम किया है ?

एक—जहांपनाह ! तोपखाना भेज दिया जायगा, वह गोरोंको भकसे उड़ा देगा !

दूसरा—अजी हजरत ! हमारे बन्दूकची ताक-ताकके वह गोलियां देंगे कि गोरोंकी किस्मत ही फूट जायगी। कसम जनाब अमीरकी, न हमारे बन्दूकची गोरोंको अपनी बाढ़ोंसे साफ़ कर दें तो हमारा जिम्मा ।

तीसरा—अजी किब्ला ! जहांपनाहके हुक्मकी देर है बस, 'हैदरी' और 'अनवरी' गोरोंके छक्के छुड़ा देंगी !

वजीरे आजम—कसम है जनाब अमीरकी, जहांपनाहके बस हुक्मकी देर है !

बादशाह सलामत (वजीरे हरबसे)—तुम बताओ तुम्हारी क्या राय है ?

वजीरे हरब (झुककर सलाम करके)—ताअब्द कायम रहे फरमांखाए लखनऊ [लखनऊका बादशाह हमेशा कायम रहे] (सब एक साथ 'आमीन सम आमीन' कहते हैं) जहांपनाहका इकबाल सलामत रहे, इमामोंका साया रहे। इस नमकख्वारने सोच तो लिया है। (हाथ जोड़ कर) बस एक ख्याल है ।'

बादशाह सलामत—वह क्या ?...क्या 'अनवरी' और 'हैदरी' काफी होंगी ?

वजीरे हरब—मैं सदके हुजूरकी जूतियोंपर, 'अनवरी' और 'हैदरीको' भेजकर क्या करूंगा ?

बादशाह सलामत—तोपखाना ही काफी होगा ?

वजीरे हरब—ऐ हुजूर, भला तोपोंकी क्या जरूरत ? एकसे एक 'जम्म डकारन' तोप है, बच्चे दहल जायेंगे। हुजूरका भी सिर दुखने लगेगा। शहरवाले चौंक पड़ेंगे, बहादुर लोग उछल पड़ेंगे, तोपखानाका क्या होगा ?

बादशाह सलामत—फिर क्या इरादा है ? क्या रिसाला भेजोगे ?

वजीरे हरब—ऐ हुजूर, घोड़ोंकी टापोंसे गर्दका तूफान उठ आयेगा। सबके कपड़े मैले हो जायेंगे, सांस घुट जायगी, आंखोंमें धूल पड़ जायगी, बालोंमें रेत भर जायगी।

बादशाह सलामत—(मुसकुराकर) 'अनवरी' 'हैदरी' नहीं भेजते, तोपखाना नहीं भेजते, रिसाला नहीं भेजते, फिर क्या सोचते हो ?

वजीरे हरब (आगे बढ़कर)—हुजूरवाला जहांपनाही सलामत ! क्या पिद्दी क्या पिद्दीका शोरबा ! फौजें, तोपखाना और रिसाले जाते हैं फौजोंसे लड़ने, न कि हुजूरवाला ऐसे-ऐसे गोरोंकी भीड़ भगानेके लिए। इस नमकख्वारकी तो यह राय है कि शहरवालोंको तो जरूर तकलीफ होगी, मगर मजबूरी है, पिंजड़े बनानेवालोंसे फट बांस खरीद लिये जायंगे और शहरकी मेहतरानियोंको दे दिये जायेंगे कि जूहीके मैदानपर जाकर मारकर गोरोंको निकाल दें !

सब दरबारी (एक साथ)—वल्लाह ! सुभान अल्लाह ! हुजूरका इकबाल है ! यह गोरे हैं क्या बला ! यह मेहतरानियां ही काफी हैं......सुभान अल्लाह ! (चारों ओरसे इस तरहके प्रशंसाके शब्दोंका शोर मचता है, और वजीरे हरब चारों ओर घूम-घूमकर 'आदाब अर्ज ! आदाब अर्ज' इस तरहसे कर रहे हैं कि बस गर्दन झुकी हुई है और हाथके पञ्जे में कमानी लग गयी है)

ड्राप

चौथा दृश्य

(स्थान—बाजारकी सड़क)

ढिंढोरा पीटनेवाला—खलक खुदाए'''मुलक बादसाए क्यार...हुकुम कमीदान बहादुर क्यार...अम्बरी, हैदरी और तमाम बादशाही फौजें गोरोंको काटकूटके डार दें (कुड़म-

धुम कुड़म-धुम) खलक खुदाए, मुलुक बादसाए, हुकुम कमीदान साहब क्यार ! अम्बरी, हैदरी, तोपखाना, फौजें सबके सब कल साम तलक रमाना हुवै जायें…गोरोंको मार काट कैयां, बहियाए दें (कुड़म-धुम, कुड़म-धुम) खलक खुदाए, मुलुक बादसाए, हुकुम कमीदान बहादुर क्यार, कौनों गोरवा बचै न पावे, चुन-चुनके तो मारा जाये (कुड़म-धुम कुड़म-धुम)

[मिर्जा जङ्गी और बन्नन साहब और पत्तन साहब भी निकलते हैं। मिर्जा जङ्गी अपनी खास धजासे हैं, दोनों हाथोंमें बटेरें हैं, ऊपर रूमाल पड़े हुए हैं]

मिर्जा जङ्गी—अजी हजरत ! वल्लाह ! जरा यह निराला हुक्म देखिये !

बन्नन साहब—वल्लाह ! गोया पुत्तू साहबसे परसोंके लिए जो पालीका तय हुआ है वह योंही रहा ?

पत्तन साहब—तुम्हीं वल्लाह ! जरा इस इन्तेजामको देखो ! कल शामतक सब रवाना हो जायें—गोया परसोंकी पाली ही न हो ! लाहौल-विला-कूवत !

मिर्जा जङ्गी—अमां बकते हैं ! वल्लाह जरा गौर तो करो कि हम सब लोग अगर कल ही गोरोंकी तरफ रवाना हो जायें तो पुत्तू साहब तो यही कहेंगे कि भगोड़े थे, मैदान छोड़ गये, मुंह छिपाते हैं ! लाहौल-विला-कूवत !

बन्नन साहब—फिर अलावा इसके मैं तो तैयार ही नहीं हो सकता। धोबिन कपड़े नहीं लायी, एकदमसे जो घर जाकर कहेंगे तो वल्लाह घरमें यही कहेंगी कि मुझसे दिनके दिन कुछ नहीं हो सकता !

ड्राप

पांचवा दृश्य

[एक सप्ताह हो चुका है जब ढिंढोरा पिटा था। गोरोंकी फौजोंके आनेका समाचार है। मिर्जा जङ्गी कमीदान बहादुरसे मिलकर इस बड़े कामका पूरा जिम्मा स्वयं ले चुके हैं और सबसे बड़े अफसर नियुक्त हुए हैं कि जैसे जी चाहे, जिस इन्तेजामसे चाहें, हमलेको रोकें। सारी फौजको तैयारीका हुक्म दे दिया है और स्वयं भी तैयारीमें व्यस्त हैं। स्थान—मिर्जा जङ्गीकी बैठक। सब लोग बैठे हुए हैं कि फत्तू आता है।)

मिर्जा जङ्गी—अमां फत्तू ! जरा अम्दूको लपकके पकड़ तो लाओ ? कहना कि मिर्जा साहब बुलाते हैं, कल गोरोंकी लड़ाई पर जा रहे हैं, खत बना जाय (फत्तू 'बहुत अच्छा' कहकर जाता है)

बन्नन साहब—अजी हजरत ! खिजाब भी तैयार करा लिया ?

मिर्जा जङ्गी—वल्लाह तुम भी क्या बातें करते हो ! कल जा रहे हैं और खिजाब न तैयार कराते ? तुम अपनी बटेरकी थैलियां भी ले चलना। पुत्तू साहबसे भी मैंने कह दिया है, वह भी पहुंच जायेंगे, नहीं तो अहमद काबुकें लेकर पहुंच जायगा ! (सामनेसे जुम्मनको जाते देखकर) अमां जुम्मन ! अमां जुम्मन ! (वह इनकी ओर देखता है, यह हाथसे सङ्केत करते हैं और वह आ जाता है। तब मुसकुराकर) तो फिर चल रहे हो न ? अमजदको भी ले लेना !

जुम्मन—अमजद कहता है कि मेरे पास कोई अंगरखा ही नहीं।

मिर्जा जङ्गी—अमां हम दे देंगे। तुम कह देना उससे [बन्नन साहबकी ओर घूमकर] अजी किब्ला मेरी तो यही कोशिश है कि जहांतक मुमकिन हो बटेरोंके शौकीन सभी साथ हों !

(अम्दू नाई आता है और सलाम करता है)

अम्दू—अजी हुजूर बस ऐसा लीजिये कि आपसा जवान लखनऊ भरमें कोई न दिखायी पड़े।

बन्नन साहब—अजी हजरत ! जरा दाढ़ी और मोंछें एक जौ भर कटा दें न ?

अम्दू—हां बस यही ठीक है ! फिर उसपर खिजाब इस उस्तादीसे बांधूंगा कि आप देखियेगा।

[अम्दू खत बना रहा है]

बन्नन साहब—अजी किब्ला क्या सचमुच तोपखाना न ले चलियेगा ?

[खत बन रहा है और नाई उन्हें करीब-करीब चित किये दे रहा है। बोल नहीं सकते इस कारण एक हुङ्कारसे काम लेते हैं। आइना दाहिने हाथमें चेहरेसे गजभर दूर लिये हैं।]

मिर्जा जङ्गी—ऊंहुं [यानी--नहीं] (नाई पैंतरा बदलता है। आइना हाथमें है मगर देख नहीं रहे हैं।)

मिर्जा जङ्गी—अजी किब्ला! मैं तो बस गिने-चुने बहादुर ले जाऊंगा। न मुझे तोपचियोंकी जरूरत है और न गोलन्दाजोंकी (फिर नाई चित किये देता है)

पत्तन साहब—हमलोग अपनी बन्दूकें भी ले चलें या रहने दें? (मिर्जा जङ्गी इस समय आइना देखते हैं और एक तरफकी मोंछ ज्यादा कटी देखकर फांद पड़ते हैं)

मिर्जा जङ्गी—अबे हजामत अल्लाह! यह तूने क्या किया?

अम्दू—क्यों हुजूर क्या हुआ?

मिर्जा जङ्गी—(अम्दूको लात मारकर) मर्दोंकी तूने मोंछ उड़ा दी और यह कहता है। ठहर तो जा! तेरी हजामत अल्लाहकी! अभी तुझे कत्ल किये देता हूं। बदमाश! मूजी! (लपककर अन्दर तलवार लेने जाते हैं और उधर अम्दू भाग जाता है)

मिर्जा जङ्गी (तलवार हाथमें)—किधर गया वह बदमाश नाईका बच्चा! पकड़ लाओ...वल्लाह बन्नन साहब, अब मैं क्या करूं...वल्लाह!

बन्नन साहब—गजबका बदमाश है। हजरत मैं तो बातों ही में लगा था!

पत्तन साहब—वल्लाह! बड़ा शरीर है। एक सिरेसे इसने बिलकुल ही मोंछ काट दी!

मिर्जा जङ्गी—(आइना देखकर और सिर पकड़कर) अब क्या हो? और तो कुछ नहीं, हजरत कोई गोरा देखेगा तो क्या कहेगा?

बन्नन साहब—अब सिवाय इसके क्या चारा है कि दूसरी तरफकी भी कतरवायी जाय!

मिर्जा जङ्गी—(आइना फिर देखकर) वल्लाह बस यही जी चाहता है कि खुदकुशी कर लें। अब क्या फायदा लड़ाई-पर जानेसे? क्या किसीको मुंह दिखायें? ऐसे मौकेपर नोक पलकसे ठीक होना चाहिए न कि यह हाल! मैं इस अम्दूको मार डालूंगा! वल्लाह! (यह कहकर तलवार लेकर लपकते हैं और बन्नन साहब और पत्तन साहब पकड़ लेते हैं)

बन्नन साहब—अभी हजरत! जाने दीजिये...अजी वल्लाह!

मिर्जा जङ्गी (जोर लगाते हुए)—मुझे छोड़ दो! मैं इसे मार डालूंगा! वल्लाह!

पत्तन साहब—अजी किब्ला...

मिर्जा जङ्गी—जी नहीं किब्ला! वल्लाह!

(इसी खींचतानमें पर्दा गिरता है)

छठां दृश्य

(मिर्जा जङ्गीका जनानखाना। मिर्जा जङ्गी मोंछ कटनेके दुखमें पलंगपर पड़े हुए हैं)

बेगम जङ्गी—अरी उठो भी! तुम्हें हमारी कसम, इस तरह पड़े रहोगे तो मुए गोरे न घुस आयें!

मिर्जा जङ्गी—अब क्या उठें हम! बस यही जी चाहता है कि कुछ खाकर सो रहें!

बेगम जङ्गी—तुम योंही पड़े रहोगे तो गोरे मुओंको कौन रोकेगा? किसी औरमें फिर इतना बूता भी नहीं! वह तो तुम्हींसे डरके भागेंगे। कसम जनाब अमीरकी जो अरी तुम न जाओ तो बुरी घड़ी लखनऊपर आ जाये!

मिर्जा जङ्गी (मुसकुराकर)—यह तो हम जानते ही हैं, आखिर न कैसे जायेंगे? मगर तुम ही देखो, क्या लुत्फ रहेगा जानेका? मूंछ ही नहीं, बल काहेका?

बेगम जङ्गी (मूंछ देखते हुए)—चलो हटो भी! भली-चङ्गी तो मूछें हैं। बाईं तरफकी जरा बड़ी है तो लाओ उसे मैं बराबर कर दूं (मुसकुराकर) बस दस-पन्द्रह साल उम्र कम ही मालूम देगी!

मिर्जा जङ्गी—(प्रसन्न होकर) तुम्हें वल्लाह! हमारे सर-की कसम!

बेगम जङ्गी—हजरत अब्बासके दरगाहकी कसम! जो दस-पन्द्रह बरस उम्र कम मालूम न दे तो मेरा जिम्मा!

मिर्जाजङ्गी—तो फिर लाओ न कैंची, बातें बना रही हो। (बेगम कैंची ले आती हैं, मगर मूंछ कतरती हैं पर ऐसा कि अब दूसरी ओर की कम हो गयी)

मिर्जा जङ्गी (आइना देखकर)—अरे यह क्या गजब किया......?

बेगम जङ्गी—(नाकपर उंगली रखकर)—ऊई!

मिर्जा जङ्गी—अरे गजब किया! तुमने तो और भी सत्यानास कर दिया, और अब......

बेगम जङ्गी—तुम तो पागल हो गये हो। अभी तो किसीने कहा है कि अपनीसे दुगनी उम्रका मियां ठीक

नहीं ! कोई बात भी हो। जरा देखो गौरसे आइना ! लो मेरी उम्रके लगभग हो गये तुम भी !

मिर्जा जङ्गी—(गौरसे आइना देखकर)—जरा कैंची तुम हमें दो ! (कैंची लेकर दोनों मूंछें बराबर कर लेते हैं)

बेगम जङ्गी—(मुसकुराकर) तुम्हें हमारी कसम, अब ऐसी ही मूंछें रखना !

मिर्जा जङ्गी (प्रसन्न होकर)—वल्लाह ! तुम्हें यही पसन्द हैं ! (हाथसे मिरोड़कर) ठीक हैं न ? हमारी कसम खाओ ! हमारा मरा मुंह ही देखो ! सच बताओ ?

बेगम जङ्गी—दुश्मन मुद्दइयोंका मुंह देखूं ! तुम्हारे सरकी कसम ! बस ऐसी ही मूंछें ठीक हैं। भला वह भी कोई ढङ्ग है निगोड़े शेदियोंकीसी मूछें, मैं तो हमेशासे कहती हूं—यही ठीक हैं !

मिर्जा जङ्गी (प्रसन्न होकर)---अजी वह उम्रके बारेमें क्या कहती थीं ? दूसरी बातोंकी कसमें खा रही हो !

बेगम जङ्गी—ऊंई ! क्या मैं झूठी हूं ?

मिर्जा जङ्गी—अल्लाह तौबा ! वह कुछ तुम उम्रके बारेमें भी तो कहती थीं कि......वह......कुछ...हमारी मूंछें...वह बड़ी मूंछोंसे हमारी उम्र कुछ ज्यादा मालूम होती थी...

बेगम जङ्गी—क्यों नहीं, आखिर फर्क जरूर मालूम देगा ! बड़ी उम्रवालोंकी बड़ी-बड़ी मूंछें और लम्बी-लम्बी दाढ़ियां होती हैं, देख लो खुद भी ! साल डेढ़-एक उम्र कम ही मालूम दे रही है !

मिर्जा जङ्गी—हैं ? साल डेढ़-एक ! जरा खुदा लगती कहो !...अभी-अभी दस-पन्द्रह साल बताती थीं। मेरी सारी मूंछें कटवाकर अब यों मुकरती हो ? गजब है खुदाका ! (बिगड़कर) अभी तो कसम नहीं खाती हो !

बेगम जङ्गी—ऊंई ! यह तुम्हें हुआ क्या है ? बात-न-बात लड़े मरते हो। हां क्यों नहीं, जिसकी इतनी इतनी मूंछें हों (कोहनीतक बताकर) उसकी मूंछें काटकर ठीक करके छोटी कर दी जायें तो आप ही मालूम देगा कि दस बारह सालका फर्क है !

मिर्जा जङ्गी—(प्रसन्न होकर) तुम सच कहती हो ! मूंछोंकी वजहसे हमारी उम्र कुछ ज्यादा सचमुच मालूम होती होगी, और फिर यह नजलेने और कामका नहीं रखा, जवानीमें कमबख्त सफेद कर देता है !

बेगम जङ्गी (मुसकुराकर)---तो अब कुछ गोरोंकी भी 'काना गोशी' की फिक्र तुमको है या नहीं ? पड़ोसिन भी यही कह रही थीं कि बुआ तुम्हारे मिर्जाजी चुन-चुनके गोरा मारेंगे !

मिर्जा जङ्गी---तैयारी तो करना तुम्हारे हाथ है, सच्ची किरनवाला बटुआ भर दो, बदरीके कामवाली डिबियामें पान बना देना। बटेरोंके दानेकी थैलीमें छेद है, आखिर तीनों बटेर जायेंगे ! अफीयूनकी डिबिया न भूलना और वह···और वह रुई (अफीम घोलनेके लिए) हां वह क्योड़ेसे बसा नैचा भी जायगा !

बेगम जङ्गी----ऊंई ! यह सब लड़ाईपर जा रहा है ? कुछ ढाल, तलवार, बन्दूक वगैरा भी जायगी या नहीं ?

मिर्जा जङ्गी—तुम भी क्या आदमी हो ! तलवार नहीं जायगी तो क्या हम गोरोंसे कबड्डी खेलने जा रहे हैं ? हमारी दोनों तलवारें जायेंगी, पेशकब्ज जायगा, छोटी काबुक जायगी, और हां, वह हमारी कमान जायगी और तरकश भी जायगा। देखो कमानका गिलाफ......वह उसमें तकमा जरूर टांक देना ! बन्दूक भी जायगी। हम उसे वहां फत्तूसे चलवायेंगे !

बेगम जङ्गी—अच्छा तो अब मैं जाती हूं, सब चीजें ठीक करने (जाती हैं)

मिर्जा जङ्गी (चौंककर)—ऐ जी !...वह सुर्मादानी और सलाई न भूलना, अच्छा !

ड्राप

तीसरा ऐक्ट

पहला दृश्य

[मिर्जा जङ्गीकी बैठकके सामने। फत्तू खारुएके गिलाफमें बन्दूक लपेटे लिये खड़ा है। अम्दू हज्जाम बटेरोंका काबुक और सामान लिये है। जुम्मन अपनी बटेरें और काबुक लिये है। चार पांच मजदूरनियां असबाब [बिस्तर, बक्स, हुक्का] लिये खड़ी हैं। सम्भवतः तलवारें भी बिस्तर हीमें हैं, क्योंकि किसीके हाथ या कमरमें नहीं दिखलायी देतीं। मिर्जा जङ्गीकी प्रतीक्षा हो रही है। वह निकलते हैं इस सजधजसे कि शबनमका अंगरखा पहने, दो अंगुलकी टोपी

बायीं तरफ रक्खे, पट्टों और मूछोंपर तेल मले, दोनों हाथोंमें दो बटेरें, उनपर रुमाल पड़ा हुआ, आड़ा पाजामा पहने, मुंहमें गिलौरी दबाये, दाहिने बाजूपर इमाम जामिनका रुपया बांधे और मत्थेपर आपकी टीका लगाये]

मिर्जा जङ्गी—चलो भई जल्दी चलो ! पत्तन साहब वग़ैरा इन्तेजार कर रहे होंगे। (यह कहकर आगे-आगे हो जाते हैं। सड़कपर पहुंचते हैं तो मुहल्लेवाले कहते हैं—)

एक—तुम्हें वल्लाह मिर्जा साहब !

दूसरा—सुभान अल्लाह !

तीसरा—जीत मुबारक हो।

(मिर्जा जङ्गी दोनों हाथोंसे मुसकुराकर उत्तरमें 'दोतरफा' सलाम कर रहे हैं)

चौथा—वल्लाह मिर्जा साहब ! गोरोंकी शामत आ गयी !

पहला—गोरोंको चुन-चुनके मारेंगे, वल्लाह !

दूसरा—जिन्दा न छोड़ेंगे, वल्लाह !

तीसरा—कच्चा ही खा जायेंगे, वल्लाह !

(मिर्जा जङ्गी दोतरफा बटेरोंवाले हाथसे सलाम करते मुसकुराते चले जा रहे हैं कि सामनेसे पत्तन साहब बन्नन साहब और बब्बन खां आते हैं)

बन्नन साहब (देखते ही)—तुम्हें वल्लाह !

पत्तन साहब—अजी हजरत ! चलिये न जल्दी !

मिर्जा जङ्गी—और बाकी फौज ?

बन्नन साहब—सब पहुंची आगे। हमने कह दिया है कि मिर्जा साहबको लेके हम आते हैं, फौज तो बल्कि मैदान ले चुकी होगी !

मिर्जा जङ्गी—अजी हजरत ! फौज तो गयी, यह तो हम भी जानते हैं। मगर काबुके और थैलियां......?

बन्नन साहब—किब्ला ! काबुके भी साथ हैं, थैलियां भी गयीं।

मिर्जा जङ्गी—और हजरत ! वह 'गुलाम हैदर' (बटेरका नाम) भी साथ है या नहीं। भई वल्लाह ! क्या पुत्तू साहबके 'जिगरी' (बटेरका नाम) पर कुफ्ल डालके कांटा मारा है !

पत्तन साहब—भई वल्लाह ! (बटेरोंकी बातें करते चले जा रहे हैं) ड्राप

दूसरा दृश्य

(लखनऊसे दो मीलकी दूरीपर सात-आठ सौ आदमी पेड़ोंके नीचे जगह-जगह बैठ कुछ अफीम घोल रहे हैं, कुछ बटेरें लड़ा रहे हैं। एक ओर एक तोप लगी है। मिर्जा जङ्गी, बब्बनखां इत्यादि एक तरफ एक साफ चांदनी बिछाये बैठे हैं और हुक्के पी रहे हैं और बातें हो रही हैं)

पत्तू साहब—अजी किब्ला ! पहिली मञ्जिल तो खतम हुई। अब आगे चलियेगा या रातको यहीं पड़ाव रहेगा ?

मिर्जा जङ्गी—अजी हजरत ! लोग तो बस बेपरकी उड़ाते हैं। न गोरे न काले। कोसोंतक पता नहीं है। क्या करेंगे आगे जाके ? बस रातको यहीं पड़ाव रहेगा। आदमी हैं, आखिर जानवर तो हैं नहीं, और फिर सिपाहीको तो आराम भी चाहिए !

बन्नन साहब—आ गये होंगे शहरसे हम लोग कोई तीस मील ?

पत्तन साहब—तीस तो नहीं मगर हां दस-पचीस मील तो आ गये होंगे।

मिर्जा जङ्गी—पैदल फौज इससे ज्यादा कूच नहीं कर सकती। यहीं ठहरना होगा। लाइये न हजरत ! जरी हो जायें दो एक कुश्तियां, लाइये फिर थैलियां...! (थैलियां बटेरोंकी सबकी सब लायी गयीं। मिर्जा जङ्गीने अपना बटेर 'शहजोर' निकाला है और लड़ाने ही जा रहे हैं......)

अम्दू—अरे मियां ! अरे...अरे ! वह कौन...वह वह......वह !

बन्नन साहब—किधर ?...कहां ?

पत्तन साहब—क्या है बे ?...

(मिर्जा जङ्गी लम्बी गर्दन करके देखते हैं)

अम्दू—अरे मियां ! गोरे ! गोरे !

बन्नन साहब—वल्लाह...!

पत्तन साहब—अजी हजरत ! (सब गौरसे मुट्ठीकी दूरबीन बनाकर देखते हैं। एक गोरा थोड़ा आगे बढ़ता है)

मिर्जा जङ्गी (यह जानकर कि गोरा है)—वल्लाह गोरा ! लाना मेरी तलवार !...अबे अम्दूके बच्चे ! तलवारें किधर रखीं ?

(अम्दू घबराहटमें इधरका असबाब उधर फेंकता है, पर तलवारें नहीं मिलतीं। कमान हाथमें आ जाती है)

मिर्जाजङ्गी—अबे कमान ही तो मांग रहा हूं। अबे तीर कहां हैं?

बन्नन साहब—वल्लाह मेरी कमान कहां गयी? मेरी बन्दूक? अरे तीर कहां गये?

(सबके सब अपने हथियार ढूंढ़ रहे हैं। बन्नन साहबको बन्दूक मिल गयी; मगर गजका पता नहीं)

पत्तन साहब—अबे अम्दूके बच्चे! गज कहां है?

अम्दू—हुजूर! आपकी चीजें मैं थोड़ी लाया था! मैं क्या जानूं?

पत्तन साहब—लाहौल-विला-कूवत! वह बन्दूक भी बिलकुल फिजूल चीज है। उस रोज हुक्का साफ किया था! चूल्हेके पास ही गज रखा रह गया। लाहौल-विला-कूवत!

बन्नन साहब—अजी हजरत! यह लीजिये मेरा गज। (पत्तन साहब गज लेते हैं और बन्दूककी नालमें डालते हैं, मगर वह आधी दूर जाकर रुक जाता है। जोर मारकर ठोंकते हैं)

पत्तन साहब—वल्लाह! यह गज अन्दर क्यों नहीं जाता? टूंह! (जोर लगाकर अन्दर करते हैं, कोई चीज है जिसमें गज अटकता था, गज निकालकर बन्दूककी नाल उलटते हैं और उसमेंसे कुम्हारी [कीड़ा होता है जो मिट्टीका घर बना लेता है] के घरकी मिट्टी निकलती है)

पत्तन साहब—वल्लाह! इन कुम्हारियोंको देखिये हजरत! बन्दूककी नालमें घर बनाया है!

(गोरा अब पास आ जाता है और हलचल मचती है। किसीको बन्दूकें भरनेका अवकाश नहीं है, इस कारण सब तीर-कमान लेते हैं। बब्बनखां साहब भी आ पहुंचे)

बब्बन खां—अजी किब्ला! मैं तोपसे मार दूं?

मिर्जा जङ्गी—अमां नहीं! लाहौल-विला-कूवत! तीरसे ठीक रहेगा! (गोरा साफ सामने आ खड़ा हुआ, पर कुछ दूर-पर। उसके साथ एक हिन्दुस्तानी भी है जो उंगलीसे कुछ बता रहा है)

मिर्जा जङ्गी—बन्नन साहब! लीजिये न अब इस गोरेको! जहमें है हजरत!

बन्नन साहब—लीजिये पत्तू साहब, आप ही बिस्मिल्लाह कीजिये।

पुत्तू साहब—अजी हजरत! पत्तन साहब! लीजिये इस अजलीको; वल्लाह!

पत्तन साहब—अजी हजरत आप ही......!

पुत्तू साहब—अजी हजरत! मिर्जा साहब लीजिये। वल्लाह! लीजिये न इस गर्दन-जदनी को!

मिर्जा जङ्गी—वल्लाह पुत्तू साहब! आप!

पुत्तू साहब (बन्नन साहबसे)—वल्लाह—आप...!

पत्तन साहब (पुत्तूसाहबसे)-वल्लाह!...आप...!

पुत्तू साहब (मिर्जा जङ्गीसे)----वल्लाह...आप! (मिर्जा जङ्गीको 'वल्लाह! आप मिर्जा साहब' कहकर मजबूर कर दिया)

मिर्जा जङ्गी—आदाब अर्ज है! आदाब अर्ज है! (सबको आदाब करते हैं और फिर कमान उठाकर उसमें तीर लगाते हैं। इधर उन्होंने अभी तीर लगाया ही है)

पत्तन साहब—तुम्हें वल्लाह! मिर्जा साहब क्या शान है!

बन्नन साहब—सुभान अल्लाह!

पत्तन साहब—क्या कहना......!

(मिर्जा जङ्गी तीर चलाना रोककर 'आदाब अर्ज! आदाब अर्ज!' कर रहे हैं। फिर उन्होंने तीर हाथसे पकड़ा और फिर सबने उनकी तारीफ करना आरम्भ कर दिया और मिर्जा साहबने झुक-झुककर सलाम करने आरम्भ कर दिये। गरज इसी तरह होता रहा आखिरमें मिर्जा जङ्गीने 'या अली!' कहकर गोरेकी ओर तीर छोड़ दिया। तीर पत्ताकर थोड़ी दूरपर जा गिरा। गोरेको सम्भवतः खबरतक न हुई! पर यहां तीर छोड़ते ही शोर मच गया)

सब (एक साथ) वह मारा......!

पत्तन साहब—क्या निशाना है! सुभान अल्लाह!

बन्ननं साहब—वल्लाह! क्या कहना है!

पत्तन साहब—भाई मिर्जा, तुम्हें वल्लाह!...क्या बाल-बाल बचा है! (मिर्जा जङ्गी झुक-झुककर सलाम कर रहे हैं इतनेमें गोरेने एक गोली चलायी। उधर आवाज हुई कि सब एक साथ चौंक पड़े और डरकर बोले 'या अली!')

मिर्जा जङ्गी—अजी हजरत ! बब्बन खां साहब ! किब्ला बब्बन खां साहब ! लीजिये तोप !...तोप......तोप...तोप ...तोप !

पत्तन साहब—तोप...तोप...तोप...तो...ो...ो...प !

बन्नन साहब—वल्लाह ! तोप...तोप !

(बब्बन खां तेजीसे तोपमें सुम्बा देते हैं, पर वह रुक जाता है। 'लाहौल-विला-कूवत' तेजीसे सुम्बा निकालकर हाथ डालते हैं और कुछ उसमेंसे घसीटकर निकालते हैं। एक तोतेका घोंसला दो-चार बच्चों समेत सब लोगोंके बीचमें आ पड़ता है, और सब चौंककर एक साथ चीख उठते हैं 'या अली !' साथ ही सामनेसे गोरोंकी पलटनकी पलटन दिखायी देती है और गोलियोंकी बौछार होती है। एक गोली मिर्जा जङ्गीकी पिंडलीमें लगती है। गोरे हमला कर देते हैं और भगदड़ मच जाती है। पत्तन साहब, बन्नन साहब, बब्बन खां इत्यादि सब भाग जाते हैं। मिर्जा जङ्गी घायल होनेके कारण रह गये, वह चीख रहे हैं। पर कोई नहीं सुनता, सब भाग गये)

मिर्जा जङ्गी—अमां पत्तन साहब ! तुम्हें वल्लाह !...अबे अम्दूके बच्चे !...अबे जुम्मन !—पुत्तू साहब ! (मैदान साफ हो जाता है। दो तीन गोरे मिर्जा जङ्गीके पास पहुंचते हैं और एक उनके लात मारता है)

मिर्जा जङ्गी—वल्लाह गोरे साहब ! सख्त बदतहजीब हैं आप !

गोरा (लातमारकर)—डेम यू ब्लडी स्वाइन !

मिर्जा जङ्गी—अजी हजरत ! गोरे साहब, किब्ला !... ...वल्लाह ! मेरे खून बह रहा है, आप लातें मारते हैं ? वल्लाह किब्ला ! खूब सीखा है...!

दूसरा गोरा—यू स्वाइन...!

मिर्जा जङ्गी—वल्लाह !...गोरे साहब !

(तीनों गोरे बटेरोंकी थैलियां देख पाते हैं और रुपयेकी थैलियां समझकर एक-दूसरे झपटते हैं। एक गोरा पुत्तू साहबकी थैली लेता है।)

मिर्जा जङ्गी----अजी हजरत ! वह पुत्तू साहबका 'जिगरी' है !...ऐ किब्ला ! यह मेरा 'शहजोर' है ! हैं ! हैं ! हजरत ! यह क्या ?

(गोरे बिलकुल सावधानीके साथ रुपयोंकी जगह बटेरें पाकर उनकी गर्दनें मिरोड़-मिरोड़कर जेबोंमें रख रहे हैं और मिर्जा जङ्गी तड़प रहे हैं। गोरे बटेरें लेकर, मिर्जाको लातें मार कर चले जाते हैं)

ड्राप

तीसरा दृश्य

[जाने आलम हजरत बादशाह सलामतको अंगरेज ले गये हैं]

(मिर्जा जङ्गी अपने घरमें घायल और मरेसे भी बुरी हालतमें पड़े कराह रहे हैं]

मिर्जा जङ्गी----हाय मेरा 'शहजोर' ! हाय मेरा 'गुलाम शब्बर' ! लखनऊ लुट गया !

बेगम जङ्गी (मिर्जा जङ्गीके पास बैठे हुए)—अरे जवां-मर्द गोरे, तुझे हैजा हो जाय। अरे कमबख्त गोरे तेरी कब्रमेंसे धुआं उट्ठे। निगोड़े गोरे तेरी कब्रमें कीड़े पड़ें......! *

ड्राप

* उर्दूके सुप्रसिद्ध साहित्यिक श्री अजीमबेग चगताईका एक नाटक।

"टिम्बकटू" कवितापर यह पुरस्कार प्राप्त किया था। इससे वाइल्डका सिर फिर गया। वह ढीठ होकर अपनेको अधिकाधिक आगेको ढकेलता चला गया। आक्सफोर्डमें जब वह पढ़ता था तो उसी बीच एक अध्यापक उसकी कला-सम्बन्धी रुचिसे परिचित होकर उसे अपने साथ भ्रमणके लिए ग्रीस तथा इटली ले गया। ग्रीक कलाके शारीरिक सौन्दर्यसे वाइल्डकी आत्माका संयोग था। वहांकी अपूर्व कलामयी मूर्तियां देखकर उसके आनन्दका ठिकाना न रहा। कलाके सम्बन्धमें उसकी प्रवृत्तिका परिचय इसी बातसे मिलेगा कि Mater Dolorosa (करुणा-माता) की मूर्तिसे उसे प्रसिद्ध ग्रीक सुन्दरी व्यभिचारिणी हेलेनकी मूर्तिने अधिक प्रभावान्वित किया।

जब औस्कार आक्सफोर्डकी पढ़ाई समाप्त करके लन्दन आया तो उसका भाई विली World नामक पत्रमें सम्पादकका काम कर रहा था। उसने अपने पत्र द्वारा अपने उदीयमान भाईको हर तरह प्रसिद्ध करनेकी चेष्टा की। उसके सम्बन्धकी छोटीसे छोटी बातको भी वह छाप दिया करता था। औस्कारकी कवितायें भी उसमें निकलने लगीं। औस्कार भी आत्म-विज्ञापनकी कलासे विशेष अभिज्ञ था। पहले ही कहा जा चुका है कि अपनी चुटीली लच्छेदार बातों तथा विचित्र विरोधाभासात्मक कथनों द्वारा लोगोंको रिझानेमें वह निपुण था। धीरे-धीरे आक्सफोर्डकी तरह लन्दनमें भी उसकी तूती बोलने लगी। सर्वत्र उसके विचित्र वेश-विन्यास, उसके अद्‌भुत वार्तालाप, अपूर्व कविताओं तथा अनोखे लेखोंकी ही चर्चा होने लगी। पर थोड़े ही समयमें आशातीत प्रसिद्धि पानेपर भी आर्थिक दृष्टिसे उसे कुछ भी लाभ होता दिखायी न दिया। वह अपनी कविताओंका संग्रह छपाना चाहता था, पर प्रकाशकोंने उसे स्पष्ट जता दिया कि बाजारमें काव्य-पुस्तकोंकी मांग नहीं, इसलिए वे नहीं छाप सकते। इधर पत्र-पत्रिकाओंमें उसकी जो कवितायें छपती थीं उनकी चर्चा बराबर चली जाती थी। कोई प्रशंसा करता; कोई व्यङ्ग और कोई खण्डन। आखिर एक दूरदर्शी प्रकाशक उसका संग्रह छापनेको तैयार हो गया। उसने बढ़िया कागजमें खूब अच्छी तरहसे सजाकर कवितायें छापीं और लोगोंपर प्रारम्भसे ही धाक जमानेके लिये पुस्तकका मूल्य बहुत ही बढ़ाकर रख दिया। अधिकांश कवियोंकी तरह औस्कार भी बड़ा घमण्डी था, और उसे अपनी प्रतिभापर पूरा विश्वास था। उसे पूरी आशा थी कि पुस्तक छपते ही खूब बिकने लगेगी। आश्चर्यकी बात यह है कि हुआ भी ऐसा ही। कुछ ही सप्ताहोंके भीतर उसके चार संस्करण निकल गये! अनेक पत्रोंमें उसकी आलोचनायें निकलीं। किसीने उसकी कविताओंको सुन्दर बताया, किसीने अश्लील; किसीने उनमें नवीनता पायी, और किसीने कहा कि उनमें केवल श्रेष्ठ कवियोंका अनुकरण है। हास्यरसके विख्यात पत्र "पञ्च" में औस्कारपर उसकी नवीनताके लिए व्यङ्गोक्तियोंकी बौछारें होने लगीं। उसकी प्रत्येक हरकतपर छींटे कसे जाने लगे।

प्रसिद्धिके साथ-साथ औस्कारके रहन-सहनका खर्च भी बढ़ने लगा। "खाओ, पीओ और मौज करो!" उसका यह सिद्धान्त पहलेसे ही था, अब और भी दृढ़ हो गया। "ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्!" अर्थात् "सुरां पिबेत्!" वह वास्तवमें कर्ज करके पान-भोजनमें मस्त रहने लगा। जब हालत बहुत तङ्ग हो गयी तो उसे एक उपाय सूझा। वह समझ गया था कि लिखनेकी अपेक्षा वह बोलनेसे अधिक माल पैदा कर सकता है। उसने World-पत्रमें अपने भाई द्वारा यह घोषित करवा दिया कि "मिस्टर वाइल्डकी कविताओंकी आश्चर्यजनक सफलताके कारण वह अमेरिकामें लेकचरके लिए आमन्त्रित किये गये हैं।" यह निमन्त्रण काल्पनिक था। पर वाइल्डने अमेरिका जानेका निश्चय कर लिया था।

अमेरिका पहुंचनेपर जब रेविन्यू आफिसरोंने सरकारी नियमानुसार पूछा कि अमेरिका आनेका उसका क्या उद्देश्य है, तो उसने अपनी स्वाभाविक चटुलतासे उत्तर दिया—"अपनी प्रतिभा घोषित करनेके अतिरिक्त मेरा और कोई उद्देश्य नहीं है।" इस अद्‌भुत कथनकी चर्चा तत्काल तमाम पत्रोंमें हो गयी और, जैसा कि अमेरिकनोंका स्वभाव है, केवल इसी एक उक्तिके कारण लोग उसके सम्बन्धमें उत्सुक हो उठे। केवल छ महीनेके भीतर अपने लेकचरों द्वारा उसने प्रायः ४००० पौण्ड प्राप्त कर लिये। उसकी हास्यरसपूर्ण सुन्दर वाक्‌शैली तथा कला-सम्बन्धी अनोखे कथनोंका अमेरिकनोंपर बड़ा प्रभाव पड़ा।

विजयी वीरकी तरह जब वह यूरोपको लौटा तो उसकी प्रतिष्ठा और भी बढ़ गयी। इसके बाद उसने "वेश्याका गृह"-शीर्षक एक अभूतपूर्व कविता लिखी, जिससे साहित्यिक

सम्प्रदायमें खासा तहलका मच गया। इसमें वेश्याके प्रति दयाकी अपेक्षा दुर्नीतिकी ही अधिक प्रशंसा थी। इंगलैण्ड-वासी नीतिनिष्ठ होनेके कारण इसे पढ़कर चौंके, बहुतोंने निन्दा की, तथापि सबने उसकी विशेषता स्वीकार की।

१८८४ में उसने कान्सटेन्स लायड नामकी एक प्रतिष्ठिता महिलासे विवाह कर लिया। अमेरिकासे प्राप्त धन उसने कुछ ही महीनोंमें खर्च कर डाला था। फिर तङ्गीकी हालतमें ठोकरें खा रहा था। पर विवाहके बाद स्त्रीसे उसे विशेष और निश्चित आर्थिक सहायता प्राप्त हो गयी। अब वह
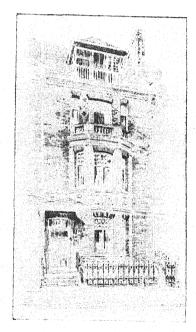
कैलसियामें वाइल्डका मकान

निश्चिन्त होकर लिखनेके काममें दत्तचित्त हो गया। दरिद्रावस्थामें कोई भी श्रेष्ठ लेखक कोई श्रेष्ठ रचना नहीं कर सकता। कालिदासके "एकोहि दोषो गुणसन्निपाते निमज्जतीन्दोः किरणोष्विवाङ्कः।" का खण्डन करते हुए घटकर्परने कहा था— "नूनं न दृष्टं कविनापि तेन दारिद्र्यदोषो गुणराशिनाशी।" अर्थात् जिस कविने यह बात कही है कि "एक दोष चन्द्र-किरणोंमें कलङ्ककी तरह छिप जाता है" उसने इस बातपर ध्यान नहीं दिया कि एक दारिद्र्यदोष ही अनेक गुणोंका नाश कर देता है। कालिदासने जो बात कही थी, यह कथन ठीक उसका उल्टा है। पर भुक्तभोगी ही जानते हैं कि कितना सत्य है! कुछ भी हो, जब स्थायी रूपसे अर्थकी समस्या वाइल्डके लिए हल हो गयी, तो वह लगा धड़ल्लेके साथ लिखने। उसने एक स्त्री-सम्बन्धी पत्रका सम्पादकत्व ग्रहण कर लिया और उसमें मनमाने तौरसे लिखने लगा। एक लेख उसने मिथ्यालापपर लिखा, जिसमें उसने दिखाया कि श्रेष्ठ कलामें असत्य द्वारा ही सत्यका प्रतिपादन होता है। दूसरा लेख उसने "पैन, पैन्सिल एण्ड पाइज़न" शीर्षक लिखा, जिसमें हत्याकी विभीषिकाका निराकरण किया गया, अर्थात् उसने यह जतानेकी चेष्टा की कि स्थान-काल-पात्रके भेदसे हत्या स्तुत्य भी हो सकती है। पर नीतिनिष्ठोंने दोनों लेखोंका अर्थ अपनी इच्छानुसार लगाया और एक विशेष साहित्यिक दलने औस्कारके विरुद्ध धीरे-धीरे विषैला प्रचार करना आरम्भ कर दिया।

उसने छोटी कहानियोंके तीन संग्रह कुछ समयके अन्तरसे छपाये। कुछ कहानियां विशुद्ध कलाकी दृष्टिसे अत्यन्त सुन्दर थीं। पर कुछ ऐसी थीं जिनका स्पष्ट उद्देश्य, आलोचकोंकी रायमें, घोर दुर्नीतिका प्रचार करना था। इसके बाद उसकी सर्वप्रथम लोकप्रिय रचना The Picture of Dorian Gray के नामसे प्रकाशित हुई। यह एक उपन्यास है। इसमें एक कमनीय कान्ति-सम्पन्न तरुण किशोरकी रहस्यमयी आत्माका भयङ्कर विश्लेषण किया गया है। पढ़कर दिल दहल उठता है। एक तरफ यह किशोर एक नियम-बन्धन-हीन-रूप-गुण-शील, वाक्-चतुर युवकके प्रति आकर्षित होता है, दूसरी ओर एक स्त्रीको भी प्यार करनेकी चेष्टा करता है। स्त्रीको भी धोखा देता है, युवकको भी मन-ही-मन कोसता है और अन्तको एक ऐसे चित्रकारकी हत्या करता है जिसने बड़े परिश्रमसे उसके कुसुम-पेलव, स्निग्ध, कान्त शरीरकी अविकल सुन्दर आकृति अङ्कित की थी। क्योंकि अपने घोर रहस्यमय पापाचारसे उसे अपने ऊपर भी घृणा हो जाती है और अपने मनोहर चित्रको वह केवल विडम्बना समझता है जबकि उसकी आत्मा और उसका शरीर दिन-दिन गलितावस्थाको प्राप्त होते जाते हैं। इस उपन्यासमें बीच-बीचमें कला और मनस्तत्त्व-सम्बन्धी अनेक रहस्योंका वर्णन है। पुस्तकके प्रारम्भ में औस्कारने भूमिकाके बतौर कुछ ऐसे सूत्र दिये हैं जिन्हें पढ़कर साहित्यालोचक वैसे ही चकित हुए जैसे बादको

पुस्तकका आख्यान पढ़कर हुए थे। पाठकोंकी जानकारीके लिए हम नीचे कुछ सूत्रोंको उद्धृत करते हैं—

[१] वे ही व्यक्ति वास्तवमें सुसंस्कृत हैं जो सुन्दर वस्तुओंमें केवल सौन्दर्यका ही अन्वेषण करते हैं।

[२] कोई ग्रन्थ सुनीतिपूर्ण या दुर्नीतिमूलक नहीं होता। वह या तो अच्छा होता है या बुरा।

[३] किसी भी कलाकारमें नैतिक सहानुभूति नहीं होती।

[४] पाप तथा पुण्य कलाकारके लिए कला-सम्बन्धी विषयके मसालेके बतौर हैं।

[५] सब प्रकारकी कला अर्थहीन, उद्देश्य-रहित होती है।

नीचे पुस्तकके भीतरसे भी हम एक उद्धरण देना चाहते हैं जिससे पाठक उसके वातावरणसे परिचित हो जायं—

उपन्यासके नायकसे उसका एक प्रशंसक कहता है—"मि० ग्रे, तुम्हारा मुख आश्चर्यजनक और अपूर्व सुन्दर है! नाराज मत होना, मैं सही बात कहता हूं। और सौन्दर्य प्रतिभाका ही दूसरा रूप है—या यों कहिये कि उससे भी बढ़कर है; क्योंकि वह स्वयंसिद्ध है। सूर्यालोक, वसन्त-विकास अथवा गाढ़ नील जलमें ज्योत्स्नाकी सुमधुर रजतोज्ज्वल दीप्तिकी तरह ही यह अनुपम है। लोग कहा करते हैं कि सौन्दर्य केवल बाह्य रूप है। यह हो सकता है। पर संसारका वास्तविक रहस्य व्यक्तमें परिस्फुट होता है, अव्यक्तमें नहीं। मि० ग्रे, देवतोंने तुम्हें वह अनिर्वचनीय आश्चर्य प्रदान किया है। पर देवतोंका दान स्थायी नहीं रहता। जब तुम्हारा नव-यौवन बीत जायगा तो फिर कुछ भी शेष नहीं रहेगा। जो प्रत्येक महीना बीतता चला जाता है वह तुम्हें किसी अज्ञात विभीषिकाकी ओर ढकेले लिये जाता है। समय ईर्ष्यापरायण है। तुम्हारे गाल एक दिन पिचक जायंगे, रङ्ग पीला पड़ जायगा और आंखोंके नीचे गड़े पड़ जायंगे। इसलिए जबतक रूप है तबतक उसे पूर्णतया उपभोग करो! पर सावधानीके साथ। अपनी उमड़ती हुई जवानीका सोना साधारण, तुच्छ, हेय विषयोंमें बरबाद मत करो! जो सुन्दर नवजीवन तुम्हारे भीतर है उसको नित्य नये आनन्दों तथा उमङ्गोंके साथ बिताओ! वसन्त आता है, मुरझायी हुई कलियां फिर खिलती हैं, पर नव-यौवन जहां गया, फिर कभी नहीं लौटता। इसलिए यह अत्यन्त दुर्मूल्य है।

वाइल्ड सौन्दर्यके सम्बन्धमें Goethe की इस उक्तिको दुहराया करता था—"सुन्दर मङ्गलसे भी बढ़कर है, क्योंकि उसके भीतर मङ्गल भी समाया हुआ है।"

फ्रान्सीसी लेखक Baudelaire की कविताओंमें नैतिक उच्छृङ्खलता पाकर वह जी जानसे उनपर फिदा हो गया था। उसका Fleurs de mal (कलङ्क-कुसुम) उसे विशेष प्रिय था। "डोरियन ग्रे" के बाद वाइल्डने Lady Windermere's Fan नामक एक नाटक लिखा। इसके बाद कई नाटक और काव्य-पुस्तकें लिखीं जिनकी विलक्षणताने साहित्य-संसारको चकित कर दिया।

[२]

"डोरियन ग्रे" में वाइल्डके जीवनकी सारी फिलासफी आ जाती है। इस पुस्तकसे उसकी मानसिक प्रवृत्ति भली-भांति झलक जाती है। जिस जघन्य दुष्कर्मके लिए वह जेल गया था, उसका अनुमान इससे लगाया जा सकता है।

मनस्तत्त्वविदोंने जिसे Sexual Perversion (यौन-सम्बन्धी विकृति) कहा है, वाइल्डमें वह पूर्णमात्रामें वर्तमान था। कला-सम्बन्धी अद्भुत फिलासफीके नाना उद्गारोंसे वह अपने अन्तस्तलकी जघन्यतापर सुन्दर स्वर्ग-वर्णमय यवनिका डाल देता था। बहुत कुछ अंशतक (जहांतक निष्कलुष सौन्दर्यके उपभोगका प्रश्न था) उसके मार्मिक विचार justified थे। पर उसकी शारीरिक, इन्द्रिय-सम्बन्धी ताड़ना धीरे-धीरे जिस घृणित अवस्थाको पहुंचती जाती थी, वह अत्यन्त शोचनीय थी। आगे चलकर हम उसकी जेल-यात्राकी जो कहानी वर्णित करेंगे, उससे यह बात स्पष्ट हो जायगी।

बहुत कम लोगोंको यह बात विदित होगी कि ब्रिटेनमें स्वजातीय व्यभिचार (Homosexuality) किस हदतक पहुंचा हुआ है। वहांके अनेक राजाओं, प्रतिष्ठित राजनीतिज्ञों तथा श्रेष्ठ कवियोंको इस पापसे कलङ्कित बतलाया जाता है। और तो और, संसारके निर्विवाद-सिद्ध सर्वश्रेष्ठ कवि विलियम शेक्सपीयर भी इस घोर कलङ्कसे अछूता न रहा। पाठकोंको आश्चर्य होगा, यदि हम कहें कि उसके जगत्प्रसिद्ध sonnets (चतुर्दशपदी कवितायें) एक सुन्दर लड़केके प्रति लिखे गये हैं। शेक्सपीयर इन्हें छपाना नहीं चाहता था, बल्कि छिपाना

चाहता था। उसने उन्हें गुप्त रूपसे अपने प्रियपात्रको अर्पित किया था। पर उसके मरते ही उसके प्रियपात्रने उन्हें छपवा डाला, उस व्यक्तिने अपना नाम गुप्त रखा—केवल W. H. लिखकर सङ्केत-मात्र दे दिया। इससे कुछ लोगोंने अनुमान किया कि यह W. H. महाशय लार्ड साउथैमटन हैं। पर आजकल इस सम्बन्धमें यह मत ही अधिक मान्य समझा गया है कि W. H. कोई ऐक्टर था, जो शेक्सपीयरके नाटकोंके अभिनयमें स्त्रीका पार्ट खेला करता था। पाठकोंको मालूम

लार्ड अल्फ्रेड डूगलास (२४ वर्षकी आयुमें)

होगा कि शेक्सपीयरके जमानेमें आजकल हमारे कालेजों, स्कूलों तथा छोटे शहरोंकी नाटक-मण्डलियोंकी तरह स्त्रियोंका पार्ट सुकुमार बालक अथवा नववयके किशोर ही खेला करते थे। स्त्रियोंको आज्ञा नहीं थी। इस प्रथासे अप्राकृतिक व्यभिचारको यथेष्ट प्ररोचना मिलती थी। कहा जाता है कि शेक्सपीयरके प्रियपात्रकी आर्थिक हालत जब उसकी मृत्युके बाद बहुत खराब हो गयी तो लाचार होकर उसने शेक्सपीयरके दुर्मूल्य सानेटोंको एक ठग प्रकाशकके हाथ बहुत थोड़े दामोंमें बेच डाला। यदि उस व्यक्तिकी आर्थिक स्थिति ठीक होती तो शेक्सपीयरके पतनके इतिहाससे संसार अनभिज्ञ रहता। पर साथ ही श्रेष्ठ कविताके निदर्शनसे भी वञ्चित रहता। कार्लाइल जैसे नीति-निष्ठोंने इन कविताओंकी विशेष प्रशंसा की है।

शेक्सपीयरके युगमें जिस प्रकार सुकुमार बालकोंको रङ्गमञ्चपर लानेके कारण अप्राकृतिक व्यभिचारका प्रचार हुआ, वाइल्डके युगमें (और वर्तमान कालमें भी) "पबलिक स्कूलों" की महिमासे यह दुष्कर्म फैला। इंगलैण्डके तथाकथित पबलिक स्कूलोंके क्या नियम हैं, इस बातसे बहुत कम लोग परिचित होंगे। उनमें लड़कोंको साथ पढ़ना, साथ रहना, साथ खाना और साथ ही सोना होता है। विशेष-विशेष अवसरोंपर उन्हें घर जानेकी छुट्टी मिलती है, वर्ना सबको सब समय स्कूलमें ही रहना पड़ता है। इस हालतमें लड़कोंमें घनिष्ठता बहुत दूरतक बढ़ जाती है, जिसका परिणाम घातक होता है। इस सम्बन्धमें Fielding का कहना है—

"Public schools are the nurseries of all vice and immorality. All the wicked fellows whom I remember at the university were bred at them."
अर्थात्—"पबलिक स्कूल सब प्रकारके दुष्कर्म तथा दुर्नीतियोंके पोषक स्थान हैं। विश्वविद्यालयोंमें मैं जिन-जिन दुराचारियोंसे परिचित हुआ हूं वे सब इन्हीं स्कूलोंमें पले थे।"

वाइल्डने अपने एक मित्रसे बादको स्वीकार किया था कि पबलिक स्कूलमें ही वह अप्राकृतिक व्यभिचारसे परिचित हो गया था। पबलिक स्कूलके बाद जब लड़के कालेजोंमें आते हैं तो वहां भी अपनी दुष्प्रवृत्तिको सुधारनेकी सुविधा उन्हें प्राप्त नहीं होती। बल्कि ऐसा वातावरण मिलता है जिससे वे और भी बिगड़ जाते हैं। कालेजके लड़कोंको इंगलैण्डमें लड़कियोंके साथ कतई मिलने नहीं दिया जाता। वहांके नीति-निष्ठ अध्यापक तथा अभिभावक [गार्जियन] यह बात नहीं समझना चाहते कि एक ऐसे देशमें, जहांकी स्त्रियां यथेष्ट स्वतन्त्र हैं, युवकोंपर इस प्रकारके दमनका कैसा अनर्थमूलक परिणाम होगा।

औस्कार वाइल्डका प्रियपात्र अल्फ्रेड डूगलास था, जो एक लार्ड (मार्क्विस) का लड़का था। डूगलास-वंश इंगलैण्डके इतिहासमें बड़ा प्रसिद्ध है। इस लार्ड-पुत्रसे औस्कारका सारा परवर्ती जीवन जड़ित रहा है। औस्कार जब Dorian Gray लिख चुका था और साहित्य-संसारमें यथेष्ट प्रतिष्ठा पा

चुका था, तब पहले-पहल डूगलास वाइल्डसे मिला। डूगलास उस समय आक्सफोर्डमें पढ़ रहा था औस्कारसे अपने पहले ऐतिहासिक मिलनके सम्बन्धमें वह स्वयं Oscar Wilde And Myself" शीर्षक अपनी पुस्तकमें लिखता है—"एक बार छुट्टियोंमें मैं अपने मित्र जानसनके साथ (जो मेरी ही तरह कवितायें लिखा करता था और मेरी ही तरह दुबला, और सुन्दर सुकुमार था) वाइल्डके साथ कैलसियामें उसके मकानमें मिलने गया। बस उसी दिन हम दोनोंके बीच मैत्री स्थापित हो गयी, जिसका परिणाम दोनोंमेंसे किसीके लिए भी हितकर नहीं हुआ। कारण चाहे कुछ भी हो, उस दिन वाइल्डने जिस उत्साह और उमङ्गसे मेरे साथ सुन्दर, लच्छेदार बातें कीं वैसी बादको कभी न कर पाया। मैं स्वीकार करता हूं कि मैंने उसे प्रसन्नचित्त, हृदयग्राही और प्रेमके योग्य पाया। वह वास्तवमें सौन्दर्यका उपासक तथा विद्वान् था। अंगरेजी और फ्रेञ्च बोलनेका उसे अच्छा अभ्यास था और उसकी आवाज बड़ी प्यारी तथा बोलनेका ढंग उड़ा आकर्षक था।"

औस्कार वाइल्डके चित्रसे पाठकोंको मालूम हो जायगा कि उसके मुखकी बनावट प्रभावोत्पादक होनेपर भी उसकी मोटाईमें एक ऐसा तैलाक्त (Oily) भाव था जो उसकी इन्द्रियपरायणता जतलाता था और रुचि-विशेषज्ञोंके मनमें कुछ अरुचिका-सा भाव उत्पन्न कर देता था। तथापि कालिदासके कथनानुसार—"भिन्नरुचिर्हि लोकः।" डूगलास उम्रमें अभी कच्चा था। यद्यपि इक्कीस वर्षका हो चला था, तथापि ऐसा सुकुमार-शरीर था कि केवल पन्द्रह वर्षका दिखायी देता था। उसका जो चित्र इस लेखके साथ दिया जाता है वह चौबीस वर्षकी अवस्थाका है। इसमें भी वह सोलह वर्षसे अधिकका मालूम नहीं पड़ता। उसने भी अपने सम्बन्धमें स्वयं यही बात लिखी है। औस्कारकी मित्रताके संसर्गसे जिन-जिन साहित्यिकोंने लार्ड डूगलासको किशोर (अथवा यों कहिये कि तरुण) अवस्थामें देखा है उन सबका इस सम्बन्धमें एकमत है कि वह अत्यन्त सुन्दर, सुकुमार तथा दर्शनीय था। स्वयं कविताकी ओर झुकाव होनेके कारण और औस्कारकी सर्वत्र चर्चा होने तथा साहित्य-जगतमें धाक जमनेके कारण, उसकी प्रभावशाली बातें सुनकर वह उसपर रीझ गया। धीरे-धीरे दोनोंकी घनिष्ठता ऐसी बढ़ी कि दोनों सर्वत्र सब समय साथ ही दिखायी देने लगे। लोगोंमें कानाफूसी होने लगी। पर इस समय औस्कार साहित्य-जगत्का शेर बन चुका था। अतः जनताकी निन्दा-स्तुतिसे अपनेको परे समझने लगा था। डूगलासकी मांने आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटीके प्रेसीडेण्टको लिखा कि वाइल्डकी सोहबत डूगलासके लिए उचित है या नहीं। प्रेसीडेण्टने बिना किसी द्विविधाके जवाब दिया कि वाइल्डसे अच्छा साथी आपके लड़केके लिए और कोई हो नहीं सकता। वाइल्डका चरित्र घोर निन्दनीय था, सन्देह नहीं। पर साथ ही साहित्य-संसारको वह अमूल्य सामग्री भी दे रहा था। इसलिए एक तरफ तो वह साहित्य-जगत्में प्रसिद्धि पाता जाता था और दूसरी ओर बदनाम भी उसी अनुपातमें हो रहा था। ईर्ष्यापरायण साहित्यालोचक साहित्यालोचना छोड़कर उसके सम्बन्धकी व्यक्तिगत बातोंकी चर्चा करके उसे संसारकी आंखोंमें हेय और घृण्य बनानेकी सतत चेष्टा करने लगे। अनेक व्यङ्ग लेख तथा कार्टून उसके सम्बन्धमें छपने लगे। "पञ्च" ने वाइल्ड और डूगलासको लेकर जो व्यङ्गचित्र छापा उसकी नकल हम पाठकोंके मनोरञ्जनार्थ यहांपर (पृष्ठ ७७ में) दे रहे हैं।

यह पहले ही कहा गया है कि डूगलास कविता करता था। उसकी कवितायें तात्कालिक अंगरेजी सामयिक पत्रोंमें छपनेवाली कविताओंसे कहीं सुन्दर होती थीं। और शब्दोंके चुनावमें तो वह औस्कारको पाठ पढ़ाया करता था। औस्कारकी कई कविताओंमें वह सुधार किया करता था। बहुत झगड़नेके बाद औस्कार अन्तको उसके सुधारपर सम्मति देनेके लिए बाध्य होता था।

डूगलासके पिताके पास अतुल धन था। इसलिए खर्चके सम्बन्धमें उसकी आदत बिगड़ी हुई थी। अर्थका क्या मूल्य है, कितने परिश्रमसे वह कमाया जाता है, इस सम्बन्धमें वह बिलकुल अनभिज्ञ था। कालेज छोड़कर जब वह औस्कार-के साथ ही अधिक समय बिताने लगा तो उसका सब खर्चा औस्कारको ही चलाना पड़ा। और वह खर्चा भी मामूली नहीं; लार्डके पुत्रका खर्चा! औस्कार एक सफल लेखक होनेपर भी यह उसकी सामर्थ्यके बाहर था। फिर भी वह इधर-उधरसे ऋण लेकर, अपने प्रकाशकोंसे एडवान्समें रुपये मांगकर डूगलासकी फरमायशें पूरी करने लगा।

डूगलासके सम्बन्धमें वाइल्डने जेलसे वापस आनेपर अपने एक परम मित्रसे कहा था---"अपने सम्भ्रान्तवंशीय स्वभावकी धृष्टतासे वह मुझे जितना आकर्षित करता था, उतना ही भयभीत भी करता था। इसलिए मैं सदा उससे बचे रहनेकी चेष्टा करता था। पर वह मुझे नहीं छोड़ता था। बार-बार मुझसे मिलनेके लिए लालायित रहता था, और मेरे लिए संयम कठिन हो जाता था। यही एक मेरा दोष है। इसीने मुझे बरबाद किया। उसने मेरा खर्चा इतना बढ़ा दिया कि उसे निभाना मेरे लिए कठिन हो गया।" लन्दन तथा पैरिसके बड़े-से-बड़े होटलों तथा रेस्टोरेण्टोंमें उसे डूगलासको खिलाना पड़ता था।

अलफ्रेड डूगलासका पिता मार्किस आफ क्वीन्सबरी बड़ा जालिम था। बड़ा खूंख्वार! उसका उत्कट स्वभाव और अद्भुत आचरण देखकर कभी-कभी सन्देह होने लगता था कि वह पागल है। अपनी स्त्री (डूगलासकी माता) को उसने इतना तङ्ग किया था कि उसे डायवोर्स करवानेको बाध्य होना पड़ा। लड़के सब स्वभावतः मांके ही पक्षपाती थे और पिताके घोर विरोधी हो गये थे। फिर भी अलफ्रेड डूगलासको वह कुछ मासिक भेजा करता था। पर जब वाइल्डके साथ उसकी घनिष्ठता अधिकाधिक बढ़नेके कारण अनेक प्रकारकी सन्देहात्मक बातें उसके कानोंमें गयीं तो वह बेतरह बिगड़ बैठा। जो विभीषिकापूर्ण पत्र उसने इस सम्बन्धमें अपने लड़केको लिखे, उनमेंसे एकका अविकल अनुवाद हम यहांपर देते हैं—

बड़े दुःखके साथ मुझे तुम्हें इस ढंगका पत्र लिखना पड़ रहा है; पर कृपया इस बातका ख्याल रखना कि मैं तुमसे कोई भी लिखित उत्तर नहीं चाहता। हालमें तुमने अपने पत्रोंमें जिस प्रकारके उत्तेजक, धृष्ट वाक्योंका उपयोग किया गया है, वे अत्यन्त कष्टप्रद हैं, इसलिए मैं अब इस प्रकारके पत्रोंको नहीं पढ़ना चाहता। यदि तुम्हें कोई बात कहनी हो तो स्वयं आकर मुझसे कहो। पहली बात जो मैं पूछना चाहता हूं, वह यह है कि क्या तुम आक्सफोर्डकी पढ़ाई बीचहीमें छोड़नेके बाद (जिसका कारण तुम्हारे अध्यापकने मुझे भली-भांति समझा दिया है) आवारा फिरना चाहते हो? तुम जब आक्सफोर्डमें समय नष्ट कर रहे थे तो मैं इसी आशामें बैठा था कि तुम अन्तको सिविल सर्विस या फारिन आफिसमें भरती हो जाओगे; इसके बाद इधर मुझे यह ख्याल था कि तुम 'बार' (वकालत) में प्रवेश करनेका इरादा करते हो। पर अब स्पष्ट ही मुझे यह मालूम होता है कि तुम कुछ नहीं करना चाहते। कुछ भी हो, मैं तुम्हें आवारा फिरनेके लिए अब एक कौड़ी भी नहीं भेजना चाहता। तुम अपना भविष्य नष्ट कर रहे हो, और यह मेरे लिए अन्यायकी बात होगी, यदि मैं तुम्हें इसके लिए सहायता दूं। दूसरी बात जो मैं लिखना चाहता हूं वह और भी अधिक कष्टप्रद है—वह है वाइल्ड नामके शख्सके साथ तुम्हारी घनिष्ठताके सम्बन्धमें। या तो तुम उसका साथ छोड़ो या मुझे तुम्हें छोड़ना होगा और सब प्रकारकी आर्थिक सहायता बन्द कर देनी पड़ेगी। मैं साफ-साफ कहना चाहता हूं, कोई बात छिपाना पसन्द नहीं करता। अपनी आंखों मैंने तुम दोनोंको अत्यन्त घृणित और जघन्य सम्बन्धमें देखा, जैसा कि तुम्हारे हाव-भावसे भी टपकता था! अपने जीवनमें मैंने कभी वैसा बीभत्स दृश्य नहीं देखा, जैसा तुम्हारी मुखाकृतिमें झलकते हुए पाया। इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं कि लोग नाना प्रकारकी बातें इस सम्बन्धमें कर रहे हैं। मैंने हालमें विश्वस्त सूत्रसे यह भी सुना है कि उसकी (वाइल्डकी) स्त्री उसे अप्राकृतिक व्यभिचार तथा अन्य दुष्कर्मोंके कारण तलाक देना चाहती है। क्या यह सच है? यदि मेरी बातें सच निकलीं और सर्वसाधारणमें इस बातका प्रचार हो गया तो मैं उसे दृष्टिमात्रमें गोलीसे उड़ा दूंगा, इसके लिए मैं दोषी नहीं गिना जा सकता। ये कायर क्रिश्चियन अंगरेज, जैसा कि वे अपनेको कहते हैं, बिना जगाये होशमें नहीं आयेंगे।

तुम्हारा घृणा-पूरित, तथा-कथित बाप--

क्वीन्सबरी

डूगलासने उत्तरमें निम्नलिखित तार भेज दिया—

What a funny little man you are !

Alfred Douglas

अर्थात्—"तुम कैसे मजेके आदमी हो !"

इस तारका असर क्या हुआ होगा, इसका अनुमान सहजहीमें किया जा सकता है। क्वीन्सबरी क्रोधके कारण उन्मत्त हो उठा। एक दिन वह स्वयं औस्कारके पास आया। दोनोंके बीच चखचख हुई। उसने औस्कारको ऐसी जली-कटी सुनायी कि औस्कारको उसे धक्का देकर बाहर निकालना पड़ा। इसके बाद डूगलासने उसे यह पत्र लिखकर भेजा—

चूंकि मेरे पत्रोंको आप बिना खोले वापस भेज दे रहे हैं, मैं लाचार होकर पोस्टकार्ड भेज रहा हूं। मैं आपको सूचित करना चाहता हूं कि मैं आपकी वाहियात धमकियोंको एकदम उपेक्षाकी दृष्टिसे देखता हूं। जबसे आप औस्कार वाइल्डके मकानमें तशरीफ लाये हैं, तबसे मैं नियमपूर्वक उसके साथ सार्वजनिक भोजनालयोंमें खुले-खजाने जाने लगा हूं। मैं बराबर इसी तरह, जिसके साथ इच्छा होगी, खूब मजेसे जाऊंगा। मैं अब छोटा लड़का नहीं रहा, मैं अब अपना मालिक हूं। आप कम-से-कम बारह मर्तबे मुझे त्याग चुके हैं और अत्यन्त नीचतापूर्वक मुझे आपने रुपये-पैसेके बिना हैरान किया है। इसलिए अब आपका मेरे ऊपर किसी तरहका अधिकार नहीं है। यदि ओ० डबल्यू० (औस्कार वाइल्ड) आपके ऊपर नालिश करना चाहता तो आप अपनी घोर अपमानजनक उक्तियोंके कारण सात साल-की हवा खाते। आपके प्रति अत्यन्त घृणा होनेपर भी, मैं कुटुम्बके ख्यालमें इसे टालना चाहता हूं, पर यदि आप कभी मुझपर आक्रमण करनेका दुस्साहस करें तो मैं अपनी रक्षा रिवाल्वरसे करूंगा, जिसे मैं हर वक्त अपने पास रखता हूं; और यदि मैं आपपर गोली चलाऊं, या वह चलाये, तो यह पूर्णतः उचित होगा, क्योंकि हमें एक खतरनाक जंगली आदमीसे अपनी रक्षा करनी होगी, और यह मेरा ख्याल है कि आप यदि मर जायं तो बहुत आदमी ऐसे होंगे जो आपके नामको न रोयेंगे।

ए० डी०

जो पिता-पुत्र आपसमें इस प्रकारके घातक पत्रोंका आदान-प्रदान कर सकते हैं, उनकी असाधारण अथवा अपसाधारण (abnormal) प्रकृतिपर किसीको सन्देह नहीं हो सकता। डूगलास साधारणतः सुसभ्य, मिलनसार और भावुक प्रकृतिका व्यक्ति था; पर जटिल प्रकृति [complex nature] के पुरुषोंकी तरह उसके स्वभावमें भी द्विविध भाव पाया जाता था।

१८९५ के फरवरी महीनेमें एक दिन मार्किस आफ क्वीन्सबरी आल्वेमार्ल क्लबमें औस्कारके नाम एक घोर अपमानजनक कार्ड लिखकर छोड़ गया। इससे स्पष्ट ही मालूम होता था कि वह औस्कारके साथ कोर्टमें लड़नेको तैयार है। डूगलासने औस्कारको उत्तेजित किया और कहा कि फौरन क्वीन्सबरीके विरुद्ध अपमानकी नालिश कर देनी चाहिए। "फोर्टनाइटली" पत्रका सम्पादक उसका परम मित्र था। वाइल्डने उससे कहा—"मेरे 'सालीसिटर' मुझसे कहते हैं कि मेरे जीतनेकी पूरी आशा है। पर उन्हें भय है कि मेरी पुस्तकोंसे मेरे विरुद्ध प्रमाण संग्रह करनेकी चेष्टा की जायगी। क्या तुम अपने पत्रमें एक आलोचनात्मक लेख द्वारा यह प्रमाणित करनेकी चेष्टा करोगे कि 'डोरियन ग्रे' दुर्नीतिमूलक नहीं है ?" उसके मित्रने कहा कि वह अवश्य इस सम्बन्धमें लिखेगा, पर उसने यह सूचित किया कि मामला बड़ा सङ्गीन है और यथासम्भव इस बलासे अलग रहना ही उचित है। पर औस्कार तो आत्मघातकी ओर पैर बढ़ा चुका था। उसकी मति उसे नाशकी ओर ले जा रही थी।

"फोर्टनाइटली" का सम्पादक दूसरे दिन बर्नार्ड शाके साथ औस्कारके पास गया और उसे फिर समझाया कि इस फन्देमें मत पड़ो और क्वीन्सबरीके विरुद्ध मामला मत चलाओ। पर औस्कार राजी न हुआ। शाने भी यही बात कही। पर इस बीच डूगलास वहां आया। उसने जब यह प्रस्ताव सुना तो बोला—"इसके यही माने हैं कि तुम औस्कारके मित्र नहीं हो।"

सुप्रसिद्ध व्यङ्ग-चित्रकार मैक्स बीरबूमने 'पञ्च' में वाइल्ड तथा डूगलासका यह 'केरिकेचर' अङ्कित किया था। वाइल्ड मोटा था और डूगलास सुकुमार। इस चित्रमें दोनोंके Contrast की व्यङ्गात्मक तुलना की गयी है।

इस बीच औस्कार-वाइल्डके शत्रु उसके विरुद्ध नाना प्रमाण संग्रह करनेमें लगे थे। डूगलासको उसने जो-जो पत्र समय-समयपर लिखे थे, उनमेंसे दो-एक पत्र गुम होकर बदमाशों द्वारा इधर-उधर फिराये जा रहे थे। एक दिन एक आदमी एक चिट्ठी लिये उसके पास आया और बोला कि ६० पौण्ड मिलनेपर वह उसे वापस दे सकता है। पत्र इस प्रकार था—

मेरे प्यारे लड़के—

तुम्हारी कविता अत्यन्त सुन्दर है, और यह बड़े आश्चर्यकी वात है कि तुम्हारे गुलाबकी पंखुड़ियोंके समान रक्त अधरोंमें जिस प्रकार चुम्बनका मद भरा है, सङ्गीत-सुधा भी उससे उसी तरह निःसृत होता है। तुम्हारी सुकुमार स्वर्णात्मा प्रेम तथा कविताके बीच विचरण करती है। ग्रीक युगमें हायेसिन्थसने भी एपोलो* का अनुसरण तुम्हारी तरह नहीं किया। तुम लन्दनमें अकेले क्यों हो, सैलिसबरी कब जाओगे? वहां जरूर जाना और गोथिक कलाके पीत प्रकाशमें अपने हाथों-को ठण्डा कर आना। जब इच्छा हो, यहां चले आना। यह एक रमणीक स्थान है, और केवल तुम्हारी ही कमी है। पहले सैलिसबरी अवश्य हो आना।
सदा अक्षय प्रेम-सहित,

तुम्हारा
औस्कार।

यह पत्र बड़ा सनसनीखेज था, सन्देह नहीं। औस्कार बहुत घबराया। पर वह बड़ा घमण्डी था। उसने रुपये देकर पत्र वापस लेनेसे इन्कार कर दिया और यह भाव दिखाया कि उसमें कुछ नहीं है।

३ अप्रैल १८९९ के दिन अदालतमें मामला चला। एक घण्टा पहलेसे ही अदालतमें ऐसी भीड़ जमा हो गयी कि बहुतोंको बाहर खड़ा रहना पड़ा। सर एडवर्ड क्लार्क सरीखे प्रसिद्ध सालीसिटर वाइल्डके पक्षमें थे, और मि० कार्सन आदि क्वीन्सबरीकी तरफ। प्रोसेक्यूशनकी तरफसे मामला जब समझाया जाने लगा, तो मालूम हुआ कि क्वीन्सबरीने अपनी सफाईको उलटे वाइल्डके प्रति दोषारोपणमें परिणत कर दिया है।

कार्सनने जिरहमें वाइल्डसे प्रश्न किया—"क्या आपने The Chameleon पत्रमें कोई लेख लिखा है?"

"हां।"

"क्या आपने उसमें 'पुरोहित और नवीन शिष्य'-शीर्षक कोई कहानी छपवायी है?"

"नहीं।"

"क्या वह कहानी दुर्नीतिमूलक थी?"

औस्कारने व्यङ्गके बतौर उत्तर दिया—"इससे भी खराब, क्योंकि लेखक एक अनाड़ी अण्डरग्रेजुएट होनेके कारण ठीक तरहसे उसे लिख न सका।"

"क्या आपने कभी इस बातपर विचार किया है कि आपकी रचनायें दुनीर्ति-पोषक होती हैं?"

"मैं सुनीति और दुर्नीतिपर कभी विचार नहीं करता, अच्छे-बुरेका ख्याल करता हूं।"

मि० कार्सनकी प्रत्येक बातका औस्कारने अधिकारपूर्वक खण्डन किया।

इसके बाद मि० कार्सनने "डोरियन ग्रे" का उल्लेख करते हुए कहा—"आपने एक पुरुषके दूसरे पुरुषके प्रति मुग्ध

* एपोलो सौन्दर्यका देवता है। वह हायेसिन्थस नामके सुकुमार किशोरको प्यार करता था।

होनेकी बात लिखी है। क्या आप कभी किसी पुरुषके प्रति मुग्ध हुए हैं ?"

"नहीं, मैं अपनेको छोड़कर किसीपर मुग्ध नहीं हुआ।"

इसपर सब लोग ठठाकर हंस पड़े।

इसके बाद मि० कार्सनने वह चिट्ठी पढ़ी जो वाइल्डने डूगलासको लिखी थी, और जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। तत्पश्चात् निम्नलिखित पत्र पढ़ा—

सेवाय होटल,
विक्टोरिया इम्बैङ्कमेण्ट, लन्दन।

मेरे प्रियतम किशोर !

तुम्हारा पत्र अत्यन्त आनन्दप्रद है। वह मेरे लिए लाल तथा पीतवर्ण मदिराके समान है; पर मैं उदास हूं और मेरी चित्त-स्थिति ठीक नहीं है। बोसी, (डूगलासका प्यारका नाम) तुम मेरे प्रति क्रोधके भावोंका प्रदर्शन न किया करो। वे मुझे कत्ल किये डालते हैं, वे जीवनका आनन्द नष्ट कर देते हैं। तुम्हारे ग्रीक मूर्तिके समान सुन्दर वक्राधरोंको क्रोधसे विकृत होते हुए मैं नहीं देख सकता। × × × मैं तुमसे जल्दी मिलना चाहता हूं। तुम्हीं एक ऐसे स्वर्गीय पदार्थ हो जिसकी मुझे आवश्यकता है, प्रतिभा तथा सौन्दर्यके स्वरूप तुम्हीं हो। क्या मैं सैलिसबरी आऊं ? यहां मैं हफ्तेमें ४९ पौण्डका बिल चुका रहा हूं। एक सुन्दर बैठकका कमरा भी मैंने भाड़ा लिया है। तुम यहीं क्यों नहीं चले आते, मेरे प्यारे, मेरे अपूर्व सुन्दर लड़के ?

सदैव तुम्हारा औस्कार

वाइल्डने इन पत्रोंका मर्म समझाते हुए कहा—"यह प्रेम ऐसा है जिसे कोई विशेष नाम नहीं दिया जा सकता। बड़े पुरुषका लघुवयस्कके प्रति यह प्रेम ठीक उसी प्रकार उन्नत है जैसा दाऊदका जूवियातनके प्रति था, यह वही प्रेम है जिसका अफलातूनने उल्लेख किया है, माइकेल एन्जेलो तथा शेक्सपियरने जिसका वर्णन अपनी कविताओंमें किया है। इस स्वर्गीय प्रेमका मर्म वर्तमान शताब्दी समझनेमें असमर्थ है। यह सुन्दर है, प्रशंसनीय है, संस्कृतिका परिचायक है।"

पहले दिनकी जिरह यहींपर समाप्त हो गयी। दूसरे दिन मि० कार्सनने वाइल्डसे पूछा—"क्या आप टेलर नामके व्यक्तिको जानते हैं ?"

"हां।"

"क्या आप उसके यहां तीसरे पहर चाय पीने जाया करते हैं ?"

"हां।"

"क्या आपने इस बातपर गौर किया है कि उसके कमरोंमें दिनके वक्त भी मोमबत्तियां जला करती हैं ?"

"हो सकता है, मुझे ठीक ख्याल नहीं।"

"क्या आप वहां कभी वुड नामके व्यक्तिसे मिले ?"

"एकबार।"

"आपको मालूम है कि टेलर एकबार पुलिस द्वारा पार्कर नामक एक आदमीके साथ पकड़ा गया था ?"

"मैंने अखबारमें पढ़ा था।"

"क्या टेलर लड़कोंसे आपकी पहचान लगानेके लिए डिनर-पार्टियोंका प्रबन्ध करता था ?"

"नहीं।"

"पार्करको आप क्या 'चार्ली' कहकर पुकारा करते थे, और वह आपको 'औस्कार' कहकर पुकारता था ?"

"हां"

"पार्करकी उम्र क्या थी ?"

"मैं मर्दुमशुमारीकी रिपोर्टकी तरह सबकी उम्रके आंकड़े नहीं रखता।"

"आपको शायद मालूम था कि पार्कर एक साधारण व्यक्ति है और वह कोई 'आर्टिस्ट' या साहित्यिक नहीं है। तब किस उद्देश्यसे आपने उसके साथ मित्रता की ?"

"मैं खुशदिल, चञ्चल, व्यक्तियोंको पसन्द करता हूं। किसी सयाने वकीलके प्रश्नोंका उत्तर देनेकी अपेक्षा मैं किसी लापरवाह लड़केके साथ बातें करना अधिक पसन्द करता हूं।" इसपर सब हंसे।

"फ्रेड एटकिन्स नामके व्यक्तिसे आप पहले-पहल कब मिले ?"

"अक्टूबर या नवम्बर १८९२ को।"

"वह भी एक साधारण व्यक्ति था और कोई साहित्यिक या कलाकार नहीं था, यह आपको मालूम है?"

"हां।"

"क्या आप उसे 'फ्रेड' कहते थे और वह आपको केवल 'औस्कार' कहता था?"

"हां।"

"क्या आप उसके साथ पैरिस गये?"

"हां।"

"किसने उससे आपका परिचय कराया?"

"टेलरने।"

"क्या आप वाल्टर ग्रेञ्जरको जानते हैं?"

"हां।"

"क्या आपने कभी उसके मुंहसे चुम्बन ग्रहण किया है?"

इस प्रश्नपर तमककर औस्कारने कहा—"नहीं साहब, अफसोस है कि वह लड़का बदसूरत था!"

"क्या केवल इसी कारणसे आप निरस्त रहे?"

"ओह, मि० कार्सन, आप बड़ा अपमानजनक प्रश्न करते हैं!"

"जनाब, आपने किस उद्देश्यसे यह कहा कि वह लड़का बदसूरत था?"

"चूंकि आपने अपमान-जनक प्रश्नसे मेरा अपमान करके मुझे चिढ़ाया।"

"क्या यही कारण था कि आपने उसकी बदसूरतीका उल्लेख किया?"

इस एक बातपर मि० कार्सनने बार-बार इतना जोर दिया और वाइल्डको "क्यों? कैसे? किसलिए?" इत्यादि प्रश्नोंसे ऐसा परेशान किया कि बेचारा तङ्ग आ गया।

इसके बाद मि० कार्सनने अपनी वक्तृतामें दिखलाया कि प्रायः एक ही आयुके साधारण व्यक्तियोंके साथ वाइल्डकी घनिष्ठताका उद्देश्य क्या हो सकता है। उसने यह भी दिखाया कि वाइल्डने डूगालासकी जिस कविताकी प्रशंसापर उसको उल्लिखित पत्र लिखा था उसमें भी घोर दुर्नीतिका भाव झलकता है। डूगलासकी कविताका शीर्षक था— In Praise of Shame. अर्थात्—कलङ्कके लाजकी प्रशंसा पर।

वाइल्डके सालीसिटरने देखा कि वाइल्डका मामला कच्चा पड़ गया है। उसने वाइल्डसे सलाह करके क्वीन्सबरीके विरुद्ध मामला बीच हीमें रद्द करवा देना चाहा, क्योंकि आगे बढ़नेमें बड़ा खतरा था। पर वाइल्डके विरुद्ध इतने प्रमाण मिलनेके बाद क्वीन्सबरीको जब वाइल्डके पक्षने ही निर्दोष बता दिया तो इसका अर्थ स्पष्ट ही यह सिद्ध हो गया कि वाइल्ड दोषी है। क्वीन्सबरी छोड़ दिया गया और मामलेका पूरा खर्चा उसे मिला।

इधर वाइल्डके मित्रोंको भय हुआ कि पुलिस अब अवश्य ही बिना किसी देरके वाइल्डको गिरफ्तार कर लेगी। क्योंकि उसके विरुद्ध अप्राकृतिक व्यभिचारके सम्बन्धमें यथेष्ट प्रमाण कोर्टमें मिल गये थे। मित्रोंने सलाह दी कि वह तत्काल काले (Calais–फ्रान्स) भागकर चला जाय। पर उसके सिरपर तो घोर दुर्दशाके बादल मंडरा रहे थे। वह किङ्कर्तव्यविमूढ़ होकर स्तब्ध बैठा रहा। सैकड़ों प्रकारकी दुश्चिन्तायें उसके मस्तिष्कमें बौखलाये हुए बर्रोंकी तरह बर्रा रही थीं। उसका परममित्र राबर्ट रास उसके पलायनके लिए २०० पौण्डका चेक भुनाने गया। एक डिटेक्टिव उसके पीछे हो लिया। कुछ भी हो, जब रास वाइल्डके पास पहुंचा तो उसने फिर एक बार सलाह दी कि वह भाग निकले। अन्यान्य मित्रोंने यही कहा तथा वाइल्डकी स्त्रीने भी, जो उससे बहुत नाराज थी, रोकर यही जवाब कहला भेजा कि वाइल्डका फ्रान्सकी ओर इसी दम भाग निकलना ही श्रेयस्कर है। पर वाइल्ड बड़ा जिद्दी और घमण्डी था। वह इतस्ततः करता रहा। प्रायः पांच बजे शामको 'स्टार' पत्रके एक रिपोर्टरने आकर गुप्त समाचार दिया कि वाइल्डकी गिरफ्तारीके लिए वारण्ट कट चुका है। वाइल्डने कहा—"अच्छी बात है, मैं कहीं नहीं भागूंगा, अन्ततक अदालतमें लड़ता रहूंगा।" प्रायः दस बजे वाइल्ड गिरफ्तार कर लिया गया। २५०० पौण्ड (प्रायः ३० हजार रुपये) की जमानत मांगी गयी। अलफ्रेड डूगलासके बड़े भाईने जमानत दी। मामला चला। २५ मई १८९५ को वाइल्डको दो वर्षकी कड़ी कैदकी सजाका हुक्म हुआ।

वाइल्ड जैसे भावुक प्रकृतिके व्यक्तिको इस प्रकार निन्दित, कलङ्कित, अपमानित होकर जब जेल जाना पड़ा तो वहां उसके चित्तकी क्या हालत हुई होगी, इसका अनुमान सहजमें लगाया जा सकता है। तमाम इंगलैण्डमें उसके कलङ्कका समाचार दावाग्निकी तरह फैल गया। उसकी पुस्तकें जलायी जाने लगीं, थियेटरोंमें उसके नाटकोंका खेल देखना घोर अपमानजनक समझा जाने लगा। निन्दा, ग्लानि और दुःखके सारे विषको वाइल्ड फिर भी धैर्यपूर्वक पचानेकी चेष्टा करने लगा।

वाइल्डके मित्रोंका कहना है कि डूगलासने ऐन मौकेपर उसे त्याग दिया। पर डूगलास प्रमाणपूर्वक अपनी पुस्तकमें
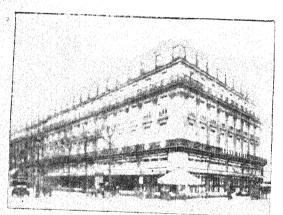
पैरिसका 'काफे द ला पे'
वाइल्ड और डूगलास यहां पान-भोजन किया करते थे।

लिखता है कि उसने अन्ततक उसका साथ दिया। इस सम्बन्धमें कोई बात निश्चित रूपसे नहीं कही जा सकती। पर यह सही है कि किसी कारणसे जेलमें वाइल्डका हृदय डूगलासके प्रति विद्रोही हो गया था। कहा जाता है कि उसके मित्रोंने उसके कान डूगलासके विरुद्ध भरे थे। कुछ भी हो, उसने जेलमें ही अलफ्रेडके प्रति एक बड़ा लम्बा पत्र, जो प्रायः एक छोटी पुस्तकके आकारका है, लिखा। उसमें उसने नाना भावपूर्ण उद्गारों द्वारा अपनी आहत प्रतिभाको उत्तेजित करते हुए अपने चरम दुःखके सम्बन्धमें बहुतसी बातें लिखी हैं। इसके साथ ही उसने सर्व-साधारणकी जानकारीके लिए जेलमें उत्पन्न हुए अपने नये, परिवर्तित, परिष्कृत विचारोंको लिखकर अत्यन्त सुन्दरतापूर्वक उन्हें व्यक्त किया, और उन्हें भी डूगलासके नाम लिखे गये पत्रके साथ जोड़कर दोनोंको De Profundis (अर्थात् 'आत्माके निगूढ़तम प्रदेशसे')—के नामसे सङ्कलित किया। दूसरा अंश इस समय प्रकाशित रूपमें मिलता है। पर पहला अंश (अर्थात् डूगलासको लिखा गया पत्र) न तो डूगलासको ही देखनेको मिला है और न कहीं छपा है। उसकी हस्तलिखित कापी वाइल्डके मित्रने उसकी मृत्युके पश्चात् ब्रिटिश म्यूजियमको इस शर्तपर प्रदान कर दी है कि १९६० तक यह न तो खोली जाय और न कहीं छपे। इस पत्रका एक क्षुद्रांश वाइल्डके एक मित्रने डूगलासके विरुद्ध अपनी सफाईमें पेश किया था। उससे प्रकट होता है कि वाइल्डने डूगलासके विरुद्ध अत्यन्त कठिन शब्दोंका प्रयोग किया है। डूगलासने अपनी पुस्तकमें यह रोना रोया है कि मेरे विरुद्ध ऐसे घोरतर दोष आरोपित किये जायं और मुझे उनके परिचित होनेका अधिकार भी प्राप्त न हो, यह बड़े अन्यायकी बात है।

वाइल्ड जब जेलसे छूटा तो उसकी स्त्रीने उसे तत्काल ग्रहण नहीं करना चाहा। कहा कि एक सालतक उसका आचरण देखकर तब ग्रहण करेगी। इस समय डूगलासका बाप मर चुका था और उसके नाम एक बहुत बड़ी जायदाद छोड़ गया था। वह नेपल्समें था। उसने वाइल्डको तारपर तार, चिट्ठीपर चिट्ठियां भेजीं कि वह अवश्य उससे आकर मिले, और उसीके साथ रहे। भावावेशमें आकर वाइल्ड उसके विरुद्ध सब कटु बातें भूल गया और नेपल्स चला गया। De Profundis में उसने दुःख और करुणाके सम्बन्धमें जो अमूल्य, अतुलनीय, अनुपम सुन्दर बातें लिखी थीं, उन्हें भी भूल गया और फिर धीरे-धीरे पहलेकी तरह आमोद-प्रमोदमें मग्न रहनेकी चेष्टा करने लगा। डूगलासका कहना है कि वह प्रतिमास सैकड़ों पौण्ड उसे खर्चके लिए देता था। जब डूगलास अपने पिताकी नाराजगीके कारण बड़ी तङ्ग हालतमें रहता था तो वाइल्डने वर्षोंतक उसका सब खर्चा अपनी गांठसे चलाया था। डूगलासने यदि पलटेमें उसे सहायता की तो यह कोई बड़ी बात नहीं थी। पर वाइल्डके एक मित्रका कथन है कि डूगलास बादको उससे तङ्ग आ गया था और उससे अपना पिण्ड छुड़ाना चाहता था। एक बार वाइल्डका यह मित्र पैरिसमें उससे मिलने

गया। डूगलास भी वहीं था। डगलासने इस मित्रसे कहा—"औस्कारको देखकर मुझे अब बड़ी घृणा होने लगी है। वह दिन-दिन मोटा होता जाता है और सब समय केवल रुपये चाहता है। रुपये-पैसेको छोड़कर उसे अब किसी बातकी धुन नहीं है। जिस समय वह रुपये मांगता है, मुझे ऐसा मालूम होता है जैसे वह कोई वृद्धा वेश्या हो!" वाइल्डने अपने मित्रके मुंहसे जब यह बात सुनी तो वह डूगलासके साथ अपनी मित्रताकी पुरानी बातें याद करके और डूगलासकी कृतघ्नताका ख्याल करके आवेशमें रो पड़ा। बहुत देरतक उसकी आंखोंसे टपटप आंसू गिरते रहे।

१९०० में वाइल्ड पैरिसमें एक साङ्घातिक रोगसे आक्रान्त होकर जीवनके उत्थान-पतनके अनेक रहस्यमय अनुभवोंके बाद इहलोकसे प्रस्थान कर गया। डूगलासने उसकी बीमारीका समाचार पाकर एक खासी बड़ी रकम तार द्वारा पैरिस भेज दी थी। वाइल्डको जब यह बात मालूम हुई तो प्रेमकी अन्तिम स्मृतिसे फिर एक बार उसकी आंखोंसे अश्रु-धारा उमड़ चली। उसकी मृत्युके समय ऐन मौकेपर डूगलास पैरिस पहुंच गया था, पर मुलाकात न हो सकी। अन्तिम संस्कारका सारा व्यय डूगलासने वहन किया। पेरिसके पेयर ला शेज (Pere la Chaise) में वाइल्डकी समाधिके ऊपर एक सुन्दर स्मारक मित्र-मण्डली द्वारा निर्मित किया गया।

वाइल्डके चरित्रकी प्रशंसा कोई नहीं कर सकता। श्रेष्ठ पुरुषोंका पतन भी भयङ्कर होता है। कविने कहा है—Lilies that fester smell far worse than weeds. अर्थात्—कमल जब सड़ते हैं तो उनकी दुर्गन्ध भी सड़ी हुई घाससे बहुत अधिक तेज होती है। पर यदि उसके घोर चारित्रिक पतनका ख्याल न करके केवल उसके कलामय प्राणका ख्याल किया जाय तो उसकी महत्ता अविवादास्पद है। बर्नार्ड शा उसके शिष्य हैं और अपने एक लम्बे दास्तानमें उन्होंने उसकी विशेष प्रशंसा की है। उसकी मृत्युके बाद बायरनकी तरह ही ब्रिटेनमें उसका आशातीत आदर होने लगा। फ्रान्स आदि देशोंमें तो जीवित कालमें ही वह अत्यन्त सम्मानकी दृष्टिसे देखा जाता था। उसके Salome नामकी जगत्-प्रसिद्ध नाटिकाको इंगलण्डके सेन्सरोंने जब छपनेका लायसेन्स नहीं दिया तो उसने उसे फ्रेञ्चमें लिखकर छपाया। आज aesthetic दृष्टिसे यह रचना सर्वसम्मतसे श्रेष्ठ गिनी जाती है। इसका विशुद्ध सौन्दर्य हृदयहारी है।

एक पुरुषका दूसरे पुरुषके प्रति प्रेमकी महिमापर औस्कार वाइल्ड पागल था, सन्देह नहीं। पर इस प्रकारका प्रेम तथा सौन्दर्यपूजा ग्रीक युगसे ही यूरोपमें चली आयी है। Homer के जगत्-प्रसिद्ध महाकाव्य Iliad का केन्द्र ही इसी प्रकारके प्रेमपर निर्भर है। एखिलीज (Achilles), जो इस काव्यका प्रधान नायक है, अपने परम प्रियपात्र Patroclus की हत्याके कारण ही उत्तेजित हुआ था, और उसीके द्वारा ट्रोजन वीरोंका विनाश सम्भव हो सका था। शेक्सपीयरने तो अपने Troilus and Cressida में पेट्रोक्लसको एखिलीजके साथ कुत्सित सम्बन्धके लिए दोषी ठहराया है। प्लेटो (अफलातून) ने भी दो पुरुषोंके पारस्परिक प्रेम (passion) की बड़ी प्रशंसा की है, पर विशुद्ध आध्यात्मिक दृष्टिसे। इस प्रकारके प्रेममें कोई दोष नहीं है, पर जब यह शारीरिक क्षुधाके रूपमें परिवर्तित होकर पशुत्वमें परिणत हो जाता है, तभी खतरा है। औस्कार वाइल्ड असावधानीसे किसी अंशमें पशुत्वको अपना बैठा था, यही उसका दोष था, इसके कारण De Profundis में उसने घोर पश्चात्ताप भी किया है। वह कहा करता था कि शुद्ध कलाकी (aesthetic) दृष्टिसे स्त्रीका सौन्दर्य तरुण पुरुषके सुगठित तथा सुगम्भीर-रूपके आगे अत्यन्त कुत्सित है। उसकी रायमें ग्रीक लोग पुरुष-सौन्दर्यके इस मर्मको समझ गये थे, इसी लिए अपनी मूर्तियोंमें उन्होंने कलाका यही अनुपम रूप व्यक्त किया है।

कुछ भी हो, वाइल्डके दोष-गुण हमने पाठकोंके आगे यथारूप व्यक्त कर दिये हैं। हम प्रार्थना करते हैं कि वे स्वयं अपनी प्रवृत्तिके अनुसार उनपर विचार करें। उसके घृणित चरित्रकी निन्दा हमने बार-बार इस लेखमें की है। हमारे पास शब्द नहीं कि उसकी यथेष्ट निन्दा कर सकें। तथापि उसकी आत्माके भीतर जो दो विभिन्न धारायें समानान्तर रेखामें बहा करती थीं उनमें एक कर्मनाशाके समान अपावन होनेपर भी दूसरी विशुद्ध थी। इन दोनोंके स्वरूपसे पाठक स्पष्टतया परिचित हो जायं, इस लेखमें हमारा यही उद्देश्य रहा है।

क्षितिज

घिर-घिर अनन्तका अन्त न कर

उर्वी-उरपर रवि-शशि-उरोज

चमकाकर इस भौतिक भूका

अधिभौतिक नभको क्लान्त न कर

* * *

धूमिल-सन्ध्याका विहग-वास

मालिकाकार द्वीपानुरूप

द्रुम-दल-नभ-तलमें लुक-छिपकर

अवनीका निरखे केलि-लास

* * *

सीकर तरुओंके तारोंसे

अवनी औ' अम्बरके अम्बर

भर-भर जर्जर जगका जीवन

कर सिक्त सौर सत्कारोंसे

* * *

उर्वर-सी बर्बर वर-बरमें

कल्पना-क्लिष्ट जगकी जड़ता

साधना-श्लिष्ट कविकी कविता

तुझ प्यालेके पदार्थ गरमें

* * *

रत्नामल-मालोपम-मण्डल

मेखला विश्वकी सार्वभौम-

हरियालीके सुमनों गूथी

नभ-नदमें प्लावितकर भूतल

* * *

अणु-अणुके अधरोंपर झुक-झुक

कुकुमोंकी प्रक्तताभा भर दे

सुरभित श्वासोंकी झपकीसे

गन्धोद्धत हो हँस दे किंशुक

* * *

कविकी आंखोंका प्रथमदृष्ट—

उत्सव निसर्गका मञ्जु-मञ्च

ब्रह्माण्ड-वितत यह अतनु-तन्तु-

भावुकता तुझसे हुई सृष्ट

———

—दुर्गादत्त त्रिपाठी ।

महर्षि टाल्स्टायकी विचार-धारा

(१)

यदि लोग तुम्हारे कार्योंके लिए तुम्हारी प्रशंसा करें तो कोई नुकसान नहीं। लेकिन लोगोंसे प्रशंसा पानेके लिए काम करना निःसन्देह हानिकारक है।

(२)

लोगोंकी प्रशंसा पानेकी चिन्तासे अपनेको छुड़ानेके लिए यह अच्छा है कि हम ऐसे काम करें, जिनका कभी किसीको पता भी न चले। ऐसे काम करके देखिये, और आपको मालूम होगा कि उनमें एक खास आनन्द है।

(३)

हमें उन आदमियोंकी तरह रहना चाहिए जो गहरी, गुफा-सी, खानोंमें रहते हैं, जो जानते हैं कि वे कभी बाहर नहीं निकलेंगे, और न किसीको मालूम ही होगा कि वे वहां कैसे रहते थे। हमें इसी प्रकारका जीवन बिताना चाहिए, क्योंकि सिर्फ ऐसा जीवन ही—जिसमें न तो लोगोंकी निन्दा-स्तुतिका कोई स्थान है, न फलकी कोई आशा है—सच्चा जीवन हो सकता है।

(४)

लोगोंके लिए नहीं, बल्कि ईश्वरके लिए जीना कठिन मालूम पड़ता है, क्योंकि आपको भले जीवनका पुरस्कार तत्काल दिखायी नहीं पड़ता। ऐसा भास होता है, लेकिन यह सच नहीं है। ईश्वर जो कि आपके अन्दर है, तत्काल ही आपको भले जीवनका पारितोषिक देता है, और ऐसा पारितोषिक देता है, जैसा लोग कभी नहीं देते।

(५)

आदमी, अपनी आत्माका जितना कम चिन्तन करता है, लोगोंकी निन्दा-स्तुतिकी उसे उतनी अधिक ही चिन्ता रहती है।

(६)

प्रार्थना तभी सच्ची होती है, जब आप परमात्माके साथ अकेले रहते हैं, वैसेही अच्छे कार्य तभी वास्तविक होते हैं, जब ईश्वरके सिवा कोई भी यह नहीं जानता कि आप जो कुछ कर रहे हैं, वह क्यों कर रहे हैं।

(७)

खुशामदी आदमी सिर्फ इसलिए आपकी खुशामद करता है कि वह आपको तुच्छ समझता है—लेकिन आप उसकी बातको सुनते हैं और उसके मुंह अपनी प्रशंसा सुनकर फूलते हैं।

(८)

आदमी, लोगोंको प्रसन्न करनेकी कोशिशसे और मिथ्या घमण्डसे जितना मुक्त होता है, ईश्वरकी सेवा करना उसके लिए उतना ही आसान होता है। इसका उलटा भी इतना ही सच है

(९)

जो इस ख्यालसे सदा चिन्तित रहता है कि लोग उसके सम्बन्धमें क्या कहते होंगे, वह कभी सुखी और शान्त नहीं रह सकता।

(१०)

जिस फर्शपर वह गिर पड़ा है, उस फर्शको पीटना लड़केके लिए निरा पागलपन है; लेकिन यह उतना ही समझमें आने योग्य है जितना कि अपनेको चोट पहुंचा लेनेके बाद आदमीका इधर-उधर कूदना। यह भी समझमें आ सकता है कि जब कोई आदमी मार खा लेता है, तब वह अपने शत्रुको मार या पीट सकता है। लेकिन यह सोचकर कि किसीने किसी समय बुरा किया था, जानबूझकर उसका बुरा करना और अपने मनको यह भरोसा दिलाना कि हमने यह अच्छा किया है, सर्वथा बुद्धिका दिवाला निकालना है।

(११)

ईर्ष्यावश लोग दूसरोंका अहित करते हैं, अपराधका बदला लेनेकी इच्छासे उसका बुरा करते हैं, और तब अपने कार्यको न्याय्य बतानेके लिए वे दूसरोंको और अपनेको यह विश्वास दिलानेकी कोशिश करते हैं कि वे ऐसा सिर्फ अपने अपकारीको सुधारनेकी इच्छासे ही करते हैं।

(१२)

जो लोग मनुष्यकी बुद्धिकी उपेक्षा करके यह सोचते हैं कि हिंसा मार-पीट, सजा और धमकीको छोड़कर और

किसी तरह उसे सुधारना असम्भव है, वे उसके साथ वैसाही बर्ताव करते हैं, जैसा कि लोग घोड़ोंके साथ या तेली अपने बैलके साथ करते हैं, जब वे, यह सोचकर कि घोड़े या बैलको चक्कीके चारों ओर अधिक शान्तिके साथ चक्कर लगाना चाहिए, उसकी आंखोंपर पट्टी बांध देते हैं।

(१३)

हम हिंसाकी भयङ्करताको समझनेमें असमर्थ हो जाते हैं, क्योंकि हम हिंसाके वश हो जाते हैं। और हिंसा स्वभावतः मनुष्यको हत्याकी ओर बढ़ाती है।

एक आदमी दूसरेसे कहता है—"यह या वह करो, नहीं करोगे, तो मैं जबर्दस्ती तुमसे यह कराऊंगा।" इसका यही अर्थ हो सकता है कि—"यदि तुम मेरी इच्छानुसार नहीं करोगे, तो अन्तमें मैं तुम्हें मार डालूंगा।"

हरएक आदमी जो हिंसाका उपयोग करता है हत्यारा है।

(१४)

एक आदमीने गुनाह किया। और दूसरे आदमी या आदमियोंको उस गुनाहका विरोध करनेके लिए इससे बेहतर और कोई तरीका हाथ नहीं आया कि वे एक और गुनाह करें—जिसे वे सजा देना कहते हैं।

(१५)

आदमीको उसके अपराधोंके लिए सजा देना आगको गरम करनेके समान है। हरएक अपराधी अपने मनकी अशान्ति और आत्माकी प्रताड़नाके रूपमें पहले ही दण्डित हो चुकता है। लेकिन यदि उसकी आत्मा उसे न कोसे तो मनुष्य उसे चाहे जितनी सजा क्यों न दें, वह कभी नहीं सुधरेगा, उल्टे वह और भी अधिक भयङ्कर बनता जायगा।

(१६)

दण्ड सदा ही निर्दय, क्रूर सजा है। यदि ऐसी बात न होती तो इसका उपयोग भी न किया जाता। इन दिनों लोगोंको कैद करना उतनी ही क्रूर सजा है, जितनी १०० बरस पहले कोड़ोंकी मार थी।

(१७)

दूसरोंके जीवनको व्यवस्थित बनाना, सुधारना—सिर्फ जबर्दस्ती या दबावसे ही सम्भव है। और जबर्दस्ती या दमन लोगोंके जीवनको व्यवस्थित नहीं, अव्यवस्थित बनाता है। इसलिए कोई भी एक आदमी या आदमियोंका समूह दूसरे आदमी या आदमियोंके समूहके जीवनको सुश्रृङ्खल नहीं बना सकता।

(१८)

अगर आप देखते हैं कि सामाजिक व्यवस्था बुरी है और आप उसे सुधारना चाहते हैं, तो इसका सिर्फ एक रास्ता है,—वह यह कि सब लोगोंको बेहतर बनाया जाय। और, लोगोंको बेहतर बनानेके लिए सिर्फ एक चीज आपके हाथमें है,—अपनेको बेहतर बनाना।

(१९)

यह सोचना कैसा विचित्र मोह है कि कुछ लोग दूसरोंसे वह काम करवा सकते हैं, जिसे वे अपने लिए अच्छा समझते हैं, न कि दूसरोंको लिए। और फिर भी हमारी सारी जीवन-व्यवस्था—क्या कुटुम्ब, क्या समाज, क्या राज्य, और क्या धर्म, सबकी सब व्यवस्था---इसी विचित्र भ्रमकी बुनियादपर खड़ी है। कुछ लोग दूसरोंको यह ढोंग करनेके लिए लाचार करते हैं कि उन्हें जो काम दिया जाता है, उसे वे स्वेच्छासे कर रहे हैं; और यदि वे ऐसा ढोंग करनेसे इन्कार करते हैं तो उन्हें हर तरहकी धमकी और सजाका डर बताया जाता है। ऐसे लोग अपने मनमें यह भी मानते हैं कि वे कुछ अच्छा उपयोगी काम कर रहे हैं, कुछ ऐसा कर रहे हैं जो सबकी प्रशंसाके योग्य है—उनकी भी, जिनपर वे अत्याचार करते हैं!

(२०)

जब लोगोंके दिलसे यह अन्ध-विश्वास उठ जायगा कि सरकारी जुल्म मनुष्यके हितके लिए आवश्यक है, तब जुल्मके वे सब भयङ्कर परिणाम, वे तमाम आफतें, जिनसे लोग आज कष्ट पा रहे हैं, नष्ट हो जायेंगी।

(२१)

लोग जानते हैं कि जीवनमें कुछ कमी है, कुछ सुधारकी आवश्यकता है। आदमी सिर्फ एक चीजको, जो उसके हाथमें है, सुधार सकता है—अपने आपको।

लेकिन सुधरनेसे पहले मुझे यह मान लेना चाहिए कि मैं बुरा हूं, और यह मैं करना नहीं चाहता। इसीलिए हमारा सारा ध्यान उस तरफ नहीं जाता, जो हमारी शक्तिमें है—अपनी तरफ; बल्कि उन बाहरी बातोंकी तरफ जाता

है जो हमारी शक्तिसे परे हैं, और जो बदल जानेपर मनुष्योंकी हालतको उसी दर्जेतक सुधारेंगी, जिस दर्जेतककी शराबकी जात उसे हिलाकर दूसरी बोतलमें डालनेसे सुधरा करती है। और यहींसे वह क्रिया शुरू होती है, जो बिगाड़नेवाली है, जो सबसे पहले, निकम्मी है, व्यर्थ है; और दोयम नुकसान-देह और मगरूर है, क्योंकि हम दूसरोंको सुधारते हैं; और बुरी है,—क्योंकि हम सर्वसाधारणके कल्याणमें बाधा डालने-वाले आदमियोंको मार भी सकते हैं।

(२२)

राजनीतिक हलचल न सिर्फ आदमीको सरकारी जुल्मकी चक्कीसे छुड़ानेमें असफल होती है, बल्कि ठीक उल्टे, वह आदमियोंको उस कामके लिए और अधिक अयोग्य बना देती है, जो उन्हें स्वतन्त्र बना सकता है।

(२३)

जीवनकी वर्तमान बुराइयोंका सुधार धर्म-सम्बन्धी झूठे ख्यालोंका खण्डन करनेसे और उनकी बुराईको खोल-खोलकर बतानेसे शुरू हो सकता है; और धार्मिक सत्यकी स्वतन्त्रता-पूर्वक स्थापना करनेसे, जो कि हरएक आदमी अपने लिए अपनेमें करेगा।

(२४)

मैं अपने जीवनको ऐसा बना सकता हूं जिससे मैं यह सोचने लगूं कि अकेला मैं ही वास्तवमें जी रहा हूं, जब कि मेरे चारों तरफ हर तरहके दूसरे प्राणियोंमें जीवनका सिर्फ भास होता है—मनुष्य, पशु, कीड़े वगैरहमें। जब मैं जीवनको इस रूपमें देखता हूं, तब जीवन कठोर और भयानक हो जाता है, और सबसे बुरी बात तो यह है कि अपनेको छोड़कर और सबके लिए मैं अपने अन्दर बुरे भावोंका एक बड़ा भण्डार इकट्ठा कर लेता हूं। लेकिन अपने जीवनको इस तरह समझना भी सम्भव है जिससे सब चीजें वास्तवमें जीवित दिखायी पड़ें, सारी दुनिया मेरी ही तरह जीवनसे पूर्ण जान पड़े, और हरएक जीवका उसके लिए उतना ही महत्त्व जान पड़े, जितना मेरा मेरे लिए है। जब मैं अपने जीवनको इस रूपमें समझता हूं, तब मैं सबके साथ अधिक और अधिक मिलना चाहता हूं, मैं अपने अन्दर तमाम प्राणियोंके प्रति सद्भावका एक अटूट भण्डार भर लेता हूं, और मेरा दिल हलका और मन निर्भय बन जाता है।

माला

किसे कहेंगे करुण कहानी,
क्यों बिखरे हैं मोती।
हृदय उदधि-सा उमड़ रहा क्यों,
क्यों अंखियां हैं रोती?
विपुल वेदना विकल बिलखती,
मधुर भावना सोती।
लगी आग-सी है हा! मनमें,
साहस बल सब खोती।
कौन सुभागी पहनेगा रे, यह मृदु मोहन माला!
पियके हियका हार बनेगी, होगा प्रेम निराला।

—धर्मचन्द खेमका "चन्द्र"

सामाजिक क्रान्तिकी आवश्यकता

श्री सत्यदेव विद्यालङ्कार

कुछ समय पहले 'क्रान्ति' शब्दका केवल राजनीतिक दृष्टिसे प्रयोग किया जाता था। धर्म और समाजके सम्बन्धमें इस शब्दका प्रयोग बहुत पुराना नहीं है। यूरोपके महा-समरसे संसारको जहां भारी हानि उठानी पड़ी है, वहां लाभ भी कुछ कम नहीं हुआ है। सामाजिक और धार्मिक क्षेत्रोंमें इस महासमरने भयानक उथल-पुथल मचा दी है। पोपकी सत्ताको किंवा बाइबिलके धर्मको इस महासमरसे भयानक और घातक चोट लगी है। लड़ाईके सम्बन्धमें पोप द्वारा निकाले गये फरमानोंकी ईसाई राष्ट्रोंने कुछ भी कदर नहीं की। उसकी सब प्रार्थनायें बहरे कानों सुनी गयीं। ईसाइयोंने ईसाइयोंके ही विरुद्ध हथियार उठाने और गिर्जाघरोंपर भी गोले बरसानेमें आगा-पीछा नहीं किया। 'खुदाके घर' मनुष्यकी महत्त्वाकांक्षा-के सामने मिट्टीके खिलौने साबित हुए। युद्धके बाद रूस और टर्कीने जिस हिम्मतका परिचय दिया, उससे सामाजिक और धार्मिक क्रान्तिकी सचाईपर एक अमिट मोहर लग गयी। रूसने जारशाहीके साथ-साथ ईसाइयतको भी बिदा दे दी। पादरियों-का प्रभुत्व रूससे बिलकुल विलुप्त हो गया। गिर्जाघरोंमें विद्यालयोंकी स्थापना की गयी। टर्कीने सुलतानके साथ-साथ खलीफाको भी अन्तिम नमस्कार कर दिया। खलीफाके साथ ही शरीयतकी सब व्यवस्थाको वैसे ही मिटा दिया गया जैसे कि कोई नटखट बालक स्लेटपर लिखे हुए सब पाठको एकदम मिटा देता है। रूस और टर्कीकी काया पलट गयी। लोकाचार और शास्त्राचारके नामसे प्रचलित समस्त रीति-रिवाजों और रूढ़ियोंका केवल नाम शेष रह गया। लोगोंके व्यावहारिक जीवनमें उनकी छायातक कहीं देख नहीं पड़ती। मुसलमानोंकी धर्मान्धता, साम्प्रदायिक कट्टरता और मजहबी पागलपन अमिट समझे जाते हैं। मुस्तफा कमाल पाशाने उनको मिटाकर असम्भवको भी सम्भव करके दिखा दिया है। जिस धर्मको पत्थरकी लकीर समझा जाता है, [illegible]को रूस और टर्कीने मिटा दिया है। रूस और टर्कीका महायुद्धके बादका इतिहास सामाजिक और धार्मिक क्रान्ति-की दृष्टिसे पढ़ने और मनन करनेके योग्य है। सामाजिक और धार्मिक आवश्यकताको स्पष्ट करनेवाला इससे अधिक उज्ज्वल दूसरा इतिहास नहीं मिल सकता।

भारतवासियोंको इस इतिहासका अध्ययन इसलिए जरूर करना चाहिए कि सामाजिक और धार्मिक क्रान्तिकी उसको सबसे अधिक आवश्यकता है। न केवल हिन्दू ही, किन्तु सभी समाज धर्मान्धताके गहरे गढ़ेमें डूबे हुए हैं। पारसियोंको सामाजिक दृष्टिसे वर्तमान शिक्षाके कारण कुछ उन्नत समझा जाता है, किन्तु बम्बईमें हाल हीमें पारसी कन्याओंके हिन्दुओंके साथ विवाह करनेकी इच्छा प्रकट करनेपर जो दुर्घटनायें हुई हैं, वे उस समाजकी धर्मान्धता और साम्प्रदायिक कट्टरताको प्रकट करनेके लिए बस हैं। मुसलमानोंकी धर्मान्धता, मजहबी-पागलपन और सामाजिक कट्टरताके सम्बन्धमें कुछ लिखना सूर्यको दीपक दिखानेके समान है। हिन्दू भी धर्मान्धताके घर बने हुए हैं। किसी सम्प्रदायका कोई बहम और बेहूदगी ऐसी नहीं जो कि हिन्दुओंमें न पायी जाती हो। मुसल-मानोंके ताबीज हिन्दुओंके घर-घरमें बच्चोंकी गर्दन, भुजा और कमरमें बंधे हुए देख पड़ते हैं। अपने तेंतीस करोड़ देवी-देवता होते हुए भी हिन्दू स्त्रियां पीर-पैगम्बरको पूजती फिरती हैं और सन्तानके लिए जहां-तहां मनौती करती देख पड़ती हैं। धर्मका यथार्थ ज्ञान मुक्तिका साधन होना चाहिए। उसकी विडम्बना, आडम्बर और पाखण्ड इस समय हिन्दू-समाजके पतनका पहला और प्रधान कारण बने हुए हैं। धर्मके नामपर ही कुछ लोगोंने समाजमें इतना छल, प्रपञ्च, आडम्बर, ढोंग और मायाजाल बिछाया है कि हिन्दू-समाज उनके हाथकी कठपुतली बना हुआ है। ऐसे लोगोंने हिन्दू-समाजकी धार्मिक-भावनाको अपनी आजीविकाका साधन बना लिया है और इस आजीविकाको सदा एक-सा बना रखनेके लिए लोगोंको इतना मतिमन्द एवं मूढ़ बना दिया है कि वे अपने दिमागसे काम लिये बिना ही इनकी मोह-मायामें उलझे रहते हैं। पढ़े-लिखे लोग भी

शादी-गमीके अवसरोंपर इनके हुक्मोंकी अवज्ञा नहीं कर सकते। लकीरकी फकीरीकी कड़ी-से-कड़ी आलोचना करनेवाले और दूसरोंके उपहासमें आकाश-पाताल एक करनेवाले भी, समय आता है तो दुम दबाकर रह जाते हैं। ब्राह्मणोंकी नियत दक्षिणा हरएक अवसरपर चुपके-से अदा करनी ही पड़ती है। पुरोहितोंका टैक्स पुश्त-दर-पुश्त लगा रहता है और उसका व्याज भी चढ़ता चला जाता है। इन धार्मिक रूढ़ियों और धार्मिक परम्पराके पीछे न केवल व्यक्तिगत हानि ही सहन करनी पड़ती है, किन्तु कितने ही घर और परिवार इसके पीछे मिट्टीमें मिल गये हैं। ओसर-मोसर (मृतक बिरादरी भोज), श्राद्ध, ब्रह्मभोज, जाति-भोजके पीछे परिवार-के-परिवार कङ्गाल हो गये, मकानोंसे हाथ धो बैठे और बुरी तरह कर्जदार भी हो गये। घरमें अभी मातम-पुर्सी पूरी नहीं हुई होती, घरवालोंके आंसू भी अभी सूखते नहीं और दिलकी चोटके घावकी मरहम-पट्टी भी नहीं हुई होती कि जातीय-मर्यादाके संरक्षक जात-बिरादरीके सरदार घरपर धरना जमाकर बैठ जाते हैं और लड्डू-पूरी बनानेकी व्यवस्था देते हुए उनको जरा-सी भी लज्जा नहीं आती। ब्राह्मण लोग सन्तापके रुधिरमें भींगे हुए लड्डू-पूरी खानेमें तनिक भी सङ्कोच नहीं करते। यह सब व्यवस्था ऐसी है कि इसके लिए भले ही कर्ज निकालकर, घरका सब सामान गिरवी रखकर, मकान बेचकर और स्त्रीका जेवरतक बाजारमें ले जाकर कङ्गाल क्यों न होना पड़े, पर उसको पूरा किये बिना न तो मृतात्माको शान्ति मिल सकती है और न घरवालोंको ही मुक्ति प्राप्त हो सकती है। पारिवारिक जीवन इन रूढ़ियोंके कारण समस्त आपदाओंका घर बना हुआ है। लड़की कितनी भी विदुषी, होनहार और समझदार क्यों न हो, जात-बिरादरीके संकुचित दायरेके कारण उसको जिस किसी युवकके गलेमें बांध दिया जाता है। विवाह होना चाहिए, भले ही लड़के या लड़कीको सारा जीवन सङ्कटमें बिताना पड़े और वह कुटुम्ब जो उनके लिए स्वर्ग होना चाहिए, भले ही घोर नरक बना रहे। इसीलिए गृहस्थ-जीवनमें सुख नहीं, शान्ति नहीं और सन्तोष नहीं। फिर उत्तम सन्तान कहांसे हो और कैसे समाजका भी अभ्युदय हो?

गृहस्थ और पारिवारिक जीवनके समान ही समाजका जीवन भी सङ्कटोंसे छाया हुआ है। छूतछात, जातपांत तथा खानपानके भेदभावसे समाजका शरीर चलनी बना हुआ है। ऊंच-नीचकी भावनाने समाजके जीवनको मृतप्राय बना दिया है। अछूत कहे जाने या समझे जानेवाले भाई, मन्दिरोंमें देवदर्शन करके आध्यात्मिक उन्नति नहीं कर सकते, सार्वजनिक विद्यालयोंमें शिक्षा प्राप्त करके आत्मिक उन्नति नहीं कर सकते और कुओंसे पानी भरकर शारीरिक शान्ति भी प्राप्त नहीं कर सकते। उनको ऐसा समझा जाता रहा है और अब भी कुछ स्थानोंपर ऐसा ही समझा जाता है जैसे कि वे समाजके अङ्ग ही नहीं हैं और समाजको उनकी कुछ आवश्यकता भी नहीं है। मुसलमान और ईसाइयोंकी बढ़ती हुई संख्या देखकर हिन्दुओंकी आंखें कुछ खुली हैं। किन्तु अवस्था वैसी ही है कि पञ्चोंका कहना सिर माथे, पर परनाला जहां-का-तहां रहेगा।

स्त्रियोंके प्रति कुछ कम पाप नहीं किया गया। शिक्षासे उनको वञ्चित, परदेमें बन्द और गहनों तथा कपड़ोंके लालचमें उनको फंसा रखा गया है। मनुष्यके पैरकी जूती, काम-कलाके साधनकी मशीन और चौबीसों घण्टे सेवा करनेवाली दासीसे अधिक उनके प्रति और क्या भावना रही है? हिन्दू-समाजमें इतनी अधिकतासे फैले हुए बाल-वृद्ध-बेजोड़-और बहु-विवाह स्त्रियोंके प्रति पुरुषोंकी मनमानीके जीते-जागते उदाहरण हैं। आश्चर्य तो यह है कि इस सब मनमानीसे होनेवाले अनाचार और अत्याचारका समर्थन धर्मके नामपर किया जाता है। समाज भी उनका समर्थन करता है और जात-बिरादरीका सब सङ्गठन उनको कायम रखनेकी जिद किये हुए है। क्योंकि बिना इन सब बातोंके धार्मिक मर्यादा और सामाजिक परम्पराके मिट जानेका भारी भय है, ऊंचे घरकी पुरानी मर्यादापर बट्टा लगनेका बड़ा डर है। और लम्बी नाकके कट जानेकी पूरी सम्भावना है।

धार्मिक मर्यादा और सामाजिक परम्पराकी रूढ़िने हिन्दू-समाजकी दृष्टिको संकुचित, वृत्तिको अनुदार, स्वभावको असहिष्णु, दिमागको सनकी और आचार-विचारको पतित बनाकर समाजकी प्रगतिको सदाके लिए ही बिलकुल रोक दिया है। इस सचाईको यदि हम आज भी न समझ सकें तो यह कहना होगा कि हमारे दुर्भाग्यका अन्तिम समय कुछ दूर नहीं है। महर्षि दयानन्दने खतरेका घण्टा बजाकर इस ओर सङ्केत किया था और हिन्दू-समाजको एक ओर कर

धार्मिक मर्यादा तथा सामाजिक परम्पराको रूढ़िकी गाढ़ निद्रासे जगानेका स्तुत्य प्रयत्न किया था। पर सदियोंकी नींद एकाएक कैसे खुल सकती थी? दूसरे महापुरुषोंने भी इस कुम्भकर्णी निद्राको भङ्ग करनेकी कोशिश की। पूर्णतया उनको भी अपने यत्नोंमें सफलता नहीं मिली। इस समय महात्मा गांधी अपने जीवनकी बाजी लगाये हुए हैं। हिन्दू-समाजकी अस्पृश्यताको वह हिन्दू-धर्मका सबसे बड़ा कलङ्क कहते हैं और उसको धोनेकी चेष्टामें यथाशक्ति लगे हुए हैं। अछूतोंके लिए मन्दिरोंके द्वार खोलनेकी आवश्यकताका उन्होंने प्रतिपादन इस रूपमें किया है कि कट्टरताके अवतार महामना मालवीयजीका सिंहासन भी डोल गया है। वह इस आन्दोलनका नेतृत्व कर रहे हैं। विधवा-विवाह और अन्तर्जातीय विवाहोंका भी इतना जोरदार समर्थन किया है कि आपके प्रभावसे उत्साहित होकर बहुतसे युवक इस ओर पूरी हिम्मतसे आगे बढ़े हैं। स्त्रियोंके परदेकी गुलामीके बन्धन तो आपके कहनेके साथ ही एकाएक टूट गये कि घरों और मन्दिरोंकी दुनियामें नजरबन्द रहनेवाली देवियां दुर्गा और चण्डीका रूप धारण करके देश-सेवाके कठोरतम मार्गमें खड़ी होकर जेलोंतकमें स्वेच्छापूर्वक जा रही हैं और देशकी स्वाधीनताके लिए सब प्रकारकी यातनायें सहन कर रही हैं। महात्मा गांधीके अस्तित्वसे देशमें छायी हुई धर्मान्धतापर ऐसी घातक चोट लग चुकी है कि उसका अन्त होनेमें अधिक समय लगता नहीं दीख पड़ता। रूस और टर्कीमें जिस सामाजिक और धार्मिक क्रान्तिका चक्र पूर्णतया सफल हो चुका है, वह भारतमें भी पूरे वेगके साथ घूमना शुरू हो गया है। यह विश्वास रखना चाहिए कि इस समयकी धार्मिक व्यवस्था, समाज-रचना, परम्परागत-मर्यादा, भावना, कल्पना और आकांक्षाका एकदम अन्त होकर हमारे धर्म, हमारे समाज-शास्त्र, हमारी जातीय-मर्यादा, हमारी कुल-परम्परा और हमारे व्यक्तिगत-जीवनका अथसे इति तक वैसे ही संशोधन हो जायेगा, जैसे कि सांप पुरानी कांचलीको उतार कर नया ही रूप धारण कर लेता है। इसीका नाम है क्रान्ति। क्रान्ति आत्माका धर्म है और विकास शरीरका। बालककी देहका विकास होकर वह युवक तथा वृद्ध होता है और अन्तमें उसका नाश हो जाता है। आत्माका परिवर्तन वैसे ही होता है जैसे कि बाल्मीकि राक्षससे एकदम मुनि बन गये, गौतम बुद्ध राजकुमारसे तुरन्त साधु हो गये और स्वामी दयानन्द घरकी मोहमाया तथा ममताके सब बन्धन एक साथ काटकर एकाएक घरसे निकल भागे। यह सब व्यक्तिकी आत्मामें होनेवाली क्रान्तिकारी घटनायें हैं, जिनसे व्यक्तिगत जीवन कुछ-का-कुछ हो जाता है। समाजों, जातियों और राष्ट्रोंके जीवनमें भी इसी प्रकारकी बहुत-सी घटनायें एकाएक घट जाती हैं और उनको ही क्रान्तिके नामसे पुकारा जाता है। सामाजिक और धार्मिक जगत्में सदा इस क्रान्तिसे ही काम हुआ है। क्रान्ति तो एक झञ्झावात है, जिसकी गतिको मापना या नापना सम्भव नहीं। आंखकी एक पलकके क्षणभरसे भी कम कालमें वह सदियोंके पापको बड़ी निष्ठुरतासे निर्दयतापूर्वक धो डालती है। भारतके सामाजिक और धार्मिक पापकी समस्त गन्दगीको इसी रूपमें धोनेके लिए हम क्रान्तिका आह्वान करते हैं, और यह विश्वास रखते हैं कि भारत भी इस पापसे मुक्ति पाकर अन्य राष्ट्रोंके साथ जीवन-मृत्युकी दौड़में दौड़ लगानेमें समर्थ हो सकेगा।

भारतमें वेश्या-वृत्तिका इतिहास

वैदिक कालसे लेकर वर्तमान समयतक

श्री गोपीकृष्ण

भारतमें वेश्याओंका इतिहास बहुत पुराना है। वैदिक युगमें वेश्या-वृत्तिका यथेष्ट प्रचलन हो चुका था। असल बात यह है कि 'वेश्या' शब्द ही वैदिक भाषाका है। वेदमें 'विश्' शब्द जन-साधारणके लिए आया है। 'विश्' (अर्थात् साधारण जनता) द्वारा भोग्या ही 'वेश्या' कही जाती थी। 'वैश्य' तथा 'विश्व' की उत्पत्ति इसी मूल शब्दसे हुई है। सर्वसाधारणसे लेन-देनका हिसाब रखनेवाला ही 'वैश्य' है। महाभारतमें 'विशाम्पति' शब्द 'नृपति'के अर्थमें कई बार आया है। रामायण-कालमें अतिथियोंके सत्कारके लिए वेश्यायें बुलायी जाती थीं। भारद्वाज मुनिने भरत तथा उनके साथियोंकी सेवाके लिए अपने आश्रममें बहुत-सी वेश्यायें उपस्थित की थीं। महाभारतमें युद्धके समय राजकुमारोंके 'कैम्पों'में अलबेली सुन्दरियों तथा मद्यपानके विशेष प्रबन्धका उल्लेख किया गया है। कौरवों तथा पाण्डवोंके राज-भवनोंमें भी सैकड़ों वेश्यायें निवास किया करती थीं। बौद्ध-ग्रन्थ जातकोंमें, जिनका निर्माण ईसासे ४०० वर्ष पूर्व हुआ था, वेश्याओंका स्पष्ट उल्लेख पाया जाता है। भारतीय इतिहासके किसी भी युगमें वेश्याओंका निरादर नहीं हुआ, बल्कि विशेष श्रद्धा और सम्भ्रमकी दृष्टिसे ही उन्हें देखा जाता था।

मौर्य-युगमें (ईसासे प्रायः ३०० वर्ष पूर्व) कौटिल्यके जगत-प्रसिद्ध 'अर्थशास्त्र' का निर्माण हुआ था। इसमें स्थान-स्थानपर वेश्याओंके कर्त्तव्य, रीति-नीति, रहन-सहन आदिका उल्लेख हुआ है। इस युगमें वेश्यायें पूर्णतः राजकीय शासनके तत्त्वावधानमें रहा करती थीं। प्रत्येक वेश्याको अपना पेशा प्रारम्भ करनेके पूर्व सरकारी लिस्टमें अपना नाम दर्ज कराना पड़ता था। प्रायः प्रत्येक वेश्याका सम्बन्ध राज-सभासे रहता था। राजकीय तत्त्वावधानमें रहकर ही वह सार्वजनिक वृत्ति कर सकती थी, अन्यथा नहीं। यदि वह स्वतन्त्र वृत्ति करना चाहती तो उसे बहुत अधिक शुल्क देना पड़ता था। प्रत्येक वेश्याको एक मासमें सरकारको 'कर' के बतौर कुछ रकम देनी पड़ती थी। राजभवनमें वेश्याओंका कर्त्तव्य इस प्रकार था—उबटन लगाना, नहलाना, कपड़े धोना, मालायें गूंथना तथा शयन-गृहमें सहचरियोंके बतौर रहना।

कौटिल्यके अर्थशास्त्रसे यह भी ज्ञात होता है कि "गुप्त-युग"की वेश्यायें शिक्षा तथा संस्कृतिमें भी बहुत आगे बढ़ी हुई थीं। जिस प्रकार आधुनिक युगमें पाश्चात्य देशोंमें हम देखते हैं कि अनेक मोहिनी रमणियां गुप्त समितियोंमें संश्लिष्ट रहकर जासूसीके बड़े-बड़े भयङ्कर कारनामे दिखाती हैं, उसी प्रकार चाणक्यके युगमें भी अनेक सुशिक्षिता, दक्षा, सुन्दरी वेश्यायें गुप्तचर-विभागमें भरती की जाती थीं और अनेक राजनीतिक षड्यन्त्रोंमें भाग लेती थीं। इस बातसे पता चलता है कि वेश्याओंकी उपयोगिताका मर्म उस युगके मनीषी भली भांति समझ गये थे। इस युगमें रचे हुए अनेक संस्कृत नाटकोंमें चतुरिका वाराङ्गनाओंके गुप्त दौत्यका विशेष परिचय हमें मिलता है। ग्रीक इतिहासकार स्ट्राबोने भी लिखा है कि वेश्यायें राजकीय गुप्तचरोंसे मिलकर बहुतसे महत्त्वपूर्ण गुप्त संवादोंको राजसभामें पहुंचाती थीं।

भारतमें काम-सम्बन्धी विषय कभी अवहेलनाकी दृष्टिसे नहीं देखा गया। चार परम पदार्थों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) में उसकी गणना हुई है। इसलिए वैदिक युगसे ही उक्त विषयपर अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंका निर्माण हुआ है। अथर्ववेदमें स्थान-स्थानपर काम-कलाकी विशेषताओंका उल्लेख है। वात्स्यायनके संसार-प्रसिद्ध काम-सूत्रोंमें राज-वेश्याओंकी स्थिति, रूप-रङ्ग, रीति-नीति और उनके आकर्षण-विकर्षणके स्वरूपोंपर अच्छा प्रकाश डाला गया है। यहांपर यह जतला देना अप्रासङ्गिक नहीं होगा कि वात्स्यायनके काम-विज्ञान-सम्बन्धी सिद्धान्त इस विंश शताब्दीमें भी पाश्चात्य देशोंमें सबसे अधिक प्रामाणिक माने जाते हैं। संसारकी प्रायः सभी सभ्य भाषाओंमें उनका अनुवाद हो चुका है।

कालिदासके मेघदूतमें वेश्याओंका स्पष्ट उल्लेख आया है। उन्होंने वेश्याकी निन्दा करने, अथवा रवीन्द्रनाथ तथा शरतचन्द्रकी तरह उनपर तरस खानेके बजाय उनके अभिनव रूपपर मुग्ध होकर अनुपम कविता की है। भले-बुरेका निर्णय

करनेके लिए हम यह बात नहीं लिखते, केवल सत्यकी दृष्टिसे वास्तविक तथ्य हम पाठकोंके आगे रखना चाहते हैं। कौन ऐसा पाठक है जो विख्यात नाटक मृच्छकटिककी प्रधान पात्री वसन्तसेनाके सम्भ्रान्त चरित्रके चित्रणपर न मर मिटे! तथापि बसन्तसेना एक वेश्या ही थी! एक षड़यन्त्रकारिणी सर्वजनभोग्या वेश्या! नाटककारने उसे प्रधान पात्री बनाकर यही भाव दिखाया है कि वेश्या किसी सम्भ्रान्त महिलासे कुछ कम आदरणीय नहीं है। हमारे प्राचीन पण्डितोंने आत्म-संस्कृति (Self-culture) की पूर्णताके लिए वेश्याका सङ्ग परमावश्यक बताया है—देशाटनं पण्डितमित्रता च वाराङ्गना राजसभा-प्रवेशः, आदि नीति-सम्बन्धी श्लोकोंमें यही उपदेश ध्वनित होता है। यह बात अवश्य है कि उस समय वेश्याओंकी जैसी स्थिति थी उसकी तुलना वर्तमान वेश्याओं-की दुर्दशासे किसी प्रकार नहीं की जा सकती। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, गुप्तकालीन भारतकी वाराङ्गनायें यथेष्ट शिक्षिता तथा सभ्या होती थीं। उनके स्वास्थ्य और रहन-सहनकी सुविधाके सम्बन्धमें राज-कर्मचारी विशेष सावधान रहते थे। इसका कारण यह भी था कि राजकुमार लोग नगरकी प्रत्येक सुन्दरी वेश्याके साथ सम्बन्ध रखते थे। यह बात open secret (प्रकट रहस्य) होनेके कारण राज-कुमारोंके चारित्रिक विकास तथा स्वास्थ्यके विचारसे भी वेश्याओंकी शारीरिक स्वच्छता तथा मानसिक उत्कर्षपर ध्यान दिया जाता था। इसका परिणाम यह होता था कि वेश्यायें रोग-रहित, हृष्टपुष्ट, सुन्दर, शिक्षित तथा सुसंस्कृत होती थीं और स्वयं सुख तथा शान्तिमय जीवन बिताकर नगरवासियोंको भी मानसिक आनन्द प्रदान करती थीं।

देवदासियोंके रूपमें वेश्याओंको रखनेकी प्रथा पहले पहल दक्षिणमें ही प्रचलित हुई थी और वहीं इसकी विशेषता रही है। वेश्याओंको देवदासियोंका रूप देनेका प्रारम्भिक कारण यही था कि कामुकता अनाचारमें परिवर्तित न होकर एक उन्नत, गम्भीर उद्देश्यमें परिणत हो जाय। भगवान्ने गीतामें कहा है कि यज्जुहोसि यदश्नासि यत्करोषि ददासि यत् * * तत्कुरुष्व मदर्पणम्। इसलिए वेश्याओंको देवदासियोंके महत् श्रद्धा-स्पद पदमें प्रतिष्ठित करके पुरुषोंको काम-वासनाकी चरितार्थताका कार्य देवार्पण करनेके लिए प्रेरित किया गया था। पर इस प्रथाने धीरे-धीरे अत्यन्त जघन्य रूप धारण कर लिया, इसमें प्रतिष्ठाताओंका कुछ दोष नहीं। सोलहवीं शताब्दीके प्रारम्भतक विजयनगर राज्यमें देवदासियोंकी स्थिति विशेष नहीं बिगड़ी थी। दोमिङ्गोपीज नामका एक पुर्तगीज यात्री, जिसने १५२२ में विजयनगर देखा था, अपनी यात्राके वर्णनमें लिखता है—

"मन्दिरोंसे सम्बन्ध रखनेवाली स्त्रियां शिथिल चरित्रकी होती हैं और नगरके सर्वोत्तम राजमार्गोंमें रहती हैं। वे बड़ी श्रद्धाकी दृष्टिसे देखी जाती हैं और सेनापतियोंकी प्रियतमाओंके साथ उनका स्थान रहता है। कोई भी प्रतिष्ठित व्यक्ति उनके यहां बिना किसी सामाजिक लाञ्छनकी आशङ्काके बेरोक-टोक जा सकता है। ये स्त्रियां राज महिषियोंके साथ एकासनमें बैठ सकती हैं। उनके साथ पानतक खाती हैं। यह सौभाग्य अन्य किसी स्त्री या पुरुषको प्राप्त नहीं है।"

अब्दुल रज़ाक द्वितीय देवरायके समय (१४४३) में फ़ारसका राजदूत होकर विजयनगर आया था। वह लिखता है—पुलिसके १२,००० आदमियोंका वेतन वेश्यालयों द्वारा प्राप्त राजकरसे वसूल हो जाता है। उसके कथनानुसार वेश्यायें यथेष्ट सम्पन्न होती थीं। किसी-किसीके पास एक-एक लाख सोनेकी मुहरें बतायी जाती थीं। पन्द्रहवीं तथा सोलहवीं शताब्दियोंमें दक्षिणके अन्यान्य राज्योंमें भी देव-दासियों द्वारा शासन-विभागोंकी विशेष आय थी।

प्रसिद्ध फ़ान्सीसी यात्री तेवर्नियेने मुसलमान युग (१५१२-१६८७) में गोलकुण्डा राज्यकी वेश्याओंके सम्बन्धमें लिखा है कि सरकारको उनके द्वारा यथेष्ट आय होती थी। 'आइने-अकबरी'के अनुसार अकबरकी राजधानीमें वेश्याओंकी संख्या इतनी अधिक थी कि उसका अन्दाज लगाना कठिन था। वे शहरके एक अलग कोनेमें रहती थीं, जिसका नाम 'शैतानपुरा' रखा गया था। एक दारोगा तथा एक मुन्शी इसके लिए नियुक्त थे। उनका काम यह था कि जो कोई भी व्यक्ति वेश्याओंके पास जाते थे या उन्हें अपने घर बुलाना चाहते थे उनका नाम एक रजिस्टरमें दर्ज कर लेना होता था। बिना सरकारी आज्ञाके कोई वेश्याओंको अपने घर नहीं ले जा सकता था। शाहजहांके समयमें वेश्याओंको विशेष स्वाधीनता प्राप्त थी। उनमें अधिकांश नाचने तथा गानेवाली होती थीं। सब बादशाहको 'कर' देती

थीं। इटालियन यात्री मानुची (Manucci) ने अपने Storia do Mogol (मुगल-कथा) नामक ग्रन्थमें लिखा है कि औरङ्गजेब जब सिंहासनपर बैठा तो प्रारम्भमें उसने वेश्याओंकी स्थिति वैसी ही रहने दी जैसी शाहजहांके युगमें थी; पर बादको उसने तमाम राज्यमें यह ऐलान कर दिया कि सब वेश्याओंको या तो विवाह करके रहना होगा या उसका राज्य छोड़कर चले जाना होगा। इसका फल यह हुआ कि सार्वजनिक वेश्यालय नष्ट-भ्रष्ट हो गये। कुछ वेश्याओंने विवाह कर लिया, कुछ भाग गयीं और कुछ चोरी-छिपे पेशा करने लगीं। मानुचीका यह भी कहना है कि यद्यपि औरङ्गजेबने सङ्गीत-वाद्यपर निषेधाज्ञा जारी कर दी थी तथापि बेगमोंके मनोरञ्जनार्थ वह नाचने तथा गानेवाली स्त्रियोंको अपने महलमें नियुक्त करता था। असल बात यह थी कि यद्यपि औरङ्गजेब बाहरसे पाखण्ड दिखाता था तथापि यथार्थमें वह अव्वल नम्बरका ऐयाश था। मानुची लिखता है कि वह विशेष-विशेष सुन्दरियोंको सरस काव्यमय नामोंसे पुकारता था।

शिवाजीके बाद महाराष्ट्रमें वेश्याओंका विशेष प्रचलन होने लगा। शिवाजीके राज्यकालमें कोई सिपाही यदि किसी वेश्या अथवा भ्रष्टा स्त्रीके साथ पाया जाता था तो उसका सिर उड़ा दिया जाता था। पर शुभ कर्मोंमें वेश्याओंके सम्मिलित होनेमें शिवाजीको कोई आपत्ति नहीं थी। कुछ अंगरेज इतिहासकारोंने शिवाजीपर यह झूठा लाञ्छन लगाया है कि वह स्वयं अपने लिए वेश्याओंको रखते थे। जसवन्त-राव होलकरके शिविरमें सदा वेश्यायें उपस्थित रहती थीं। कहा जाता है कि एक बार उन्होंने एक अंगरेज सिपाहीको पकड़वाकर उसका सिर कटवाया और उस सिरको एक भालेकी नोकसे पकड़कर उसपर एक वेश्याको नचवाया। ब्राटन साहबने दौलतराव सिन्धियाके शिविरकी वेश्याओंके सम्बन्धमें लिखा है कि वे सब प्रकारके राजकरोंसे बरी की जाती थीं; केवल उस साधूको उन्हें प्रतिमास कुछ देना पड़ता था जो उनके शिविरमें बराबर रहता था। द्वितीय बाजीराव (पेशवा) के महलमें असंख्य वेश्यायें रहती थीं।

दक्षिणमें देवदासी-प्रथा वर्तमान समयमें भी बहुत स्थानोंमें प्रचलित है। वहां वे भिन्न-भिन्न नामोंसे पुकारी जाती हैं, यथा—देवदासी, देवरतियाल, कुदीकार, मुरली, वासवी, भाविन, देवाली, नायकिन आदि। काञ्चीवरम्, मदुरा, तञ्जोर, जेजुरी (पूनाके निकट) आदि स्थानोंके नाना मन्दिरोंमें वे बहुसंख्यामें रहती हैं। कहीं खुल्लमखुल्ला पेशा करती हैं और कहीं चोरी-छिपे। मन्दिरोंमें उनका मुख्य कर्तव्य देवमूर्तिके सामने प्रातः-सन्ध्या नाचने तथा गाने, मूर्तिको चंवर डुलाने, तथा परछन (दक्षिणी भाषामें कुम्बर्ती) करनेका रहता है। त्रिवांकुरमें देवदासियां मन्दिर-सम्बन्धी उत्सवोंके अवसरोंपर उपवास भी करती हैं। देवदासी निम्न श्रेणीकी स्त्रियों द्वारा सौभाग्य प्रदायिनी समझी जाती है, क्योंकि "देवताकी स्त्री" होनेके कारण वह कभी विधवा नहीं हो सकती। इस कारण वह बहुधा विवाहादि मङ्गल कर्मोंके अवसरोंपर जुलूसके आगे चलनेके लिए नियुक्त की जाती है। उसकी "ताली" (गलेमें पहननेका आभूषण-विशेष) भी सुहागका चिह्न समझी जाती है, और बहुधा लोग विवाहके अवसरपर उसीसे डोरमें तालीके दाने पिरो देनेकी प्रार्थना करते हैं।

बम्बई प्रान्तके सुप्रसिद्ध खण्डोबा मन्दिरकी 'मुरलियां' मन्दिरके पुजारियोंके साथ अक्सर समीपके शहरों तथा गांवोंमें चक्कर लगाती हैं और देवता-सम्बन्धी अश्लील गीत गा-गाकर नाचती हैं और इस प्रकार अर्थोपार्जन करती हैं। निम्नश्रेणीके लोगोंका यह विश्वास रहता है कि 'मुरलियां' साक्षात् दैवज्ञ होती हैं, इसलिए उनके चरणोंमें रुपये-पैसे भेंट चढ़ाकर उनसे अपना भाग्य पूछती हैं। 'मुरलियां' कभी-कभी ऐसे अश्लील नृत्य दिखाती हैं कि पुलिसको उन्हें निषेध करनेके लिए बाध्य होना पड़ता है।

जब कोई देवदासी पहले-पहल देवताको चढ़ायी जाती है तो पहले किसी देव-मूर्ति अथवा तलवार या छुरेकी तरह किसी अस्त्रसे उसका 'विवाह' किया जाता है। कुछ तो जन्मसे ही देवताको अर्पित की जाती हैं और कुछ वृद्धा देवदासियों द्वारा अनाथावस्थामें गोद ली जाती हैं, और उपयुक्त अवसरपर चढ़ायी जाती हैं।

मारवाड़की 'भगतन'-सम्प्रदायकी देवदासियोंमें एक अत्यन्त हास्यजनक प्रथा वर्तमान है। किसी साधूसे उक्त सम्प्रदायकी लड़कीकी सगाई होती है। विवाहके बाद साधू केवल डेढ़ रुपया पाकर अपनी 'स्त्री'के साथ सब प्रकारका

सम्बन्ध त्याग करनेको राजी हो जाता है ! यदि कोई साधू न मिला तो पहले गणेशजीकी परिक्रमा की जाती है, तब जाकर वह लड़की अपनी जातीय वृत्तिकी अधिकारिणी बन सकती है ।

युक्तप्रान्तमें भी कहीं-कहीं देवदासी प्रथा पायी जाती है । प्रयागके भारद्वाज आश्रममें ऐसी स्त्रियोंकी संख्या यथेष्ट है । पुश्तोंसे वे यह पेशा करती चली आती हैं । कलकत्तेके काली-मन्दिरमें तथा पुरीके जगन्नाथ-मन्दिरमें भी थोड़ी-बहुत संख्यामें देवदासियां देखी जाती हैं । फिर भी वर्तमान समयमें भारतमें देवदासियोंकी संख्या साधारण वेश्याओंकी तुलनामें नगण्य है ।

साधारण वेश्यायें भारतके प्रत्येक शहरमें यथेष्ट संख्यामें वर्तमान हैं । कलकत्ता, बम्बई जैसे बड़े शहरोंमें तो ये हजारोंकी संख्यामें पायी जाती हैं । उत्तरी भारतमें वे तवायफ, पातुर, कञ्चनी, रण्डी, कस्बी, खानगी आदि अनेक नामोंसे पुकारी जाती हैं । खानगी अधिकतर वे वेश्यायें कही जाती हैं जो चोरी-छिपे पेशा करती हैं । बङ्गालमें वेश्या-मात्रको खानगी कहते हैं । अधिकांशतः समाज-पतिता, परित्यक्ता, अनाथा स्त्रियां ही यह पेशा अख्तियार करती हैं । उनमें भी अत्याचार-पीड़िता विधवाओंकी संख्या अधिक होती है, और उनमें भी निम्न जातिकी विधवाओंकी । उत्तरी भारतकी कुछ खानाबदोश जातियोंके लोगोंमें अपनी लड़कियोंको वेश्यावृत्तिके लिए समर्पित कर देनेकी स्थायी प्रथा पायी जाती है । बम्बईमें भी कुछ ऐसी जातियां हैं जो अपनी स्वजातीया स्त्रियोंकी वेश्यावृत्तिपर अपनी जीविकाके लिए निर्भर करती हैं । बेदिया और कोल्हाटी ऐसी ही जातियां हैं । हरनी, बेराद या बेदार, तथा मांग गरुड़ नामकी जातियोंमें भी यही प्रथा जारी है । इन जातियोंका मुख्य पेशा चोरी या डकैती है । मैसूरकी डोमबार जातिके लोग अपनी सुन्दरी लड़कियोंसे वेश्या-वृत्ति करानेके लिए प्रसिद्ध हैं । पश्चिमी भारतमें गुजरातकी ढ़ढ जातिकी स्त्रियां तथा दक्षिणकी महर जातिकी स्त्रियां साधारण वेश्यायें बनकर रहती हैं । ये दोनों जातियां अछूत सम्प्रदायकी हैं । दक्षिणमें महर जातिके लोग भङ्गीका काम भी करते हैं । कलकत्ता तथा बम्बई जैसे बड़े शहरोंमें बहुत-सी वेश्यायें ऐसी पायी जाती हैं जो भङ्गियोंके कुलोंमें पैदा हुई हैं ।

बिहार तथा युक्तप्रान्तमें नायक नामकी एक जाति रहती है । इस जातिके लोग कई पुश्तोंसे अपनी लड़कियोंसे वेश्या-वृत्ति करवाते हैं । इस जातिकी वेश्यायें अपेक्षाकृत कुलीन समझी जाती हैं और केवल उच्चकुलके व्यक्तियोंको ही वे ग्रहण करती हैं । सामाजिक प्रथा ऐसी ही है । यदि उनमेंसे कोई किसी निम्न जातिके अथवा किसी विजातीय (मुसलमान, ईसाई आदि सम्प्रदायोंके) व्यक्तिको ग्रहण करते हुए पायी जाती है तो नायक-समाजसे बहिष्कृत कर दी जाती है । इसलिए उच्च कुलोंमें ही उनकी अधिक मांग होती है और वे नृत्य तथा सङ्गीत-कलाओंमें निपुण और अपेक्षाकृत शिक्षित तथा सुसंस्कृत होती हैं । काश्मीरकी निम्न जातियोंकी स्त्रियोंमें तथा पञ्जाबमें कांगड़ा, शिमला आदि उपप्रान्तोंकी किसान रमणियोंमें साधारणतः यथेच्छाचारकी प्रथा वर्तमान है । उनमें विवाह सबका होता है, पर किसी भी अन्य पुरुषके साथ व्यभिचारमें लिप्त होनेका उन्हें पूरा अधिकार रहता है । आजकल अधिकांशतः अर्थोपार्जनके लिए ही ऐसी स्त्रियां व्यभिचारिणी बनती हैं । यह वेश्यावृत्तिका ही दूसरा स्वरूप है ।

कलकत्ता, बम्बई, देहली, लाहौर, लखनऊ आदि बड़े बड़े शहरोंमें वेश्यायें भिन्न-भिन्न कुटनियोंके अधीन रहती हैं । अधिकांशतः सर्वत्र यही नियम पाया जाता है कि वेश्यायें अपने ग्राहकोंसे जो कुछ प्राप्त करती हैं वह सब कुटनियोंके सिपुर्द करना पड़ता है । कुटनियां उन्हें उनकी आमदनीके अनुपातमें नाम-मात्रको कुछ मासिक दे दिया करती हैं । बम्बईमें विशेष रूपसे कुटनियोंका बोलबाला है । अन्य शहरोंमें स्वतन्त्र वेश्याओंकी संख्या भी कुछ कम नहीं रहती । कुटनियोंके अधीन जो वेश्यायें रहती हैं, वृद्धावस्थामें उनकी दुर्गति वर्णनातीत हो जाती है ।

कलकत्तेकी वेश्याओंकी संख्या हिन्दुस्तानके सब शहरों-से अधिक है । यहां अधिकांश वेश्यायें गांवोंसे आकर भरती होती हैं । उनमें अधिक करके निम्न जातियोंकी स्त्रियां ही होती हैं । धोबी, नाई, जुलाहा, कैवर्त (हल चलानेवाले), ग्वाला, सुवर्णवणिक आदि जातियोंकी लड़कियां कुटनियों तथा दुष्कर्मी पुरुषों द्वारा बहकाकर शहरमें लायी जाती हैं । मजा यह है कि सभी एक ही पेशा करने तथा साथ ही रहने-पर भी आपसमें जात-पांतका परहेज रखती हैं ! कलकत्तेकी

जो नौकरानियां दिनमें बाबू लोगोंके यहां काम करती हैं वे रातको वेश्यालयोंमें चली जाती हैं और पेशा करती हैं। जो पानवालियां स्थान-स्थानपर चौराहोंमें बैठी दिनको पान बेचती हैं, वे भी रातको वेश्या-वृत्ति करती हैं। कुछ गुण्डे छोटी-छोटी अनाथ लड़कियोंको पकड़कर बहुत कम दामोंमें वेश्यालयोंमें बेच डालते हैं। कुटनियां उन्हें पाल-पोसकर बड़ा करती हैं और वेश्या-वृत्तिकी सब कलाओंमें उन्हें पारङ्गत करके उनसे पेशा करवाती हैं और आमदनी सब आप ले लेती हैं।

बड़े शहरोंमें अनेक स्त्रियां ऐसी होती हैं जो समाजके डरसे पहले छिपे-छिपे वेश्या-वृत्ति करती हैं। धीरे-धीरे जब वह अधिकाधिक पतित होती जाती हैं तो खुले-खजाने पेशा करने लगती हैं।

इस बेकारीके युगमें वेश्याओंकी संख्या दिन-दिन बढ़ती जाती है, पर वेश्या-वृत्तिपर अवलम्बित रहनेपर भी ये अभागिनी स्त्रियां बहुधा बेकार ही रहती हैं। कलकत्तेमें अपर चीतपुरकी तरफ एकबार रातको चक्कर लगाइये। आप देखेंगे कि गली-गलीमें हीना-हीना पतिता रमणियां किसी भी पथिकको आत्म-समर्पण करनेके लिए कतार बांधे खड़ी हैं। बम्बईमें निम्न श्रेणीकी हजारों वेश्याओंकी दुर्गति इस हदतक पहुंच गयी है कि वे प्रतिबार आत्म-समर्पणके लिए केवल चार आने लेती हैं! कलकत्तेमें इस श्रेणीकी वेश्यायें इससे कुछ ही अधिक लेती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि सैकड़ों गुण्डे, बदमाश, लुच्चे-लफङ्गे उनके निवास-स्थानोंमें अधिकारपूर्वक घुसकर दङ्गा-फसाद मचाने लगते हैं। घृणित रोग भी इस कारण बहुत अधिक मात्रामें फैल जाता है। बम्बईमें इस प्रकारके दङ्गाइयोंसे अपनी रक्षाके लिए वेश्यायें जापानी 'योशिवारा' की तरह लोहेके डण्डोंसे चारों तरफ घिरे हुए मकानोंमें बन्धनावस्थामें रहती हैं।

बड़े-बड़े शहरोंमें विजातीय वेश्याओंकी संख्या भी कुछ कम नहीं है। चीनी, जापानी, यहूदी, यूरोपियन, ऐंग्लो-इण्डियन आदि अनेक जातियोंकी वेश्यायें, कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, देहली, लखनऊ आदि शहरोंमें पेशा करती हैं। इन वेश्याओंकी दशा हिन्दुस्तानी वेश्याओंसे किसी प्रकार भी उन्नत नहीं कही जा सकती। कुछ पेशेवर यूरोपियन गुण्डे स्थान-स्थानसे इन दुर्भागिनी स्त्रियोंको बहकाकर लाते हैं और वेश्यालयोंकी मालकिनों अथवा कुटनियोंके हवाले कर देते हैं। कपड़े-लत्ते और पान-भोजनके अतिरिक्त एक पैसा भी अधिक उन्हें नहीं मिलता और इच्छा न होनेपर भी वे कुटनियोंकी आज्ञानुसार किसी भी पुरुषको आत्म-समर्पण करनेके लिए बाध्य होती हैं। इनमें जो वेश्या वृद्ध हो जाती है वह मुक्ति पाकर स्वयं कुटनीका पेशा अख्तियार कर लेती है। भारत-सरकारकी कड़ी निगरानीपर भी गोरी स्त्रियोंका व्यापार भारतमें दिन-दिन बढ़ता ही जाता है। इधर बेकारीके कारण ऐंग्लो-इण्डियन स्त्रियोंमें भी वेश्या-वृत्ति उन्नतिपर है। कलकत्तेमें धर्मतल्ला स्ट्रीट, वेलेजली स्ट्रीट, लवर सर्कुलर रोड, पार्क सरकस, कराया आदि स्थानोंमें ऐसी वेश्याओंकी भरमार है। एक अंगरेज विशेषज्ञका कहना है कि गोरी वेश्याओंकी कमीसे यूरोपियन तथा ऐंग्लो-इण्डियन लड़कियोंमें व्यभिचार कभी नहीं घट सकता। कुछ भी हो, हिन्दू वेश्याओंकी तरह ही गोरी वेश्याओंकी संख्या भी दिन-दिन बढ़ती जाती है, यह निश्चित है।

महामना प० मदनमोहन मालवीय

एक शब्द-चित्र

श्री रामनाथलाल 'सुमन'

"Wearing the white robe of blameless life, dressed all in surplice, he seems to stand in conscious rebuke of a wicked word. ** In the midst of so much that is transient here stands a figure hinting at the permanence of things. With his turban sitting on his head without ever a suspicion of a sporting angle he takes the mind trippingly through the centuries, linking us with a past which fades into the twilight of *Satyuga.* Plain living and as much high thinking as his Brahmanism will allow him, no alcohol, no tobacco, no meat, no beds of down, no weak concession to the flesh, a glorious reminiscence of the days of Ramchandra.

—Al-Kafir.

(१)

प्रथम दर्शन—

ऊपरसे नीचेतक स्वच्छ, धवल वस्त्रोंसे सज्जित, सिरपर वही 'पेटेण्ट' साफा, ब्राह्मणका विनम्र, पर प्राचीनतासे दबा हुआ रूढ़ि-प्रेमी मुख, ललाट पर चन्दनकी सुन्दर बिन्दी, एकहरा बदन, जैसे प्राचीन युगका कोई सात्त्विक ब्राह्मण, युग-युगसे सञ्चित हिन्दू-संस्कृतिके गुण-दोष दोनोंका बोझ लिये हुए, सामने आकर खड़ा हो गया हो! इसी रूपमें पहली बार मालवीयजीको १९१७ या १८ में देखा था। तबसे उन्हें उसी ब्राह्मण-रूपमें अनेक बार देखा है—अनेक बार उन्हें बोलते सुना है। सदा उनका वही रूप, वही ढङ्ग रहता है।

इस महान् ब्राह्मणको देखते ही श्रद्धा होती है। उसमें कुछ ऐसी बात है कि मतभेद होते हुए भी आदमीका हृदय झुक जाता है। जैसे बिजली और आधुनिक युगके महायन्त्रोंसे भरे हुए मुहल्लेके बीच एक बुढ़ियाको अपने हाथसे चक्की चलाते देख दर्शक उसके प्रबल आत्म-विश्वासके सामने, ठहरकर इधर-उधर देखने लगता है; उसकी आंखोंमें एक हसरत, आशा-निराशाके चित्रोंके साथ, भर जाती है; कुछ अटपटा, पर असामान्य एवं शान्तिकर-सा अनुभव होता है, वैसे ही वर्तमान युगकी इस घोर गतिशीलता एवं झञ्झावातके झकोरोंके बीच, जब किसीको प्राचीनको देखने-परखनेकी फुर्सत नहीं और सब अपने आग लगे हुए घरसे निकल-निकलकर नयी बस्तीकी ओर भाग रहे हैं, एक आदमीको हम शान्तिपूर्वक अतीतके ईंट-पत्थरोंको सञ्चित करनेमें लगा देखते हैं। हमारी दृष्टि रुक जाती है और वह आदमी हमें आकर्षित करता है। यही मालवीयजी हैं!

स्वभावतः भविष्यकी अपेक्षा अतीत उनके लिए अधिक आकर्षक है। वह अतीतपर भविष्यकी दीवार खड़ी करना चाहते हैं। सारी बुराई-भलाईके साथ भी वह अपनी चीज है—उसके प्रति इस पवित्र ब्राह्मणके हृदयमें अत्यधिक ममता है!

(२)

व्यक्तित्वका विश्लेषण—

मालवीयजीके व्यक्तित्वके सम्बन्धमें विचार करते समय सबसे पहली बात जो याद रखनेकी है, यह है कि वह एक सच्चे ब्राह्मण हैं। यहां ब्राह्मण शब्दसे मेरा तात्पर्य इस शब्दमें छिपे सम्पूर्ण इतिहाससे है। उन्हें ब्राह्मणवादकी गौरवपूर्ण विरासत मिली है। वह इस युगके प्राणी नहीं हैं। उनमें जो कुछ असलियत है, तत्त्व है, सब प्राचीन है और युग-युगसे सिलसिलेवार रक्तमें मिलता आया है। उनके व्यक्तित्वके पार्श्वभागमें वह युग है जिसमें 'मूवी' नहीं, 'टाकी' नहीं। वह पुराणोंकी युगकी एक स्मृतिकी भांति, इस टूटते-गिरते और फिर बनते हुए जन-रव और कोलाहलके संसारमें, एक आश्चर्यकी तरह घूमते फिरते हैं।

महामना प० मदनमोहन मालवीय

की चट्टानोंके नीचेसे आनेवाली धाराका है। इसीलिए जहां उसमें पवित्रता है वहां कठोरता भी है। कठोरता इस मानीमें नहीं कि वह दूसरोंको जानबूझकर कष्ट देता है। नहीं, इस मानीमें कि वह सामने, इस युगको देखकर, बहुत कम चलता है। वह जब बिजलीके लैम्पोंसे जग-मग सड़कसे निकलता है; जब अंगरेज-मुसलमान-अछूत प्रतिनिधि-योंकी व्यवस्थापक सभामें बैठता है तो आंखें मूंदकर उस युगका ध्यान करता रहता है जहां शूद्र ब्राह्मणकी सेवा कर रहे हैं; ब्राह्मण अपने कर्म काण्डमें निमग्न है और सब कुछ ठीक-ठीक चल रहा है। ब्राह्मणमें तपस्याने इतनी शक्ति पैदा कर दी है कि अपने आपसे वह राजदण्डको लज्जित कर सकता है। जहां सब उसकी श्रेष्ठताको स्वीकार कर उससे दबे हुए हैं और उसके नेतृत्वमें ही संसारके दुर्गम मार्गपर चलना चाहते हैं।

वर्तमान युगकी खींचातानीने उसे उस उपनिषद् कालतक पहुंचने न दिया जहां योगी और तपस्वी ऋषि ब्राह्मण-शूद्रके भेदके ऊपर उठ गये थे; जहां उन्होंने मनुष्यके नाश-मान शरीरमें 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' का अमृत छककर पिया था और मानवात्मामें विश्वात्माको प्रत्यक्ष किया था। यह तपस्वी ब्राह्मण ब्राह्मण-कालका स्वप्न देखता है जहां यज्ञ हो रहे हैं, हवन हो रहे हैं; पवित्र प्राकृतिक दृश्योंके बीच देवताका अमल-धवल मन्दिर है; नहा-धोकर दिव्य वस्त्र पहने गौर ब्राह्मण बैठकर पूजा कर रहे हैं,—उनका चन्दन-चर्चित शरीर, उनका दमकता हुआ चेहरा, जलते हुए धूप-दीप और अगुरु वातावरणको मादक, मधुर और स्वप्नमय बना रहे हैं,

ब्राह्मणकी सारी विरासत उन्होंने पायी है। वह अंगरेजीके सर्वोत्तम वक्ताओंमें हैं, पर भाषणके इस विदेशी रूपके नीचे उनके उत्साहका, शक्तिका केन्द्र संस्कृतका गम्भीर अध्ययन है। इस फौआरेको कभी-कभी हम पश्चिमी ढङ्गपर सजे या पश्चिमके प्रभावसे पूर्ण बागीचोंमें भी छिड़काव करते देखते हैं, पर उसके मूलमें जो जल-स्रोत है वह पाइपोंका नहीं, अतीत-

जिसकी परिधिमें कोई अशुद्ध, मलिन—फटे चीथड़ोंवाला शूद्र आकर वातावरणके सामञ्जस्यको भङ्ग नहीं करता है !

× × × ×

क्या यह आश्चर्य-सा प्रतीत नहीं होता कि मालवीयजी जैसा नवनीतोपम कोमल हृदय रखनेवाला मनुष्य, जिसके प्राणोंका अणु-अणु दयाके अमृतसे सींचा गया है, असेम्बलीमें लड़कियोंके व्याहकी अवस्था १४ वर्षसे कम न होनेके बिलके विरुद्ध तर्क करता है और विरुद्ध सम्मति देता है ? क्या यह आश्चर्यजनक नहीं है कि जो व्यक्ति किसीको जरा भी दुःखमें देखकर रो पड़ता है, अछूतोंके कष्टोंका वर्णन करते-करते जिसकी आंखोंमें आंसू आ जाते हैं और जेबसे रूमाल निकालनेकी आवश्यकता पड़ती है, वह शास्त्रोंके आधारपर लोगोंको समझाता फिरता है कि इतनी दूरतक मन्दिरमें अस्पृश्यको जाना चाहिए और इसके आगे नहीं ?

पर नहीं, इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं है। हमें आश्चर्य इसलिए लगता है कि हम उन्हें बीसवीं शताब्दीका प्राणी समझनेकी गलती कर बैठते हैं, जिसका पथ-प्रदर्शक ध्रुवतारा बुद्धि है। यदि हम यह याद रखें कि उनका निर्माण कैसे हुआ है, उनके व्यक्तित्वके पार्श्वभागमें क्या है तो हम यह भूल नहीं सकते कि वह उस युगके हैं जिसमें बुद्धि गौण एवं विश्वास ही प्रधान है। वह जानबूझकर किसीका दिल दुखाने या अपमान करनेके लिए ऐसा नहीं करते। यह तो उनके जीवनके मूलमें ही युग-युगसे मिली हुई है ।

वह उस युगके उपकरणोंसे निर्मित हुए हैं जिसमें सब-कुछ सीधे-सीधे चला जा रहा था; जिसमें ब्राह्मण बालक, श्रेष्ठ होकर, प्रणाम लेकर भी,—छूत मानकर भी,—गांवके बूढ़े अछूतको काका कहकर पुकारता था। आजके युगमें दयाका नहीं, अधिकारका जो स्वर है, आजका मनुष्य बराबरीका जो दावा लेकर खड़ा हुआ है और जिसमें वह पैदायशी बन्धनोंको माननेसे इन्कार करता है, उसे वह देखते हैं, समझते हैं, शायद उससे सहानुभूति भी प्रकट करते हैं, पर ये सब दृश्य उनके लिए आश्चर्यमय हैं; इन्हें देखकर उनका शान्तिका स्वप्न वह टूट जाता है; इस कर्म-कोलाहलमें ब्राह्मणकी साधना ठीक-ठीक चल नहीं पाती। वह समझते हैं, आज जो युग बराबरीका, अधिकारका दावा लेकर उठ खड़ा हुआ है वह कल ब्राह्मणको समुचित आदर देनेसे, उसके आगे सिर झुकानेसे भी इन्कार करेगा ! ब्राह्मणवादके गौरवमय अतीत और संस्कारको, उसकी महान् देनको वह इस तरह मिटते कैसे देख सकते हैं ?

* * *

सच बात तो यह है कि मालवीयजीकी कोमलता एवं नम्रता जहां उनका एक महान् गुण है, उनके अन्तःसौन्दर्यको प्रकट करती है वहां वह उनका एक बड़ा दोष भी है और उनके आगे बढ़नेमें उससे बाधा भी मिली है। जीवनको सत्यसे अभिभूत करनेके लिए, उसके द्वारा सत्यको प्रकाशित करनेके लिए मनुष्यको अनेक बार निष्ठुर होना पड़ता है। यह हिंसा नहीं है; यह मोहपर ज्ञानकी विजय है। जरूरत पड़नेपर फोड़ेका आप्रेशन करना पड़ता है, पर दुनियामें ऐसे बहुत लोग हैं जो फोड़ेका आप्रेशन देख नहीं सकते—उसके लिए सम्मत नहीं होते। मैंने कई माताओंको देखा है जिनके बच्चे फोड़ेकी पीड़ासे तड़प रहे हैं, पर आप्रेशनकी बात चलाते ही उनकी आंखोंमें आंसू भर जाता है; वे कहती हैं—"इसी तरह फूटकर बह जाय तो अच्छा हो भैया !" यह मनोविज्ञानका सवाल है। हम यह नहीं कह सकते, जैसा बहुतसे सुधारक कहेंगे, कि वे अपने बच्चोंको कम प्यार करती हैं या उनका कल्याण नहीं चाहतीं। ऐसा भी नहीं कि वे इसे समझती ही न हों पर क्रिया, ढङ्ग—'प्रासेस'—उनके लिए दुःखदायी है। मालवीयजीकी दया भी कुछ ऐसी ही है।

वह निष्ठुर नहीं हो सकते अथवा यों कहें तो ज्यादा सत्य होगा कि सुधारकको, समाज—निर्माताको किस जगह कितना और किस प्रकार निष्ठुर होना चाहिए, इसे नहीं जानते। उनके हृदयपर किसीको दुखी देख तुरन्त ठेस लगती है; उनकी दया तुरन्त उनको अभिभूत कर लेती है। वह जरूरीसे जरूरी कामके लिए उसे छोड़कर आगे नहीं बढ़ सकते। यह ब्राह्मणकी व्यक्तिधर्मी दयाशीलता है। यह महान् है और उच्च है। यह हृदयके एक पक्षको बड़े उज्वलरूपमें सामने रखती है

* * *

समाजका निर्माता होनेके लिए समय-समयपर निष्ठुरता-का व्यवहार करना पड़ता है। जीवनमें ऐसे अवसर आते हैं जब निष्ठुर होना भी महान् नैतिक साहसका द्योतक

होता है। मालवीयजीमें यह बात नहीं है;—है भी तो नगण्य मात्रामें। दूसरोंको निराश और दुःखी करनेमें उनको दुःख होता है। उनका हृदय दूसरोंके विचारोंको ठेस देने, निष्ठुर होनेके लिए तैयार नहीं होता। फिर निर्दयताकी भी उनकी दूसरी परिभाषा है। 'नहीं' कहना ही उनके लिए निर्दयताका द्योतक है। बहुत ही कम बार आप उन्हें किसी अनुरोधको इन्कार करते सुनेंगे। जब इन्कार करते हैं या कर्त्तव्य-वश किसीका विरोध करना पड़ता है तो कर्तव्य पालनसे उन्हें उतनी प्रसन्नता नहीं होती जितना दूसरेका विरोध करनेसे उन्हें दुःख होता है।

अपने हृदयकी कोमलताके कारण ही वह एक मार्गको दृढ़तासे पकड़ नहीं पाते; इस दृढ़ निश्चयमें किसीका विरोध करना ही पड़ेगा; किसीकी बुराई बतानी ही पड़ेगी। यह उनके लिए एक दुःखद कार्य है। उनका हृदय मानो प्रश्नके स्वरमें कहता है—'जो बुरा दीख रहा है, कहीं उसमें कोई भलाई न छिपी हो!' निर्णय करनेमें भूल हो सकती है और यदि भूल हुई तो उसमें किसीको क्षति पहुंच सकती है। इसके विपरीत यदि निर्णय भविष्यके लिए स्थगित कर दिया गया तो निर्णय करनेका अधिकार सुरक्षित रहता है। तीर अपने हाथमें रहता है। फिर निर्णय करनेमें एक व्यक्ति या दलको नाराज करना ही पड़ता है और नाराज करनेका मतलब खुद दुखी होना है। इसलिए जहांतक बन पड़ता है वह 'इस पार या उस पार' की नीति ग्रहण नहीं करते। इसे मांज-मांजकर उन्होंने कलाका रूप दे दिया है।

'अल-काफिर' ने लिखा है—"वह इस अद्भुत कार्यमें अपने प्रतिद्वन्द्वीको थका देनेवाले कुश्तीबाजकी प्रसन्नताके साथ शामिल होते हैं। इसीलिए तत्त्वतः वह एक 'डिप्लोमेट' हैं। उनके दयालु चेहरेपर गणनात्मक व्यूहीकरणका चिह्न है; तराजूके दोनों पलड़ोंको 'बैलेंन्स' करनेवाले मनकी एक रेखा है। सामान्यतः उनके कार्योंके पीछे एक अत्यन्त दूरदर्शी मनकी - सदा युद्धक्षेत्रका निरीक्षण करने एवं विभिन्न शक्तियोंको तौलते रहनेवाले मनकी गणना होती है। राजनीतिक मसलोंपर वह प्रश्नके दोनों पहलुओंको इतनी स्पष्टताके साथ देखते हैं कि किसी पक्षमें शामिल होना पसन्द नहीं करते।" इस चित्रणमें कुछ भूल हो सकती है, पर लेखकने जो परिणाम निकाला है वह बहुत करके ठीक है। जबतक देशमें कांग्रेसका एक ही दल था; लिबरल, माडरेट, परिवर्तनवादी, अपरिवर्तनवादी, सहयोगी, असहयोगीका झगड़ा न था, तबतक वह कांग्रेस-मञ्चके प्राण थे; पर १९२० ई० के बाद उनके लिए एक निश्चित मार्गको ग्रहण करना कठिन हो गया। इसमें पाखण्डकी कोई बात नहीं है। बात यह है कि वह प्रत्येक दल और प्रत्येक वस्तुमें कुछ अच्छाई देखते हैं। उनको लिबरलोंकी गम्भीर चिन्तना-शक्ति भी पसन्द है, क्रान्तिकारियोंकी ज्वलन्त देशभक्ति भी उन्हें 'अपील' करती है, स्वराजियोंके असाधारण सङ्गठन एवं सरकारसे लड़नेकी विचित्र नीतिमें भी कुछ अच्छाई उन्हें मालूम होती थी और 'रिसापांसिव कोआपरेशन' दलवालोंकी नीति भी एक प्रकारसे ठीक प्रतीत होती थी। इसीलिए मजबूतीके साथ कुछ निश्चित सिद्धान्तोंको लेकर कोई दल वह कभी बना न सके। आज भी वह सब दलोंके मिश्रणसे हैं। वह कांग्रेसवादी भी हैं, महासभावादी वैध आन्दोलक भी हैं। पर पूरी तरह न वह कांग्रेसमें शामिल होते हैं, न और किसी दलमें। वह कांग्रेसके हैं, पर कांग्रेसवादी नहीं हैं; वह लिबरल हैं, पर लिबरल दलके नहीं हैं। पार्टीके बन्धन और पार्टीकी संकुचिततामें बंधकर रहना उनकी प्रकृतिके विरुद्ध है।

× × ×

पर ऐसा भी नहीं कि वह कभी निर्णय करते ही न हों। कई बार वह बड़े निश्चय और बड़ी दृढ़तासे अपना मत प्रकट करते हैं, पर ऐसे अवसरोंपर जो दृढ़ता दिखायी देती है वह भावावेशकी ही अधिक होती है, पर यह भावावेश भी ऐसे सुन्दर अवसरोंपर और ऐसे मनोहर रूपमें प्रकट होता रहा है कि वह उनका भूषण बन गया है। यह भावावेश उनकी आत्माका पक्ष है; उनकी मानवता, ५० वर्षकी निरन्तर जन-सेवासे अर्जित उनकी मर्यादा एवं स्थानकी रक्षक है। माडरेटोंने निराशाके साथ अपने किलेपर इस भावावेशको प्रहार करते देखा है; गरमदल-वालोंके हृदयको कितनी ही बार इस भावावेशने प्रसन्नता और गरमी पहुंचायी है; इस भावावेशने समय-समयपर सरकारको खिझाया है और मुसलमान इसीके कारण भय-मिश्रित आश्चर्यसे उनकी ओर देखते रहे हैं। क्योंकि भावावेश कोई बन्धन नहीं मानता; उसका कोई कानून नहीं; कोई

राजमार्ग नहीं। किस तरह कब उसका उदय होगा और किस तरह उससे बरतना चाहिए इसे कोई नहीं जानता।

मैंने ऊपर कहा है कि कई बार वह निश्चय करते हैं; और वह निश्चय भावावेशका, हृदयका निश्चय होता है। जिस असहयोग और सत्याग्रह आन्दोलनका उन्होंने कभी समर्थन नहीं किया, १९३० ई० में जब कांग्रेसपर सरकारने प्रहार किया एवं जब उन्होंने देखा कि स्वयं-सेवकों एवं अच्छे कुलकी कोमल बहनोंपर लाठियां पड़ रही हैं, तब उनका हृदय तिलमिला उठा। भावावेशकी दिव्यतामें मस्तिष्ककी हिचकिचाहट हवा हो गयी। फलस्वरूप लोगोंने उन्हें जेलमें पाया। जहां अपने व्यवहारसे एक समय उन्होंने असहयोगियों एवं स्वराजियोंकी अप्रियता प्राप्त की थी, वहां समय आया जब हमने देखा कि वह आज यहां, कल वहां, लोगोंमें जान डालते, निराश युवकोंको उत्साहित करते, मजिस्ट्रेटोंकी अवज्ञा करते और कानून तोड़ते फिर रहे हैं। ऐसा क्यों? कैसे यह आश्चर्यजनक घटना घटित हुई? क्या इसलिए कि जनताका नेतृत्व अपने हाथमें आ जाय? नहीं, वह चाहते तो कभीको इसे प्राप्त कर सकते थे। यह इसलिए कि जब सरकारने एक ऐसे महापुरुषपर हाथ रखा जो संसारके इतिहासमें अपनी सज्जनतामें बेजोड़ है, तो उनका अन्तःकरण चोट खाकर उठ खड़ा हुआ।

इस प्रकारका यह एक ही उदाहरण नहीं है। हिन्दू-विश्वविद्यालयके कोर्टकी मीटिंगमें देशके प्रति महात्मा-गांधीकी सेवाकी प्रशंसा करते हुए उन्होंने उनकी गिरफ्तारीपर उन्हें बधाई देनेका प्रस्ताव पास कराया। यह एक बड़े साहसका काम था। लेकिन उनका हृदय इसे किये बिना रह न सका। इस छोटी-सी बातने हिन्दू विश्वविद्यालयको एक राष्ट्रीय संस्थाके पदपर पहुंचा दिया और एक लेखकके शब्दोंमें 'नैतिक महानताकी दृष्टिसे केवल (महात्माजी द्वारा) बारडोली सत्याग्रहका स्थगित किया जाना ही एक ऐसा कार्य है जो इससे ऊंचा जा सका है।'

इसी प्रकार कानूनी प्रतिबन्धको भङ्ग करके कलकत्तामें उनका प्रवेश करना भी एक अत्यन्त गौरवपूर्ण कार्य था। मजिस्ट्रेटने एकाङ्गी अफवाहोंके आधारपर शान्ति-भङ्गकी आशङ्काकी बात कहकर वह आज्ञा निकाली थी। उस अफवाहके विरुद्ध जीवन-व्यापी सेवाका 'रेकर्ड' था—भाषणकी सौम्यता, वाणीकी मधुरता एवं शान्त शब्दोंके निर्वाचनका एक बेजोड़ 'रेकर्ड'! उनकी उपस्थितिसे नगरमें उपद्रव होगा! यह विचार भी उच्छृङ्खलतापूर्ण था। ऐसी आज्ञाके आगे उनकी दीर्घकालिक सेवा आत्मसम्मानपूर्वक भवें तानकर खड़ी हो गयी।

यदि उनके जीवनको इस सूक्ष्म दृष्टिसे देखें तो इस निश्चयपर पहुंचेंगे कि वह राष्ट्रवादी (नेशनलिस्ट) नहीं, देशभक्त (पेट्रियट) हैं; अथवा राष्ट्रवादी कम, देशभक्त अधिक हैं। जैसे व्यक्तिकी पीड़ा और दुःखको देखकर उनका हृदय विचलित हो जाता है वैसे ही मातृभूमिकी दुर्दशा देखकर उनका हृदय विकल हो जाता है। वह मातृभूमि जिसके अतीतके साथ ब्राह्मण-संस्कृतिकी उज्ज्वल गाथा जुड़ी हुई है, जिसकी गोदमें लाखोंको आध्यात्मिक सान्त्वना मिली है, जिससे जगत्के प्रायः सभी महान् धर्मोंका विकास हुआ है—वही सुजलां, सुफलां शस्यश्यामलां, मलयजशीतलां मातृभूमिकी आज कैसी दुर्दशा है! इस दुर्दशाको देखकर माताके सच्चे पुत्र इस महान् ब्राह्मणका हृदय, जो दयासे ओतप्रोत है, कैसे रो न पड़े?

* * *

इस दृष्टिसे, मालवीयजीमें विविध, परस्पर-विरोधी गुणोंका अद्भुत विकास हुआ है। जो उन्हें नहीं जानते वे उनके कार्योंसे यह अनुमान नहीं लगा सकते कि उनका हृदय कितना कोमल है। आप अपने दुःखकी जरा भी कथा लेकर उनके पास जाइये; सुनकर वह विचलित हो जायंगे। सभाओंमें बोलते-बोलते, कारुणिक बातोंकी चर्चा करते-करते उनकी आंखोंमें आंसू आ जाते हैं। जो-कुछ दुःखद और शोकप्रद है उसे वह बर्दाश्त नहीं कर सकते; उससे उनकी शान्ति अस्त-व्यस्त हो जाती है। उनका हृदय मानो पूछना चाहता है कि दुनियामें इतनी पीड़ा, इतनी अशान्ति क्यों? जो जहां है वहीं शान्ति क्यों नहीं पा सकता? उनका हृदय इतना कोमल है कि बहुत ही अनिवार्य अवस्थाओंमें वह किसी पक्षका विरोध करते हैं और विरोध करनेके बाद भी, उस पक्षको जितना दुःख होता होगा उससे कहीं ज्यादा स्वयं उन्हें होता है। विरोधका काम ही उन्हें दुःखप्रद प्रतीत होता है।

उनके मूलमें विशुद्ध ब्राह्मणवाद है। उनकी दया शुद्ध मनुष्यकी, नाम-रहित—'अनलेबेल्ड'—मनुष्यकी दया नहीं, ब्राह्मणकी दया है। खींचातानी करके निकाले गये, ब्राह्मणके अर्थमें नहीं, ब्राह्मण-कालके औसत ब्राह्मणके अर्थमें। इस शब्दके साथ जो गौरवपूर्ण इतिहास जुड़ा है, उसके भीतर जहां एक ओर दया है, वहां दूसरी ओर कट्टरता भी है; जहां क्षमा है, करुणाकी छाया है, वहां ब्रह्मदण्ड भी हैं, शापकी लपलपाती हुई अग्निमयी जिह्वा भी है। जहां आत्म-ज्ञानकी सुगन्धि है, वहां बाह्या-चारोंका घना कण्टकाकीर्ण जङ्गल भी है। उसमें जहां वशिष्ठ, नारद और व्यासकी अमृतवाणी है, माधुर्य है, वहां विश्वामित्र, दुर्वासा और परशुरामकी परुषता भी है, कट्टरता भी है। इसीलिए इस आश्चर्यजनक सत्यको माने बिना कोई चारा नहीं।

उनके जीवनमें इन परस्पर-विरोधी तत्त्वोंका ऐसा आश्चर्यजनक समन्वय देखकर जो प्रश्न उठता है उसका उत्तर देनेके लिए मानों उनका सारा जीवन उठकर कह रहा है—

"Do I contradict my-elf? Very well, I contradict myself: I conatin multitudes.

———

मौलसरी

उस दिनके वे फल लाल-लाल
रहती थी जिनसे लदी डाल

हिलती थी झोंकेसे डाली
झरती थी मौलसरी, आली
तू उन कलियोंको—मधुवाली
चुन-चुनकर खाती मतवाली

भरते जिनसे दोनों रुमाल
उस दिनके वे फल लाल-लाल

पकते रहते थे फल मंजुल
आया करते सुग्गे, बुलबुल
सुख पाते थे पत्ते हिल-डुल
करते हम भी क्रीडा मिल-जुल

था जिनसे यह जीवन निहाल
उस दिनके वे फल लाल-लाल

जब मिलते थे न पके मृदु फल
खा जाता पहले ही खग-दल
तो तुझे न पड़ता था री कल
तू रहती थी दिन-भर चञ्चल

कहती चढ़नेको डाल-डाल
उस दिनके वे फल लाल-लाल

—गोपालसिंह नेपाली

पन्द्रहवां परिच्छेद।

क्यों मैं उमापतिके साथ चलनेको राजी हो गया? यह कौतूहल था, उत्सुकता थी, अथवा आकांक्षा? इसका मैं आप लोगोंको क्या उत्तर दूं, यह मेरी समझमें नहीं आता। उन देवियोंसे मिलना क्या आवश्यक था? अथवा क्या यह उचित था? इसका विचार मैं आप लोगोंके ऊपर ही छोड़ता हूं। केवल इतना ही निश्चित रूपसे कह सकता हूं कि यदि आगरा जानेके पहले कभी कोई इस प्रकारका प्रस्ताव करता तो मैं इसे घोर अपमानजनक समझता। पर आगरा जानेपर इतने थोड़े समयमें ऐसा बड़ा परिवर्तन मुझमें हो गया था कि इस समय उसका अन्दाज लगाना स्वयं मेरे लिए कठिन हो गया है, तब दूसरेको मैं क्या समझा सकता हूं! किसी नवीना किशोरीके दर्शन-मात्रसे हृदयकी ऐसी कायापलट हो सकती है, इससे पहले मुझे कभी इसका अनुभव नहीं था। कितने ही युगोंसे रुद्ध मेरी व्याकुल वासनाका बांध ही बिलकुल टूट पड़ा था। जिधरको गति पाता था, उसी ओर विस्फूर्जित, उद्दाम वेगसे बहने लग जाता था।

सन्ध्याको उमापति और मैं जब गन्तव्य स्थानपर पहुंचे, तो सूरज अभी नहीं छिपा था। मैं नव-वधूकी तरह सङ्कोच-सन्त्रस्त होकर कांप रहा था। पर उमापति अत्यन्त प्रफुल्ल था, और उत्साहके कारण उसके शरीरकी गति तथा मुखके भावसे यथेष्ट स्फूर्ति व्यक्त हो रही थी। जब अन्धकार सीढ़ियोंसे होकर हम भीतर गये तो उमापतिने बाहरका दरवाजा खटखटाया। मुझे उसका खटखटाना ऐसा जान पड़ता था जैसे वह मेरे हृदयपर चोट मार रहा हो। मुझे प्रतिपल यही आशङ्का होती थी कि कहीं कोई देवी आकर सचमुच किवाड़ खोल न बैठे! जैसे मैं अचानक, अनजानमें इस अपूर्व-परिचित घरमें आ गया होऊं! अपने जीवनमें कभी किसी शिक्षिता स्त्रीसे बातें करनेका सौभाग्य या दुर्भाग्य मुझे प्राप्त नहीं हुआ था, इसीलिए ऐसी जड़ता तथा सङ्कोचका अनुभव कर रहा था। क्या मेरी प्रकृतिमें ही स्त्रैण भाव वर्तमान था, या स्त्री-संसर्ग-मात्रको कलुषित करार देनेवाले हमारे समाजके प्रबल शासनके भयसे मेरा स्वभाव ऐसा हो गया था?

आखिर मेरी कठिन परीक्षाका वह चरमक्षण आ ही पहुंचा। वास्तवमें एक देवीजीने आकर किवाड़ खोला। उमापतिके मुंहसे जो विस्तृत विवरण सुना था, उससे अन्दाज लगाया कि यही शान्तिदेवी होंगी। आज जब निकटसे उन्हें देखा तो उनकी आयु सत्रह-अठारह वर्षसे अधिक नहीं जान पड़ी। मैं उमापतिके पीछे, ओटमें खड़ा था। पर देवीजीने मुझे अच्छी तरह देख लिया था और मैंने भी प्रबल चेष्टासे अपने मुखमें यथेष्ट धृष्टताका भाव लानेका प्रयत्न किया, यद्यपि पांव अभीतक कांप रहे थे। उमापतिने निर्लज्ज साहससे उच्चस्वरमें कहा—"नमस्ते!" देवीजीने मधुर लाज-भरी मुसकानसे उसके अभिवादनका उत्तर दिया और मेरी ओर भी हाथ जोड़े। क्षण-भरके बाद ही मेरा साहस बढ़ गया था और अब मैं निडर होकर स्थिर नेत्रोंसे उनकी दृष्टिका सामना करनेको तैयार था।

देवीजीने उमापतिको लक्ष्य करके कहा—"आपने बड़ी कृपा की जो अपने मित्रको साथ लेकर यहां पधारे। आइये, भीतर चलिये!" यह कहकर एक बार अपनी मार्मिक दृष्टिसे उन्होंने मुझे घूरा।

उमापतिके वर्णनसे मैंने उनके बैठकके कमरेकी जैसी कल्पना कर रखी थी वह यथार्थ ही निकली। वह एक साधारण कमरा था जिसे देखकर तत्काल यह अनुभव होने लगता कि यहां तकुल्लुफकी कोई आवश्यकता नहीं है। तीनों जब बैठ गये तो शान्तिदेवीने उमापतिसे पूछा—"आपने सत्यार्थ-प्रकाश देखा था? उसे पढ़कर आपकी क्या धारणा हुई?"

उमापतिने कहा—"अभी तो मैंने पूरा नहीं पढ़ा। हां, जितना पढ़ा है, उससे मालूम होता है कि स्वामीजीके विचार बड़े गम्भीर और मनन-योग्य हैं।"

देवीजीकी आंखें बड़ी चञ्चल थीं। उनकी सुन्दर पुतलियां अत्यन्त अस्थिर तथा गतिशील थीं। कभी वह उमापतिकी ओर देखती थीं, कभी मेरी ओर दृष्टि फिराती थीं, कभी बाहरको झांकने लगतीं, कभी भीतरकी ओर। उनकी यह चञ्चलता देखकर मेरे हृदयमें घृणाका उद्रेक हो जाता था, पर उनके स्निग्ध, सुन्दर, मधुर हासमें मेरे लिए वैसा ही प्रबल आकर्षण भी वर्तमान था।

मुझसे बोलीं—"आपने भी कभी सत्यार्थ-प्रकाश देखा है?"

मैंने कहा—"कई बार।"

"कैसा लगा?"

"कुछ जंचा नहीं। इस सम्बन्धमें आजतक किसीने मुझसे कोई प्रश्न नहीं किया, इसलिए किसीके आगे अपना मत प्रकट करनेका अवसर कभी नहीं आया। पर चूंकि आप जानना चाहती हैं, इसलिए सच बात आपसे कह देना चाहता हूं, धृष्टता क्षमा करें।"

देवीजी स्तम्भित रह गयीं। उनका चेहरा एकदम उतर गया। जैसे किसीने उनके सम्बन्धमें कोई घोर कलङ्ककी बात कह दी हो। एक सामान्य बातसे उन्हें ऐसा गहरा धक्का पहुंचेगा, इसकी कल्पना मुझे नहीं थी। कोई मुसलमान किसी हिन्दू-मन्दिरमें प्रवेश करके यदि मूर्ति तोड़ने लगे, तो वह दृश्य देखकर पुजारीको उतना कष्ट शायद नहीं होगा जितना शान्तिदेवीको मेरी बात सुनकर हुआ। कुछ क्षणतक वह स्तब्ध बैठी रहीं। फिर त्रस्त और संकुचित होकर कांपती हुई आवाजमें उन्होंने पूछा—"उसमें आपने क्या त्रुटि पायी?"

मैंने सहज, स्वाभाविक कण्ठमें (इस समयतक मैं यथेष्ट साहस बटोर चुका था) उत्तर दिया—"बात यह है कि राष्ट्रीय दृष्टिसे भले ही उसका महत्त्व हो, पर ज्ञानकी दृष्टिसे तो वह कुछ है नहीं। क्षमा करें।"

शान्तिदेवी सिटपिटा-सी गयी थीं। शायद उनकी समझमें यह बात नहीं आ रही थी कि मुझसे किस ढंगसे बात की जानी चाहिए। इतनेमें दूसरी देवी, जो शान्ति देवीसे बड़ी थीं और जिनका नाम उमापतिने कमलकुमारी बताया था, भीतरसे मन्द-मन्द मुसकराती हुई हम लोगोंके पास आ पहुंचीं। उमापति उठ खड़ा हुआ और हाथ जोड़कर उसने उनसे नमस्ते कहा। मैं भी उमापतिकी देखा-देखी धीरेसे खड़ा हो गया। पर मैंने हाथ नहीं जोड़े। उमापतिने मेरा परिचय देते हुए कहा—"यह मेरा मित्र नन्दकिशोर है, कल जिसके बारेमें आप पूछ रही थीं।" उमापतिकी बेहूदगीके कारण देवीजीका चेहरा लाल हो आया; पर उमापति दुष्टता-पूर्वक मुसकराने लगा। कुछ भी हो, देवीजीने शिष्टाचार-पूर्वक मेरे प्रति हाथ जोड़े और मैंने भी प्रत्याभिवादन किया।

देवीजी बोलीं—"आप खड़े क्यों हो गये! बिराजिये न!"

हम दोनों बैठ गये। कमलकुमारीने भी एक कुर्सी पकड़ ली।

शान्तिदेवीने मुझे लक्ष्य करके कमलकुमारीसे कहा—"सुनती हो दीदी! आपकी रायमें सत्यार्थ-प्रकाशमें कुछ नहीं है।"

कमलकुमारीने एक बार अपनी मधुर दृष्टिसे मेरी ओर देखा। उन्होंने कहा—"ठीक ही तो कहते हैं। सच पूछा जाय तो उसमें वास्तवमें कुछ नहीं है।"

एक नादान, दुलारी लड़कीकी तरह शान्तिदेवीने जड़ित स्वरमें, स्नेहजनित उपालम्भके साथ कहा—"जाओ दीदी, तुम भी उन्हींके पक्षकी बात कहने लगीं!" यह कहकर वह सलाज, सविभ्रम, सस्नेह मेरी ओर देखने लगीं।

केवल इस एक साधारण उक्तिसे शान्तिदेवीकी सारी प्रकृति मेरे सामने दर्पणकी तरह स्पष्ट प्रतिभात हो गयी। मैंने देखा कि यह नवीना युवती प्रेमकी वास्तविक अधिकारिणी है—केवल प्रेम पानेके लिए ही इसका जन्म हुआ था; पर उसने अपने माता-पिता अथवा भाई-बहनसे भी

कभी सच्चा स्नेह पाया या नहीं इसमें यथेष्ट सन्देह था। यही कारण था कि उसके प्रत्येक अङ्गकी प्रत्येक गतिमें, उसके हाव-भावमें, उसकी आंखोंमें, उसके कण्ठस्वरमें अतृप्त प्रेम-की उत्कट क्षुधा रह-रहकर व्यक्त हो रही थी। मेरे मनमें एक चोट-सी लगी और एक टीस-सी पैदा हुई। अपने दर्पस्फीत मुखका व्यङ्गात्मक भाव त्यागकर मैं अब स्नेहपूर्वक अत्यन्त सरल, स्वाभाविक भावसे उसकी ओर देखने लगा।

मैंने कहा—"सत्यार्थ-प्रकाशपर आपकी इतनी श्रद्धा क्यों है? यह वेदकी तरह ही समाजियोंका धर्म-ग्रन्थ है, सन्देह नहीं! पर आपकी यह कट्टरता उचित नहीं कि उसके सम्बन्धमें किसीका मतभेद आप सहन न कर सकें। यदि आप अपनी इस कट्टरताको उचित समझती हैं तो कट्टर सनातनियोंको किसी बातपर दोष देनेका आपको कोई अधिकार नहीं होना चाहिए। जब कोई व्यक्ति किसी विषयमें अपना स्वतन्त्र मत रखता है तो उसे इसके लिए दोष देना क्या अन्याय नहीं है?"

दोनों देवियां मेरी ओर एकटक देखकर अत्यन्त उत्सुकता-पूर्वक मेरी बात सुन रही थीं। कुछ देरतक चुप रहकर कमलकुमारीने पूछा—"आप क्या ब्राह्मण हैं?"

"जी हां।"

"यही बात है।" कहकर वह कौतुकपूर्वक मुसकराने लगीं।

मैं उन्हें जैसा समझे था, वास्तवमें वह वैसी सरल-स्वभाव नहीं थीं। यह व्यङ्गोक्ति उसकी साक्षी थी।

"आप छुआछूतके पक्षपाती हैं?"

"हूं भी और नहीं भी हूं।"

इस अद्भुत उक्तिको सुनकर दोनों एक दूसरेका मुंह ताकने लगीं।

नौकरने एक तश्तरीमें पान लाकर मेजपर रख दिये।

कमलकुमारीने मुझीको लक्ष्य करके कहा—"लीजिये, खाइये।"

उमापति ठाकर हंस पड़ा। शान्तिदेवी मुंह फिराकर, अञ्चलसे ओंठ ढांपकर हंसने लगीं। कमलकुमारीका भी यही हाल था। उस दिन रातको मेरे पान खानेका तमाशा दोनोंने देखा था।

मैंने हाथ जोड़कर कहा—"क्षमा कीजिये। मैं खाता नहीं।"

कमलकुमारी बोलीं—"क्यों, उस दिन दूकानपर तो आप खा रहे थे! आप ही तो थे?"

"जी हां, मैं ही था।" कहकर मैंने उदासीनताका भाव जतलानेकी चेष्टा की।

मेरी उदासीनता देखकर किसीको इस सम्बन्धमें अधिक बातें करनेका उत्साह न रहा। उमापतिने दो गिलौरियां लेकर मुंहमें डाल लीं। दोनों देवियां यद्यपि पान खाती थीं (उस दिन दूकानमें मैंने उन्हें खाते देखा था), तथापि इस समय किसी कारणसे उन्होंने खाना उचित न समझा।

नौकर तश्तरी उठाकर भीतर जाने लगा। मुझे, न जाने क्यों, आज असमय प्यास मालूम हो रही थी। अबतक किसी प्रकार उसे मारनेकी चेष्टा करता रहा, पर जब उन लोगोंको पान खाते देखा तो, न मालूम क्यों, मुझसे पानीके बिना न रहा गया। मैंने कमलकुमारीसे यथेष्ट नम्रताके साथ आग्रहपूर्वक प्रार्थना की कि एक गिलास पानी मेरे लिए मंगवा दें। उन्होंने हड़बड़ाकर भीतरकी ओर मुख करके पुकारा—"रामरतन, एक गिलास पानी लेते आना।" शान्तिदेवी बोलीं—"पर आप क्या हमारे यहांका पानी पीयेंगे? धर्मके बिगड़ जानेका डर तो नहीं? आपके मित्र यदि आपके इस अधर्मकी चर्चा मित्रमण्डलीमें कर बैठें तो आपको मुंह दिखाना दुःश्वार हो जायगा! जरा सोच लीजिये!"

शान्तिदेवी भी तब क्या डङ्क मारनेकी कलासे परिचित हैं?

मैंने कहा—"मेरा मित्र मेरे साथ है, और वह मित्र-मण्डलीमें इस बातकी चर्चा करेगा, केवल इसी कारणसे मैं पीना चाहता हूं, वर्ना अगर अकेला होता तो शायद न भी पीता!"

पानी पीनेके बाद मैंने उमापतिसे चलनेको कहा। दोनों देवियां हमें नीचेतक पहुंचाने आयीं। कमलकुमारीने मुझसे कहा—"मैं आशा करती हूं, आप समय-समयपर दर्शन देनेकी कृपा करते रहेंगे।" शान्तिदेवी उनकी ओटमें चुप खड़ी थीं।

मैंने उत्तरमें केवल नम्रतापूर्वक मुसकराकर दोनोंके प्रति हाथ जोड़ दिए।

सोलहवां परिच्छेद

किसी नव-युवतीसे आमने-सामने खुलकर बातें करनेका यह पहला ही अवसर आज मुझे मिला था। शान्तिदेवीके प्रत्येक अङ्गकी चेष्टा, उसके मुखका प्रत्येक भाव मेरे मनमें स्पष्ट अङ्कित हो गया था। उसकी भोली तथापि दुष्टतापूर्ण आंखोंकी प्यारी तथापि मार्मिक चितवनका ध्यान करते और उसके प्रत्येक कथनका स्मरण करते हुए मैं होस्टल पहुंचा।

तबसे मैं अक्सर उनके यहां आने-जाने लगा। धीरे-धीरे उन दोनोंसे ऐसा हिलमिल गया कि बिना उमापतिको साथ लिये ही निस्सङ्कोच होकर अकेला उनके पास वक्त-बेवक्त पहुंच जाया करता था। कुछ दिनोंके बाद तो यह नियम हो गया कि नित्य बिना नागा उनके यहां उपस्थित हो जाता। एक बार दो-तीन दिनतक जुकाम तथा सिर-दर्द होनेके कारण न जा सका। चौथे दिन जब पहुंचा तो शान्तिदेवीके मुखमें उस दिन आन्तरिक आनन्दकी जो दीप्ति देखी, वह अवर्णननीय थी। बोलीं—"तीन दिनतक आप नहीं आये, मेरे तो प्राण ही सूख गये थे!" वह इस तरह बोल रही थीं जैसे हांफ रही हों, जिससे उनके हृदयकी आशङ्काका स्पष्ट अनुमान किया जा सकता था। जिस बातको वह इतने दिनोंसे छिपानेकी चेष्टा कर रही थीं, आज अनजानमें असावधानीसे उसे व्यक्त कर बैठीं। मैं आजतक उनकी सरस चञ्चलतासे ही परिचित था, आज उनके हृदयकी करुणाने उनकी आंखोंमें छलककर मेरा अभिवादन किया।

उन्होंने पूछा—"तीन दिनतक कहां रहे?"

"यहीं था।"

"क्या जुकाम हुआ है? आवाज तो भारी मालूम पड़ती है।"

"हां। आज कई वर्षोंके बाद मुझे यह शिकायत हुई है। मेरा स्वास्थ्य काफी अच्छा है, पर इधर कुछ दिनोंसे कुछ कमजोरी-सी मालूम करने लगा हूं। इसलिए मौका पाकर आज जुकामने धर दबाया है।"

शान्तिदेवीने अपनी स्वाभाविक मुसकानमें सहज, सरस व्यङ्गकी झलक दिखाते हुए कहा—"घबरानेकी कोई बात नहीं, यह बीमारी ही ऐसी है; किसीको छोड़ती नहीं। कभी-कभी मेंढ़कको भी हो जाया करती है!"

इस रहस्यमयीको जब पहले दिन देखा था तो असलियत बिलकुल ही मालूम न कर पाया था।

मैंने कृत्रिम अपमानका भाव दिखाकर कहा—"आप क्या मेरी तुलना मेंढ़कसे करती हैं?"

शान्तिदेवी खिलखिला पड़ीं। फिर तत्काल अत्यन्त गम्भीर होकर बोलीं—"आग लगे मेरे इस निगोड़े स्वभावपर! हंसनेकी बान छूटती नहीं। माफ कीजियेगा। आप कहीं सचमुच मेरी धृष्टतासे नाराज न हो जायं।"

आज कमलकुमारी दिखायी नहीं देती थीं। मैंने शान्तिदेवीसे पूछा कि कहां गयी हैं। उन्होंने कहा—"दीदी आज किसीसे मिलने गयी हैं। राततक लौटना सम्भव नहीं है। अकेले मेरा जी घबरा रहा था।"

मैंने कहा—"दिनदहाड़े क्या कोई भूत आकर उठा ले जाता?"

"हटो!" शान्तिदेवीके मुखपर रक्तिम लाजका एक हलका आवरण पड़ गया।

उपयुक्त अवसर पानेपर घनिष्ठता कितनी जल्दी बढ़ जाती है, यह देखकर कभी-कभी बड़ा आश्चर्य होता है। पर यह "उपयुक्त अवसर" कब, कैसे, क्योंकर प्राप्त होता है, यही तो मालूम नहीं होता!

शान्तिदेवीके केवल इस "हटो!" शब्दकी मधुरिमाने मुझे तत्काल सूचित कर दिया कि हमलोग कितनी दूर आगे बढ़ गये हैं और कितनी जल्दी कदम रखते चले जाते हैं। मैं थोड़ा-थोड़ा करके स्वाद लेता हुआ इस शब्दके [illegible] का रस पान करने लगा। उसकी मादकताका प्रभाव मेरे मस्तिष्कपर तत्काल होने लगा। सम्भवतः मेरी आंखें चमकने लगीं थीं और चेहरा तमतमा आया था। मेरे मुखका यह उद्दीप्त भाव देखकर शान्तिदेवी और भी अधिक सकुचा गयीं, जिससे उनके मुखकी आकृति और खिल उठी।

मैंने देखा कि हम दोनोंके बीचका सारा वायुमण्डल लाजकी रङ्गीन छायाके आवरणमें बिलकुल ढक गया है; उसे यदि उसी दम हटानेकी चेष्टा न की जायगी तो बादको उसका हटना कठिन हो जायगा।

बोला—"जोशांदा पिलाइये तो जुकाम अभी काफूर हो जाय।"

शान्तिदेवीकी मोहाच्छन्न अवस्था उसी दम दूर हो गयी और वह सचेत होकर बैठ गयीं। उत्कण्ठित होकर बोलीं—"क्या करूं रामरतन भी निगोड़ा आज घरपर नहीं है। जोशांदा तो नहीं, पर दालचीनी जरूर है, कहो तो बना दूं।"

मैंने उत्साहित होकर कहा—"चलो साथ ही मिलकर बनायें! स्टोव है?"

"हां। आइये, आप भी भीतर चले आइये।" हम दोनों परस्पर सम्बोधन करनेमें कभी आदर-सूचक क्रियाका उपयोग कर रहे थे और कभी 'तुम'-सम्बन्धी साधारण क्रियाका व्यवहार करने लगे थे।

बाहरकी तरफका दरवाजा भीतरसे बन्द करके हम दोनों भीतर चले गये। शान्तिदेवी मुझे अपने कमरेमें (अर्थात् शयन-गृहमें) ले गयीं। भीतर दोसे अधिक कमरे नहीं थे। एकमें सम्भवतः कमलकुमारी रहती थीं और दूसरेमें शान्तिदेवी। इस निस्तब्ध, निर्जन गृहमें केवल हम दो प्राणी वर्तमान थे। मेरे सिरसे पैरतक एक कंपकंपी दौड़ गयी।

शान्तिदेवीने स्टोव निकालकर मेरे सामने रख दिया। मैं स्पिरिट डालकर उसे जलानेकी चेष्टा करने लगा। कुछ देर बाद जब पम्प करने लगा तो स्टोव बुझ गया। दियासलाई जलाकर फिर उसे जलाया, पर फिर बुझ गया।

शान्तिदेवी मेरी परेशानी देखकर हंसने लगीं। बोलीं—"इसी बिरतेपर आप अपने हाथसे चाय बनानेपर तुले थे! यह काम पहले कभी किया भी है या आज ही नया शौक चर्राया है?" यह कहकर उन्होंने नये सिरेसे स्टोव ठीक करना शुरू कर दिया। मैं वास्तवमें इस कलामें नौसिखिया था। इस बलासे मैं सदा दूर रहनेकी चेष्टा किया करता था। अपने साथियोंको जलाते देखकर जो-कुछ अनुभव हुआ था, वह यहींपर समाप्त हो चुका था। झेंपकर अलग हट गया और चुप बैठा रहा। स्टोव जलाकर शान्तिदेवीने चायकी केतली चढ़ा दी।

कमरेमें कोई कुर्सी नहीं थी। केवल एक पलंग था। हम दोनों नीचे फर्शपर ही बैठे थे। शान्तिदेवीने कहा—"ऊपर पलंगपर क्यों नहीं बैठ जाते? नीचे कबतक बैठे रहोगे?"

मेरी तो रूह कांपने लगी। इस रहस्यमयीकी धृष्टता देखकर मैं हैरान था। मुझे किसी प्रकार भी उसके पलंगपर बैठनेका साहस नहीं हो सकता था। अत्यन्त संकुचित होकर मैंने कहा—"नहीं, नीचे आरामसे हूं।"

पर उसने जिद की—"नहीं, मैं नहीं मानूंगी। ऊपर बैठना ही होगा। नीचे आरामकी एक ही कही! सीलसे सारा फर्श तर है। एक तो वैसे ही जुकाम हो रहा है, तिसपर......। नहीं, यह नहीं हो सकता! उठो, ऊपर बैठो!"

मेरी तो आफतमें जान थी। बोला—"खामखा जिद कर रही हो, कह दिया कि मैं आरामसे हूं।"

"उठते हो कि मुझे हाथ पकड़कर बिठाना होगा!"

लाचार होकर उठा। पलंगपर जब बैठा तो एक हृदय-व्यापी ग्लानिके भावसे सारा शरीर जर्जरित हो गया। पर शान्तिदेवी दुष्टताजनित कौतुकसे मन्द-मन्द मुसकरा रही थीं।

रसोईके कमरेमें जाकर शान्तिदेवी थोड़ी सोंठ कूटकर ले आयीं और थोड़ी-सी दालचीनी। पानी जब खौलने लगा तो दोनोंको डाल दिया। कुछ देरतक पकाकर थोड़ी-सी चायकी पत्तियां उसमें डालकर केतली उतार ली। स्टोव बुझाकर दूध-चीनी डालकर दो गिलास चाय तैयार की। एक मुझे दिया और दूसरा आप लिया।

एक-एक घूंट जब हम दोनों पी चुके तो उसने पूछा—"कहो, कैसी बनी?"

चाय वास्तवमें बड़ी स्वादिष्ठ बनी थी। बोला—"आज पहली बार ऐसी जायकेदार चाय पी रहा हूं।"

"पूरा मसाला तो इसमें पड़ा नहीं, यह क्या खाक अच्छी बनी है! कुछ भी हो, एक दिन तुम्हें तबियतकी चाय पिलाऊंगी।"

"खाली चायका न्योता भी भला कोई न्योता है?"

मेरी बात सुन कर वह हड़बड़ाकर बोली—"आज तो नौकर घरपर नहीं था, इसलिए। नहीं तो, मैं आज ही बाजारसे मिठाई मंगाती।"

मैंने कहा—"बाजारकी मिठाई क्या मैं स्वयं नहीं खा सकता!"

"तो क्या खाओगे ?"

"घरकी बनी कोई भी चीज ।"

शान्तिदेवी वास्तविक विस्मयसे मेरी ओर कुछ क्षणतक ताकती रहीं। फिर बोलीं—"क्या सचमुच मेरे हाथका पकाया खाओगे ?"

"दोष क्या है !"

"जात नहीं जायगी ?" फिर वही दुष्ट मुसकराहट !

मैंने क्रोधका भाव दिखाकर कहा—"तुम क्या बात करती हो, शान्ति ? मुझे निरा पाखण्डी ही समझ लिया !"

अचानक, असावधानीसे मेरे मुंहसे शान्तिका नाम निकल पड़ा। शब्दके निकलते ही मैं स्वयं भय तथा विस्मयसे सन्त्रस्त हो उठा। शान्तिका मुख आकर्ण अपरिसीम लज्जासे रक्तिम हो आया।

मैंने मन-ही-मन अपनेको सम्बोधित करते हुए कहा—"बहुत जल्दी ! बहुत जल्दी ! नन्दकिशोर, तुम बहुत जल्दी, बड़ी तेजीसे आगेको बढ़ रहे हो !"

इतनेमें बाहरसे दरवाजेपर किसीको धक्का देते हुए सुना गया। मैं अत्यन्त भयभीत हो उठा। हृदय जोरोंसे धड़कने लगा। अपनी मूर्खतासे अथवा शान्तिकी असावधानीसे म जब इस जालमें फंसा था तो उस समय इस बातका ख्याल हम दोनोंमेंसे किसीने भी नहीं किया था कि बाहरका दरवाजा बन्द करके इस निर्जन गृहमें हम दोनोंके बिना किसी तीसरे व्यक्तिके भीतर बैठनेसे हमारे सम्बन्धमें क्या धारणा लोगोंके मनमें उत्पन्न होगी। धक्का देनेवाला था तो रामरतन होगा या कमलकुमारी। इन दोनोंके अतिरिक्त किसी तीसरे व्यक्तिके होनेकी सम्भावना बहुत कम थी। पर कोई भी हो, हम दोनोंकी स्थिति इस समय सब प्रकारसे अत्यन्त जटिल तथा भयावह हो गयी थी। मैं ऐसा मालूम कर रहा था जैसे कोई घोरतम दुष्कर्म करते हुए पकड़ा जा रहा होऊं। भीतरसे शान्तिका भी शायद यही हाल था। पर बाहरसे उसने अत्यन्त धीरताका भाव दिखाया।

मैंने दबी हुई जबानसे कहा—"तुमने कैसी मूर्खता की जो बाहरका दरवाजा बन्द कर दिया ! अब क्या होगा !" अपने ऊपर, अपने भाग्यपर तथा शान्तिपर मुझे क्रोध आ रहा था।

पर शान्तिने अत्यन्त धीरतासे सहज, स्वाभाविक कण्ठमें उत्तर दिया—"दरवाजा बन्द किया तो क्या हुआ ? इसमें डरकी क्या बात है ? तुम यहां क्या कोई चोरी करने आये हो, जो डर रहे हो !'

बाहर दरवाजेपर धक्केपर धक्के पड़ रहे थे। शान्तिने कहा—"चलो, दरवाजा खोलें।"

मैं अपराधीकी तरह बाहर गया। शान्तिने चिटखनी खोल दी। देखा, कमलकुमारी खड़ी थीं। एक तो देरतक खड़े रहनेसे वह वैसे ही क्रोधित दिखायी देती थीं, तिसपर जब उन्होंने मुझे देखा तो उनका चेहरा भीषण रूपसे तमतमा आया। अपराध न करते हुए भी मेरे मुखपर अपराधका भाव स्पष्ट झलक रहा है, इस बातका अनुमान मुझे भलीभांति हो रहा था। मैंने सशङ्कित दृष्टिसे उन्हें देखकर हाथ जोड़ दिये। उन्होंने मेरे अभिवादनका कोई उत्तर नहीं दिया, केवल एक-बार विकट हिंसक दृष्टिसे मुझे घूर गयीं। उस दृष्टिमें जो उत्कट ज्वाला थी उसने पलकमात्रमें मेरा मर्म जला डाला। शान्तिको लक्ष्य करके झल्लाती हुई बोलीं—" इतनी देरतक मुझे बाहर खड़े रहना पड़ा, कानोंमें क्या शीशा डाले बैठी थीं ! बड़े शरमकी बात है !" यह कहकर बिना कोई कैफियत सुने तेजीसे भीतर चली गयीं। स्पष्ट ही उनके मनमें कोई कुत्सित सन्देह उत्पन्न हो गया था। केवल सन्देह ही नहीं, सम्भवतः विश्वास ही हो गया था। कुछ देरतक शान्ति और मैं वज्र-स्तम्भित होकर वहींपर काठकी मूर्तिकी तरह स्थिर खड़े रहे। इसके बाद मैंने दबी तथा कांपती हुई जबानमें कहा—"अच्छा, अब मैं जाता हूं।"

शान्ति मानो स्वप्नसे जाग पड़ी। चौंककर बोली—"जा रहे हो ? अच्छा चलो, मैं नीचेतक पहुंचा आऊं।" उसका कण्ठ अत्यन्त दृढ़ था, और यथेष्ट ऊंचे स्वरमें उसने यह बात कही थी, जिससे उसका उद्देश्य स्पष्ट ही यह जान पड़ा कि कमलकुमारी भी उसकी बात सुन लें। उसकी दृढ़ता तथा साहस देखकर मैं विमूढ़ था।

मैंने धीमी आवाजमें कहा—"तुम नीचे क्या करोगी, यहीं रहो ! व्यर्थका कष्ट होगा।"

"चलो, चलो !" कहकर मेरी बात तुच्छ करके वह मेरे साथ चलने लगी।

सीढ़ियोंपरसे ही मैंने कहा—"अच्छा, जाता हूं, तुम अब भीतर चली जाओ।"

वह ऊपर खड़ी थी और मैं उससे एक सीढ़ी नीचे था। उस प्रायान्धकारमें भी उसकी भावाविष्ट, रहस्यमय, कूट-स्वप्नसे विभोर आंखोंकी अवर्णनीय ज्योति स्पष्ट झलक रही थी और तीव्रतासे विद्युच्छटाकी तरह विकीरित हो रही थी। बोली—"जा रहे हो? फिर कब आओगे?" उसकी आवाज कांप रही थी, गला जैसे भर आया हो।

मैंने कहा—"इस हालतमें अब कैसे आ सकता हूं!"

वह कुछ देरतक वेदना-म्लान दृष्टिसे मुझे एकटक घूरती रही। दुःखसे अथवा विस्मय-जनित खेदसे उसका मुख विवर्ण-सा हो गया था।

'तुम कायर हो!" उसकी आवाजमें धिक्कार भरी थी।

मैंने व्यतिव्यस्त होकर कहा—"तुम यह क्या कहती हो शान्ति! जानती हो, तुम्हारी इस बातसे मुझे कितनी चोट पहुंचती है? मैं क्या करूं, तुम्हीं बतलाओ। मिथ्या कलङ्कका टीका लिये जा रहा हूं, अब लौटकर कैसे आ सकता हूं!"

"कलङ्कका भार क्या केवल अकेले तुम्हारे ही सिरपर पड़ा है? इस बातका ख्याल क्यों नहीं करते कि दूसरा कैसे उसे सहन करेगा?"

"ओह शान्ति! तुम ऐसे कठोर शब्दोंसे मेरे दिलपर बड़ी कड़ी चोट मार रही हो। मैं कब इनकार करता हूं कि तुम्हें घोर विपत्तिका सामना करना पड़ेगा? पर क्या करूं, तुम्हीं बताओ?"

शान्तिने जिद्दी लड़कीकी तरह कहा—"मैं पूछती हूं, फिर कब आओगे, बस! मेरी इस बातका उत्तर दो; मैं और कोई फालतू बात सुनना नहीं चाहती।"

मुझसे कोई उत्तर देते न बन पड़ा। घोर विकट समस्या मेरे सामने उपस्थित थी। इतनेमें रामरतन बाहरसे आया, और हम दोनोंको इस तरह अस्थानमें खड़े देखकर आश्चर्यसे एक बार मेरी ओर देखने लगा, एक बार शान्तिकी ओर। हमने अलग हटकर उसके लिए ऊपर जानेका रास्ता छोड़ दिया। वह चला गया। उसे देखकर मैं और भी अधिक भीत हो गया था। पर शान्ति तो अपनेको इस लोकमें समझ ही नहीं रही थी। वह जैसे किसी प्रेत-लोकसे मेरे साथ बातें कर रही हो, जहां इस लोकके जीवोंके संस्पर्शसे कोई सम्बन्ध नहीं रहता। वह उसी तरह कहती चली गयी—"बोलो! मेरी बातका उत्तर दो!"

मैंने कहा—"तुम जिद करती हो, तो जल्दी ही एक दिन आऊंगा।"

"सच बोलना! जरूर आओगे?"

"हां जरूर आऊंगा, सच ही कहता हूं। इस वक्त जाता हूं। तुम ऊपर चली जाओ, रामरतन न मालूम क्या सोचता होगा।"

"अच्छा, तब जाओ।"

मैं जाने लगा।

"जरा सुनना!"—उसने पीछेसे पुकारा।

मैंने फिरकर देखा। उसकी आंखें छलछला रही थीं और अस्पष्ट प्रकाशमें आंसू झलक रहे थे। बोली—"जरूर आओगे? देखो, झूठ न बोलना।"

आतङ्क तथा विह्वलता मुझे एक साथ धर दबाते थे।

"कह तो दिया कि आऊंगा।"

"अच्छा, तब यहां आओ, मेरे सिरपर हाथ रखकर कसम खाओ।"

"हे भगवान्! यह स्त्री मुझे किस दुर्बोध रहस्यके जालमें लपेट रही है!"—यह सोचते हुए मैं दो-एक सीढ़ी ऊपर चढ़ गया। उसने मेरा हाथ अपने कुसुम-कोमल हाथसे पकड़कर अपने सिरपर रख लिया और कहा—"शपथ लो कि जरूर आओगे।"

उसके सिरपर जब मेरा हाथ पड़ा, तो मेरे हृदयमें पुलकके बदले भीतिका सञ्चार अधिक हुआ।

मैंने अनन्यगति होकर कहा—"शपथ लेता हूं, आऊंगा।"

"अच्छा, तब जाओ। देखो, शपथ लिया है, ख्याल रखना!"

मैं—"हां, हां" कहकर चला आया। स्पष्ट अनुभव कर रहा था कि उसकी वेदना-व्याकुल दृष्टि मेरे पीछे लगी है।

सत्रहवां परिच्छेद

प्रायान्धकार सीढ़ियोंके मायाचक्रसे किसी प्रकार छुटकारा पाकर जब बाहर मुक्तालोकमें, जनाकीर्ण लोकालयमें

आया तो ऐसा मालूम पड़ने लगा, जैसे अर्द्धरात्रिके किसी अस्पष्ट, अर्थहीन तथा मर्मघाती स्वप्नसे जाग पड़ा होऊं। तथापि उस स्वप्नकी जड़ता अभीतक मनमें वैसी ही बनी थी। मोहाच्छन्न अवस्थामें किसी प्रकार दशाश्वमेध घाटतक आया। एक नाववालेको पुकारकर राजमहलके उसपार ले चलनेको कहा। उसने कहा—"बाबूजी, सवारी ले लूं या अकेले ही चलोगे ?"

मैंने कहा—"कोई सवारी नहीं लेनी होगी; अकेले चलेंगे। जल्दी चलो।"

"क्या मिलेगा हुजूर ?"

"अरे भाई, चलोगे भी या नहीं ? किरायेकी पीछे देखी जायगी; जैसा मुनासिब होगा, दिया जायगा।"

"बहुत अच्छा, हुजूर ! जैसी मर्जी। चलिये।"

नावपर चढ़ बैठा। आज बहुत दिनोंके बाद नावपर चढ़नेका अवसर मिला था। आज वैसे ही सिर चकरा रहा था, इसलिए कुछ ही दूर आगे बढ़ा हूंगा कि जी मचलाने लगा।

जब राजमहलसे उसपार पहुंचा तो उतर पड़ा। एक रुपया नाववालेके हवाले किया, पर वह राजी न हुआ। उसके साथ तर्क-वितर्क करनेकी शक्ति मुझमें शेष न रह गयी थी। इस कारण बिना अधिक विवादके उसे और एक रुपया दे दिया। उसने अत्यन्त प्रसन्न होकर झुककर सलाम किया और नाव फिरा ली।

सूरज अभी अभी अस्त हुआ था। पश्चिमाकाशकी ओर खण्ड मेघ अभीतक रञ्जित थे। गङ्गाके इस निस्तब्ध पुलिन-पर सीपके असंख्य छोटे-छोटे कण मुक्तोज्ज्वल द्युतिसे चमक रहे थे। समस्त सैकत-भूमि ऐसी चिकनी और साफ-सुथरी हो रही थी जैसे देवबालाओंने अपने सुन्दर सुकुमार हाथोंसे यह अनुपम शय्या बिछायी हो। वहींपर लेट जानेको जी चाहता था; पर मेरे होस्टलके साथी कभी-कभी इस ओर हवा खाने आ जाया करते थे, और आज मुझे इस समय किसीके साथ कोई भी बात करनेकी न तो सामर्थ्य ही थी, न प्रवृत्ति। इसलिए सीधा आगेको बढ़ गया और बहुत दूर निकल गया। यहां किसीके आनेका भय नहीं था। निखिल विजन-प्रकृति आत्म-मगन भावसे स्निग्ध शान्त विराज रही थी। मैं वहींपर चारों खाने चित लेट गया। गङ्गाकी तरङ्गोंके मृदु-मृदु कम्पनका कल-उच्छल शब्द कानोंमें आ रहा था, ऊपर नग्न नील गगनका अनन्त-विस्तृत निर्मल रूप लहरा रहा था, नीचे विशाल-पुलिन-नितम्बिनी सरिताका जोबन उछल रहा था। मैं एकटक आकाशकी ओर निहार रहा था। बहुत-सी बातें सोचना चाहता था, पर कुछ भी नहीं सोच सकता था। दिन-भरके घूर्णनके बाद मस्तिष्क अत्यन्त श्रान्त हो गया था। इसलिए निर्निमेष, निरुद्देश्य दृष्टिसे ऊपरको देख रहा था। अचानक बगुलोंकी एक पांति अपने पङ्खोंकी गतिसे वायुमण्डलको सांय-सांय शब्दसे चीरती हुई पूर्वकी ओर जाती हुई आकाशमें दिखायी दी। कैसा सुन्दर, कैसा अनुपम वह दृश्य था ! अपने जीवनमें कई बार मैंने बगुलोंको इस प्रकार पंक्ति बांधकर उड़ते देखा था, पर इस निर्जन स्थानमें तथा निस्तब्ध समयमें नहीं ! मेरे शरीर तथा आत्माकी सारी श्रान्ति पल-भरमें जाती रही। जबतक वह हंस-माला आंखोंसे ओझल न हो गयी, मैं उसी ओर टकटकी लगाये रहा।

ज्यों ज्यों अन्धकार बढ़ता चला गया, निर्मल नील-गगन-में हीरकोपम तारक राजि उज्ज्वल-से-उज्ज्वलतर होती चली गयी। दक्षिणाकाशमें पूर्वकी ओर अगस्त्य टिमटिमा रहा था। सीरियस अपने प्रखर, पर शीतल आलोकसे झल-झल झलकता हुआ न मालूम किस परी-लोकका सन्देश मुझे सुना रहा था। उत्तर-पूर्वकी ओर मिथुन-राशिमें पुनर्वसु नक्षत्र चिर-मिलनके बन्धन-मुक्त आनन्दमें हंस रहे थे। उधर मृग-शिर भी अपने विजय-गर्वसे उद्दीप्त हो रहा था। सप्तर्षि-मण्डलका कहीं पता न चला। फिर भी ध्रुव नक्षत्रको पह-चाननेमें देर न लगी।

गङ्गाके वक्षमें निर्मल तारकाओंका शुभ्र हार झल-झल झलकने लगा। मैं जानता था कि आज कृष्ण-पक्षकी चतुर्थी अथवा पञ्चमी है। चाहे देरमें ही निकले, पर चन्द्रमा अवश्य निकलेगा, इस सम्बन्धमें निश्चिन्त था। इसलिए वह शान्त सरिता-तट छोड़कर होस्टल जानेकी तनिक भी इच्छा नहीं हुई। सर्दी अवश्य कुछ-कुछ मालूम होती थी, पर मेरा रक्त जिस अवर्णनीय मादकतासे उत्तप्त था, उसके जोरसे यह शीत मुझपर कुछ भी असर नहीं कर सकता था।

पास ही सियार रोने लगे। दो-एक मेरे पास भी आये; शायद मुझे उन्होंने जीवित मनुष्य नहीं समझा। जब मैंने

हाथ हिलाया, तो भागे। बचपनमें भूत-प्रेतकी कल्पनासे बहुत डरता था। आज भी इस विजन पुलिनपर, नीरव नैश अन्धकारमें अनेक काल्पनिक अथवा वास्तविक शब्द सुनकर सम्भवतः डर जाता, यदि मेरे चित्तकी स्थिति असाधारण रूपसे भ्रमाच्छन्न तथा उचाट न हुई होती।

बहुत देरतक योगनिद्राकी-सी अवस्थामें स्थिर, अचञ्चल बैठा रहा। आखिर पूर्वकी ओर नवोदित चन्द्रमाका पिङ्गला-लोक विभासित होता हुआ दिखायी दिया। ज्यों-ज्यों वह ऊपर चढ़ता गया, उसका प्रकाश भी रजतोज्ज्वल रूप धारण करने लगा। सारी सैकतभूमि निर्मल हासकी शुभ्रच्छटासे पुलकित, अनिर्वचनीय आनन्दके अजस्र प्लावनसे विगलित हो उठी। गङ्गाकी लहरियोंकी उमङ्ग भी अधिकाधिक तरङ्गित होती हुई मालूम पड़ने लगी, मानो वे व्याकुल उच्छ्वाससे, समधिक वेगसे हिलोरें मारने लगी हों। निखिलानन्दकी यह लहरी-लीला देखकर मेरे रोम-रोममें एक अपूर्व उन्मादका हर्ष समा गया। जो समस्या इस समयतक मेरे लिए एक भयङ्कर पहाड़का रूप धारण किये थी, वह पलमें स्वच्छ, तरल जलकी तरह सरल और स्पष्ट हो गयी। भय तथा संशयकी जो जड़िमा आज दिनसे ही जोंककी तरह मेरी छाती जकड़े थी, वह निमेषमात्रमें कपूरकी तरह विलीन हो गयी। मेरे सर्वाङ्गमें, समस्त आत्मामें अनन्त यौवन तथा विपुल जीवन-की उद्दाम आशाका प्रवेग उमड़ चला। मैं सोचने लगा— "इस बन्धनहीन विपुलाकांक्षाके आगे समाजका पीड़न तथा संसारका बन्धन कितना तुच्छ है! शान्ति मुझे प्यार करती है और मैं उसे चाहता हूं, क्या इतना ही यथेष्ट नहीं है? तब क्यों निन्दकों तथा समाजालोचकोंके झूठे भयसे मैं उसे सदाके लिए त्याग करनेको प्रवृत्त हुआ हूं? स्वर्ग तथा मर्त्य-व्यापी इस असीम आनन्दके स्पर्शसे केवल एकबार आत्माके पुलकित होनेकी देर है। जिसकी आत्मा इस पुलक-स्पर्शसे एक बार पवित्र हो चुकी है, उसके लिए फिर किसी सांसारिक अथवा सामाजिक नियमका अस्तित्व ही नहीं रह सकता। इस चरम सत्यसे आज जाह्नवीके इस पुण्य-तटपर परिचित होकर मैं कृतार्थ हो गया हूं!"

बेचारी शान्ति! मेरे बिदा होते समय कैसी आकुल, आर्त प्रार्थनासे उसने मुझे विकल कर दिया था! और उसका वह असीम धैर्य तथा अपूर्व दृढ़ता! यदि उसका प्रेम केवल एक साधारण, अस्थायी उमङ्ग-मात्र होता, तो ऐसी दृढ़ता तथा आत्म-विश्वासका होना कभी सम्भव न होता। बाहरसे चञ्चल-प्रकृति दिखायी देनेवाली इस रहस्यमयीके अन्तस्तलके किस कोनेमें ऐसी अद्भुत गम्भीरता तथा महत्ता छिपी थी? अभी मैं उसके जीवनके शतांशसे भी परिचित न हो पाया था कि अचानक दोनों ऐसी जटिल स्थितिके फेरमें पड़ गये। पर एक लाभ इस नयी स्थितिके कारण मुझे यह हुआ था कि जो प्रेम अर्द्धव्यक्त और केवल इङ्गित-मात्रसे ही व्यञ्जित हो रहा था, वह चरम परीक्षाके अवसरपर पूर्णतया परिस्फुट हो गया। मेरे प्रति शान्तिके मनोभावके सम्बन्धमें अब संशयकी गुञ्जाइश मेरे लिए नहीं रह गयी थी। पर मेरा अपना मनो-भाव कैसा था? शान्तिने मुझे कायर कहकर धिक्कारा था, और ऐसा कहनेका उसे पूरा अधिकार था। कमलकुमारीका रुख देख-नेके बाद वास्तवमें मेरा इरादा शान्तिसे सदाके लिए विदा हो जानेका था। प्रेमजनित अन्तर्प्रेरणासे यह बात वह तत्काल ताड़ गयी थी। मेरे लिए उसे छोड़नेका प्रश्न उतना बड़ा नहीं था जितना उसके लिए मुझसे सदाके लिए बिछुड़नेकी आशङ्का आतङ्कपूर्ण थी। मैं जब चाहूं उससे अपनी सुविधानुसार मिल सकता हूं, इस भरोसेके कारण मैं वर्षोंतक बिना उसे देखे धीरज बांध सकता हूं। पर मेरे एक बार विलुप्त हो जानेसे वह अबला इस विपुल विश्वमें मुझे कहां खोजेगी? उसको मुझे प्राप्त कर सकना न कर सकना पूर्णतः मुझपर ही निर्भर है। मैं उसके पास जाऊं तो वह मुझे देख सकती है, न जाऊं तो उसके लिए कोई उपाय नहीं है। यही कारण था कि उसने मुझसे बार-बार फिर मिलनेका वचन लिया था और शपथ लिवाया था। पहले कुछ देरतक तो वह साहसपूर्वक दृढ़ तथा कठिन बनी रही, पर अन्तको अपनेको न रोक सकी, बांध टूट गया और आंसुओंकी झड़ी लग गयी। हाय अबला नारी! अपने प्यारेको जकड़कर अपने साथ रखनेके लिए तुम्हारे पास आंसुओंके तारोंसे बटे हुए सुकोमल पाशके अतिरिक्त और कोई साधन नहीं है। मदनके कुसुम-पाशसे भी यह कितना सुकुमार है! तथापि कितना दृढ़!

बार-बार मुझे बिदा होनेके समय शान्तिकी अश्रु-छलछल, करुणा-विह्वल मूर्तिकी स्मृति विकल करती थी। सोचते-सोचते मेरी आंखें डबडबा आयीं और मैं अत्यन्त दुर्बलता अनुभव करने लगा। बालूपर ही लेट गया। आंखें झपने लगीं

और कुछ देरके लिए नींद भी आ गयी। जब आंखें खुलीं तो धूल झाड़कर उठ खड़ा हुआ। निखिल प्रकृतिमें छायी हुई इस अनन्त सौन्दर्य-राशिको छोड़कर जानेको जी नहीं चाहता था, पर एक ही स्थानपर स्थिर अवस्थामें बैठे बहुत देर हो गयी थी, इसलिए चलनेका ही विचार किया।

अट्ठारहवां-परिच्छेद

जब होस्टल पहुंचा तो सर्वत्र भांय-भांयके अतिरिक्त और कहीं कोई शब्द नहीं सुनायी देता था; जैसे किसी परीदेशकी राजकुमारीने अपने मन्त्रबलसे यूनिवर्सिटीके सब जीवोंको प्रस्तरके रूपमें परिणत कर दिया हो। अपने कमरेके पास पहुंचकर जब पांच-सात बार दरवाजेपर जोरसे धक्का दिया तब जाकर मेरे साथियोंकी नींद टूटी। चौंककर किसीने निद्रा-जड़ित कण्ठसे पूछा—"कौन है?"

मैंने कहा—"खोलो!"

उमापतिने आकर किवाड़ खोला। बत्ती जलायी। अपने स्वाभाविक कटु व्यङ्गके स्वरमें उमापति बोला—"इतनी देर! तब तो अवश्य ही विशेष कृपाके पात्र बन गये हो! बड़े भाग्यशाली हो भाई! मैं तुम्हें बधाई देता हूं।"

वह जानता था कि मैं आजकल शान्तिके यहां नियम-पूर्वक जा रहा हूं। उसके साथ इस मार्मिक विषयपर विवाद करना मैंने घोर अपमानकर समझा; इसलिए चुप रहा। न मालूम क्यों, उसके प्रति मेरी घृणा दिन-दिन बढ़ती जाती थी। शायद मेरी अन्तर्प्रवृत्तिने उसे कभी मित्रके रूपमें स्वीकार नहीं किया। उसके साथ मेरे हृदयका वाह्य सम्पर्क-मात्र था। एक ही यूनिवर्सिटीमें पढ़ने तथा साथ ही रहनेके कारण मैं आजतक जबर्दस्ती अपने मनको इस धारणासे ठग रहा था कि वह मेरा परम प्रिय सङ्गी है। पर अब जब यूनिवर्सिटी-से मेरे हृदयने बिलकुल सम्बन्ध त्याग दिया था तो साथियोंसे भी मेरा हृदय विमुख होने लग गया था। इस बातका स्पष्ट अनुभव मुझे आज हुआ। मैं जानता हूं कि पाठक मुझे अ-कृतज्ञ, घमण्डी और ओछी प्रकृतिका व्यक्ति समझेंगे। यह जानते हुए भी मैं अपने स्वभावके सम्बन्धमें स्पष्ट बात कह देना चाहता हूं। असल बात यह थी कि सारी यूनिवर्सिटीके किसी भी छात्र अथवा अध्यापकके साथ मेरी प्रकृतिका आन्तरिक संयोग कभी नहीं रहा। मैंने वास्तवमें आजतक कैसा एकाकी जीवन बिताया था, यह सोचकर मैं स्वयं स्तम्भित रह गया और मेरी रीढ़से होकर एक आतङ्ककी ठण्डी लहर दौड़ गयी। अपने वाह्य रूपमें मैं बहुतोंसे मिला रहता था, पर मेरी अन्तःप्रकृति बिलकुल सङ्गीहीन, विजन-वासी और निपट अकेली थी।

मेजपर मेरे नामका एक पत्र रखा था। बड़े भैयाके अक्षर दिखायी देते थे। मैं उन्हें कभीका लिख चुका था, पर उनका उत्तर आज आया। इससे स्पष्ट ही अनुमान किया जा सकता था कि मेरा यूनिवर्सिटी छोड़नेका प्रस्ताव उन्हें पसन्द नहीं आया। पत्र खोलकर पढ़नेकी इच्छा नहीं होती थी। यदि उसमें कोई बात दिलको दुखानेवाली अथवा अपमान-जनक होगी तो रात-भर नींद न आयगी, यह सोचकर मैं द्विविधामें पड़ गया। अन्तको कौतूहलकी ही जीत हुई। खोला पत्र अंगरेजीमें था और खासा लम्बा था। शब्द-प्रतिशब्द पढ़नेका साहस नहीं हुआ, इसलिए सरसरी निगाहसे मिनट-भरमें सारा पत्र पढ़ गया। दो-चार शब्द अवश्य बीचमें नजरसे छूट गये होंगे, पर पत्रका मर्म भली भांति समझ गया। मुझे अपरिपक्वबुद्धि, भावुक, सनकी आदि विशेषणोंसे विभूषित करके भैयाने मुझे "स्ट्रांगली एडवाइज" किया था कि मैं यूनिवर्सिटीमें ही रहूं; और लिखा था कि खर्चेकी तङ्गी हो तो उसकी बिलकुल चिन्ता न करूं, जिस तरहसे आराम मिले, वैसा उपाय हो सकता हैं, पर पढ़ाई छोड़ना किसी प्रकार उचित नहीं; इत्यादि-इत्यादि।

मैंने मन-ही-मन भैयाको लक्ष्य करके व्यङ्गके बतौर कहा—"प्रणाम! अब आप कृपा कीजिये। आपके ज्ञानभरे उपदेशों-की मुझे अब कोई आवश्यकता नहीं रही। मैं अपरिपक्व-बुद्धि ही सही, भावुक ही सही; पर आपकी परिपक्व-बुद्धि आपहीको मुबारिक रहे। मैं बाज आया। आप भाग्यशाली हैं, स्वस्थ हैं, आत्मसन्तुष्ट हैं। यह सब सही है, मैं मानता हूं। पर भगवान् सभीको सांसारिक नियमोंके पालनके लिए पैदा नहीं करते। इसलिए आपकी परिपक्व सांसारिक बुद्धि मेरी प्रकृति-को समझनेमें असमर्थ है। अतएव पुनः प्रणाम! अब कोई पत्र आपको नहीं लिखूंगा।"

बत्ती बुझाकर, कम्बल ओढ़कर जब बिस्तरपर लेटा तो बड़े भैयाकी मोटी-ताजी, अपरिमित स्वास्थ्यसे तमतमायी हुई सूरत ही मेरी आंखोंके आगे फिरने लगी। भैया बड़े स-

मुख, मिलनसार तथा सरकारी समाजमें लोकप्रिय व्यक्ति थे। लोगोंमें कानाफूसी सुनी जाती थी कि वह 'बोतल' का थोड़ा-बहुत शौक रखते थे। इसके अतिरिक्त एक-आध अन्य "दुर्बलता" का दोष भी उनमें बताया जाता था। मैं यद्यपि व्यक्तिगत रूपसे इस सम्बन्धमें निपट अनभिज्ञ था, तथापि इस अफवाहपर अविश्वास करनेका भी कोई कारण मैं नहीं देखता था; बल्कि मुझे एक तरहसे पूर्ण विश्वास ही हो गया था। आश्चर्य यह था कि बोतलादिके सेवनसे उनके स्वास्थ्यमें कुछ भी कमी होती नहीं दिखायी देती थी, बल्कि वह टानिक' के समान उनके लिए उपकारी सिद्ध हो रहा था। अपनी एकान्त-प्रिय, भावुक प्रकृतिसे उनकी प्रकृतिमें मुझे इतना बड़ा अन्तर दिखायी देता था कि उन्हें देखते ही कभी मुझे उनपर घृणा होने लगती, कभी अपने ऊपर क्रोध आता। मैं सोचता था कि यह घृणा मेरी अस्थिर प्रकृतिकी अस्थायी-प्रवृत्ति-मात्र है, वर्ना अपने भाईके प्रति किसी भी कारणसे घृणा होना कैसे सम्भव हो सकता है! पर आज जब मेरे मानसकी गति एक निराले ही पथकी ओर लहराने लगी तो मैंने स्पष्ट अनुभव किया कि हम दोनों भाई-भाई होनेपर भी दिन और रातकी तरह बिलकुल ही परस्पर-विपरीत लोकके निवासी हैं।

भैया सिरसे परतक एकदम अंगरेजी ठाठमें रहते थे। अंगरेजी ऐसी अच्छी बोलते थे कि हिन्दी गलत बोलने लगे थे। अंगरेजी बोलचालका कोई भी ऐसा घरेलू या बाजारू शब्द न था जिसे वह न जानते हों, अथवा जिसका उपयोग बात-बातमें न करते हों। बिलायती एटीकेट तथा फैशनके सम्बन्धमें अप-टु-डेट खबर रखते थे। सड़ियल अंगरेजी उपन्यासों तथा तुच्छ विनोदके सामयिक पत्रोंसे उनकी अलमारियां ठुंसी रहती थीं। पर मजा यह था कि दुनियाका कोई भी विषय ऐसा न था जिसपर वह विवाद करनेको प्रतिक्षण तत्पर न रहते हों, यहांतक कि मौका पड़नेपर फिलासफीपर भी घण्टों बहस कर लेते थे! यद्यपि अपने जीवनमें व्यावहारिक रूपसे वह एपिक्युरियन फिलासफीको ही अपना रहे थे (और इसी कारणसे चार्वाकके दो-चार बहु-प्रचलित श्लोक भी उन्होंने किसीसे सुनकर याद कर लिये थे) तथापि तर्कके अवसरपर अक्सर गीताके अध्यात्मवादका ही गुणगान करने लगते, और यह भाव दिखाते कि उनके समान गीताके समझनेवाले व्यक्ति भारतवर्षमें बहुत कम हैं। मुझे याद है, एक दिन शिमलेमें जब वह इसी प्रकार अपनी मित्र-मण्डलीके साथ बैठे, अपनी दाम्भिक उक्तियोंसे सबको चकित करनेकी चेष्टा कर रहे थे, और गीताके "निगूढ़ तत्त्व" के प्रतिपादनसे सबके मनमें एक सम्भ्रमपूर्ण आतङ्क जगा रहे थे तो अचानक मैंने उन्हें बीच हीमें टोक दिया। मैंने कहा—"यह सब ठीक है। माना कि आप लोग सब गीताके मर्ममें पैठ गये हैं और उसकी महत्ताके कायल हैं। पर आप लोगोंके रात दिनके व्यावहारिक जीवनसे गीताका क्या सम्बन्ध है, मेरी तुच्छ बुद्धिमें यह बात न आयी। इहलोक सम्बन्धी आमोद-प्रमोदके जिस विलासी जीवनको आप लोगोंने अपनाया है उससे गीता-धर्मका कितना साम्य है, क्या मैं यह जान सकता हूं? या आप लोगोंकी रायमें तर्क ही चरम सत्य है और तर्क-क्षेत्रके बाहर गीताका कोई विशिष्ट स्थान नहीं है?"

मेरी गुस्ताखी बड़े भयाको बिलकुल पसन्द न आयी। बिगड़कर बोले—'गीतामें यह कहांपर कहा गया है कि भोग-से निरत रहो? उसका तात्पर्य यही है कि निःसङ्ग होकर भोग करो। तुम यह कैसे समझ लेते हो कि बाहरसे जो आदमी विलासितामें लिप्त है उसका अभ्यन्तर भी उसीमें डूबा है? एक रूपमें हम भोगवादी हैं, सन्देह नहीं; पर प्रत्येक व्यक्तिका दूसरा स्वरूप भी तो होता है।"

तर्ककी दृष्टिसे यह बात अकाट्य थी। भैयाकी तर्क-बुद्धिकी तीक्ष्णता देखकर मैं वास्तवमें परम प्रसन्न हो गया और आनन्दसे खिलखिलाकर हंस पड़ा। वह समझे कि मैं उनकी बातपर तनिक विश्वास न करनेके कारण हंस रहा हूं। यह धारणा एक दृष्टिसे गलत भी नहीं थी। वह बड़े झल्लाये। मैं रुख अच्छा न देखकर चुपचाप उठकर चल दिया।

भाभीजीके लिए भैयाने एक देशी ईसाई महिला अंगरेजी पढ़ानेके लिए रखी थी। पर भाभीजी दो-चार प्रारम्भिक शब्द सीखकर ही उकता गयी थीं, इसलिए महिलाको छुट्टी देनी पड़ी। पर भैयाकी प्ररोचनासे भाभीजीने रहन-सहनमें बहुत-कुछ नया फैशन अख्तियार कर लिया था, जो उनको नहीं सुहाता था। घरपर वह एक सादी-सी साड़ी पहनकर नङ्गे-पांव रहती थीं, इसलिए गृहलक्ष्मी-स्वरूप दिखायी देती थीं। पर बाहर जब भैयाके साथ घूमने निकलतीं तो ऊंची एड़ीकी जूती और फैशनेबुल साड़ी पहनके जातीं। भैयाकी खर्चीली

प्रकृति तथा सन्दिग्ध चरित्रके सम्बन्धमें वह परिचित थीं, पर उनसे शायद ही इस सम्बन्धमें कभी कुछ कहती हों। एक दिन मैंने उनसे कहा—"देखो भाभीजी, भैयाके रंगढंग क्या तुम्हें पसन्द हैं ?"

"कैसे रंगढंग ? तुम्हारी बात मैं समझी नहीं।" उन्हें मेरी बात सुनकर कुछ आश्चर्य-सा हो रहा था, अथवा आश्चर्य-का बहाना कर रही थीं।

मैंने कहा—'भैयाका रहन-सहन, खान-पान, राग-रङ्ग, यह सब तो तुम देख रही हो न ? क्या तुम्हें इसपर कोई एतराज नहीं है ?"

भाभीजी अब समझीं। बोलीं—"मेरे एतराजसे हो क्या सकता है ! मैं हूं कौन चीज !" बहुत दिनोंसे रुद्ध मानका आवेग उनके शब्दोंसे फूटा पड़ता था।

मैंने कहा—"तुम अगर उन्हें टोकतीं, समझातीं और जोरोंसे विरोध करतीं, तो मुझे पूरा विश्वास है, भैया अवश्य बहुत-कुछ संभल जाते। पर तुम उलटा उनकी हांमें हां मिलाती हो, बल्कि यह कहना ठीक होगा कि तुम उनका विलायतीपन देखकर गर्वका अनुभव करती हो और उनके सिखाने-पढ़ानेपर उनके चरित्रके दोषोंको भी गुणके बतौर मानने लगी हो ! और उनकी तुच्छसे तुच्छ बातपर भी खिल-खिला उठती हो !" मैं यद्यपि शान्तिपूर्वक समझाकर यह सब बातें कहना चाहता था, पर हृदयावेग रोकना मेरे लिए कठिन हो गया था। भाभीजी मेरी कटुता देखकर स्तम्भित-सी रह गयीं। कुछ देरतक विह्वल भावसे मेरी ओर देखती रहीं। फिर व्याकुल कण्ठसे बोलीं—"तुम भी ऐसा कहने लगे !" यह कहकर रो दीं। अत्यन्त दुःखित तथा लज्जित होकर मैंने क्षमा मांगी और आन्तरिक स्नेहसे दिलासा देने लगा। असल बात यह थी कि मैं भैया तथा भाभीजीके पारस्परिक व्यवहार तथा भीतरी बातोंसे परिचित न था। भाभीजी सम्भवतः बहुत दिनोंसे किसी सहृदय व्यक्तिके आगे अपने हृदयके रुद्ध क्रन्दनका स्रोत मुक्त करना चाहती थीं, पर आज-तक कोई ऐसा व्यक्ति उन्हें नहीं मिला था। मुझे वह भी शायद अपरिपक्व-बुद्धि समझती थीं, इसलिए इस सम्बन्धमें मुझसे कोई बात करना उचित नहीं समझती थीं। पर आज मेरी बात सुनकर उन्हें मेरी बुद्धिके सम्बन्धमें अपनी भूल मालूम हुई। उन्होंने सभी भीतरी बातें मेरे आगे खोल-कर रख दीं। उनकी बातोंसे मालूम हुआ कि भैया अपने सम्बन्धकी किसी "पर्सनल" बातमें किसीकी दस्तन्दाजी सहन नहीं कर सकते। यदि भाभीजी उनकी 'प्राइवेट' बातोंमें हस्तक्षेप करनेकी चेष्टा करें या किसी विशेष बातका विरोध करें अथवा कोई उपदेश दें, तो भैया पहले तो हंसीमें उनकी बात उड़ा देनेकी चेष्टा करेंगे और यदि उन्होंने जिद की तो उनसे बोल-चाल बन्द कर देंगे। भाभीजीने कहा—"तुम्हीं बतलाओ, इस हालतमें मैं कर क्या सकती हूं ? मेरे लिए केवल यही एक रास्ता रह गया है कि वह जो-कुछ करें, करने दूं, उनकी हांमें हां मिलाऊं, और जिस प्रकार मुझसे प्रसन्न रहें वैसा उपाय करूं। वह मुझसे रूठे रहें, यह मैं किसी तरह नहीं चाहती।"

भाभीजीको वास्तवमें दोष नहीं दिया जा सकता था; पर बड़े भैयाके प्रति मेरे मनमें घृणाका भाव प्रबल होता चला गया। यद्यपि वह मुझे सब भाइयोंसे अधिक चाहते थे और अपने प्रति मेरी मनोवृत्तिसे बिलकुल परिचित न थे, तथापि अपने हृदयको बहुत समझानेपर भी मैं उनके प्रति दिन-दिन विरक्त होता जाता था।

ऐसे जो मेरे बड़े भैया थे, उन्हींका उपदेशपूर्ण पत्र जब इस रूपमें मेरे पास पहुंचा, तो मेरा क्षुब्ध होना स्वाभाविक था। वैसे उनको इस पत्रके लिए विशेष दोष नहीं दिया जा सकता। उन्होंने जो कुछ लिखा था स्नेहवश ही लिखा था और कोई अनुचित बात भी नहीं लिखी थी। पर चूंकि उनके आदर्शसे मेरा आदर्श बिलकुल भिन्न था और उनकी सांसारिक सफलताको मैं अपनी गर्वित प्रकृतिके कारण अत्यन्त अवहेलनाकी दृष्टिसे देखने लगा था, इसलिए उनके उपदेशको मैं मन-ही-मन ठीक उसी तरह तुच्छ गिनने लगा जसे वह अपने "पर्सनल" अथवा "आफीशियल" विषयोंपर भाभीजीके मन्तव्योंकी उपेक्षा करते होंगे। मैं अच्छी तरह जानता हूं कि लोग मेरे स्वभावके औद्धत्यसे परिचित होकर मुझे मन-ही-मन तिरस्कृत करेंगे। पर मैं न तो इस सम्बन्ध-में अपनी सफाई ही देना चाहता हूं और न किसीके भ्रमका निराकरण करनेकी मेरी इच्छा ही है। मैं केवल अपनी वास्तविक प्रकृति सबके आगे यथारूप रख देना चाहता हूं। इसके बाद—जाकी रही भावना जैसी.........

जैसा कि मैं पहले ही इङ्गित कर चुका हूं, भाभीजीने जिस दिन मुझे अपना अन्तःविश्वास स्थापित करनेके योग्य समझा उस दिन मेरे आनन्दकी सीमा न रही। मुझे मालूम था कि मैं सनकी हूं; पर जब भाभीजीने मुझे आयुमें अपरिपक्व देखकर भी मेरी बुद्धिपर आस्था प्रकट की, तो मैं समझ गया कि मैं निरा मूर्ख नहीं हूं। तबसे उन्हें मैं परम स्नेह तथा श्रद्धाकी दृष्टिसे देखने लगा, और वास्तवमें वह श्रद्धाके योग्य थीं भी। उनकी सरस हास्योज्वल देव्योपम कमनीय कान्ति, स्निग्ध-मधुर स्वभाव तथा तरल-शीतल वाणी मातृत्वकी महत्ताकी परिचायक थी।

उनके दो लड़कियां थीं। जिस समयकी बात मैं लिख रहा हूं, तब बड़ी लड़कीकी अवस्था प्रायः दस सालकी होगी और छोटीकी प्रायः छ सालकी। दोनों लड़कियां भाभीजीकी ही तरह सुन्दर थीं, और साथ ही खुशदिल और चञ्चल थीं। मुझे बहुत प्यार करती थीं और जब मैं कभी शिमले जाता तो एक क्षणके लिए मेरा साथ न छोड़ती थीं; यहांतक कि मुझे उन्हें रातको भी अपने ही कमरेमें सुलाना पड़ता था। भाभीजी जैसी सुघड़ महिलाकी देख-रेखमें रहनेसे उनका शील-सौष्ठव भी बहुत सुन्दर बन गया था। पर भाभीजी उन्हें जी-जानसे प्यार करनेपर भी पुत्रहीन होनेके कारण अपनी आत्मामें एक भयङ्कर अभावका अनुभव करती थीं। इधर छ सालसे उनके कोई सन्तान नहीं हुई थी, इसलिए उन्हें अब यह भय होने लगा था कि कहीं सदाके लिए उन्हें निराश न होना पड़े। क्योंकि उनके मनमें अभीतक यह आशा बनी थी कि किसी दिन एक सुन्दर, दुलारे लड़केका प्यारा-प्यारा मुखड़ा वह देखेंगी ही।

बहुत देरतक भैया और भाभीजीके सम्बन्धकी कल्पनाओंमें ही निमग्न रहा। सोचते-सोचते जब आंखें लग गयीं तो एक विकट स्वप्न दिखायी दिया। मैंने देखा कि भाभीजी अत्यन्त म्लानमुख होकर मेरे पास आयीं और बोलीं—"जयन्ती विधवा हो गयी है!" वज्राहत-सा होकर मैंने पूछा—"तुम जयन्तीको कैसे जानती हो?" उन्होंने उत्तर दिया—"मैं जयन्तीको भी भली-भांति जानती हूं और उसके पतिको भी।" मैंने आश्चर्यचकित होकर अत्यन्त व्याकुलतासे पूछा—"जयन्तीका क्या हाल है?"

"वह पागल हो गयी है!"

मैं असह्य व्यथासे कराहने लगा। अचानक मेरे कानोंमें आवाज आयी—"नन्दकिशोर! नन्दकिशोर!" नींदसे चौंककर देखता क्या हूं कि उमापति मुझे पुकार रहा है। स्वप्नकी उत्कट विभीषिकासे मेरा हृदय अभीतक जोरोंसे धड़क रहा था।

उमापतिने कहा—"क्या कोई भयावना सपना देखा? छातीपर हाथ तो नहीं पड़ गया?" वास्तवमें छातीपर हाथ पड़ा था। मैंने लज्जित हो कर हाथ हटा लिया। चुप रहा, कुछ बोला नहीं। उमापतिने यह सोचकर कि शायद अभीतक मैं स्वप्नकी जड़िमाका ही अनुभव करता होऊं, मुझे फिर पुकारा। मैंने केवल हुंकारी भरी। वह बोला—"अभीतक होशमें आये या नहीं?"

मैंने कहा—"मैं बेहोश कब था?"

वह जोरसे ठठाकर हंस पड़ा। उसका हंसना अर्द्धरात्रिमें भौतिक अट्टहासकी तरह विकट जान पड़ा। सब लड़के चौंककर जाग पड़े।

आज अपने जीवनमें प्रथम बार मैं इस प्रकार स्वप्नावस्थामें चिल्लाया था। मैं सोचने लगा कि यह क्या मेरी शारीरिक अस्वस्थताका चिह्न है अथवा मेरी आत्मा ही दुर्बल हो गयी है? कुछ भी हो, जयन्तीके विधवा होनेकी बात अर्थहीन-सी मालूम हुई। जहांतक मेरा ख्याल था, जयन्तीका विवाह अभीतक नहीं हुआ था, यद्यपि इस सम्बन्धमें निश्चित रूपसे मैं कुछ नहीं जानता था। पर भाभीजीका कहना कि मैं उसे जानती हूं, उसके पतिको भी जानती हूं, एक अनोखी, बेमेल बात-सी लगी। मुझे विश्वास था कि सारा स्वप्न निरर्थक तप्त मस्तिष्कका विकार-मात्र है। तथापि उसकी स्मृति बार-बार एक अज्ञात भीतिके भारसे छातीको दबा रही थी।

क्रमशः

ऐ 'दर्द' यों किसीसे न दिल तू लगाइयो,
लग चलियो सबसे यों तू पै जी मत लगाइयो।

हम गपशप कर रहे हैं। मेरी बगलमें बैठा हुआ विचित्र भारतवासी ध्यानसे हमारी बातें सुन रहा है। मार्टा बोली—"मुझे वे तीन भारतवासी फिर मिले थे। उनकी बात-चीतसे मालूम होता है कि उन्हें सभ्यता और संस्कृतिसे दुश्मनी है।" यह सुनकर मुझे न आश्चर्य हुआ और न दुःख; क्योंकि बर्लिनमें अनेक धूर्त पात्रोंको देख चुका था। यों ही उत्तर दिया—"क्यों बात क्या है?" उसकी सखी मार्टासे बोली—"चुप भी रह। अब इससे उनका जिक्र करनेसे क्या मतलब है" पर मार्टा कब चुप रहनेवाली थी। इस सुकुमारीके चेहरे पर लाज बरसती है लेकिन यह बड़ी मुंहफट है। पुरुष भी इसकी-सी बातें मुंहमें लानेमें सङ्कोच अनुभव करेगा। तुरत जवाब दिया—"क्यों छिपाऊंगी, मुझे किसीका डर है क्या?" यह कहते हुए मेरी ओर देखकर बोली—"सच कहती हूँ, मुझे उन तीन भारतीय नवयुवकोंने कल इतना तङ्ग किया कि मैंने एकके तमाचा जड़ दिया।" यह सुनकर मैं सन्न रह गया। यह लड़की हाथ भी चलाती है। छिः नारी जातिकी हाथापाई शोभा नहीं देती। इतनेमें ख्याल आया कि यूरोपकी नारी युद्धमें भी सैनिक बनकर भाग लेती हैं। इसलिए वह जो न करे सो थोड़ा। जहां स्त्री पुरुषके समकक्ष बनना चाहती है वहां वह स्वभावतः उसको दङ्गलमें भी पछाड़ेगी। मैं यूरोपमें हूँ और भारतकी तरह विचार रखता हूँ। इसलिए मार्टाकी बात सुन कुछ देरके लिए हैरान था। अब मुझे उसकी वीरतामें दिलचस्पी आयी और बड़ी उत्सुकतासे मैंने पूछा—"तुम्हें लड़ पड़नेका क्या खब्त सवार हुआ?" मार्टा कुछ बोला ही चाहती थी कि बगलमें बैठा हुआ भारतवासी अपनेको रोक न सका और बड़े जोश खरोशसे कहने लगा—"फ्राउ लाइनने बहुत अच्छा किया। उस नालायकके दो जूते जड़ने थे। उसकी बेजा हरकतसे कल विल्हेल्मस हालनमें सब भारतवासियोंका सर नीचा हो गया।" अब तो मैं भी जान गया था कि जोरसे बोलना असभ्यता है। इस सज्जनसे कहनेको ही था कि "भाई—जरा, गुस्सा थूक दो और ठण्ढे होकर धीमेसे माजरा सुनाओ।" पर ये शब्द मेरी जबानपर ही रह गये—बाहर न निकलने पाये। क्योंकि वे तीनों छात्र ठीक इस समय एकाएक प्रवेशपथपर आपसमें ही झगड़ने लगे और खूब चिल्ला चिल्ला कर उन्होंने आस्मान सरपर उठा लिया। सारी महफिल हक्का बक्का उनकी ओर देख रही है और ये तीन निर्लज्ज छात्र इस प्रकार चीख रहे हैं कि किसी जङ्गलमें गुण्डे आपसमें लड़ रहे हों। काफेका मनेजर

बाहर आया और इन्हें समझाने-बुझानेकी कोशिश करने लगा, पर इन्हें उसकी बात सुननेकी फुरसत कहां? आपसकी तकरारमें जो स्वर्गीय आनन्द वे प्राप्त कर रहे हैं वह सचमुच अनिवर्चनीय है। 'साला', 'हरामजादा'; 'पाजी' 'सुवर' आदि शब्दोंकी भरमार है। दो तीन बैरा भी आये। उन्होंने इन्हें बिठानेकी कोशिश की, पर वे भी अपना-सा मुंह लेकर रह गये। मजा देखिये कि खड़े खड़े ऐसे स्थानपर वाक्‌युद्ध चल रहा है कि लोगोंका रास्ता ही बन्द हो गया है। दर्शक अब इनकी मूर्खता पर हंस रहे हैं। सबके मुंह पर इनकी ही चर्चा है, राह चलते भी रुक गये हैं, फुटपाथ पर एक कान्सटेबल भी आ खड़ा हुआ है, पर इससे क्या? इन तीनों 'जङ्ग-बहादुरों' का पारा चढ़ते ही जा रहा है। इस बेहयाईकी हद नहीं है। लोग छी छी करने लगे हैं। मनेजर उन्हें डाटने लगा है और वेटर उन्हें बाहर खदेड़नेकी धुनमें है। लेकिन इनपर मैं-मैं तू तू का क्या जबर्दस्त नशा छाया है कि मनेजर इन्हें रास्तेसे हटा रहा है, बैरा इन्हें एक तरफ घसीट रहे हैं और आने-जानेवाले पथ मांग रहे हैं पर इनको टससे मस करना किसीके काबूका काम नहीं है। जाफरने ठीक ही कहा था कि—"इन्हें जूते जड़ने थे।" अब चार भारतवासी इन्हें समझाने आये। और इन्हें धक्का देकर बाहर खदेड़नेका प्रयत्न कर रहे हैं। इन्हें समझा रहे हैं "तुम क्या पागल हो गये हो? तुमने तो हमारी नाक भी कटवा दी। बड़ी शरमकी बात है कि यूरोपमें अपने देशको इस प्रकार बदनाम करवा रहे हो। चलो, बाहर चलो तो कहीं और जगह जायें" आदि। मार्टाने मुझे हिलाया क्योंकि यह दृश्य देख मैं इन तीन परिचित बन्धुओंको अवाक् होकर एक टक घूर रहा था। मैंने उसकी तरफ दृष्टि की तो वह मुसकरा रही थी। उसकी हंसीका अर्थ समझा और मेरी अन्तर्वेदना असह्य हो उठी। वहां बैठा हुआ, आत्मग्लानिकी नारकीय अग्निमें जल रहा था कि उसमेंसे एककी दृष्टि हमारे टेबलपर पड़ी और वह सीधा हमारी तरफ लपका। उसे देख शेष दो भी हमारी ओर टूट पड़े। मैं कुछ न समझा कि यह क्या बात है? कहीं ये इन लड़कियोंको पीटें नहीं। मुझे यह भी भय था कि कहीं ये मुझसे लड़ाई न ठानें। इस समय हमें साथ देखकर जो ये समझें कि यह इन्हें हमारे विरुद्ध सिखा पढ़ा रहा है तो उचित ही होगा। पर ऐसा न हुआ। वह गालियां देने लगे जाफरको। कल रात जाफर और उसका एक साथी इनपर बिगड़े थे, और उन्हें काफेसे निकलवानेमें इन दोनोंने सहायता दी थी। अब उसका बदला चुकाना चाहते हैं। उसे बेहूदा भाषामें गालियां दे रहे हैं और घूसा दिखा रहे हैं। मैं यह देख आश्चर्य-चकित था कि ये लोग अंगरेजी भाषामें अपना गुस्सा निकाल रहे थे। हिन्दुस्तानीमें भी बोलते तो कुछ लाज रहती। पर यूरोप-प्रवासी अधिकांश भारतीय छात्र अपनी मातृ भाषाको हेय समझते हैं और आपसमें भी अंगरेजी बोलते हैं। भारतमें भी मैंने दो-चार मित्रोंको अंगरेजीमें अपने चण्ड-क्रोधका प्रदर्शन करते देखा है। उनका कहना है कि हिन्दी भाषामें कोपका प्रखर रूप प्रकट करनेको उपयुक्त शब्द नहीं हैं, इसीलिए हिन्दीमें वीर रसकी कविता कम पायी जाती है। जो हो, पर इंगलिश काफेमें इन बन्धुओंके विलायती गुस्सेने हमारी लाज ले ली। जाफरको शरम आयी और वह हिन्दीमें बोलने लगा। तब मालूम हुआ कि इनमें दो पतितोंने भरी महफिलमें मार्टा और उसकी सखीका चुम्बन करनेका अत्यन्त जघन्य प्रयत्न किया। इस-लिए मार्टाने एकके गालोंपर तमाचा जड़ दिया। इसपर जर्मन बिगड़ उठे। मार-पीट, लात-घूसे, गाली-गलौजका बजार गरम हो उठा और ये चरित्रहीन नवयुवक पिट पिटाकर भाग गये। इनका तीसरा साथी तबसे इनके विरुद्ध है। इसलिए आज दिनभर ये जहां जा रहे हैं वहीं लड़ रहे हैं। यह हिम्मत नहीं है कि आपसमें मिलना बन्द कर दें। यह जानकर मैंने मन-ही-मन मार्टाकी वीरता और आत्मसम्मान-भावकी प्रशंसा की और समझा कि—

> धौलधप्पा उस सरापा नाजका शेवा न था,
> हम ही कर बैठे थे गालिब पेशदस्ती एक दिन।*

———

* स्थानाभावके कारण, इसबार 'यूरोप-यात्राके पृष्ठोंसे' वाला लेख पूरा नहीं जा सका। अगले अङ्कसे वह लेख-माला यथापूर्व ही प्रकाशित होगी, पाठक धैर्य रखें। सम्पादक

कुओमिनटांगका मुखपत्र "शुन पाओ" लिखता है:—

"प्रत्येक सोवियट गांवके अपने निजी सन्तरी होते हैं। ये सन्तरी हमारी सेनाके आगमनसे सूचित होते ही गांववालोंको सावधान कर देते हैं और ग्रामनिवासी यह समाचार पाते ही इधर-उधर तितर-बितर होकर नौ-दो ग्यारह हो जाते हैं, जिसका फल यह होता है कि हमारे (अर्थात् राष्ट्रीय) सिपाहियोंके लिए इस बातका अन्दाज लगाना कठिन हो जाता है कि 'लाल' दलके आदमी कहां छिपे हैं। इसके अतिरिक्त लाल सिपाही जब पहाड़ोंपर छपने जाते हैं तो अपने साथ यथेष्ट खाद्यसामग्री ले जाते हैं, क्योंकि पहलेसे ही सूचना मिल जानेसे इसके लिए उन्हें यथेष्ट अवसर मिल जाता है। पर हमारे सिपाही केवल एक या दो दिनका राशन ही अपने साथ ले जा सकते हैं, इस कारण वे उनकी प्रतीक्षामें अधिक समयतक ठहर नहीं रह सकते। इन्हीं सब कारणोंसे चीनमें लाल लोगोंका विरोध सम्भव नहीं हो रहा है।"

इसके अतिरिक्त सिङ्गापुरका एक चीनी पत्र सूचित करता है कि चीनमें सोवियट राजकी लोकप्रियताका एक कारण यह भी है कि चीनी कम्यूनिस्ट अत्यन्त शिष्टतासे लोगोंके साथ पेश आते हैं और किसी प्रकार भी जुल्म नहीं करते।

——

अमेरिकामें पुलिसकी ज्यादती

अमेरिकाको यदि दुष्कर्मोंका देश कहा जाय तो कुछ अनुचित न होगा। वहां बड़ेसे बड़े ओहदोंके व्यक्तियोंसे कर एक साधारणतम व्यक्तितक किसीके भी सम्बन्धमें यह त निश्चित रूपसे नहीं कही जा सकती कि अमुक व्यक्ति [illegible] कर सकता है, अमुक नहीं। कारण यह कि दुष्कर्म crime) वहां एक कलाकी श्रेणीको पहुंच गया है और शेष-विशेष दुष्कर्मी तो वहां प्रायः सम्भ्रमकी दृष्टिसे वे जाते हैं। अल कापोने, मेयर वाकर आदि इसके ज्वलन्त ष्टान्त हैं। दुष्कर्मोंके नये-नये वैज्ञानिक उपाय वहांके लोग विष्कार करते हैं और दुष्कर्म-सम्बन्धी उपन्यासोंकी नी बिक्री वहां होती है, वैसी अन्य किसी देशमें नहीं। सब कारणोंसे वहांकी पुलिस बौखला-सी गयी है और चलते-फिरतेमें किसी व्यक्तिपर सन्देह होते ही फौरन उसे गिरफ्तार कर लेती है। जितने व्यक्तियोंको वह गिरफ्तार करती है, अदालत अक्सर उनमें दस प्रतिशत व्यक्तियोंको भी अपराधी नहीं पाती और वे छोड़ दिये जाते हैं। जनता पुलिसकी इस ज्यादतीसे सन्त्रस्त है। हालमें अमेरिकन पुलिसकी कार्रवाइयोंकी जांचके लिए नियुक्त "विकरशाम कमीशन" की जो रिपोर्ट निकली है उसपर बर्लिनके "Woche" पत्रमें एक लेख छपा है। नीचे उसीका मर्म दिया जाता है:—

"मई १९३० के किसी एक दिन न्यूयार्कका टर्नर नामका एक व्यापारी किसी जरूरी कामके लिए डैलस पहुंचा। उसे किसीको फोन करना था, इसलिए वह एक पब्लिक टेलीफोन 'बूथ' में पहुंचा। वहां लाइन खाली नहीं थी, इसलिए वह दूसरी जगह गया। वहां भी सुविधा न देखकर वह एक तीसरी जगह गया। जब बाहर निकला तो पुलिसके एक चौकीदारने उसे तत्काल गिरफ्तार कर लिया। उसका अपराध यही बतलाया गया कि तीन टेलीफोन 'बूथों' में जानेसे उसने अपनेको सन्देहात्मक व्यक्ति प्रमाणित किया है। टर्नरने अपने एक मित्रको सूचित करना चाहा ताकि वह उसके पक्षमें वकालत करनेके लिए किसी एटार्नीका प्रबन्ध करे। पर उससे कहा गया कि वह यथेष्ट स्थानोंको टेलीफोन कर चुका है, अब अधिक नहीं कर सकता। कुछ भी हो, दो दिन बाद वह छोड़ दिया गया। इस प्रकार एक प्रतिष्ठित व्यक्ति बिना अपराधके नाहक अड़तालीस घण्टे कैद रहा। १९३० में डैलसमें १८२३ व्यक्ति केवल 'सन्देह' पर गिरफ्तार किये गये। १९२९ में वहां इसी प्रकार 'सन्देह' पर ८५०० से भी अधिक व्यक्ति गिरफ्तार किये गये! अन्तको इनमेंसे पांच प्रतिशतसे भी कम व्यक्ति किसी अंशमें दोषी प्रमाणित हुए। बाल्टीमोरमें १६६८ सन्देहात्मक व्यक्ति गिरफ्तार हुए और वे सबके सब बिना किसी 'चार्ज' के बेदाग छोड़ दिये गये। लास एञ्जल्समें बेकार रहना ही एक अपराधमें सम्मिलित है। (इस बेकारीके जमानेमें भी!) हां १९३० में १२,२०२ व्यक्ति 'बेकार फिरने' के कारण गिरफ्तार किये गये। सेण्ट लुईमें १३,९४७ डाकेके अपराधमें गिरफ्तार हुए, पर उनमेंसे १३,२१८ व्यक्तियोंको अदालतने निर्दोष पाया। इस ज्यादतीके मानी क्या हैं? कुछ

वास्तविक दोषी व्यक्तियोंको गिरफ्तार करनेका सबसे अच्छा उपाय पुलिसको यही मिला है कि सन्देहमें अनेक राहगीरोंको गिरफ्तार करके एक खासा समूह जमा किया जाय, इनमें कोई-न-कोई वास्तविक अपराधी मिल ही जायगा ! पर जनताको इससे कितना नुकसान पहुंचता है, इस बातपर वह ध्यान नहीं देना चाहती ।

"इस प्रकारकी अनर्थक गिरफ्तारीसे निर्दोष व्यक्तियोंको केवल नैतिक तथा शारीरिक कष्ट ही प्राप्त नहीं होता; 'पुलिस रेकर्ड' में उनके नाम दर्ज हो जानेसे उन्हें अनेक बार व्यापार तथा जीविका-सम्बन्धी आर्थिक हानि भी उठानी पड़ती है । विगत महायुद्धके अवसरपर सियेटलमें कोई एक इञ्जीनियर किसी ट्रेड यूनियनका सभापति था । एक बार वह किसी हालमें हड़ताल-सम्बन्धी जनताके आगे वक्तृता दे रहा था । पुलिसने हालपर आक्रमण किया और वह गिरफ्तार किया गया । दूसरे दिन वह मुक्त हो गया । इसके प्रायः दस वर्ष बाद इसी व्यक्तिको सान फ्रान्सिस्कोमें खान-सम्बन्धी एक ब्रिटिश कम्पनीने ब्राजील भेजना चाहा । ब्राजीलवालोंने स्थानीय पुलिससे उसके चरित्रके सम्बन्धमें यथार्थ बातें मालूम करना आवश्यक समझा । पुलिसके रेकर्डमें उसकी एक दिनकी गिरफ्तारीका हाल मिल गया । सियेटलसे सान फ्रान्सिस्को प्रायः एक हजार मील दूर है । दस वर्षके बाद एक हजार मीलकी दूरीपर भी उसकी एक दिनकी अकारण गिरफ्तारीका रेकर्ड पुलिसको मिल गया ! बिना अपराधके इस व्यक्तिको एक बड़ी भारी आर्थिक हानि उठानेको बाध्य होना पड़ा । पुलिसके झूठे अभियोगोंके विरुद्ध उनपर मामला चलानेका या तो साहस लोगोंमें नहीं होता, या उनकी आर्थिक स्थिति उन्हें चुप रहनेको मजबूर करती है । पुलिसको अपनी सफाईके लिए मुफ्तमें बड़े-बड़े एटार्नी मिल जाते हैं, पर असहाय जनताका खुदा ही हाफिज समझिये ।"

भोजनके सम्बन्धमें पथ्यापथ्यका विचार

भोजनके सम्बन्धमें पथ्यापथ्यका विचार प्राचीन कालसे चला आता है । हकीम, वैद्य और डाक्टर लोग बार-बार हमलोगोंको गरिष्ठ भोजनसे सावधान रहनेका उपदेश देते रहते हैं । सभी जानते हैं कि गरिष्ठ भोज[illegible] ही अधिक स्वादिष्ट होते हैं और वे महंगे भी मिलते हैं । खोयेकी मिठाईसे लेकर हलवा-सोहनतक, पूरी-परांठेसे लेकर माल-पुवेतक, कटहलके सागसे लेकर खसीके मांसतक सभी चीजें गरिष्ठ बतायी जाती हैं और प्रत्येक अनुभवी[illegible] कि ये ही चीजें लज्जतदार भी होती हैं । इस [illegible] पूतको वैद्यों तथा डाक्टरोंके सदुपदेशसे प्रकारयतः लाभ[illegible] बजाय हानि ही होती है । इस जमानेमें प्रायः सभीके मुंहसे अजीर्णकी ही शिकायत सुनी जाती है और डाक्टरोंकी चेतावनीसे बेचारे मरीजके मनमें और भी आतङ्क छा [illegible] है । इसलिए हम देखते हैं कि आजकल हमारे अधिका[illegible] युवक भी बड़े परहेजके साथ भोजन करते हैं और यदि कभी मित्रोंके अनुरोधसे कोई "गरिष्ठ" पकवान खा बैठते [illegible] तो दिन-भर उन्हें वहम बना रहता है कि कहीं बीमार न [illegible] जायं । इस प्रतिक्षण बने रहनेवाले भयसे भोजनका सारा म[illegible] किरकिरा हो जाता है । इधर जबसे "विटामिनों"का फैश[illegible] चला है तबसे हमारे युवक-वृन्द कच्चा टमाटर चबानेमें ही परम पुरुषार्थ समझने लगे हैं । पर हमारे देशमें खाद्यके सम्बन्धमें सबसे ज्यादा गलतफहमी महात्मा गांधीके खाद्य-सम्बन्धी प्रयोगोंसे फैली है । महात्माजी स्वयं इस सम्बन्ध-में सैकड़ों प्रयोगोंकी परीक्षा कर चुके हैं, पर कभी किसी प्रयोगसे सन्तुष्ट नहीं हुए । उन्होंने तो एक बार दूधको भी अपथ्य बताकर छोड़ दिया था । उन्होंने स्वास्थ्य-सम्बन्धी जो पुस्तक लिखी है, उसका देशमें कल्पनातीत प्रचार हु[illegible] है और हमने अपनी आंखों कई ऐसे युवकोंको देखा है [illegible] उसकी हिदायतोंके अनुसार चलनेसे अपना स्वास्थ्य बिल[illegible] नष्ट कर चुके हैं और कई तो हमारे सामने क्षयरोगके शिका[illegible] बनकर अकालमें ही इहलीला समाप्त कर चुके हैं । इस दोष महात्माजीका नहीं, पर उन लोगोंका है जो [illegible] राजनीति तथा धर्मनीतिकी तरह ही आयुर्वेद-विज्ञानमें भ[illegible] पारङ्गत समझते हैं । एक व्यक्ति, चाहे वह कैसा ही प्रतिभा[illegible]शाली क्यों न हो, सभी विषयोंका विशेषज्ञ कदापि न[illegible] हो सकता ।

पाश्चात्य देशोंके डाक्टरोंने भोजनके सम्बन्धमें पथ्य[illegible] पथ्यपर विभिन्न मत प्रकट किये हैं । पर इधर जबसे "वि[illegible]मिनों"का आविष्कार हुआ है, तबसे प्रायः सभी विशे[illegible]

इस विषयमें [illegible]मत हो गये हैं कि किस प्रकारके भोजनमें क्या गुण है और किसमें क्या नहीं। फिर भी बीच-बीचमें कुछ दिलजले अनुभवी रात-दिनके परहेज और सावधानीकी [illegible] बातोंसे उकताकर अपने यथार्थ, पर कड़वे अनुभवों- [illegible] बिना नहीं रह सकते। हालमें एक फ्रेञ्च [illegible] इस सम्बन्धमें अपने उद्गार पेरिसके "वू" (Vu) [illegible]में इस प्रकार व्यक्त किये हैं :—

"जब मैं किसी भोजमें जाता हूं तो कोई न कोई डाक्टर [illegible] ही पथ्यापथ्यके सम्बन्धमें लेकचर बघारने लगता है। [illegible]ता है—'यदि अनावश्यक मोटा न होकर स्वस्थ रहना चाहो तो प्रातर्भोजनके लिए केवल एक ग्लास सन्तरेका रस, बिना मक्खनका टोस्ट और बिना चीनीके काले कहवे- [illegible] एक प्याला यथेष्ट है; मध्याह्न-भोजनके लिए जरा-सा [illegible], सुपाच्य मांसका एक टुकड़ा, दो चम्मच तरकारी तथा [illegible] उबाले हुए फल काफी हैं; डिनरके लिए बिना तेलके सलादका एक टुकड़ा, सूखी रोटीके दो टुकड़े तथा बिना चीनीकी चायका एक प्याला—इसके अतिरिक्त और कोई चीज ग्रहण नहीं करनी चाहिए।' डाक्टरका यह भयावना मन्तव्य सुनकर स्त्रियां परम सन्तुष्ट होती हैं, पर पुरुष घबरा जाते हैं। सामयिक पत्र मुझे विटामिनोंकी याद दिलाते रहते हैं। वह मानों मुझसे कहते हैं—'या द रखो, विटामिन सी० रक्तशोधक तथा दन्त-रक्षक है, विटामिन बी० पाचन-शक्ति-[illegible] है, और विटामिन ए० छूतके रोगका निवारक है। कहीं [illegible]स उपादेय तथ्यको भूल न जाना!' पथ्य भोजनके [illegible]में सबसे अधिक आपत्तिजनक बात यह है कि उसके नियम समय-समयपर बदलते जाते हैं। कुछ वर्ष पहले मैं [illegible] बच्चोंको अपने साथ लेकर कहीं एकान्तवासमें चला गया था। मेरे साथ किसी विशेषज्ञकी लिखी एक डाक्टरीकी पुस्तक थी, जिससे मैं अपने बच्चोंके भोजन-सम्बन्धी विषयपर सलाह लेता था। उसके अनुसार चलकर मैं उन्हें, उनकी इच्छा न होनेपर भी, बलपूर्वक पालक तथा गाजरकी तरकारियां खिलाता था, उनके गलेके भीतर जबर्दस्ती अण्डोंको ठूंसता था और जन्तु-विशेषके मांसका रस उन्हें पिलाता था। कुछ ही समय बाद उक्त डाक्टरी पुस्तकका दूसरा संस्करण छपकर मेरे पास आया। उसमें खाद्य-पदार्थोंकी सारी लिस्ट ही [illegible]ल गयी थी। उससे मैंने मालूम किया कि अण्डे मूत्रस्थली-के लिए हानिकर होते हैं; पालक तथा गाजरके जो गुण पहले बताये गये थे, वे इसमें विलुप्त पाये। चार साल पहले मैं जब छुट्टियोंपर गया था, तो करमकल्ले (बन्दगोभी) का अचार परम पौष्टिक बताया जाता था। पर जब इस बार घर लौटा तो करमकल्लेका अचार फैशनके बाहर हो चुका था। अब इसके बदले टमाटरके रसका फैशन प्रचलित हो गया है—उसीमें अधिक विटामिन बताये जाते हैं। आजकल देखा जाता है कि लोग भोजनके सम्बन्धमें जरा-जरा-सी बातपर सावधानी रखनेकी चेष्टा करते हैं, जिससे ऐसा मालूम होने लगता है कि जो चीज रुचिकर जान पड़े उसे चट कर जाना मानो एक घोर दुष्कर्म है। पर जब मैं स्वीडन गया तो मेरी आंखें खुलीं। वहां मैंने एकबार एक व्यक्तिके यहां भोजके अवसरपर देखा था कि मुर्गीकी कलेजी डालकर तैयार किये गये टोस्ट, 'कावियार' (मछलीके अण्डोंसे प्रस्तुत एक प्रकारका महंगा भोजन), खुश्क मछली, नाना प्रकारके मांस, कई किस्मके केक, मक्खनमें तैयार किया गया 'एसपेरेगस', नाना प्रकारके फल, पनीर आदि पदार्थ खानेको मिले। इसके बाद शेरी, शैम्पेन आदि अनेक प्रकार-की शराबें अतिथियोंको पानार्थ दी गयीं। तत्पश्चात् ड्राइंग रूममें कहवा, फल तथा मधुर पेय पदार्थ उपस्थित किये गये। रातको साढ़े बारह बजेके करीब उबाले हुए आलू, प्याज, अण्डे, नाना प्रकारकी पनीर, 'हेरिंग' मछलियां आदि चीजें अतिथियोंने बड़े शौकसे उड़ायीं। मैंने सोचा था कि इस प्रकारका गुरु-भोजन करनेके कारण अवश्य ही उनमेंसे बहुतसे सज्जन पलंगपरसे उठनेमें अशक्त होंगे, पर वे लोग सब भले-चङ्गे दिखायी दिये और सबने उठकर प्रातर्भोजन किया।

"इसके बाद और भी कई तजर्बे मुझे इस सम्बन्धमें हुए हैं, जिससे मेरी यह धारणा दृढ़तर हो गयी है कि भोजन-के सम्बन्धमें रात-दिन पथ्यापथ्यका विचार करके चलना किसी प्रकार भी स्वास्थ्यप्रद नहीं हो सकता। जैसी-कुछ भी खानेकी चीज मिले, उसे आनन्दपूर्वक, आंख मूंदकर खा लेनेसे ही वास्तविक बल बढ़ता है। विटामिन-शास्त्र बिल-कुल ढोंगसे भरा है।"

———